Narendra Mahershi

कृपा – प्राप्त

सारस्वत कुण्डलिनी महायोग

शक्ति पात शास्त्र

प्र० साहित्याचार्य

डॉ० जितेन्द्र चन्द्र भारतीय शास्त्री

एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत) पी० एच० डी०

साहित्यरत्न, साहित्यालंकार

काव्यमनीषी

प्रकाशक –
निर्मोहीबन्धु प्रकाशन
सी० १०६५, गोदानिकुञ्ज
महानगर,
लखनऊ – ६

(एक हजार प्रतियां)
द्वितीय संस्करण – १९९५

मूल्य – २५१/– रू०

मुद्रक –
राम प्रिन्टिंग प्रेस
६५, नाला फतेहगंज,
अमीनाबाद,
लखनऊ – १८
दूरभाष : २७२०४८

।। श्री सद्गुरु चरण कमलेभ्यो नमः ।।

आत्मप्रिय सुधी पाठक वृन्द !

ब्रह्मलीन सद्गुरू पितृश्री के साधना प्रसून का द्वितीय संस्कार पर्याप्त विलम्ब से प्रकाशित हो रहा है। यह एक सामान्य सी बात है कि जिनका वरदहस्त सतत मेरे साथ रहा वे गुरूदेव वर्ष १९८६ में १८ जनवरी की प्रातः महा प्रयाण कर गये, उनकी कृपा के बिना तो मैं अपने को अपूर्ण ही पाता रहा हूँ। एक गहन अंधकार तब छा गया। फिर उन्हीं के वाक्य स्मरण हो आये और यह भी याद आया कि महापुरूष कभी भी विलीन नहीं होते, तिरोहित अवश्य ही हो जाते हैं। फिर से साधना कार्य में जुट गया। फिर उन्हीं के आर्शीवाद से इस शास्त्र के पुनः प्रकाशन का कार्य प्रारम्भ कर दिया। इस गुरूतर कार्य में भी अनवरत् विघ्न आते ही रहे, साधनों का अभाव भी बना रहा, लेकिन जैसे वे परीक्षा ले रहे थे, स्वयं ही साधन जुटा भी देते थे। अब ये सारस्वत शास्त्र आपके हाथों में है।

मेरे जन्म जन्मांतर के अर्जित पुण्यों का प्रताप था कि ऐसे घर में जन्म लिया, जहाँ पूर्वजन्मों के पुण्यों का प्रसून विकसित और सुरभित हो रहा था, साधना की गंध उनकी चतुर्दिक् फैलने लगी थी, लोक–कल्याण की भावना उनके जीवन का मुख्य अंग थी। साधना काल में अर्जित पूँजी को हमेशा सेवाभाव से लोक–कल्याण के लिए उन्होंने बाँटा। उनके संरक्षण में साधना में बैठकर अध्यात्मिक अनुभवों के अतिरिक्त मैं उनकी सारस्वत साधना यात्रा का प्रतिभागी भी बना। पुस्तक की रफ कापी तैयार करने से लेकर प्रेस तक की सारी यात्रा का संवाहक बनकर उसकी प्रत्येक बारीकी को जाना और समझा। तीन वर्ष तक का समय गुरूदेव के जीवन काल में गोरखमय रहने का था। इसी बीच इन उपलब्धियों को कतिपय लब्ध प्रतिष्ठ योगियों ने देखा और

सराहा। इस शास्त्र की जितनी भी प्रशंसा की जाय वह कम ही है। अध्ययन करते ही करते इससे साधक में शक्तिपात हो जाया करता है, यह भी एक विचित्र लोकोत्तर संयोग है।

जिनकी कृपा व साधना के प्रसाद को आपको समर्पित कर रहा हूं। उन्हीं के श्रीचरणों में अपने श्रद्धासुमन अर्पित कर निवेदन है कि द्वितीय संस्करण के प्रकाशन सहयोग हेतु श्रद्धेय गुरूदेव के पौत्र श्री संजय शर्मा जिनके अथक प्रयास से पुस्तक का प्रकाशन सम्भव हो पाया।

भाई डा० मोहन चन्द्र भट्ट ने अपना अमूल्य समय देकर पुस्तक प्रकाशन में सहयोग प्रदान किया। साथ ही भाई डा० राधेश्याम शर्मा, संचालक त्रिपुरेश्वरी शक्तिपीठ रामपुर एवं भाई श्री वीरेन्द्र पाण्डेय की प्रेरणा से यह कार्य सम्पूर्ण हो सका। भाई श्री चन्द्र प्रकाश गोयल बहिन चन्द्र प्रभा भटनागर तथा भाई श्री शशि कान्त गोस्वामी को अपना आर्शीवाद प्रदान करें। इन सभी को सर्वविध अभ्युदय प्रदान करें।

अन्त में गुरूदेव के स्मरण पूर्वक सहित –
त्वदीयं वस्तु गोविन्द
तुभ्यमेव समर्पये।

विनीत

(डा० वी० के० शर्मा)
महामंत्री त्रिपुरेश्वरी शक्तिपीठ
प्रकाशक – निर्मोही बन्धु प्रकाशन
सी०–१०६५, गोदानिकुंज,
महानगर, लखनऊ।
दूरभाष : ३८५८३८
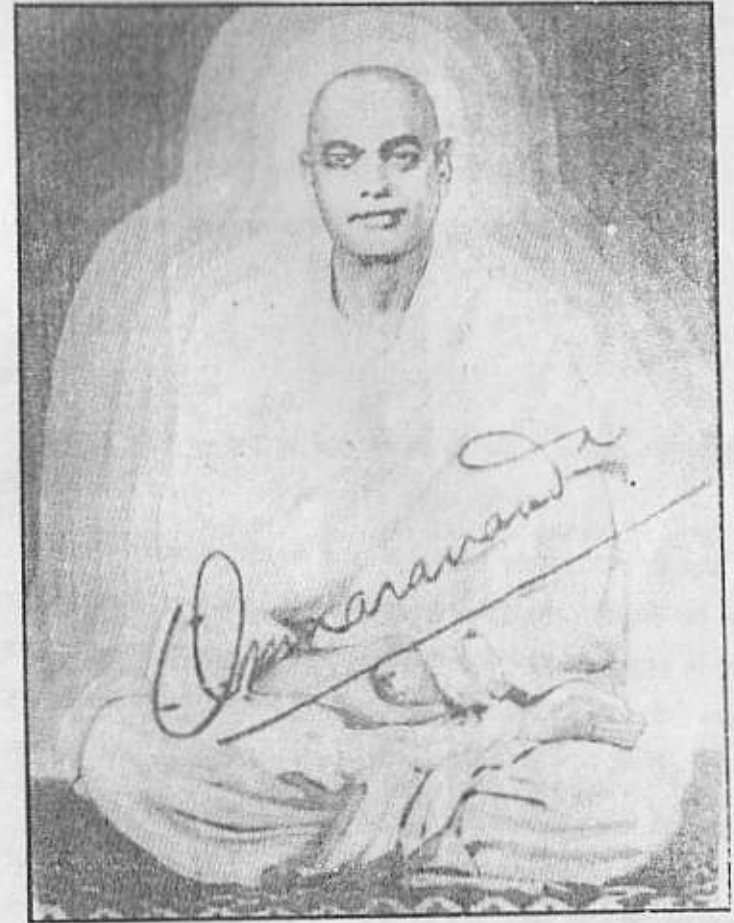
श्री गुरवे नमः

।। यत् प्राप्तं तद्गुरवे समर्पितम् ।।

१४–३-७८ को ब्रह्मलीन हुये १०८ श्री गुरुदेव–स्वामी ओंकारनन्द जी के चरणों में सादर समर्पित। जिन के अनुग्रह से गुह्यातिगुह्य रहस्य प्रकट हो गया। जिनके कृपा कटाक्ष से जीवन–जीवन बन गया। परमत्व की उपलब्धि का अधिकारी हो सका। क्षमता मिली। शक्तिपात महायोग का मार्ग मिला, उन्हीं के चरणों में मां सरस्वती एवं श्री गोरखनाथ बाबा का दिया यह प्रसून सादर–अर्पित है।

गुरुदेव का चित्र

श्री १०८ स्वामी ओंकारानन्द जी महाराज

वन्देऽहं श्री गुरोर्मूर्तिम्, ओंकारानन्दभूषिताम् शक्तिपातसमायुक्तां,
तत्वार्थस्य प्रदर्शिकाम् ।

आर्शीवाद

आत्मप्रिय पाठकगण !

चिरकाल से लुप्त-गुप्त हुई विद्या भगवती की कृपा से श्लोकबद्ध शास्त्र के रूप में सर्वसाधारण जनता के हाथ में आया है। यह हम सब का अहोभाग्य है।

शक्तिपात दीक्षितों एवं साधारण जनता के लिये इस शक्तिपात शास्त्र की प्राप्ति सचमुच आर्शीवाद रुप है। यह कोई नया मार्ग नहीं है। आज तक शक्तिपात-मार्ग के ज्ञाता सन्त-महात्मा-लोग सेवाभावी शिष्यों को शक्तिपात दीक्षा से अनुगृहीत करते रहे हैं। इस विषय में उपनिषद् तथा अन्यान्य ग्रन्थों में कुछ बिखरे हुए श्लोक मिलते हैं, किन्तु श्लोकबद्ध शास्त्र उपलब्ध नहीं है।

परम कृपालु मां भगवती ने यह श्लोकबद्ध शास्त्र इस शास्त्र के द्रष्टा मेरे शिष्य योगाभ्यासी श्री जितेन्द्र चन्द्र भारतीय के शरीर में प्रकट होकर दिया है। इस ग्रन्थ का सम्पूर्ण विवरण ग्रन्थ के अनुवादक ने अपनी भूमिका में दे ही दिया है, इस लिये उसका यहां पुनरावर्तन अनावश्यक है। जब योगाभ्यासी साधक के शरीर में भगवती मां की शक्ति एवं गोरख नाथ का आवेश आता था तब उन्हें अपने शरीर का भान नहीं रहता था। जो संस्कृत श्लोक साधना काल में मां भगवती ने उच्चारित किये, हिन्दीः बाबा गोरख ने, उन्हें सब साधन में बैठे गुरुभाइयों ने टेपरिकार्ड कर लिया। यह सब मेरी उपस्थिति में हुआ था, अतः इसमें किसी शंका का स्थान नहीं है।

आज तक समर्थ शक्ति सम्पन्न महात्माओं ने शक्तिपात विषय पर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं, किन्तु उनमें उन्होंने अन्य ग्रन्थों से उद्धरण लेकर उन पर टीका की है, जब कि यह श्लोकबद्ध शास्त्र मां भगवती ने लोक-कल्याण के लिये स्वयं प्रदान किया है और इस में अन्य किसी ग्रन्थ

का आधार नहीं लिया गया है। श्री गुरु गोरखनाथ की वाणी इस शास्त्र का प्राण है। साधन काल में गोरखनाथ का प्रवेश होता था, वाणी निकलती थी।

इस ग्रन्थ की विशेषता इस लिये है कि इसमें बताई हुई टंकविद्या, आधारविद्या, चक्रविद्या तथा प्राणविद्या इत्यादि पढ़ कर एवं उसे अमल में लाने से साधक की कुण्डलिनी शक्ति स्वतः जागृत हो जाती है। तदुपरान्त इस ग्रन्थ में व्यक्तिके शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं चित्तज रोगों के निवारण के लिये भी क्रिया मुद्रा तथा औषधियां बताई गई हैं, जिससे साधक बड़ी सुगमता से अपने ध्येय तक पहुंच जाता है।

संक्षेप में परम कृपालु भगवती मां एवं गुरु गोरखनाथ के दिये हुए इस शक्तिपात शास्त्र से जिज्ञासु लोग लाभ प्राप्त करें, अपनी उन्नति करें और उन पर मां की कृपा सर्वदा बरसती रहे, यही मेरी मां से अभ्यर्थना है।

गुरु गोरक्षनाथ

गोरक्षं नौमितं देवम् योगमार्गं प्रदर्शकम् यत् कृपालवमात्रेण योगसिद्धिः प्रजायते ॥
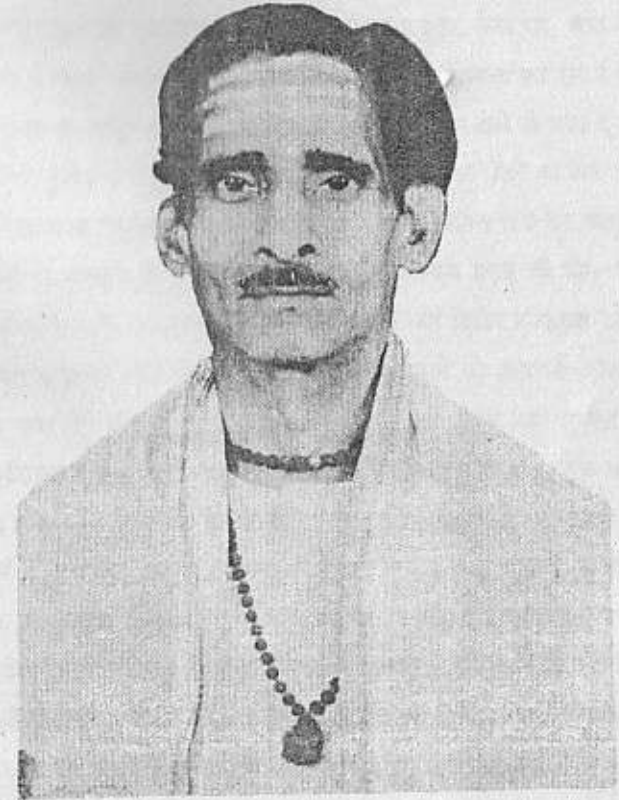
श्री पं० विद्यासागर जोशी
(अनुवादक)

भूमिका

।। श्री गणेशाय नमः। ॐ श्री गुरुचरणकमलेभ्योनमः।।

इस प्रस्तुत महाशास्त्र के इस भू-लोक में अवतीर्ण होने की घटना बड़ी अद्‌भुत और लोकोत्तर है। इसके अनुवादक का प्रत्यक्ष सम्बन्ध इस रहस्यमयी घटना के आदि से अन्त तक रहा है। जब पूर्वपुण्यों का उदय होता है तब सिद्ध सद्‌गुरु से भेंट होती है। अल्मोड़ा जिले के द्वाराहाट नामक बस-स्टेशन के उत्तर- भाग में द्रोणागिरि पर्वत है। उसके शिविर में वैष्णवी देवी का मन्दिर है, वह स्थान सिद्ध पीठ है। ३, जून, सन् १९६२ को लखनऊ निवासी श्री पूर्णचन्द उपरेती जी के शतचण्डी-यज्ञ के निमन्त्रण में लखनऊ के दस ग्यारह व्यक्ति जिनमें इस महाशास्त्र के द्रष्टा श्री जितेन्द्र चन्द्र भारतीय और इस शास्त्र के सम्पादक व अनुवादक भी थे, वहाँ पहुंचे। उसी प्रकृति - रम्य स्थली में, एकान्त वन्य-प्रान्त में श्री जितेन्द्र चन्द्र भारतीय जी तथा अनुवादक की अलौकिक भेंट अपने सद्‌गुरु शिवस्वरुप ब्रह्मनिष्ठ श्री श्री १००८ स्वामी ऊँकारानन्द तीर्थ महाराज से हुई। सामान्य औपचारिक वार्तालाप के अनन्तर श्री गुरु महाराज ने हम दोनों को दूसरे दिन अपनी कुटिया में एक कम्बल साथ लाकर आने को कहा। जिज्ञासा की तीव्रता से दूसरे दिन प्रातःकाल की प्रतीक्षा अनुवादक से न हो सकी और उसी दिन की रात्रि को कम्बल लेकर वह कुटिया में पहुंच गया। तब श्री गुरु महाराज साधना में बैठे थे, दीपक टिमटिमा रहा था, कण्डों की धुनी सामने जल रही थी। अनुवादक चुपचाप कम्बल तह करके एक कोने में सामने बैठ गया। जब श्री गुरु महाराज की आँखे खुली, मुझे सामने देखकर पूछा, क्यों आये हो? तुम्हें तो कल प्रातः बुलाया था। अनुवादक ने कहा 'कल भी आऊगा आज भी आ गया हूं। अभी कुछ अनुग्रह कर दें, कुछ साधना बता दें।" श्री गुरु महाराज बाले "अभी जाओ, जो होगा कल ही होगा," मैं फिर भी बैठा ही रहा। मेरे हठ और दुराग्रह से गुरु महाराज क्षुब्ध नहीं हुए। जैसे एक जिद्दी बालक की बात करुणामयी मां मान ही लेती है, उसी भांति श्री गुरु महाराज बोले 'अच्छा बैठ जाओ, जैसे बैठना चाहो'। मैं आँख बन्द करके बैठ गया। री गुरुदेव ने ॐ कार ध्वनि की। उस में क्या चमत्कार था, क्या जादू था, क्या मोहक आकर्षण था, मैं अपनी सुधबुध खो बैठा, मौन, स्तब्ध, शून्य, संज्ञाहीन-सा। यह स्थिति कब तक रही, कह नहीं सकता। जब चेतना लौटी, शरीर में आया तब गुरुदेव ने कहा

जाओ, काम हो गया, नित्य बैठा करो। आज्ञा पाकर मैं उठकर अपने कमरे में जहाँ हमारे अन्य साथी सो चुके थे, केवल एक अकेले श्री भारतीय जी मेरी प्रतीक्षा में जगे थे, चुपचाप लेट गया। श्री भारती जी ने बहुत पूछा कि गुरु जी के पास से आये हो, क्या हुआ, कैसा रहा, क्या बताया? किन्तु मैं कुद बता न सका, क्योंकि प्राप्त अनुभव के बताने या अभिव्यक्त कर सकने के मुझे शब्द नहीं मिल पा रहे थे। मैं हाँ हाँ हूं हूं करके उन्हें टाल गया और हम दोनों सो गये। दूसरे दिन प्रातः श्री भारतीय जी कुटिया में पहुंचे। श्री गुरुदेव ने हमें अलग-अलग बैठने का आदेश दिया। श्री गुरुदेव का सिद्ध प्राणायाम आरम्भ हुआ और उन्होंने आकाश-पातल कंपा देने वाली ऊँकार ध्वनि छोड़ी। उधर श्री भारतीय जी का शरीर कम्पित होने लगा। नाना प्रकार की योग-क्रियायें, आसन, मुद्रा, प्राणायाम स्वतः अनायास होने लग पड़े। मुझमें कोई विशेष प्रतिक्रिया उस समय नहीं हुई। मैं केवल द्रष्टा की भांति श्री भारतीय जी की सभी क्रियाओं को आश्चर्य-चकित दृष्टि से देखता ही रह गया। मैंने ध्यान में आँखे भी इस भय से बन्द नहीं कीं कि कहीं शून्यता में फिर न चला जाऊ और सामने होने वाले अद्‌भुत दृश्य देखने से वन्चित न हो जाऊं। एक घण्टे बाद यह सब समाप्त हुआ और श्री गुरुदेव ने आशीर्वाद पूर्वक हमें विदा किया और बताया कि इसे शक्ति-पात कहते हैं, महामाया भगवती जगदम्बा की तुम्हारे ऊपर कृपा हो चुकी है, तुम्हारी सुप्ता कुण्डलिनी शक्ति का जागरण हो चुका है। इस भांति श्री भारतीय जी और इस शास्त्र के अनुवादक की शक्तिपात-दीक्षा सम्पन्न हुई थी। दीक्षा के अनन्तर श्री गुरुदेव के सम्मुख दो बार दो दिन फिर बैठे थे। तीसरे दिन लखनऊ लौटने का कार्यक्रम था और अपने अन्य साथियों के साथ हम भी लौट आये। लौटते समय बिदाई-आशीर्वाद के समय श्री भारतीय जी को अनवरत अश्रुपात हो रहा था, जैसे लड़की मां से बिदाई ले रही हो। गुरु-शिष्य के इस दिव्य-प्रेम में अनुवादक आनन्द विभोर होकर श्रद्धावनत हो रहा था, श्री गुरुदेव ने श्री भारतीय जी को वहीं आशीर्वाद दिया कि जाओ, तुम्हारी वाणी में साक्षात् सरस्वती मां की अभिव्यक्ति होगी।

उसी आशीर्वाद के फलस्वरुप पाँच मास पश्चात् श्री भारतीय जी के मुख से दिव्य वाणी का निःसरण होने लगा। ६ जून १९६२ के शुभ दिन हमारी शक्तिपात-दीक्षा हुई। २२ अक्टूबर १९६२ से श्री भारतीय जी की वाणी से साक्षात् जगदम्बा सरस्वती ने शक्तिपात-महाशास्त्र का उच्चारण आरम्भ कर दिया था। आरम्भ में लखनऊ के पाँच छः व्यक्ति दीक्षित थे उनमें श्री भू. पू. इक्जिक्यूटिव इंजीनियर स्व. श्री बिपिनचन्द्र पाल थे। उन्हों ने इस शास्त्र की सुरक्षा और

संकलन के लिये टेपरिकार्डर की व्यवस्था कर दी थी। हम लोग प्रातः सायं दोनों बार साधना में बैठते थे। श्री भारतीय जी के मुख से वाणी निकलते ही टेपरिकार्डर खोल दिया जाता था। पाठक देखेंगे कि जो वाणी जिस दिन मुख से निकली थी वही तिथि और समय उस वाणी के शीर्षभाग मेंउल्लिखित कर दिया गया है।

इस शास्त्र के प्रारम्भ में शक्तिपात विद्या के सम्बंध में भगवती सरस्वती ने सूत्रों का उच्चारण संस्कृत-भाषा में किया है और उन्ही सूत्रों की व्याख्या स्वयं ही संस्कृत में की है। शास्त्र के प्रथम भाग में शक्तिपात-रहस्य और त्रिपुरा-रहस्य उच्चारित किया गया है। ये दोनों विद्यायें अकेले भी सरस्वती भगवती ने ही उच्चारित की हैं। इसके अनन्तर अश्व-विद्या या टंकविद्या का आरम्भ होता है। इसमें योगियोगीश्वर कुण्डलेश्वरपीठाधिपति श्री श्री गुरुगोरख देव का आगमन होता है। टंकविद्या से चक्र-विद्या तक यह शास्त्र भगवती सरस्वती और श्री गुरु गोरखनाथ जी दोनों ने मिल कर श्री भारतीय जी के मुख से कहा है। भगवती सरस्वती ने संस्कृत में जो कुछ उच्चारित किया है उसी का पूर्ण सार लोकभाषा हिन्दी में गुरु गोरखनाथ जी ने भलीभाँति समझा कर बताया है।

पाठक देखेंगे कि इस शास्त्र की संस्कृत भाषा बड़ी सरल सुबोध और जटिलता से दूर है। संस्कृत का सामान्य ज्ञान रखने वाला भी इसे भली भाँति समझ सकता है। टेपरिकार्डर सुनकर लिखने में हमने मूल -सामग्री की हूबहू नकल की है। जैसा जिस ढंग से उच्चारण सुना गया था, ठीक वही लिखा गया है। संस्कृतज्ञ-पाठक देखेंगे कि संस्कृत-भाषा में स्थान-स्थान पर सन्धियाँ नहीं हैं। व्याकरण-नियमानुसार सन्धियाँ होनी चाहिये, क्योंकि उच्चारण जहाँ जहाँ बिना सन्धि के हुआ है, वहाँ वैसे ही लिखा गया है। लिखने में सन्धि हम कर सकते थे, किन्तु भगवती सरस्वती की वाणी की मूल महत्ता में हस्तक्षेप करने का अनधिकार-प्रयास से बचना ही हमने श्रेयस्कर समझा। भगवती सरस्वती की वाणी में उनका अपना अप्रतिहत-स्वातन्त्रय है। वे पाणिनीय-व्याकरण के नीति नियमों से सर्वथा उनमुक्त हैं। इसलिये उनके क्रिया-पदों के प्रयोग कहीं-कहीं लोक-संस्कृत से यदि भिन्न दीखते हों तो उन्हें सारस्वत-दिव्य प्रयोग समझना चाहिये। पाणिनीय-व्याकरण में भी आर्ष-प्रयोग को स्वीकार किया ही गया है। मां सरस्वती ने स्वच्छ रुप में जहां जैसा चाहा, गद्य और श्लोक दोनों शैलियों का प्रयोग किया है। कहीं-कहीं तो श्लोकों में कही गई बातों की व्याख्या स्वयं ही संस्कृत गद्य में खोल दी हैं।

अनुवादक ने अनुवाद करने में इस बात का विशेष ध्यान रखा है कि अनुवाद में अपनी ओर से कुछ भी अधिक न कहा जाय और मूल में कही गई कोई बात, कोई शब्द छोड़ा न जाय। इस दृष्टि से यह अनुवाद केवल शब्दानुवाद या अक्षरानुवाद मात्र है। वैसे इस शास्त्र की जब तक पूर्णरुप से विशद व्याख्या न कि जाय, तब तक इसके अन्तर्गत आये विषयों का भाव सुस्पष्टता से हृदयंगम नहीं हो सकता है। यह शास्त्र पूर्ण विस्तृत व्याख्या या भाष्य की अपेक्षा रखता है। सम्प्रति हमारा केवल इतना ही उद्देश्य है कि यह दिव्य शास्त्र, शीघ्रातिशीघ्र पाठकों के और योगशास्त्र के जिज्ञासुओं के सम्मुख शीघ्र उसी मूल रुप में प्रस्तुत कर दिया जाय।

यह महाशास्त्र अत्यन्त अलौकिक महिमा से मण्डित है। इसके अन्तर्गत निकली हुई विद्याएँ सभी महादिव्य हैं, गुप्त हैं, लुप्त हैं, नाना रहस्यों से भरी हैं ।लोक में इन विद्याओं का लोप हो गया था। माँ सरस्वती ने स्थान-स्थान पर स्वयं यह कहा है कि इन विद्याओं का ज्ञान बहुत काल से लोक में लुप्त और गुप्त है तथा लोक-कलयाण के लिये इन विद्याओं को प्रकट किया जा रहा है। शक्तिपात-महायोग में दीक्षित हुए साधकों के लिये इस महाशास्त्र का बड़ा दिव्य महत्व है। महायोग-साधकों के लिये तो यह शास्त्र प्राण- प्रिय महारत्न है। यह महाशास्त्र योग-साधकों के लिये स्वयं एकान्ततः गुरु ही है। शक्तिपात में दीक्षा प्राप्त करके साधक के सम्मुख नाना-प्रकार की विषमतायें, जटिलतायें, घात-प्रतिघात तथा अनेकों विघ्न -बाधायें आया करती हैं। इस शास्त्र में सब प्रकार के प्रतिरोध, विघ्न -बाधायें चाहे वे शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और चित्तज ही क्यों न हों उनके दूर करने के सरल सुलभ उपाय बता दिये गये हैं। महायोग-साधक की समस्त प्रकार की भ्रान्तियाँ मार्ग-रोध इस शास्त्र के अनुशीलन-मात्र से दूर हो जाती हैं, मां सरस्वती ने तथा गुरु गोरखनाथ महाराज ने प्रत्येक प्रकरण में इस शास्त्र के अनुशीलन-कर्ताओं को मुक्त कण्ठ से अपना दिव्य आशीर्वाद दिया है और शास्त्र की बड़ी महिमा गाई है। अपनी ओर से इस महाशास्त्र की प्रशंसा और स्तुति करने की क्षमता हममें नहीं है। सूर्य के प्रकाश में दीपक क्या करेगा। यह महाशास्त्र अपनी अमृतमयी दिव्य-महिमा से स्वतः स्वयं देदीप्यमान, यशस्वी तथा सर्वसामर्थ्य-सम्पन्न है।

योग शास्त्र की साधना से सम्बन्धित कोई भी विषय या प्रसंग ऐसा नहीं है जिसका इस महाशास्त्र मे समावेश न हो। क्रिया, मुद्रा, आसन, प्राणायाम, मन्त्र, औषधि, ध्यान, ज्ञान, तत्वज्ञान, आत्मविज्ञान, ब्रह्मज्ञान, शैव,-शाक्त विज्ञान सभी कुछ इस अनन्त महासागर में साँगोपांग भरा

पड़ा है। यह पाठक बड़ा भाग्यशाली और पुण्यात्मा होगा जिसके हाथ में यह पुस्तक आ जायेगी। अनेक सुसंस्कारी पुण्यात्मा लोग ऐसे भी निकलेंगे कि इस महाशास्त्र के केवल पठन-मात्र से उनकी सुप्ता कुण्डलिनी जाग पड़ेगी और मां भगवती की उन पर साक्षात् सीधे कृपा हो जायेगी। इस दृष्टि से यह महाशास्त्र न केवल शक्तिपात-महायोग के साधकों के लिये ही परमोपयोगी है, अपितु जो लोग शक्तिपात में दीक्षित नहीं है, उनके लिये भी यह उतना ही लाभप्रद एवं उपयोगीहै।

शक्तिपात-महायोग सीधा विहंगम मार्ग है। समर्थ गुरु शिष्य में शक्ति संचार करके उसकी सुप्ता कुण्डलिनी अनायास ही जागृत कर देते हैं और महामाया भगवती की पूर्ण कृपा शिष्य पर सद्‌गुरु के अनुग्रह से हो जाती है। फिर जागृता-महाशक्ति शिष्य के शरीर द्वारा स्वयं ही आसन, प्राणायाम, क्रिया, मुद्रा, ज्ञान, ध्यान आदि करवाती रहती है। गुरु-अनुग्रह ही इस शक्तिपात में प्रधान कारण होता है। अन्य योगशास्त्रों में आसन, प्रणायाम, मुद्रा आदि का अभ्यास कुण्डलिनी शक्ति को जगाने के लिये किया जाता है, वह भी कभी सफल होता है और कभी असफल। किन्तु शक्तिपात-महायोग से कुण्डलिनी शक्ति पहिले जाग जाती है और उसके पश्चात् प्रति शरीर भेद से, प्रति-व्यक्ति के गुण-कर्म-संस्कार भेद से आवश्यकतानुसार क्रिया, मुद्रा, प्राणायाम, यम, नियम, प्रत्याहार, ध्यान आदि स्वयं होने लग पड़ते हैं, शिष्य को इन साधनों का पूर्ण-ज्ञान हो अथवा न हो। इस भाँति अन्य योगों में और शक्तिपात में महान् भेद है। यही इस महायोग की अपूर्व अलौकिक दिव्यता है। शक्तिपात योग इस पवित्र भारत भूमि में अनन्त प्राचीन-काल से निरन्तर चला आ रहा है। इस पुण्य। भूमि में शक्तिपात-महायोग का कभी लोप नहीं हुआ है। किन्तु यह साधन गुरु-परम्परा से शिष्य-प्रशिष्य परम्परा में क्रिया-रुप में ही चलता है। सामान्यजन-समाज में उसका कभी प्रचार एवं प्रसार नहीं हो पाया है। इसका कारण शक्तपात-महायोग की रहस्यमयता और गुह्यता है। इसके अतिरिक्त शक्ति-पात के सम्बन्ध में अब तक इस लोक में कोई सर्वांग पूर्ण प्रामाणिक तथा अधिकृत ग्रन्थ विद्यमान नहीं रहा है। शक्तिपात के सिद्ध गुरु इस पर ग्रन्थ लिखने की आवश्यकता नहीं समझते रहे। अतः किसी भी पूर्व-ग्रन्थों में इस महायोग का सर्वांगीण वर्णन नहीं मिलता है। मां सरस्वती भगवती ने इस लुप्त -गुप्त शास्त्र को श्री जितेन्द्र भारतीय जी के मुख से प्रकट कर के इस महा-मोहान्धकार ग्रस्त युग के भ्रान्त मानव-समाज पर बहुत अनुग्रह और उपकार किया है, इसीलिये तो वे करुणामयी जगन्मता हैं। भगवती सरस्वती तथा गुरु गोरखनाथ महाराज के इस महान् ऋण से हम कभी उऋण नहीं हो पायेंगे। इस मलिन और बोधहीन

लोक का पूर्ण उद्धार करने के निमित्त ये दोनों दिव्य शक्तियाँ वाणी रुप में स्वयं अवतीर्ण हुई हैं। उनके इस महान् उपकार के प्रति हम सभी नतमस्तक होकर चिर-कृतज्ञ हैं। इससे भी अधिक श्रद्धावनत होकर उन पूण्य श्री चरणों को प्रणाम करते हैं, जिन साक्षात् शिव-स्वरुप श्रोत्रिय-ब्रह्मनि ष्ठ गुरु महाराज की हम अकिंचन शिष्यों पर अहैतुकी कृपा हुई है, अकारण-करुणापूर्ण हृदय से जिन्होंने शक्तिपात- मार्ग में, बिना किसी पूर्व परिचय के हम लोगों को दीक्षित करके सर्वव्यपिका महामाया भगवती की साक्षत् कृपा करवा दी, हमारी सुप्ता शक्ति जागृत कर दी, अज्ञानान्धकार मिटा कर जीवन में प्रकाश भर दिया। यह प्रस्तुत महाशास्त्र भी उन्हीं सद्‌गुरु पूज्यपाद श्री स्वामी ऊँकारानन्द तीर्थ महाराज का ही अमृत-मय प्रसाद है।उन्हीं को समर्पित है, सद्‌गुरु की स्तुति में अनन्तकाल से सिद्ध, ज्ञानी, सन्त, महात्मा सभी की श्रद्धामयी वाणी सर्वत्र प्रवाहित होती रही है, वह पूर्ण संकलित वाणी समवेत रुप में हम अकिंचन शिष्यों के ही हृदयोद्‌गार हैं। हमारे गुरुदेव के प्रति स्वयं भगवती सरस्वती ने श्री भारती जी के मुख से निम्न श्लोक उच्चारित करवाया था जिसे हम लोग साधना में बैठने के पूर्व प्रार्थना में बोलते हैः-

बन्देऽहं श्री गुरोमूर्ति ऊँकारानन्द भूषिताम्।
शक्तिपात समायुक्तां तत्वार्थस्य प्रदर्शिकाम्।।

हमारी मां भगवती और योगियोगीश्वर श्री गुरु गोरखनाथ बाबा से यही प्रार्थना है कि पाठकों की जिज्ञासा तीव्र बने, मार्ग उन्हें अवश्य मिलेगा ही। ॐ शान्तिः ३।।

९६, नजरबाग, लखनऊ।
वटसावित्री- अमावास्या,
दिनांक - २१-५-७७

आपका
सेवक,
विद्यासागर जोशी

(ग्रंथ-प्रवर्तक)

डॉ० जे० सी० भारतीय शास्त्री
एम. ए. (हि., सं.); पी-एच. डी.

श्री गुरवे विराजतां सा जननी सरस्वती नमः

दो शब्द

प्रस्तुत ग्रन्थ 'सारस्वत कुण्डलिनी महायोग शक्तिपात शास्त्र' नाम से है। क्योंकि यह ग्रन्थ माँ सरस्वती की अनुकम्पा से प्रकट हुआ है, इसमें किसी प्रकार की कोई भी बाह्यसामग्री नहीं है, न किसी कोई पुस्तक का अंश है। यह तो केवल मां की कृपा एवं श्री गुरु कृपा का फल है।

सन् १९६२ जून में द्रोणा-गिरि पर श्री पी. सी. उपरेती जी के साथ शतचण्डी यज्ञ में गया था, वहीं मुझे श्री गुरुदेव श्री १०८ स्वामी ऊंकारानन्द ज्ञानी जी महाराज मिले। मुझे आभास हुआ कि इस निर्जन वन में, इस देवस्थली पर इनका निवास कुछ महत्व रखता है, और मुझे श्री अनन्तविभूषित स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती (जगद्गुरुशंकराचार्य ज्योतिर्मठ) महाराज के शब्द याद आये 'तुझे तीन वर्ष पश्चात् वन में ही शक्तिपात दीक्षा देने वाले गुरु मिलेंगे।' उनके शब्दों पर श्रद्धा-विश्वास रखकर सोचो सम्भवतः समय आगया और वास्तव में जब मैं और मेरे गुरु-भाई पं. विद्यासागर जोशी जी स्वामी जी से मिले तो विनम्र निवेदन करने पर स्वामी जी ने हमें शक्तिपात-वेध-दीक्षा दी। तब श्री गुरुदेव की अनुकम्पा से हमारा साधन कुण्डलिनी-महायोग के पथ पर चलने लगा, स्वाभाविक ढंग से श्री गुरुदेव ने शक्तिपात के विषय में पूर्णरुपेण बोध दिया।

यज्ञ की समाप्ति पर वहां से हम लोग घर आ गये, साधन यथावत् चलता रहा। गुरु भाई विद्यासागर जी और मैं दोनों ही साथ बैठकर साधना करते थे।

कुछ दिन पश्चात् हम लोगों ने श्री गुरुदेव को लखनऊ आने को बाध्य किया। गुरुदेव एक सप्ताह के लिये आये, साधन देख गये और चले गये। इस बीच श्री पी.सी. उपरेती, श्री बी. सी. पाल साहब, श्री एम. पी. टण्डन जी, श्री जगन्नाथ जी अहूजा आदि कई सज्जनों को दीक्षा का लाभ हुआ। गुरु भाइयों की वृद्धि हुई।

सन् १९६२ से अकस्मात् यह सारस्वत कुण्डलिनी महायोग साधना के समय प्रादुर्भूत होने लगा। प्रारम्भ में क्या- क्या वाणी निकली ध्यान में न रहा। उस वाणी को श्री पं. शान्तिप्रसाद जी

[illegible] ने सुना। उन्होंने वाराणसी में भारत के गण्यमान्य विद्वान साधक श्री महामहोपाध्याय कविराज गोपीनाथ जी से इसकी चर्चा की, वहां श्री कविराज जी का कृपापूर्ण सन्देश आया कि इस प्रकार की प्रादुर्भूत होने वाली वाणी को सुरक्षित रखो, उसी समय पुनः श्री गुरुदेव को सूचना दी गई, श्री गुरुदेव ने आकर साधन देखा, वाणी सुनी और शीघ्र ही टेपरिकार्ड पर उसे सुरक्षित रखने की योजना बनाई। वाणी प्रादुर्भूत होती रही।

श्री बी. सी. पाल महोदय टेपरिकार्डर ले आये और फिर कुछ काल पश्चात् उसके द्वारा वाणी को सुरक्षित रखा गया। सब साधक साधन के प्रकोष्ठ में गुरुदेव सहित बैठ जाते थे और कुछ देर साधन चलने के पश्चात् सरस्वती प्राप्त यह वाणी निकलती थी जिसके लिये माँ सारस्वती की आज्ञा हुई कि इसे शास्त्र का रुप देना है, उस सारस्वत वाणी को महायोग कह गया और शक्तिपात शास्त्र से उद्घोषित किया गया। श्री बी.सी.पाल महोदय टेपरिकार्ड ले आये टेपरिकार्ड पर पुनः सुन कर उसे एक डायरी पर क्रमशः दिनांक सहित (सायं–प्रातः) लिखा जाता था और पुनः उसे टाइप करके सुरक्षित किया गया। डायरी पर उतारने का कार्यभार श्री विद्यासागर जी जोशी को सौंपा गया। वे निगतान्यकार्य होकर सुवाच्य प्रतिलिपि में लिखते थे और श्री पाल साहब टाइप करवाते थे। फिर सागर जी उसे भी संशोधित करते थे। तत्परता एवं संलग्नता के साथ श्री जोशी जी कार्य करते थे। कार्य ठीक समय पर होना चाहिये यह पाल साहब का कथन रहता था और श्री विद्यासागर जी को ठीक समय पर उन्हें सुवाच्य लिपि टाइप करने के लिये दे देनी पड़ती थी।

यह क्रम २२-१०-६२- से २०-२-६३ तक चलता रहा। बाणी प्रादुर्भूत होती रही और उसे सुरक्षित रखा जाता रहा।

इसके पश्चात् प्राण विद्या का प्रदुर्भाव हुआ जो इसी शास्त्र का उत्तरांश है, उसे भी श्री विद्यासागर जी ने अपनी लेखनी से सुवाच्यरुप में लिखा, फिर उसे टाइप नहीं करवाया गया।

समय बीतता चला गया। शास्त्र –प्रकाशन का विचार आया और चला गया। सामग्री पड़ी रही, टाइप की एक प्रति श्रीगुरुदेव के पास सुरक्षित रही। बाकी कुछ अंश कोई गुरु भाई ले गये, पर दे न गये।

कालान्तर में पुनः जब श्री गुरुदेव का बार बार आदेश हुआ तो फिर जागृति आई, फिर डायरी से और कुछ टाइप से भी वीरेन्द्र कुमार शर्मा (दत्तक) से पुनः टाइप करवा कर कापी तैयार हुई और उसे लेकर मैं ग्रीष्मावकाश में श्रीगुरुदेव के आश्रम चित्तौड़ (जूनागढ़), सौराष्ट्र गया। श्री गुरुदेव ने उसे पुनः सुना, बार बार आदेश दिया कि इस शास्त्र का प्रकाशन होना अत्यन्त आवश्यक है। श्री पं. गोपीनाथ कविराज जी ने इस शास्त्र को स्वयं पढ़ा और लिखा कि इसके प्रकाशन की शीघ्र व्यवस्था होनी चाहिये। इस प्रकार जब मैं फिर लौट कर लखनऊ आया तो श्री गुरुदेव का आदेश विद्यासागर जी को सुनाया और कहा भी कि श्री गुरुदेव आगामी नवम्बर में इस शास्त्र को लेने आयेगे, क्योंकि वे बम्बई से इसके प्रकाशन की व्यवस्था कर रहे हैं पर वह व्यवस्था न हो सकी।

मेरे गुरुभाई श्री जोशी जी पुनः इसके अनुवाद कार्य में जुट गये। शास्त्र जिस रुप में आप लोगों के समक्ष प्रकाशित होकर आ रहा है, उसका अनुवाद एवं संशोधन भाई श्री विद्यासागर जी ने ही किया। इसके लिये मैं विशेषकर उनका आभारी हूँ। वास्तव में उनका अमूल्य समय और स्वास्थ्य इस शास्त्र के सम्पादन में कुछ बिगड़े अवश्य हैं, फिर श्री गुरुदेव के आदेश–कृपा और सागर जी के अथक परिश्रम एवं प्रेम के फलस्वप शास्त्र प्रकाशित रुप में आ ही गया।

यह शास्त्र साक्षात् भगवती सरस्वती का दिया हुआ है। साधनकाल में स्वयं प्रादुर्भूत हुआ है, इसलिये इसका नाम भी 'सारस्वत कुण्डलिनी महायोग' रखा गया, क्योंकि समस्त शास्त्र शक्तिपात से सम्बन्धित है अतः पूरा नाम 'सारस्वत कुण्डलिनी महायोग (शक्तिपात शास्त्र) रखा गया, इस में श्री बाबा गोरखनाथ की वाणी भी है। मां सरस्वती संस्कृत रुप में और बाबा गोरखनाथ उसे अपनी भाषा में सार व संक्षिप्तरुप में कहते हैं। टंकविद्या, आधारविद्या, चक्र विद्या, प्राणविद्या, आदि इसके प्रधान स्तम्भ हैं। आत्मबोध प्रत्यभिज्ञा एवं परा– विद्या इस शास्त्र के सारभूत अंश हैं। शास्त्र का प्रकाशन जन–हित के लिये ही किया गया है, स्वयं बाबा श्री गोरखनाथ जी ने कहा है कि 'हमने जो शास्त्र बताया था वह साधकों के हित के लिये बताया है। यह शास्त्र परमशास्त्र है। गूढ़ातिगूढ है, इसका बोध साधकों को होगा। जब इसका बोध कर लेंगे, तब इसकी क्रिया, मुद्रा और औषधियों के ज्ञान एवं अनुभव से अपना और जग का कल्याण करेंगे। इस शास्त्र के प्रचार से जन–कल्याण होगा।' (टंकविद्या प्रकरणान्त)। दूसरे स्थल पर बाबा ने कहा है 'इस प्रकार इस गुप्त लुप्त विद्या को शास्त्र का पूर्णरुप देकर, सारसार तत्वतत्व लेकर साधकों के हित

के लिये, क्रिया करने वालों के कल्याण के लिये, समय की गति के कल्याण के लिये इसका ज्ञान परमावश्यक है।' जो कुछ भी है, जिसका है उसी को समर्पित है।

एक बात लिखने का मोह संवरण न कर सकूंगा कि मेरी धर्मपत्नी स्व. गोदावरी देवी ने इस साधन काल में मुझे। पूर्ण सहयोग दत्तचित से दिया। यदि उसने घोर कष्ट न उठाया होता तो सम्भवतः यह शास्त्र गुप्त ही रहता। वह इसे प्रकाशित रुप में देखना चाहती थी। पर उसके जीवन में ऐसा न हो सका। इसके प्रकाशन से अवश्य उसकी आत्मा को शान्ति मिलेगी ऐसा मेरा विश्वास है। अन्त में अपने बन्धुओं को श्री पी.सी. उपरेती, बी.सी. पाल साहब, श्री एम.पी. टन्डन महोदय को भी धन्यवाद देता हूं जो साधन कार्य में साथ बैठते रहे। इस ग्रंथ के प्रकाशन के लिये श्री डा. आर.एस. सेठ महोदय का पूर्ण सहयोग रहा। वे उत्साह देकर सहयोग न करते तो ग्रंथ मुद्रित न होता। भाई भगवान दास जी ने भी इसकी रुप सज्जा के लिए परिश्रम किया, मैं इन दोनों व्यक्तियों के प्रति आभार प्रकट करता हूं। अन्य और भी सभी सहयोगियों का मैं आभारी हूं।

अत्यन्त दुःख है कि ग्रन्थ प्रकाशन पर श्री गुरुदेव ब्रह्मलीन हो गये। ११-३-७८ को ग्रन्थ पूर्ण हुआ। १४-३-७८ को श्री गुरुदेव समाधि लगा गये।

आचार्य डॉ. जे. सी. भारतीय

श्रीमती स्व० गोदावरी देवी
धर्मपत्नी डॉ० जे. सी. भारतीय
(जिसकी प्रेरणा से सब कुछ हुआ)

Mahamahopadhyaya
Gopi Nath Kaviraj, M.A., D.Litt.
2 (A) SIGRA, VARANASI

Nov. 13 1963.

I have gone through parts of the work with great interest. In some places it seemed to me wonderfully lucid and reminiscent of ancient yogic traditions. I felt benefited by its reading. It deserves publication and careful study.

Gopi Nath Kaviraj
13/11/63

विषयानुक्रमणिका

भाग प्रथम

भाग द्वितीय

चक्र विद्या अधिगम का आरम्भ

भाग तृतीय

अमृतपान माँ सरस्वती का आर्शीवाद।

मुद्राओं की अनुक्रमणिका

दि. २२-१०-६२ सायम् ।।१।।

अथ शक्तिपात प्रकरणे जिज्ञासाधिकरणम् ।।

अब शक्तिपात प्रकरण के अन्तर्गत जिज्ञासा सम्बन्धी अधिकरण आरम्भ किया जाता है।

अथशक्तिपातस्य सम्प्रत्ययः ।।१।।

ग्रन्थ के आरम्भ में शक्तिपात की विशिष्ट अनुभूति के बारे में मां सरस्वती कहती हैं।

तत्प्रतिपत्तेः जिज्ञासा कर्तव्या विघातके हेतौ ।।२।।

उस शक्तिपात की प्राप्ति के लिये जिज्ञासा करनी चाहिये। शक्तिपात के रहस्य को समझने के लिये और उसकी अनुभूति की उपलब्धि के लिए श्रद्धा, विश्वास एवं निष्ठा की आवश्यकता होती है। शक्तिपात की अनुभूति की प्राप्ति में जो - जो विघ्नबाधायें आती हैं उनको भी भलीभांति समझना चाहिये।

जिज्ञासा अनुग्रहैकलभ्या ।।३।।

जब उस महाशक्ति का स्वयं अनुग्रह होता है तभी जिज्ञासा पैदा होती है। बिना जगदम्बा भगवती महाशक्ति के कृपाकटाक्ष के मानव के भीतर जिज्ञासा जग ही नहीं सकती है।

अनुग्रहः तत्कृपया गुरूकृपया वा साध्यः ।।४।।

अनुग्रह उसी महाशक्ति की कृपा से साध्य होता है। अथवा सद्गुरू की कृपा से अनुग्रह की प्राप्ति होती है। क्योंकि सद्गुरू भी साक्षात् शक्तिस्वरूप होते हैं।

अनुग्रहात् बुद्धेः सानुकूलत्वम् ।।५।।

अनुग्रह हो जाने पर मानव की बुद्धि में आस्तिकता, श्रद्धा, विश्वास आदि सात्विक गुणों का उदय होता है। जिससे शक्तिपात की प्राप्ति में अनुकूलता प्राप्त होती है।

तस्माद् ईक्षणम् ।।६।।

बुद्धि की अनुकूलता से शक्तिपात की अनुभूति को समझने और पहिचानने की क्षमता प्राप्त होती, अन्यथा गुरूकृपा होने पर भी शिष्य शक्तिपात के रहस्य को नहीं समझ पाता है और लाभ के बदले हानि उठा लेता है। इसीलिये शक्ति-संचार से पूर्व सद्गुरू शिष्य की अनुकूलता की परख कर लेते हैं।

ईक्षणात् परिस्फुरणम् ।।७।।

ईक्षण की क्षमता प्राप्त हो जाने पर ईश्वरीय भावों का परिस्फुरण होना आरम्भ हो जाता है। ईश्वरीय भावों का परिस्फुरण क्या होता है, इस रहस्य को शक्तिपात के प्रायः सभी साधक विद्यार्थी भलीभांति जानते हैं। भूत तथा वर्तमान सिद्ध, महात्मा, देवता आदि के दर्शन व उनसे वार्तालाप होना और आदेश सन्देश प्राप्त होना आदि आदि।

ततः परप्रत्ययान्वयः ।।८।।

बस इसके बाद परप्रत्यय से साधक का अन्वय अर्थात् मेल हो जाता है, संयोग हो जाता है।।

परस्य तत् पदस्य आत्मपदस्य वा प्रत्ययः विश्वासैकभूमिः, तस्य अन्वयः, तत्र गतिः गमनम्, प्रापणं प्रयाणं वा। परः यस्मादन्यत्र किंचिदस्ति सः परः। अथवा परः स यत्र सर्वाः शक्त यः संलीयन्ते यत्र च संचरणं संवरणं संरक्षणं च विद्यते। यच्च अनाख्येयं तस्य एव प्रत्ययः। सः कश्चिदस्ति इत्यात्मिका प्रतीतिः। तदनन्तरं सोऽहमिति, तत्र अनु, आनुकूल्येन भावानुगतिः।।

पर प्रत्यय किसे कहा जाता है और अन्वय किसे कहा जाता है उसे समझाते हैं। पर अर्थात् सर्वश्रेष्ठ पद का, अथवा आत्मपाद का जो प्रत्यय अर्थात् प्रतीति है उसे पर प्रत्यय कहते हैं। उसी सर्वश्रेष्ठ पद एवं आत्मपाद से अन्वय होना अर्थात् संयोग होने को "परप्रत्ययान्वय" कहते हैं। आत्मपद में गति होना, आत्मा तक पहुंचना अथवा ले जाने को अन्वय कहा जाता है। अब "पर" शब्द का अर्थ बताते हैं। जिससे बढ़कर कुछ नहीं है उसे पर कहते हैं। अथवा जिसमें सभी शक्तियां सर्वतोभावेन लीन होती हैं, उसी में विचरण करती हैं और उसी में संरक्षित रहती हैं उसी को 'पर' कहते हैं। वह 'पर' तत्त्व अनाख्येय है अर्थात् वाणी द्वारा उसकी व्याख्या नहीं की जा सकती है। उसी की अन्तरनुभूति को "परप्रत्यय" कहते हैं। वह तत्त्व कुछ है अवश्य इस प्रकार की प्रतीति होती है और वही 'मैं, हूँ ऐसा भान होता है। उसी परतत्त्व में अनुकूलतापूर्वक उसी के भाव की अनुगति (अन्वय) होती है।

परस्य आत्मतत्त्वस्य यः प्रत्ययः प्रतीतिः श्रद्धात्मिका विश्वासात्मिका भावात्मिका च तदनुकूलमेव परतत्त्वं प्रति गमनात्मकं, स्वरूपबोधात्मकं वा ज्ञानम् इति। बीजांकुरवत् । प्रतीयते इति प्रत्ययः। परः कः। कथं च तस्य प्रत्ययः, कथं वा तस्यान्वयः।

आत्मतत्त्व की प्रतीति तीन प्रकार की होती है। श्रद्धात्मिका, भावात्मिका और विश्वासात्मिका, इन तीनों के आधार पर ही पर तत्त्व के प्रति विचारों का गतिशील होना परप्रत्ययान्वय है। इसी को अनुभूत्यात्मक एवं स्वरूपबोधात्मक ज्ञान कहते हैं। बीजांकुरवत् । जिनकी प्रतीति होती है उसे प्रत्यय कहते हैं। पर कौन है ? उसकी प्रतीति कैसे होती है और उसके प्रति गतिशीलता कैसे प्राप्त होती है इसे आगे बताते हैं।

दर्शनाभावः प्रत्ययाभावः, दर्शनाभावात् नान्वय इतिनाशंकनीयम् । परप्रत्ययान्वयाद् अनुभूतेर्विशिष्टता। यतः (सर्वत्र भासते यश्च श्रूयते न च दृश्यते) नास्ति यस्मात् परः कश्चित् अनाखयेयः परः स्मृतः।

ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये कि जिसे देखा न जा सके उसकी प्रतीति नहीं हो सकती है और जिसकी प्रतीति नहीं होगी उसके प्रति अन्वय नहीं हो सकेगा। क्योंकि प्रत्ययान्वय से अनुभूति में विशिष्टता आती है। स्वानुभूति ही प्रतीति से अधिक महत्त्व रखती है। क्योंकि जो सर्वत्र प्रकाशशील हो रहा है, श्रुति स्मृति शास्त्र आदि में जो सुना जाता है कि उसकी सत्ता है, पर देखा नहीं जाता, जिससे बढ़कर अन्य किसी की शक्तिमत्ता नहीं है वह अनाख्येय ही पर है।

अत एव यत् तत् सः परः यः परः सः तत् । अत एव तत् प्रतिपत्तये जिज्ञासा कर्तव्या। अनुग्रहेण तत् प्रत्ययः शक्त्युद्बोधनेन वा। ईक्षणस्फुरणाभ्यां तदन्वयः। यदा परप्रत्ययान्वयो भवति तदा अनुभूतेः संकलनात्मकं ज्ञानं भवति।

इसी कारण जो तत् शब्द से कहा जाता है वही पर है और जो पर शब्द से वाच्य है वही तत् पदार्थ है। इसलिये उसकी उपलब्धि के लिये जिज्ञासा करनी चाहिये। तत् पदार्थ की अनुभूति या तो महाशक्ति के साक्षात् अनुग्रह के द्वारा होती है अथवा शक्ति के जागरण करने पर होती है। ईक्षण और स्फुरण से तत् पदार्थ का अन्वय होता है। जब परप्रत्ययान्वय हो जाता है, तब अनुभूति का संकलनात्मक ज्ञान होता है अर्थात् नाना प्रकार की आध्यात्मिक अनुभूतियां क्रमपूर्वक या अक्रमपूर्वक मिश्रित रूप में हुआ करती हैं।

दि० २३-१०-६२ सायम् ।।२।।

अनुभूतिशब्दस्य नास्त्यनुभवार्थः, किन्तु शक्त्यर्थः, अनुभूयते यया सा अनुभूतिः शक्तिः। कः अनुभूयते ? परः। परस्तु नानुभवगम्यस्तदा? शोभनम् । अनुभूतिः सा वर्तते यया ज्ञानं क्रिया च प्रच्छन्नेच्छया सह वर्तते। या च परानुभवाय प्रभवति। ननु परप्रत्ययान्वय इति। परस्य प्रत्ययान्वयः यदा भवति तदा परस्य प्रत्ययोऽपि जायते। इत्यर्थे अनुभूतिशब्दस्य शक्त्यर्थः तदा च अनुपयुक्तः। यया अनुभूयते सा अनुभूतिः शक्तिः इति कथनमपेशलम् । इति न शंकनीयम् । परप्रत्ययान्वये जिज्ञासा संकलिता अस्ति। जिज्ञासामूले च परप्रत्ययान्वयः।।

अनुभूति शब्द का यों तो सामान्यार्थ अनुभव होता है। किन्तु इस शास्त्र में अनुभूति का अर्थ शक्ति का अर्थ शक्ति होता है। जिससे अनुभव किया जाय उसे अनुभूति कहते हैं। यह है शक्ति। शंका होती है कि अनुभूति किसकी होती है। पर पद की ही तो अनुभूति होती होगी। पर तो अनुभव गम्य है ही नहीं अतः अनुभूति का अर्थ अनुभव नहीं है। क्योंकि अनुभूति तो वह शक्ति है जिसमें ज्ञान, क्रिया एवं प्रच्छन्नरुप में इच्छा का समावेश रहता है, जो परपद के अनुभव अर्थात् विशिष्ट ज्ञान की भूमि को प्रस्तुत करता है। इस क्रिया को जो प्रेरक बनाती है वही शक्ति अनुभूति है। यदि ऐसी शंका करें कि यदि पर पद का प्रत्यय होगा तभी तो उसका अन्वय होगा। ऐसा मानने पर तो अनुभूति का अर्थ विशेष अनुभव ही होगा; शक्ति अर्थ करना उचित नहीं होगा। इसलिये जिसके द्वारा अनुभव हो उसे अनुभूति कहेंगे और अनुभूति का अर्थ शक्ति लेंगे तो यह कथन अनुचित होगा और लोकमत के विरुद्ध भी पड़ेगा। तब ? इसका खण्डन करते हुए कहा जाता है कि परप्रत्यय के अन्वय में जिज्ञासा भी संवलित रहती है और जिज्ञासा के मूल में परप्रत्ययान्वय निर्भर है।

किन्तु परः कश्चिदस्ति स एव ज्ञातव्यः स एव प्राप्तव्य इति बोधगम्यार्थः यया शक्त्या जायते सा शक्तिः अनुभूतिः। अनुभूतिरेव परः अस्ति इति अनुभवगम्यं ज्ञानं बोधं कारयति। अत एव अनुभवे अनुभूतौ च महदन्तरम् । अनुभूत्या अर्थात् शक्त्या यः बोधः क्रियते सोऽनुभवः इति। अत एव यदा पर प्रत्ययान्वयवती भवति तदैव अनुभूतेः विशिष्टता जायते। अनुभूतिः चिद्विशिष्टा शक्तिः। अनुभूतेः विशिष्टता इत्यस्य साकांक्षिकोर्थः करणीयः, अनु आनुकूल्येन प्रत्ययान्वयस्य वा पश्चात् ययानुभूयते। अर्थात् अस्तीतिसत्तात्मकं बोधः क्रियते। भावनायोग्यः विधीयते सा अनुभूतिः चिच्छक्तिः। तया च परः ज्ञातुंशक्यते। कथं च परज्ञानं सुलभम् ? तत्तु अनुभूयते विशिष्टतया, अनुभूतिः विशिष्टा शक्तिः। सा यदा संचरणत्वेन समायुक्ता भवति तदा परस्य प्रत्ययान्वयः विशिष्टतया भवति। तस्य प्रबलतया च "केनेदं विदितं सर्वं" इति प्रतिविज्ञानेन तस्य परस्य ज्ञानं सुलभं भवति। तच्च शक्त्याधीनम् ।

क्योंकि "पर कुछ है, उसी को जानना चाहिये, उसी को प्राप्त करना चाहिये" इस प्रकार का बोधगम्य अर्थ शक्ति के द्वारा होता है, वही अनुभूति है। अनुभूति ही "पर" है इस प्रकार के अनुभव गम्य बोध या ज्ञान को वह कराती है। इसीलिये अनुभति और अनुभव में बहुत अन्तर है। एक साधन है और एक तज्जन्य वस्तु। इसे यों समझना चाहिए कि अनुभूति अथवा शक्ति के द्वारा जो बोध होता है उसे अनुभव कहते हैं। अतः जब 'परप्रत्ययान्वय होता है तभी अनुभूति की विशिष्टता भी होती है।' इसीलिये अनुभूति को चिद्विशिष्टा शक्ति कहा गया है। "अनुभूति की विशिष्टता" इसका साकांक्ष अर्थ करना पड़ता है। "अनु" अर्थात्

अनुकूलता से प्रत्ययान्वय के बाद जिसको प्रेरणा दी जाती है उसे "पर" कहते हैं। इस प्रकार का सत्वात्मक बोध जो कराती है "पर" को भावनायोग्य बनाती है उसे अनुभूति शक्ति कहते हैं। वही चिच्छक्ति है। उसी से "पर" को जाना जा सकता है। पर ज्ञान कैसे हो ? तो वह अनुभूति की विशिष्टता से होता है। अतः अनुभूति एक विशिष्ट शक्ति है। वह जब संचरण से युक्त होती है तब परप्रत्ययान्वय प्रकृष्ट रुप से होने लगता है। जब परप्रत्ययान्वय हो जाता है तभी अनुभूति में संकलनात्मक ज्ञान उत्पन्न है। अर्थात सब प्रकार से उस "पर" की अनुभूति में समस्त सर्वात्मभाव का उद्गम होने लगता है।

२४-१०-६३ प्रातः सायम् ।।३।।

विशिष्टस्य भावः विशिष्टताया, शक्तिः चिद्विशिष्टा सती भावात्मबोधं अधिगमयति सा परस्य परा शक्तिः। यदा शक्तिः चिद्विशिष्टा भवति तदा सा ज्ञानवती तथा क्रियावती च भवति। चिदभावे ज्ञानक्रिययोरभावः। इत्थंभूता या शक्ति सैवानुभूतिः। भावस्योद्बोधिका अनुभूतिः। "भावं पदार्थरूपेण मन्यन्ते च मनीषिणः।" एवं भावबोधं करयित्वा या शक्तिः प्रेरणारूपेण परं प्रति तान् गमयति सा परस्य परा शक्तिः अनुभूतिः।।

विशिष्ट के भाव को विशिष्टता कहते हैं। अर्थात् जो शक्ति चिद्विशिष्ट होती हुई भावात्मबोध को व्यक्त करती है वही "पर" की पराशक्ति है। जब शक्ति चिद्विशिष्टा होती है तभी वह ज्ञानवती और क्रियावती भी होती है। चिद् के अभाव होने पर ज्ञान और क्रिया का भी अभाव रहता है। इस प्रकार की जो शक्ति है उसी को इस शास्त्र में अनुभूति कहा गया है। अर्थात् भावों का उद्बोधन करने वाली शक्ति ही अनुभूति है। भाव का अर्थ विद्वान लोग पदार्थमात्र लेते हैं। इस प्रकार भावबोध कराकर जो शक्ति प्रेरणा रूप से उन्हें "पर" के प्रति पहुंचाती है, तद्विषयक करती है वही "पर" की परा शक्ति ही अनुभूति है।

तथा चः :- याच तस्मात् समुद्भूता तस्मिन्नेव विलीयते।।
घण्टानाद - समाकारा सानुभूतिः बुधैः स्मृता।।

यथा स्थूल घण्टानादानन्तरं अनुकरणरूपा या ध्वनिः किंचित्कालं रणनं विधाय शब्दे एव विलीयते तथैव परस्मात् निर्गता या शक्तिः ध्वन्यनुरणकत्वेन प्रतीयमाना भूत्वा अन्ते तस्मिन्नैव समाविष्टा जायते सा शक्तिः अनुभूतिः साच चिद्विशिष्टा।

तथा चः- जो जिससे उत्पन्न हुई है वह उसी में विलीन हो जाती है। घण्टानाद के अनुरणन (टंकार). की भांति उसे समझना चाहिये, घण्टानाद की ध्वनि अनुरणन करती हुई धीरे-धीरे जिस भांति उसी शब्द में विलीन हो जाती है उसी प्रकार "पर" से निकली हुई जो शक्ति ध्वन्यनुरणन रूप से प्रतीयमान होकर अन्त में उसी "पर" में समाविष्ट हो जाती है। वह परा शक्ति ही अनुभूति है। और वह सदैव चिद्विशिष्ट रहती है।

अथवा पर प्रत्ययान्वयेन या शक्तिः संवलिता क्रियावती भवति सानुभूतिः। क्रियावती, क्रियाशीला, क्रियाधारा, क्रियात्मिका च या शक्तिः जागृतिं याति सानुभूतिः प्रचक्षते। जागरणाभावे ज्ञानाभावः, ज्ञानाभावे च क्रियाभावः। क्रियाभावे च परप्रत्ययान्वयाभावः विस्मृतिर्वा अनुद्भदावनं च। अतएव अनुभूते विशिष्टता प्रतीयते। अनुभूतिः पंचधाः- (१) तत् प्रत्ययात्मिका (२) मन्त्रबीजरूपणी (३) जागृतरूपेण संचारिणी (४) श्लिष्ट-प्रश्लिष्ट-संश्लिष्ट-विशिष्टात्मिका (५) परमाशक्तिः।

यदा शक्तिः अनुग्रहत्वेन जागृता भवति तदा संचरणशीला जायते। संचरणशीला सा बीजं शोणितरूपं विन्दुं च शुक्रस्वरूपं संयमयति तदा सृष्टिः। अर्थात् परस्य निराकरणत्वम् । तस्मिन् काले तस्यां स्थिरत्वं संचरणत्वं चोभयम, सा अर्धमेलनावास्था, तामवस्थां गमयति सा शक्तिः अनुभूतिः।

अथवा पर प्रत्ययान्वय से संवलित होकर जो चित् शक्ति क्रियावती होती है, उसे अनुभूति कहते हैं। वह क्रियावती है, क्रियाशीला है, क्रियाधार है, क्रियात्मिका है और जागृत होकर "पर" प्रत्यय कराती है, वही शक्ति अनुभूति है। उस शक्ति के जागृत न होने पर ज्ञान नहीं हो सकता, ज्ञान के अभाव में क्रिया नहीं हो सकती और क्रिया के अभाव में पर प्रत्यय नहीं हो सकता है। न वहां तक गमन की दशा ही आती है। वहाँ या तो विस्मृति बनी रहती है या प्रकटता नहीं आती है। इसलिये अनुभूति की विशिष्टता कही गई है। अनुभूति पांच प्रकार की बताई गई है, (१) तत्प्रत्ययात्मिका (२) मन्त्रबीजरूपिणी (३) जागृत रूपेण संचारिणी (४) शिलष्ट-प्रशिलष्ट-संश्लिष्ट विशिष्टात्मिका (५) परमाशक्ति।

जब शक्ति अनुग्रह के द्वारा जागृत होती है, तब वह संचरणशील होकर संचरण करके, बीज जो शोणित के रूप में है और बिन्दु जो शुक्र के रूप में है उसका संभोग कराकर सृष्टि करती है। बीज बिन्दु समायोग उसका कार्य होता है। उस समय उसमें स्थिरता और संचरणता दोनों का समावेष रहता है। उस समय वह अर्धचेतन के रूप में "पर" के प्रति गमनात्मक भाव को उद्बोधित करती है, अर्थात् "पर" तक पहुंचाने* की भावना को जागृत कर देती है।

२५-१०-६२ प्रातः ।।४।।

अथवा शिलष्ट प्रश्लिष्ट-संश्लिष्टाश्लिष्ट विशिष्टात्मकत्वं संगृह्य प्रतिरोधविरोधनिरोधावस्थां सुलभां करोति सानुभूतिः। विशिष्टा शक्तिः, यदा विशिष्टरूपेण तिष्ठति तदा कलनं कलानां ज्ञानं भवति।

अथवा शिलष्ट प्रश्लिष्ट संश्लिष्ट विशिष्टात्मक भावों को ग्रहण कर प्रतिरोध विरोध निरोध की अवस्थाओं को सुलभ बना देती है उसे अनुभूति कहते हैं। वह विशिष्ट शक्ति जब जागृतावस्था को प्राप्त होती है तब उसमें कलन उत्पन्न होता है अर्थात् कलाओं का ज्ञान होना आरम्भ होता है।

प्रकृष्टावस्थायां कलानां प्रकृष्टता द्योतते। संश्लिष्टावस्थायां कलानां संस्कारबोधः, अश्लिष्टावस्थायां वृत्याकाररूपं भवति। कलाः वृत्याकाराः भवन्ति। तासु वर्तनधर्म प्रस्फुटति वृत्तयोऽपि पञ्चैव। यदा कलानां वृत्तिरूपेण वर्तनं भवति तदा तत्र संचरणता सर्वतोभावेन संवरणम् । विषयाणां संवरणम् । तत्र गतिः पुनश्च शक्तिः वृत्तीनां प्रतिरोधः करोति। अर्थात् प्रबलरूपेण रोद्धुंचेष्टते। पुनस्तासां चाञ्चल्यंनश्यति।

प्रकृष्टावस्था में कलाओं की प्रकृष्टता ज्ञात होती है। संश्लिष्टावस्था में कलाओं का संस्कार-बोध होता है। अश्लिष्टावस्था में वृत्तियाँ एकाकार होती हैं। कलायें स्वयं वृत्याकार हो जाती हैं। अर्थात् कलायें वृत्तियो के साथ तद्वत् आभासित होने लगती हैं। उनमें क्रिया करने की शक्ति का प्रस्फुरण होने लगता है। वृत्तियां भी पांच ही हैं। जब कलायें वृत्याकार हो जाती हैं, तब उनमें संवरणता आने लगती है, सब प्रकार से उनका संचरण (ग्राह्यता) होता है। विषयों का संवरण (पार्थक्य) होता है। फिर शक्ति स्वयं वृत्तियों का प्रतिरोध भी कर देती है। उनके धर्मों से उन्हें रोक देती है, फिर उनमें चाञ्चल्य है उसका भी स्वयं विरोध करती है।

अर्थात् एकाधाराधाकृष्य अपराधारं विशिष्टरूपेण रोधयति पुनश्च बीजबिन्दुद्वयं संयमयन्ती वृत्तिधर्मनिरोधयति। स्थिरत्वं प्रापयति च। विशिष्टावस्थायां यदा कलनं कलात्मकलं समायाति तदा एकत्वरूपावृत्तिः भवति। कलनं च बहूनां भवति। अतः एकैव बहुरूपेण जायते। बहुत्वे च वृत्तिसंवरणतागच्छति। संवरणस्य निरोधं विधाय या शक्तिः स्थैर्यमापादयति सा शक्तिः अनुभूतिरिति।

अर्थात् एक ओर से खींचकर दूसरी ओर ले जाती है। "पर" के प्रति भावना को पुष्ट करती है, फिर बीज और बिन्दु दोनों का संगम कराती हुई वृत्तियों को व्यापारो को (कार्य को) रोकती है और उनमें स्थिरता ले आती है। विशिष्टावस्था में जब कलनात्मकता आती है तब वृत्तियाँ एक रूपा हो जाती हैं। कलन में कभी-कभी बहुत्व रहता है, पर उस बहुत्व में संवरणता रहती है उसका निरोध करके वह शक्ति उनमें स्थिरता उत्पन्न कर देती है। तब उस स्थिरत्व प्रतिपादन वाली शक्ति को ही अनुभूति कहते हैं।

तदा प्रत्याभासः ।।९।।

प्रबल रूपेण पूर्णप्रकटत्वरूपेण यः परः तिरोहित इव दृश्यते ज्ञायते च तस्य आभासं या विशिष्टा शक्तिः कारयति सा अनुभूतिः अथवा प्रतिभा स्वरूपेण आकारबोधरूपेण परंभासं निरावरणं करोति, घनाच्छादनात् निरावरणं अर्कवत् । अत एवोच्यते तदा प्रत्याभासः। कदा प्रत्याभासः ? उत्तरयति यदा प्ररप्रत्यान्वयात् अनुभूतेः विशिष्टता समुद्भवति तदा परस्य प्रत्याभासः भवितुं शक्यते। न तत्, किन्तु तद्वत् । न सः किन्तु तत्सदृशः इत्यात्मकं ज्ञानं अपरज्ञानं प्रेरयति।।

तब प्रत्याभास होता है जो 'पर' तिरोहित सा अप्रकट सा प्रतीत होता है उसे पूर्ण प्रबल रूप से आभासित वह शक्ति ही कराती है। अर्थात् आकार का जो ज्ञान नहीं होने पाया है उसे निवारण करके स्वरूप बोध कराती है। जैसे मेघाच्छादित सूर्य मेघों के आवरण से मुक्त होकर स्पष्ट रूप से आभासित होने लग जाता है वह शक्ति उसी भाँति 'पर' को अनुभव योग्य बना देती है। तभी कहा गया है उसका (परका) प्रत्याभास होता है। कब होता है वह प्रत्याभास ? इसका उत्तर है कि जब अनुभूति की विशिष्टता (शक्ति का प्राबल्य) होता है तब 'पर' का प्रत्याभास हो सकता है। वही नहीं पर तद्वत्। वह नहीं किन्तु उसके समान-इस प्रकार का ज्ञान दूसरे प्रकार के अर्थात् 'पर' सम्बन्धी ज्ञान को प्रेरणा देता है। तब "पर" का ज्ञान उस शक्ति के द्वारा होने लगता है।

२५-१०-६२ सायम्।।५।।

अनुभूतिः परमा शक्तिः परमापादयति परज्ञानं वा मापयति सा परमा शक्तिः। सा च ऊर्ध्वगामिनी भूत्वा वृत्तिनिरोधं प्रकुर्वती स्थिरतामानयति। परमस्य या शक्तिः सा परमा शक्तिः इत्यर्थः। यदा सा क्रियावती भवति, तदा पञ्चात्मिकानां वृत्तीनां निरोधः सुलभो भवति। निरोधसुलभत्वात् स्थिरत्वमायाति, स्थिरभावे च प्रत्याभासे गतिसौकर्यंजायते। अत एव कथितं च :- "धर्मान् समस्तानभिव्याप्य या स्थिता या वृत्तिरोधाय सदासमर्था। या सर्वभूतान्तर सन्निविष्टा सा दिव्यशक्तिः परमेतिख्याता।।" सैव परमा शक्तिः प्रत्याभासाय प्रभवति। तदा इन्द्रियैकतानतायाः। अनवस्थितिबोधः प्रादुर्भवति।।

अनुभूति एक विराट् परमा शक्ति है। वह ऊपर को सहस्त्र दल की ओर उठती हुई वृत्तियों का निरोध करती हुयी स्थिरता को लाती है। उस परम की जो शक्ति है उसी को परमा शक्ति कहते हैं। जब वह क्रियावती होती है तभी वृत्तियों का निरोध सुलभ होता है। निरोध के सुलभ हो जाने से स्थिरता आ जाती है। स्थिरता आ जाने से "पर" के ज्ञान होने में सरलता रहती है। इसीलिए कहा गया है कि :- जो सब व्यापारों में व्याप्त होकर रहती है तथा जो सब प्राणियों के अन्तर्गत सुप्त रूप में विराजमान है और जो वृत्तियों का निरोध करने में सदैव समर्थ है उसी दिव्य शक्ति को परमा शक्ति कहते हैं। वह परमा शक्ति जागृत स्वरूपिणी होकर परम का प्रत्याभास करा देती है और इन्द्रिय व्यापारों में अनवस्था नहीं होने पाती अर्थात् इन्द्रियाँ भी चाञ्चल्य रहित हो जाती हैं।

२६-१०-६२ प्रातः।।६।।

प्रत्याभासशब्दस्यापि विशेषार्थः
सर्वत्र भासते यश्च येनेदं भासितं जगत्।
निरावरण संभूतः प्रत्याभासः स उच्यते।।

अत एवोच्यते शास्त्रकारैः "तस्य भासा सर्व मिदं विभाति,"
या भाः भाति समस्तेषु भूतेषु प्राणरूपिणी।
तां समन्तात् समाप्नोति प्रत्याभासः स उच्यते।।

प्रत्याभास शब्द का भी विशेष अर्थ है, जो सर्वत्र भासित हो रहा है, जिससे यह विश्व प्रकाशित हो रहा है, जो स्वतः ज्योति है, निरावरण है उसे प्रत्याभास कहते हैं। इसीलिये शास्त्रों में कहा गया है कि :- उसी के प्रकाश से सब कुछ प्रकाशशील है। जो प्रकाश समस्त भूत तत्त्वों में विराजमान है, जो प्राणियों को प्राण देने वाली है उसे जो सब प्रकार से अपने में सन्निविष्ट करता है उसे प्रत्याभास कहते हैं।

अथवा प्रति अर्थात् पदार्थमात्रे य आ समन्तात् व्याप्य भासते स एव प्रत्याभासः। अत एव उच्यते उपनिषदि "ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंचित् जगत्यां जगत्" इति। अतः ध्रुवमिदं यत् विशिष्टानुभूतिसमुद्बोधनात्मकेन ज्ञानेन प्रत्याभासः ज्ञायते। प्रकाशशीलतायाः अनुभवः क्रियते। यत् प्रति सर्वत्रैव यस्य आभा वर्तते स प्रत्याभासः।

अथवा प्रति अर्थात् जो पदार्थ मात्र में व्याप्त होकर भासित होता रहता है, उसी को प्रत्याभास कहते हैं। इसीलिये उपनिषद् में 'ईशावास्यमिदं सर्वं' कहा गया है। अर्थात् सर्वत्र ईश्वर की शक्ति का आभास (व्याप्त) है। अतः यह ध्रुव सत्य है कि विशिष्ट अनुभूति से उत्पन्न ज्ञान द्वारा प्रत्याभास जाना जाता है। यह ज्ञान अनुभव से युक्त होता है। उसमें प्रकाशशीलता का अनुभव स्वयं किया जाता है। क्योंकि जिसकी आभा (ज्योति) सर्वत्र कही गयी है वह जब अनुभव का विषय बन जाता है, तब प्रत्याभास का बोध होता है।

ननु यदि अनुभूतेः विशिष्टतया प्रत्याभास ज्ञानं जायते तद् भ्रमात्मकमेव। यत् तत् प्रकाशशीलता कल्पनैकजन्या न त्वनुभूयते न च दृश्यते। मृगमरीचिकावत्। तत्रापि आभासमात्रं जलस्य भवति न चत तथा इति नैवं शंकनीयम्। भ्रमात्मकज्ञानं तत्रैव भवति यत्र अवस्तुनि वस्त्वारोपः विवर्तकत्वेन जायते। किन्तु यत्र शक्तिः क्रियावस्तीय ज्ञानवती च संजायते तत्र भ्रमाय विवर्ताय च वा नास्त्यवकाशः। यतः परप्रत्ययान्वयः अनुभूतेः विशिष्टतया भवति। तत्र च विशिष्टानुभूतौ ज्ञानात्मिका क्रियात्मिका च शक्तिः साधारा, सबला समर्था च तिष्ठति प्रपातवत्। यथा प्रपाते गतिशीलता

विद्यते तत्र कमपि पदार्थजातं नैव स्थातुं शक्नोति। यतः प्रकाशे कथमन्धकारस्य स्थितिः। यत्र किंचित् भ्रमात्मकं भाते तद् दृष्टिदोषेणवा अज्ञानेन वा। उदाहरति च यथा घनाच्छादितमर्कं कश्चित् प्रकाशहीनं वक्तुं शक्नोति परं च न तत् तथा सूर्ये प्रकाशस्तु तदैव विद्यते। अतः प्रत्याभासे भ्रमात्मकता न शंकनीया।

अव्यक्ताद् व्यक्तरूपेण पश्यन्ति सर्वदा वुधाः।
समाप्य विगुणान् धर्मान् सगुणान् धारयेच्च यः।।
निर्भ्रान्तश्च निरावृत्तः प्रत्याभासः स अव्ययः।।

अत एवोक्तं "तदा प्रत्याभासः"। पुनः निरोधवृत्युद्बोधनेन तत् संप्रत्ययने च प्रत्याभासे अवस्थितिः।।

(शंका) - यदि अनुभूति की विशिष्टता से प्रत्याभास का ज्ञान होता है तो वह भ्रमात्मक है, क्योंकि उसकी प्रकाशशीलता कल्पनाजन्य होगी, कारण कि वह न अनुभव में आती है और न वह देखी जाती है। उसमें भी मृगतृष्णा की भाँति बालू में जल का आभास-सा होगा। उसी भाँति प्रत्याभास भी मृगतृष्णा की भाँति भ्रम ही होगा। (उत्तर) ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये। भ्रमात्मक वहीं होता है जहाँ अवस्तु में वस्तु का आरोप होता है। अनात्मा में आत्मा का ज्ञान समझा जाता है, उसी को विवर्त कहते हैं। (विवर्त अर्थात् भ्रमात्मक ज्ञान)। किन्तु जहाँ महाशक्ति स्वयं क्रियावती ज्ञानवती होती है वहाँ पर भ्रम के लिये या भ्रमात्मक ज्ञान के लिये कोई गुंजाइश नहीं होती। क्योंकि वहाँ तो विशिष्ट शक्ति काम करती रहती है। उसमें तो ज्ञानात्मिका और क्रियात्मिक शक्ति झरने की गतिशील धारा की भाँति समर्थ और सबल होकर किसी भी विजातीय पदार्थ को अपने में ठहरने नहीं देती है। क्रिया और ज्ञान के सम्बद्ध होने पर भ्रमात्मकता रह ही नहीं सकती है। प्रकाश के सामने अन्धकार कैसे ठहर सकता है। भ्रमात्मकता तो दृष्टिदोष या अज्ञान से आती है, जैसे बादलों में ढके सूर्य को कोई प्रकाशहीन कह दे, सूर्य का प्रकाश सूर्य में है ही। ठीक इसी प्रकार प्रत्याभास भी प्रत्यक्षानुभव की वस्तु है। सूर्यवत् उसमें कल्पनाजन्य भ्रमात्मकता नहीं रहती है। अतः प्रत्याभास के सम्बन्ध में भ्रमात्मकता नहीं रहती है। क्योंकि वहाँ तोः-

अव्यक्त को व्यक्त रूप में बुद्धिमान् योगीजन देखा करते हैं प्रत्याभास तो निर्गुण को समाप्त कर सगुण धर्मों में अभिव्यक्त होता है। निर्भ्रान्त है, निरावृत्त है। इसीलिये कहा गया है (तदा प्रत्याभासः।) फिर जो वृत्तियों के निरोध की दशा का अनुभव होने पर और उनके अपने - अपने व्यापारों के स्थिर होने पर प्रत्याभास में पूर्णगति होने लगती है।

२६-१०-६२ सायम्।।७।।

वृत्तिनिरोधः ।।१० ।। वृणोति या सा वृत्तिः। व्रियते यया सा वा वृतिः। या विषयान् समीकृत्य समीकृत्य स्वेषु विषयेषु नियोजयति सा वृत्तिः। वृत्तयः पञ्च। कर्मेन्द्रियाणां कर्मवृत्तयः। ज्ञानेन्द्रियाणां च ज्ञानवृत्तयः। ताश्च

इन्द्रियविषयव्यापारेषु व्यावृत्य तान् (विषयान्) संचालयति। तदेन्द्रियाणि तत्रैवासक्तानि भवन्ति। या च परमा शक्तिः अनुग्रहेणोपलभ्यते सा स्वयमेव सहजरूपेण वृत्तिनां निरोधं करोति। निरोधः स्वविषयव्यापारेभ्यो निवर्तनम्। निरोधस्तु शक्त्या अप्रयत्नैकसिद्धो भवति, स्वत एव निरोधो भवति इत्यर्थः, यथाः-

गवां दुग्धस्य या वृत्तिः वत्सपोषण धर्मिणी।
वत्से पुष्टे न वै दुग्धं तन्निरोधः स्वभावजः।।

तद्वत् प्रत्याभासे अवस्थिति करणाय परमा शक्तिः स्वयमेव वृत्ति निरोधं करोति। यदा निरोधो जायते तदैव प्रत्याभासे अवस्थितिः सुलभा जायते। अवस्थितिः अवस्थानं, ध्यानं दर्शनं वा। अवस्थितिज्ञानेन सह मनसः एकाग्रता इत्यप्यर्थो भवति। अवस्थितिरवस्था इत्यपि अर्थः। चतुर्धाऽवस्थितिः प्रोक्ता।

वृत्तिनिरोध। जो विषयों को सब तरफ से एकत्र कर अपने अपने व्यापारों में लगा देती है उसे वृत्ति कहते हैं। वृत्तियाँ पांच होती हैं। कर्मेन्द्रियों की कर्मवृत्तियाँ और ज्ञानेन्द्रियों की ज्ञानवृत्तियाँ हैं। ये वृत्तियाँ इन्द्रियों को अपने विषयों में प्रेरित कर विषयों का समुचित संचालन करती हैं। तब इन्द्रियाँ अपने - अपने विषय व्यापारों में आसक्त होती हैं, पुनः अनुग्रह के द्वारा जो परमा शक्ति प्राप्त की जाती है वह स्वयं स्वाभाविक रूप से वृत्तियों का निरोध कर देती है। वहाँ साधक को अपनी ओर से कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता है। सब कुछ स्वयं ही हो जाता है। निरोध का अर्थ विषय व्यापारों से विषयों को अन्यत्र मोड़ना है। इस निरोध को महामाया शक्ति स्वयं ही कर देती है। यह शक्ति की विशेषता है जैसे - गाय का दूध गाय के स्तन से तभी तक निकलता है जब तक बछड़ा परिपुष्ट नहीं हो जाता है। बछड़े के परिपुष्ट हो जाने पर दूध स्वयं रूक जाता है। उसी भाँति शक्ति भी सब कुछ कार्य स्वयं स्वाभाविक रूप से करती है। प्रत्याभास तक पहुंचने के लिए इस काम को शक्ति स्वयं ही करती है। जब निरोध हो जाता है तब प्रत्याभास में स्थिति हो जाती है। अर्थात् अवस्थान, ध्यान, दर्शन होने लग जाते हैं। अवस्थान का अर्थ ज्ञान के साथ मन की एकाग्रता है। अवस्थान और अवस्थिति का अर्थ अवस्था भी होता है परम तत्त्व तक जाने की या उसे प्राप्त करने की उसे अवस्था आने लगती है।

२७-१०-६२ प्रातः।।८।।

चतुर्धावस्थितिः व प्रोक्ता। (१) ध्यानावस्थितिः। तत्रैव दर्शनम्। (२) बोधावस्थितिः। (३) सिद्धावस्थितिः। (४) ऐश्वर्यावस्थितिः। कथितं च शास्त्रे :- "ध्यानावस्थित तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनः।" ध्यानेन मनः तद्गतं भवति। ध्यायते मनसा यस्यामवस्थायां तत्स्वरूपं स्थिरत्वं क्रियते वा

तत् ध्यानम् । "ध्यानं निर्विषयं मनः" इति शास्त्रोक्तिः। यदा एकाग्रता आगच्छति तदा विषयान् प्रति आसक्तिः न्यूना जायते। निर्मूलापि भवति च। विषयनिर्मूलनम् इन्द्रियाणामपि विषयानामपि च भवति। तस्मात् प्रत्याभासस्य प्रतिपत्तिः प्रादुर्भूता भवति। इन्द्रियाणां निरोधेन मनसः निग्रहो भवेत् ।

अवस्थिति के चार भेद होते हैं। (१) ध्यानावस्थिति उसी में दर्शन भी होते हैं। (२) बोधावस्थिति। (३) सिद्धावस्थिति। (४) ऐश्वर्यावस्थिति। शास्त्र में कहा गया है, "ध्यानावस्थित होकर तद्गत मन से योगी लोग जिसे देखते हैं।" "ध्यान से मन तद्गत होता है। जिस दशा में उसके वास्तविक स्वरूप का चिन्तन किया जाता है एकाग्रमन से किया जाता है, उसको स्थिर किया जाता है उसे ध्यान कहते हैं। ध्यान का अर्थ है मन का निर्विषयक होना। जब एकाग्रता आती है तब विषयों के प्रति आसक्ति की कमी होने लगती है। निर्मलत्व आने लगता है और मन एवं इन्द्रियों का विषय भी निर्मूल हो जाता है। तब प्रत्याभास की प्रतिपत्ति (अनुभव) होने लगता है। क्योंकि इन्द्रियों के निरोध से मन का भी निरोध होने लग जाता है।"

२७-१०-६२ सायंकाल ।।९।।

मनः उभयात्मकम् । कर्मेन्द्रियं ज्ञानेन्द्रियञ्च। इन्द्रियाणि स्वविषयासक्तानि जायन्ते। मनस्तत्र संयुक्तं भूत्वा तेषु चाञ्चल्यं प्रवर्धयति। चाञ्चल्यस्य वर्धनेन इन्द्रियासक्तिः प्रबलतया भवति। किन्तु यदा पंचविषयिका अनुभूते विशिष्टता (यस्यांपरमा शक्तिरपिवर्तते) परमा शक्तिः स्वयमेव इन्द्रियविषय-व्यापारान् निरोध्य तेषां निग्रहं करोति। तदा मनसः निग्रहोऽपि सुलभः। विषय वैराग्येण च मनः स्थिरं जायते। तदा ध्यानावस्था समायाति।

मन उभयात्मक है। कर्मेन्द्रिय तथा ज्ञानेन्द्रिय। जब इन्द्रियाँ अपने विषयों में आसक्त होती हैं, तब मन उनके साथ संयुक्त होकर उनकी चंचलता को बढ़ाता है। चांचल्य के बढ़ने से इन्द्रियासक्ति प्रबल होती है। किन्तु जब पाँच प्रकार की अनुभूति की विशिष्टता (जिसमें परमा शक्ति भी है) से युक्त परमा शक्ति स्वयं इन्द्रिय विषय व्यापार को रोक कर उनका निग्रह करती है तब मन का निग्रह भी सुलभ हो जाता है। पुनः विषय वैराग्य से मन स्थिर हो जाता है। तब ध्यानावस्था होती है। जब इन्द्रियां अपने विषय व्यापार से उदासीन हो जाती हैं तब भोग (विषयवासनादि) की इच्छा मिट जाती है।

यदा इन्द्रियाणि विषयविनिवृत्तानि भवन्ति तदा रोगाभावः। भोगाभावे रोगाभावः। अतएवोच्यते शास्त्रकारैः कपिलाचार्यैः यत्- "रोगापहतिर्ध्यानम्"। यदा रोगाणांविषयादीनां हतिर्हानिः सिध्यति तदा ध्यानं भवति। "निग्रहस्तु इन्द्रियाणां वै स्वयं शक्त्या प्रजायते। मनसो वृत्तयस्त्वन्याः भवन्ति प्रशमाः स्वयम्" इति। ध्यानेन परमे प्रत्याभासे स्थितिः जायते।

जब इन्द्रियाँ अपने विषय व्यापारों में उदासीन हो जाती हैं तब भोग (विषय वासनादि) की इच्छा मिट जाती है। भोग के अभाव में फिर रोग भी नहीं होते। इसीलिये आचार्य कपिल ने कहा है कि "रोगापहतिर्ध्यानम्" अर्थात् रोगों का नाश होना ध्यान का कार्य है। जब रोग जो विषयादि हैं, उनकी हानि हो जाती है, तब ध्यान ठीक से हो रहा है ऐसा अनुभव होता है। जहाँ तक इन्द्रिय निग्रह की बात है वह तो शक्ति स्वयं ही करा देती है। पुनः मन की वृत्ति भी स्वयं शान्त हो जाती है। तब ध्यान से परम जिसे प्रत्याभास कहते हैं उसका अनुभव होने लगता है। इसीलिये कहा गया है कि-

एवं च ध्यानाद् ज्ञानं, ज्ञानाच्च ध्यानं जायते। अतएव शास्त्रे प्रोक्तमस्ति। "ध्यानं ज्ञानं च यस्यास्ति तीर्णस्तेन महार्णवः। नास्ति ध्यानं बिना ज्ञानं नास्ति ध्यानमयोगिनः"। ध्यानं च प्राणायामाधीनम् । प्राणायामं च शक्तिः स्वयं कारयति। स च सिद्धप्राणायामः 'इति'। स च शक्त्याश्रयः शक्तिश्च अनुग्रहैकलभ्या। अतएव शक्तिपातसम्प्रत्ययः लभ्यः। ननु "मनसोनिग्रहं पूर्वं पश्चादिन्द्रिय निग्रहः"। अथवा शास्त्रकारस्य चित्तवृत्तिनिरोधस्य या निदेशना सा कथं सार्थवती स्यात् । इति तु न शंकनीयम् ।

इस प्रकार ध्यान से अनुभवजन्य ज्ञान और ज्ञान से ध्यान होने लगता है। इसीलिये कहा गया है कि जो ध्यान और ज्ञान को जानता है उसने संसार समुद्र को पार कर लिया। ध्यान के बिना ज्ञान नहीं होता और जो योगी नहीं है वह ध्यान भी नहीं कर सकता है, (शक्तिपात महायोग में) ध्यान भी प्रणायाम के अधीन होता है और प्राणायाम भी जागृता भगवती कुण्डलिनी महाशक्ति स्वयं ही करवा देती है। उसी को सिद्धप्राणायाम कहते हैं। वह केवल शक्ति के ही वश की बात है। शक्ति अनुग्रह से ही प्राप्त होती है। इसीलिये शक्तिपात का आश्रय लेना चाहिये।

(शंका) कहा जाता है कि पहिले मन का निग्रह होता है अर्थात् मन की चंचलता दूर की जाती है तब बाद को इन्द्रिय-निग्रह होता है। अथवा "चित्त की वृत्तियों का निरोध करो" यह जो योगशास्त्रकार की निदेशना है, इस सिद्धांत को मानने से कैसे सार्थक होगी ? ऐसी शंका नहीं करना चाहिये।

२८-१०-६२ प्रातः ।।१०।।

शक्तिपातस्य मार्गः। अपरः राजयोगमार्गस्यापरः। शक्तिपातमार्गे सर्वानुग्रहैकलभ्यं भवति। साधकस्य याऽऽवश्यकता विद्यते तां शक्तिः स्वयं पूरयति। अतः पूर्वमिन्द्रियनिग्रहः पश्चात् मनसोऽपि निग्रहः सहजसाध्यो जायते।पूर्वापरस्य व्यतिक्रमः न सापेक्षिकः- अस्तु, सिद्धप्राणायामे मनः निरुद्धं भवति।

क्योंकि शक्तिपात का मार्ग कुछ भिन्न है और राजयोग का मार्ग कुछ भिन्न। शक्तिपातमार्ग में सब कुछ केवल अनुग्रह से ही उपलब्ध हो जाता है। साधक को जिस बात की आवश्यकता होती है उसे जागृता शक्ति स्वयं ही पूर्ण कर देती है। इसलिये शक्ति पहले इन्द्रियनिग्रह कराती है और फिर मन का भी निग्रह सहज ही में साध्य कर देती है। पूर्वापर का व्यतिक्रम शक्तिपात मार्ग में अपेक्षित नहीं रहता है। अस्तु, सिद्धप्राणायाम से मन का निरोध होता है।

प्राणाधीनं मनः प्रोक्तंमनश्च चञ्चलं स्मृतम् ।
तस्मात् प्राणाश्च संयम्य मनसो निग्रहो भवेत् ।।

मन प्राण के अधीन रहता है, मन स्वभावतः चंचल होता है। इसलिये पहिले प्राणों को संयम करने से, मन का स्वतः निग्रह हो जाता है।

पुनश्च बोधावस्था समायाति
बोधावस्था च सा प्रोक्ता यस्यां ध्यानं च वर्तते ।
ज्ञानं च परमस्यापि स्वयमेवोपजायते ।।

फिर बोधावस्था प्राप्त हो जाती है। बोधावस्था उसे कहते हैं जिसमें ध्यान होने लगता है। ध्यान में उस परम का ज्ञान भी स्वयं ही हो जाता है।

बोधावस्थायां ध्यानस्य बोधः परमस्यापि बोधः स्वयमेव भवति। तदा प्रकाशशीलता सुव्यापिका भूत्वा अन्तर्गतमानन्दं द्योतयति। तस्यामवस्थायां मनः कुत्रापि गन्तुं नेच्छति न च प्रकाशवृत्तिं हातुमिच्छति। अहं सोऽहमिति अखण्डावृत्तिः बद्धावस्थात्मिका भूत्वा तस्मिन्नेव लयं यातुं पुनः स्पन्दनाय च चेष्टते। तदा स्वरुप बोधज्ञानं प्रादुर्भवति सैव बोधावस्था इत्युच्यते।

बोध की अवस्था में ध्यान का भी बोध होता है और "परम" का भी बोध स्वयमेव हो जाता है। तब प्रकाशशीलता अधिक होकर अन्तर्गत आनन्द को प्रकाशित कर देती है। उस अवस्था में मन कहीं अन्यत्र नहीं जाना चाहता है और प्रकाशवृत्ति को छोड़ना नहीं चाहता है। मैं वही हूँ इस प्रकार की अखण्ड वृत्ति बद्धमूल होकर मन उसी में लय होने के लिये बार-बार चेष्टा करता है तब स्वरूप बोध का ज्ञान प्रादुर्भाव होने लगता है। वह बोधावस्था कही जाती है।।

यद्बोधावस्थकं ज्ञानं ध्यानान्तर मेव च।
तच्छत्तया स्वयवमेवोत्थं परमापरमात्मकम् ।।

ध्यान के पश्चात् जो बोधावस्था का ज्ञान होता है उसे महाशक्ति स्वयं ही उत्पन्न करती है और वह ज्ञान शिव और शक्ति दोनों का ही ज्ञान होता है।

बोधावस्था साधकस्य सावस्था भवति यस्यां स सोऽहमित्यात्मकं भावं विजानाति, केवलं तत्र स्पन्दनात्मकं बोधः एव। न च अन्यत् किमपि। यदा च सोऽहमिति बोधः प्रादुर्भवति तदा च जागृतस्वरूपा महामाया भगवती कुण्डलिनी चक्रभेदनाय ग्रन्थिभेदनाय च बलवती भवति। एनमेव योगं महायोग इति शक्तियोग इति बुधाः वदन्ति।

साधक की बोधावस्था वह अवस्था है जिसमें वह "सोऽहं" इस प्रकार का ज्ञान अनुभव करता है। वहां केवल स्पन्दनात्मक बोध होता है और कुछ दूसरा बोध नहीं रहता। जब "सोऽहं" बोध का प्रादुर्भाव होता है तब स्पन्दनशक्ति प्रबल हो जाती है, तब जागृता महामाया भगवती कुण्डलिनी शक्ति चक्रभेदन के लिये और ग्रन्थिभेदन के लिये बलवती होती है। इसी योग को महायोग और शक्तियोग विद्वान् लोग कहते हैं।

शक्तिपातं विना तत्त्वज्ञानं नैव च जायते।
तस्मात् तत्रैव जिज्ञासा कर्तव्या साधकैः सदा।।
तत्त्वज्ञानं क्रियाज्ञानं स्वयमेवोपजायते।
एतत् सर्वमनुग्रहैकलभ्यम् ।

शक्तिपात के बिना कभी तत्त्व ज्ञान नहीं हो सकता है। इसलिये सदा शक्तिपात महायोग के लिये जिज्ञासा साधकों को करनी चाहिये। शक्तिपात से तत्त्व ज्ञान और क्रियाज्ञान स्वयमेव हो जाता है। यह सब केवल सद्गुरू के अनुग्रह से ही प्राप्त हो सकता है।

२८-१०-६२ सायंकाल ।।११।।

बोधावस्थानन्तरं सिद्धावस्था समायाति, तस्यामवस्थायां जागृता भगवती महामाया कुण्डलिनी नानाप्रकारेण स्वशक्तिसंबोधकतां प्रकटयति। सिद्धावस्थायां प्रति कथितं च।

बोधावस्था के अनन्तर सिद्धावस्था आती है। उस अवस्था में जागृता भगवती महामाया कुण्डलिनी नाना प्रकार से अपनी जागृत होने की स्थिति को अनुभव करवाती है। सिद्धावस्था के प्रति कहा भी गया है कि-

सिद्धानां दृष्टपरपदानां या आनन्दावस्था भवति सा सिद्धावस्था। यस्यामवस्थायां सिद्धाः महायोगिनः "सोऽहं" इत्यनुभूय तत्र मनः संयोजयन्ति, सिद्धिं च लभन्ते। सिद्धिं योगसिद्धिम्, अपरप्रकारकां च सिद्धिम् । अथवा सिद्धियोग्या नानाश्चर्य योग्या या स्थितिर्भवति सा सिद्धावस्था अथासिद्धस्य सर्वत्रैव व्यापकस्य स्वतः सिद्धस्य सर्वथा वर्तमानस्य प्राप्तेः या अवस्था सा सिद्धावस्था। तामेवावस्थां प्राप्य योगाभियुक्ताः लब्धयोगभूमिकाः सानन्दाः तिष्ठन्ति।

सिद्धों की, परपद को देखने वालों की जो आनन्द की अवस्था होती है उसे सिद्धावस्था कहते हैं, जिस अवस्था में सिद्ध महायोगी "सोऽहं" इसका अनुभव करके उसी में मन को लगा देते हैं और सिद्धि को प्राप्त करते हैं उसे सिद्धावस्था कहते हैं।

सिद्धि से तात्पर्य योग सिद्धि से भी है और अन्य प्रकार की रस, औषधि मन्त्र आदि सिद्धि से भी है। अथवा सिद्धावस्था का अर्थ है सिद्धियोग नाना प्रकार की आश्चर्यजनक व्यावहारिक या पारमार्थिक चमत्कारपूर्ण अवस्था अथवा सिद्ध जो सर्वत्र व्याप्त स्वतः सिद्ध है, सर्वदा वर्तमान है उसकी प्राप्ति की अवस्था को प्राप्त कर योगी लोग उस परमपद तक पहुंचते हैं।

२९-१०-६२ प्रातः ।।१२।।

सिद्धावस्था च सा प्रोक्ता यस्यां सम्पत् त्रयं भवेत् ।
कायिकं भौतिकं चैव दैविकं च इति त्रयम् ।।

सिद्धावस्था उसे कहते हैं जिसमें तीनों सम्पत्तियों कायिक, भौतिक और दैविक ये तीन सन्निहित हों।

यदा वै भगवती शक्तिः परमा परमात्मिका।
जागृता च भवेत् सिद्धा नानाकार्याकुलेक्षणा।।

जब भगवती परात्मिका परमा शक्ति जागृत होती है तब वह सिद्ध होकर नाना प्रकार के कार्य करने के लिये छटपटाती है।

जायते मन्त्रज्ञानाय समर्था साक्षरात्मिका।
तथा मन्त्रमहाज्ञानं प्रादुर्भवति साधके।।

अक्षरात्मिका वह शक्ति मन्त्र ज्ञान में समर्थ हो जाती है और साधक में महामन्त्र ज्ञान का प्रादुर्भाव होने लगता है।

तदैवौषधिज्ञानं च ज्ञानं संस्कारजं च यत् ।
तत् प्रादुर्भावमायाति सिद्धावस्था च या भवेत् ।।

सिद्धावस्था में औषधिज्ञान और संस्कारजन्य ज्ञान भी स्वतः साधक में प्रादुर्भूत होने लगता है।

सत्यं ब्रह्म सदानन्तं नित्यं च निर्विकल्पकम् ।
निराश्रयं निराधारं यत्रैतत् विद्यते स्वयम् ।।
सापि सिद्धा दशा ज्ञेया नास्ति तत्र विवर्तकम् ।।

जिस सिद्धावस्था में सत्यरूप, सदा आनन्द रूप, नित्य, निर्विकल्प, निराश्रय, निराधार ब्रह्म का ज्ञान होता है उसे भी सिद्धावस्था कहते हैं, उसमें कोई भ्रान्ति नहीं रहती है।

२९-१२-६२ सायंकाल ।।१३।।

या कायसम्पत् प्रोक्ता सा शरीरजा भवति। मन्त्रशरीरजा वा भवति, शरीरात् सर्वं कर्तुं शक्यते। शरीरे स्थूले सूक्ष्मे च कारणे च शक्तिसंयमनेन स्वाधिकाराधिगमभावना प्रसरति, तदा च प्रथमे शक्तिसम्पातप्रभावेण मन्त्राणां विधानानां साधकमुखात् प्रोच्चारणं भवति। शक्ति समायुक्तेषु तेषु मन्त्रेषु या शक्तिः बीजरूपेण समायाति सा चैतन्येनाभियुक्ता भवति। चैतन्यस्वरूपाणां मन्त्राणां स्वतः सिद्धप्रयोगः सिद्धावस्थायां द्योतितं भवति। स्वतः सिद्धानि मन्त्राणि शक्ति संवलितानि भवन्ति, तदा मन्त्रा इत्युच्यन्ते। यदा च स्वयं समायान्ति सापि सिद्धिस्थितिः श्रुता।

जो काय सम्पत्ति कही गई है वह शरीरज होती है या मन्त्रशरीरजा होती है। शरीर से सभी कुछ किया जा सकता है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन तीनों शरीरों में शक्ति का संयम करने से तीनों शरीरों पर अपने अधिकार हो जाने की भावना पैदा होती है। सर्व प्रथम शक्तिपात् के प्रभाव से साधक के मुख से नानाप्रकार के मन्त्रों का और उनके विधानों का उच्चारण हुआ करता है। शक्ति से समायुक्त उन मन्त्रों में जो शक्ति बीजरूप से आती है वह चैतन्य से परिपूर्ण रहती है। चैतन्यस्वरूप मन्त्रों का स्वतः सिद्ध प्रयोग सिद्धावस्था में झलकने लगता है। जब स्वतः सिद्धमन्त्र शक्ति से संवलित होते हैं तब उन्हें "मन्त्र" नपुंसक न कह कर "मन्त्राः" पुलिंग रूप से कहा जाता है, क्योंकि वे तब कार्यक्षम हो जाते हैं, जब मन्त्र स्वतः प्रकट होते हैं उसे भी सिद्धस्थिति कहते हैं।

मन्त्रशरीरं गुरुप्रदत्तं तु चैतन्याभियुक्तं भवत्येव, किन्तु यदा शक्तिसिद्धात्मकत्वेन मन्त्राणि स्वयमेव प्रादुर्भवन्ति तदापि तेषु चैतन्यं स्वतः सिद्धं भवति। तदैव कायिकं कायसम्पत्, मन्त्रसिद्धिः तत्पदं प्रति समासादयति।

गुरु प्रदत्त मन्त्र - शरीर तो चैतन्य से अभियुक्त होता ही है, किन्तु जब शक्ति के द्वारा सिद्धात्मकता आती है और मन्त्र स्वयं प्रकट होते हैं उनमें चैतन्य स्वतः सिद्ध होता है, तभी काय सम्पत्ति और मन्त्राश्रय सिद्धि तत् पद के प्रति साधक को ले चलती है।

मन्त्रबीजाक्षरं बीजं चैतन्यापहितं यदा।
तदा तज्जापमात्रेण सिद्धिर्भवति कामदा।।

जब चैतन्य से समायुक्त मन्त्र, बीज, अक्षर होते हैं तब उनके केवल उच्चारणमात्र से यथाकाम सिद्धि हो जाती है।

मन्त्र-प्रभाव-मात्रेण क्लेशः कर्मविपाकजाः।
नश्यन्ति विवशाः सर्वे चान्येपि क्वचिदुत्थिताः।।

मन्त्रों के प्रभावमात्र से कर्मविपाकजन्य जितने भी क्लेश हैं सब विवश होकर नष्ट हो जाते हैं और अन्यान्य बीच-बीच में उठने वाले कर्मविपाक भी नष्ट हो जाते हैं।

अतः मन्त्रकायसिद्धिः सिद्धावस्थायां जायते। या च अपरप्रकारका औषधिप्रबोधिकाः सिद्धिः सापि मन्त्रसिद्धिवत् स्वभावजा शक्ति प्रभावजा चेति।

अतः सिद्धावस्था में मन्त्र-शरीर-सिद्धि होती है और भी जो अन्य प्रकार की औषधिज्ञान की सिद्धि है वह भी मन्त्रसिद्धि की भाँति स्वभावजा और शक्तिप्रभावजन्य हुआ करती है।

३०-१०-६२ प्रातः ।।१४।।

**यदा च दैहिकीं सिद्धिं लभते योगवित्तमः।
तदा च सबलां शक्तिं विन्दते नात्र संशयः।।**

जब योगाभ्यासी साधक दैहिक सिद्धि प्राप्त करता है तब निःसंशय वह प्रबल शक्ति प्राप्त कर लेता है।

तदा अणिमाद्यः शक्तयः स्वयमेवोपजायन्ते। स सशक्तो भूत्वा विजयी भवति। सर्वविषयभावना सर्वजयत्वाच्च तस्मिन्नायाति।

तब अणिमादि शक्तियाँ स्वयं ही प्राप्त हो जाती हैं। वह योगी शक्तिसम्पन्न होकर विजयी होता है। उसमें सब विषयों को जानने की क्षमता सर्वजय होने के कारण आ जाती है।

**विभूतयो विभोस्तस्य भवन्ति च निराकुलाः।
रमते तत्र यो नित्यं रूद्धवर्त्मा स चोच्यते।।**

उस विभु ईश्वर की विभूतियां उसे अनायास ही प्राप्त हो जाती हैं, किन्तु उन्हीं में जो नित्य रमण करने लग पड़ता है उसे "रूद्धवर्त्मा" अर्थात् मार्गभ्रष्ट कहा जाता है।

यदा सिद्धावस्था सुलभा भवति तदा विभूतयः समायान्ति। मन्त्रौषधिज्ञानेन च ताः सप्रभावका भवन्तीति। एतत् सर्वं च शक्त्यधीनम् । तस्मात् तत्रैव जिज्ञासा कर्तव्या। भौतिकीमवस्थां प्राप्य भूतजयो भवति।

जब सिद्धावस्था सुलभ होती है तब विभूतियाँ आती हैं। वे विभूतियाँ मन्त्रोषधि ज्ञान के द्वारा प्रभावोत्पादक होती हैं। यह सब शक्ति के प्रभाव से ही होता है। इसलिये इसी मार्ग में जिज्ञासा करनी चाहिये। भौतिकी अवस्था प्राप्त करके भूतजय होता है।

भूतजयोऽपि कायसम्पदधिकृत्यैव जायते। भूतजयात् सर्वं भौतिकाश्चर्यं कर्तुं वा दर्शयितुं वा शक्नोति। किन्तु सत्यमिदं यत् भूतजयात् एतादृश्यवस्थाः समायान्ति याः साधकस्य महाशक्तिं ख्यापयन्ति, याश्च तं तथैवावद्धं कर्तुं समर्था भवन्ति।

भूतजय भी कायसम्पत्ति से ही सम्बन्ध रखता है। भूतजय से नानाप्रकार के भौतिक आश्चर्य करने और दिखाने की क्षमता प्राप्त होती है। किन्तु यह सत्य है कि भूतजय से इस प्रकार की अवस्था आती है कि जो महाशक्ति की अभिव्यक्ति दिखाती है और जो उसे उसी भांति अपने में भरमाये रखने की सामर्थ्य भी रखती है।

**किमाश्चर्यं यदा नाना सम्पदः स्वात्मदर्शिकाः।
प्रत्यक्षेण समायान्ति किन्तु विक्षेप हेतुकाः।।**

इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि अपने स्वरूप को दिखाने वाली नाना प्रकार की विभूतियाँ प्रत्यक्ष रूप से साधक के पास आती हैं किन्तु वे सब साधक के लिये विक्षेप का कारण बनती हैं।

अतः परमतत्त्वदर्शकैः हेयाः सिद्धयः इतियदुच्यते तदपि प्रामाणिकम् । तथापि समागतानां सिद्धीनामधीश्वराः धैर्यशालिनः निर्भयाः साधकाः परोपकाराय यदि तत्प्रयोगं कर्तुं समर्थाः सन्ति तदा ते लब्धगुरूनिदेशका भवन्तु।

इसलिये परमपद देखने वाले महात्माओं ने जो कहा है कि "हेयाः सिद्धयः" सिद्धियों की उपेक्षा कर देनी चाहिये वह भी प्रामाणिक है। किन्तु आई हुई सिद्धियों के अधिकारी जो साधक लोकोपकार के लिये यदि उनका उपयोग करने की इच्छा रखते हों तो उन्हें अपने गुरू से आदेश ले लेना चाहिये।

३०-१०-६२ सायं ।।१५।।

**स्वयंविनिर्गतं मन्त्रं यच्च शक्तिसमन्वितम् ।
तन्मन्त्रसमुदायश्च मन्त्रव्यूहः स उच्यते।।**

स्वयं ही मुख से निकला हुआ मन्त्र अथवा मन्त्रसमुदाय जो शक्ति समन्वित होते हैं उसे मन्त्रव्यूह कहा जाता है।

मन्त्रव्यूहं ज्ञात्वापि भूतजये सफला भवन्ति योगिनः भूतविजये लब्धाधिकारकाः मृत्युविजयमपि कर्तुं शक्नुवन्ति। पश्चाच्च दैविकी सिद्धिः समापतति। देवेभ्यः समागता या सिद्धिः सा दैवी, दैविकी वा सिद्धिर्भवति।

मन्त्रव्यूह के ज्ञान से भी योगी लोग भूतजय में सफलता प्राप्त करते हैं। भूतजय में पूर्ण अधिकार प्राप्त करने वाले योगीजन मृत्यु पर भी विजय प्राप्त कर सकते हैं। इसके अनन्तर दैवी सिद्धि प्राप्त होती है। देवों से प्राप्त सिद्धि को दैवी या दैविकी सिद्धि कहते हैं।

देवा दिव्यगुणान्वितारसयुता दिव्यार्थक्रीडारताः।

गन्धस्पर्शसरूपशब्दविषया दिव्यात्मका द्योतकाः।।

देव लोग दिव्य गुणों से समन्वित, दिव्य विषयों का भोग करने वाले, आनन्द मनाने वाले, शब्द स्पर्श, रूप रस गन्ध आदि दिव्य विषयों की सूक्ष्मता के परिचायक और प्रकाशित करने वाले होते हैं।

साधनसम्पन्नः साधकः भूतजयं विधाय परस्वरूपज्ञानाय प्रभावात्मकतामुत्पादयति परप्राप्तिकामाय च प्रभवति तदा पूर्वं देवाः भ्रमात्मकतामुत्पादयन्ति, नाना विक्षेपान् च उत्पादयन्ति, ध्यानावस्थितं मनः विक्षिपन्ति, विघ्नव्यूहं विस्तारयन्ति, किन्तु दृढ़चेताः साधकः तदापि यदि ध्यानावस्थितो भूत्वा तान् न किमपिगणयति प्रसन्नाः तदा देवाः पुनः स्वयमेवागतान् विघ्नान् निरस्य तत्सहायकाः भवन्ति। दिव्यभावैस्तं योजयन्ति। यद्विषये शास्त्रे कथितमस्ति "यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धामपरमं मम" इति तं तत्रैव गमयन्ति। पथदर्शकाः भवन्ति इत्यर्थः। तां दैवीसम्पदं समधिगम्य साधकः स्वयमेव दिव्यभावैः दिव्यगुणैः समलंकृतो भूत्वा परप्राप्तिसमर्थो जायते।

साधनसम्पन्न साधक भूतजय प्राप्त करके "पर" के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करता है। इस परपद की प्राप्ति में पहिले देवतागण नानाप्रकार का भ्रम पैदा करते हैं, नाना विक्षेप पैदा करते हैं, साधक के ध्यानावस्थित मन में विक्षेप पैदा करते हैं और विघ्नव्यूह का विस्तार करते हैं। किन्तु दृढ़चित वाला साधक यदि फिर भी ध्यानावस्थित होकर उन विघ्नों की उपेक्षा कर देता है तो देवता लोग प्रसन्न होकर फिर स्वयं ही उन सभी विघ्नों का निवारण करके उस साधक के सहायक बन जाते हैं। उसे दिव्यभाव में लगा देते हैं। जिस पर शास्त्रों में कहा गया है कि "जहाँ पहुंच कर फिर वापिस नहीं लौटता है वही मेरा पद है" उसमें उसे नियुक्त कर देते हैं। अर्थात् उस पद का मार्गदर्शन कराते हैं। उस दैवी सम्पदा को प्राप्त करके साधक स्वयं ही दिव्यगुणों से समलंकृत हो कर "पर" की प्राप्ति में समर्थ हो जाता है।

देवाः सहायका यत्र परबोधाय प्रस्तुताः।

सा दैविकी दशा प्रोक्ता देवतानां प्रसादजाः।

जिसमें "पर" के बोध के लिये देवता लोग सहायक होते हैं उसे देवताओं के प्रसाद से प्राप्त दैवी दशा कहते हैं।

तदा-स्वकायसिद्धिः परकाय सिद्धिः संजायते यत्र विहाय तांच।

संयाति देवः भूत्वा तत्साधकः देवजसिद्धियुक्तः।।

जिस दैवी स्थिति में साधक स्वकायसिद्धि और परकायसिद्धि दोनों को छोड़ देता है वह स्वयं देव बनकर देवता के समान देवजसिद्धि से युक्त होता है।

किन्तु सिद्धयः विक्षेपभूताः ज्ञेयाः। सिद्ध एव तत्प्रयोगाय प्रभवति। पुनः दैवीसम्पदः आसुरीसम्पदः मध्ये ऐश्वर्यावस्थितिः ज्ञेया।

किन्तु सिद्धियों को विक्षेप ही समझना चाहिये। कोई परिपूर्ण सिद्धयोगी ही उनका प्रयोग कर सकता है। फिर दैवी सम्पदा और आसुरी सम्पदा के बीच में ऐश्वर्यावस्थिति समझनी चाहिये।

३१-१०-६२ प्रातः ।।१६।।

ऐश्वर्यावस्था - ईश्वरस्य भावः ऐश्वर्यम् । ईश्वरे सर्वकर्तृत्वभावना सर्वकर्तृत्वशक्तिः च विद्यमाना विद्यते। यदा च साधको योगी ऐश्वर्यसम्पन्नो भवति तदा स अहं सर्वं कर्तुं शक्नोमि, सर्वंभोक्तुं इति सामर्थ्यं लभते तस्यामवस्थायां न किञ्चिदपि अकरणीयं विद्यते, किन्तु तामवस्थां कश्चिदेव गच्छति। गतोऽपिवा न किमपि कर्तुं वाञ्छति, निस्पृहत्वात् ।

ऐश्वर्यावस्था-ईश्वर का जो भाव है उसे ऐश्वर्य कहते हैं। ईश्वर में सर्वकर्तृत्व शक्ति और सर्वकर्तृत्व का ज्ञान विद्यमान रहता है। जब साधक योगी ऐश्वर्य सम्पन्न होता है तब "मैं सब कुछ कर सकता हूं और सब कुछ भोग सकता हूं" इस प्रकार की सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है उस अवस्था में कुछ भी बात न कर सकने लायक नहीं होती है किन्तु उस अवस्था में कोई विरला ही पहुंच पाता है। यदि पहुंच भी जाता है तो कुछ करने की इच्छा नहीं रखता, क्योंकि उस दशा में वह निःस्पृह रहता है।

कृताभ्यासेऽपि प्राप्तेऽपि सिद्धे जातेऽपि पूर्णतः।

ऐश्वर्यस्य दशां प्राप्य कश्चिद् वै सफलो नरः।।

योगाभ्यास पूर्ण करने पर पूर्णतया सिद्धि प्राप्त कर लेने पर भी ऐश्वर्य की स्थिति प्राप्त करके बिरला ही मनुष्य ऐश्वर्य त्याग कर आगे बढ़ने में सफल होता है।

ईश्वरस्य ऐश्वर्यशक्तिं प्राप्यापि मुमुक्षवः परपदप्राप्तिकामाः परस्मिन् स्वात्मानं नियोज्य न गणयन्ति तामवस्थाम् ।

ईश्वर की ऐश्वर्य शक्ति प्राप्त कर के भी मुमुक्ष जन परपद की प्राप्ति की कामना से परतत्त्व में अपने को नियुक्त करते हुए उस ऐश्वर्य दशा की उपेक्षा कर देते हैं।

अहं कर्त्ता अहं भोक्ता अहं द्रष्टाहमीश्वरः।

एतादृशीं समादाय शक्तिं नात्र न मुह्यति।।

मैं कर्ता हूं, मैं भोक्ता हूं, मैं सर्वज्ञ ईश्वर हूं ऐसी शक्ति प्राप्त करके भी उत्तम साधक मोह को प्राप्त नहीं होता है।

किन्तु ये केचिदिह तामवस्थां प्राप्य विमुग्धा भवन्ति स्वतः साहंकारा भूत्वा प्रदर्शयन्ति स्वात्मशक्तिं, यशोऽभिलिप्ताः तदा ते तत्रैव आसक्ताः। जायन्ते अतः ऐश्वर्यावस्थापि विक्षेपभूता एव वर्तते।

किन्तु कुछ बिरले साधक उस अवस्था को प्राप्त करके जो विमुग्ध होकर स्वयं अहंकार सम्पन्न होकर आत्मशक्ति का प्रदर्शन करते हों और यशः प्राप्ति की स्पृहा से लिप्त हो जाते हैं वे वहीं आसक्त हो जाते हैं। इसलिये ऐश्वर्यावस्था भी विक्षेप भूत ही है।

ऐश्वर्यस्य च याऽवस्था सर्वशक्तिसमावृता।

नाना चित्रविचित्रा या सा तु वक्तुं न शक्यते।।

सर्वशक्तियों से पूर्ण जो ऐश्वर्य की स्थिति है वह नाना प्रकार की चित्र विचित्र है उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है।

इति स्वयं सरस्वत्या आख्यातं जिज्ञासाधिकरणं समाप्तम् ।।

एतत सर्वं जितेन्द्र भारतीय मुखात् ख्यातम् ।

यह स्वयं साक्षात् जगदम्बा सरस्वती द्वारा कहा गया शक्तिपात शास्त्रान्तर्गत जिज्ञासाधिकरण समाप्त हुआ। यह सत्य श्री जितेन्द्र भारतीय के मुख से निःसृत हुआ है।

३१-१०-६२ सायम्।।१७।।

अथ शक्तिक्रियाधिकरणम् ।।

अब शक्तिक्रियाऽधिकरण आरम्भ होता है।

या शक्तिः परमाधारा मूलाधारे च विद्यते।

सुप्ता सा जागृतादेवी सर्वाधारस्वरूपिणी।।

जो शक्ति परम शिव की आधार है वही शक्ति मूलाधार में भी विद्यमान है जो सोई हुई है। वही सर्वाधार स्वरूपिणी शक्ति जागृत होती है।

सर्वत्रैव च या देवी चैतन्येन सुव्यापृता।

जागृतां नौमि तां शक्तिं इच्छा-ज्ञान-क्रियात्मिकाम् ।।

जो भगवती कुण्डलिनी शक्ति सर्वत्र चैतन्य से ओतप्रोत है उस इच्छा ज्ञान-क्रिया रूपिणी जागृता शक्ति को मैं नमस्कार करता हूं।

मूलाधारे स्थिता देवी कामपीठाधिशायिनी।

जागृता सा महादेवी चक्रभेदाय जायते।।

कामपीठ में अधिष्ठित होकर मूलाधार में सुप्ता महाशक्ति भगवती कुण्डलिनी जब जागृत होती है तब चक्रभेदन में प्रवृत्त होती है।

विसतन्तुसमाकारा सुषुम्णामध्यवर्तिनी।

चक्राणां स्वामिनी सा मे प्रसीदतु परात्मिका।।

कमल नाल के तन्तु के समान सूक्ष्म, सुषुम्णा नाड़ी के भीतर मध्य भाग में रहनेवाली, चक्रों की स्वामिनी शिव-स्वरूपिणी भगवती शक्ति मुझ पर प्रसन्न हों।

भगवत्यै नमस्तस्यै या चिद्रूपाभिव्यापिका ।

या च भूतेषु भूता साऽनुग्रहं मे करोतु च ।।

चैतन्य रुप से अभिव्याप्त उस भगवती शक्ति को नमस्कार है, जो समस्त भूतों में भूत रुप बनकर विराजमान है, वह देवी मुझ पर अनुग्रह करें।

अनुग्रहात् जागृतेः बोधः ।।१।।

अनुग्रह से शक्ति के जागृत होने का बोध होता है।

अनुग्रहः तत् कृपया वा गुरुकृपया इति पूर्वं व्याख्यातम् । यदा अनुग्रहैकलभ्या सा शक्तिः जागृतिमधिगच्छति तदा सा स्वयं जागृता इति बोधोऽपि जायते।

अनुग्रह साक्षात् शिव द्वारा अथवा गुरुकृपा से होता है यह पहिले बता दिया गया है। जब अनुग्रहमात्र से प्राप्त होने योग्य शक्ति जागृत होती है तब साधक को यह भी बोध है कि वह स्वयं ही जाग पड़ी है।

ननु अनुग्रहात् सा कथं लभ्या भवति ? केनोपायेन अनुग्रहो भवति ? सत्यप्यनुग्रहे संस्कारभूमिकत्वाभिघातेन कथं तस्यावरोधः ? कथं च तस्या जागृतिः सुलभा ? इति यतः यदि च केवलेच्छा प्राप्तौ तत्र कारणं, तदा तु विद्यमानायामपि नानुग्रहो दृश्यते। यदि च संस्कारा एव प्रबलतमा भवन्ति तर्हि अनुग्रहस्य व्यर्थता सिद्ध्यति इति शंका सत्या।

प्रश्न है कि वह कैसे प्राप्त होती है ? किस उपाय से अनुग्रह होता है ? अनुग्रह होने पर भी शिष्य के संस्कार विशेष के आधार के अभिघात से उसका क्यों अवरोध हो जाता है ? उस शक्ति की जागृति किस प्रकार सुलभ होती है ? क्योंकि यदि उसकी प्राप्ति में केवल इच्छा ही कारण है तो इच्छा रहने पर भी वह कभी जागृत नहीं होती है। यदि शिष्य के संस्कार ही प्रबलतम कारण हैं तो अनुग्रह व्यर्थ हो जाता है। ऐसी शंका भी सत्य है।

तथापि महायोगविषये नैवं शंकनीयम् ।

तथापि महायोग (शक्तिपात महायोग) के विषय में ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये।

तथा चः- **साधारं प्रोच्यते शास्त्रे मिथ्या नैव च प्रोच्यते ।**

तस्मात् तत्रैव द्रष्टव्यं तावार्थस्य निबन्धनम् ।।

शास्त्र में जो बात कही जाती है उसका कुछ आधार होता है और वह मिथ्या नहीं होता है। इसलिये तत्त्वार्थ के विवेचन के लिये शास्त्र में ही देखना चाहिये।

अनुग्रहो भवेद्व्यर्थं न संस्कारस्य धारणा ।

तस्मात् सानुग्रहाधारा शक्तिः सा जागृता ध्रुवा ।।

यदि शुद्ध संस्कारों का अनुकूल आधार शिष्य में नहीं होगा तो अनुग्रह व्यर्थ रहेगा। इसलिये अनुकूल आधार को लेकर अनुग्रह द्वारा वह शक्ति अवश्य ही जागृत हो जाती है।

अनुग्रहस्य व्यर्थता, संस्काराणां वा निरर्थकता इति साम्प्रतिकाऽस्ति संशयः। कारणं तत्र विद्यते।

अनुग्रह की व्यर्थता होती है अथवा संस्कारों की निरर्थकता है, ऐसी शंका तो साम्प्रतिक है। इसमें कारण है।

अनुग्रहस्य यस्यार्थः सानुकूलत्वकारकः ।

स एव ग्राह्यः सर्वत्र शक्तिपातविधौ सदा ।।

अनुग्रह का अर्थ है शिष्य की अनुकूलता पैदा करना शक्ति के ग्रहण में। अतः शक्तिपात विद्या में अनुग्रह का यही अर्थ लेना चाहिये।

इति जल्पनात् तदर्थलाभः ।

ऐसा कहने पर ही उसका अर्थ निकलेगा।

१-११-६२ प्रातः ।।१८।।

अनुग्रहः सानुकूलभावानां ग्रहणं मतम् ।

उभयत्र समानत्वे जायते तत् क्रियाकुलम् ।।

अनुकूलमय भावों का शिष्य द्वारा ग्रहण कर लेने को ही अनुग्रह कहते हैं। यह भावों की अनुकूलता जब गुरु और शिष्य दोनों में समान रुप से रहती है तब वह अनुग्रह रूप शक्तिपात क्रियासम्पन्न बनता है, अर्थात् सफल होता है।

अनुग्रहाय इच्छा प्रबलता भवति । यदा तु इच्छा प्रबलतमा भवति तदा तस्यां क्रियापि आवश्यकीया जायते । क्रियावती इच्छा भावस्पन्दाय प्रभवति । तदा च भावानुकूलता प्रादुर्भवति । भावानुकूल्येन अनुग्रहः भवितुं शक्यते । तत्तु ग्राहके प्रापके च । यः इच्छुकः तस्मिन्नपि भावानुकूल्यं सापेक्षिकम् । यश्च अनुग्रहकर्ता तस्मिन्नपि सानुकूल्यं वाञ्छितं भवति । तदभावे नानुग्रहः । भावानुकूलत्वेन अनुग्रहो जायते । यथा मलरहितं विशुद्धं लौहं चुम्बकसम्मुखे समायाते सति आकर्षति तद्वत् अत्रापि ज्ञेयम् ।

अनुग्रह के लिये इच्छा की प्रबलता चाहिये। जब इच्छा प्रबल होती है तब उस इच्छा में क्रिया भी आवश्यक रुप में होती है। क्रियावती इच्छा भावों को स्पन्दन कर देने में समर्थ होती है। तब शिष्य में भावानुकूलता का प्रादुर्भाव होता है। भावानुकूलता से ही अनुग्रह हो सकता है। वह भावानुकूलता शिष्य और गुरु दोनों में समान रुप से होनी चाहिये। जो शक्ति ग्रहण करने वाला है उसमें भी शिष्य के प्रति भावनुकूलता हो। उसके अभाव में अनुग्रह नहीं हो सकता हे। जैसे मलरहित लोहा चुम्बक के सम्मुख आकर आकर्षित होता है उसी प्रकार यहां भी समझें।

लौहं काष्ठं दृषत् सर्वं जडत्वेन परिप्लुतम् ।

लौहं कर्षति नान्यद्वै चुम्बकः तत्त्वकर्षकः ।।

लोहा, काठ, पत्थर ये सब समान रुप से बाहर भीतर जड़ हैं, किन्तु चुम्बक केवल लोहे को ही खींचता है जड़ पदार्थ को नहीं, क्योंकि दोनों में तत्त्वों की अनुकूलता है।

लौहे तत्त्वमस्ति यत् आकर्षणाय स्वयमर्पयति । काष्ठे दृषदि तन्न ।

लोहे में वह तत्त्व है जो आकर्षण के लिये स्वयं चुम्बक को अर्पित कर देता है। काठ और पत्थर में वह तत्त्व नहीं है।

अतः यदि शिष्ये साधके वा भावानुकूलत्वमुपजायते तदा सद्भावकृताधिकारः गुरुः तमनुगृह्णाति । सोऽपि अनुग्रहाय चेष्टते इत्यर्थः ।

अतः यदि साधक शिष्य में भावानुकूलता पैदा हो जाय तो सद्भाव में अधिकार रखने वाला गुरु उस शिष्य पर अनुग्रह सफलतापूर्वक कर देता है। गुरु भी अनुग्रह करने के लिये चेष्टा करता है।

यथा - तप्तेन तप्तलौहस्य संयोगो जायते ध्रुवम् ।
तथा भावैश्च भावानां संयति नात्र संशयः ।।

जिस प्रकार तपे हुए लोहे के साथ तपा हुआ लोहा जुड़ जाता है उसी प्रकार समान भावों के साथ समान भावों का परस्पर ऐक्य हो जाता है इसमें कोई सन्देह नहीं है।

अत एव शक्तिः अनुग्रहैकलभ्या इत्युच्यते । अनेन पूर्वोत्थिता शंका स्वयमेवोपशाम्यति । यदि च संस्कारविषये कथितं तदपि निरसनीयम् ।

इसलिये शक्ति केवल अनुग्रह से ही प्राप्त हो सकती है यह कहा गया है। इससे पहिली उठी शंका का भी समाधान हो जाता है। जो संस्कारों के सम्बन्ध में शंका की गई उसका भी समाधान किया जाता है।

यथा - भावानां सानुकूलत्वं संस्कारोत्थं निगद्यते।
क्व पुनस्त्ववरोधस्य गतिस्तत्रोपजायते।।

जैसे-भावों की अनुकूलता गुरू और शिष्य के पारस्परिक संस्कारों की अनुकूलता पर निर्भर है। यदि दोनों के पारस्परिक संस्कारों में सजातीयता और साम्य है तो फिर शक्तिपात के अवरोध होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

संस्कारावरोधकविनाशकं सानुकूलभावाभिबोधः।।२।।

सानुकूलभावों का अवरोध ही संस्कारों के अवरोधों का विनाशक होता है।

तावच्च संस्कारः प्रतिरोधको भवति यावत् भावानुकूलता नागच्छति। क्रियावती इच्छा भावानुकूलाय जायते। स्पन्दात्मकत्वेन तत्र ईक्षणम् । तस्मात् परिस्फुरणम्, तस्माच्च क्रिया, क्रियावेगेन संस्कारशुद्धिः।

शुद्धात्मके संस्कारे प्रभवति अनुग्रहस्य सत्ता। तदैव वदन्ति यत् संस्कारः आसीत् ।जागृतः संस्कारः। इदं संस्काराधीनमेव। अस्तु।

संस्कार तभी तक प्रतिरोधक होते हैं जब तक भावों की अनुकूलता नहीं होती है। गुरू की क्रियावती इच्छा और शिष्य की क्रियावती इच्छा भावानुकूलता उत्पन्न करती हैं। क्रियावती इच्छा में स्पन्दन रूप से देखभाल होती रहती है। उस ईक्षण से शिष्य में शक्ति का स्फुरण होता है और उस स्फुरण से शिष्य में क्रिया होने लगती है। क्रिया के वेग से संस्कारों का शोधन होता है। शुद्ध संस्कारों में अनुग्रह का अधिक प्रभाव दीख पड़ता है। इसीलिये कहा जाता है "शिष्य में पहिले ही संस्कार थे, संस्कार जाग पड़े हैं," "यह सब संस्कारों के अधीन है" इत्यादि। अस्तु।

तत्पातात् जागृतिः ।।३।।

उस शक्तिपात से शक्ति जाग उठती है।

तत् पातात् शक्तिपातादिति।

"तत्पातात्" अर्थात् शक्तिपात से।

१-११-६२ सायंकाल।।१९।।

शक्तिपातेन साधकस्य या सुप्ता कुण्डलिनी वर्तते सा जागृता भवति। पातशब्दस्य पतनम्, उद्बोधनम्, जागरणं वा इत्यर्थाः भवन्ति। तज्जागरणेन नानाविधाः शारीरिकाः मानसिकाः प्राणात्मिकाः क्रियाः भवन्ति स्वतः। अस्तु।

शक्तिपात से साधक की जो सुप्ता कुण्डलिनी है, वह जागृत हो जाती है। पात शब्द का अर्थ गिरना, उद्बोधन, जागरण आदि अर्थ होते हैं। शक्ति के जागरण से नानाप्रकार की मानसिक, शारीरिक और प्राण सम्बन्धी क्रियायें होती हैं, अस्तु।

का शक्तिः कुत्र तत्पातः केनोपायेन तद्भवेत् ।
किमर्थं कोऽर्थलाभश्च तन्मे ब्रूहि सरस्वति।।

शक्ति क्या है ? कहाँ उसका पात होता है ? किस प्रयोजन के लिये होता है और उससे क्या प्रयोजन सिद्ध होता है ? यह सब हे माँ सरस्वती ! मुझे बताओ।

या च सर्वत्र कायेषु प्राणिनां चित्स्वरूपिणी।
सा शक्तिः प्राणदा प्राणस्तम्भिनी नियता सदा।।

समस्त शरीरों में जो शक्ति चित् स्वरूप में व्याप्त है, वही सब शरीरों में जीवन देने वाली है और शरीर में प्राणों का स्तम्भन किये रहती है।

प्राणापानं समानं च व्यनोदनं तथैव च।
समाहृत्य समाकृष्य या नित्यं धावगत्यलम् ।।

प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान इन पंचविध प्राणों का जो समाहार करते हुए और परस्पर कर्षण और विकर्षण करते हुए नित्य निरन्तर शरीर को संचालित करती रहती है।

साशक्तिः प्रबला धौता विद्युल्लेखेव राजते।

रहस्यभेदिका सैव रन्ध्रान्वेषणतत्परा।।

वह प्रबल शक्ति धवल वर्ण वाली और बिजली की लकीर की भांति शोभित दीखती है। वही शक्ति सभी रहस्यपूर्ण चक्रों का भेदन करती है और ऊर्ध्वगमन के लिये अपना मार्ग ढूंढती रहती है।

अपिच, शक्यते यया परः ज्ञातुं सा शक्तिः। अथवा चित्स्वरूपिणी या शक्ता समर्था भवति ज्ञानाय क्रियायै वा सा शक्तिः। एवं च शक्नोति या चराचरं प्रापयितुं सा शक्तिः। तथा च –

और भी अर्थ हैं। जिसके द्वारा "पर" जाना जा सके उसे शक्ति कहते हैं। अथवा चित्स्वरूपिणी जो ज्ञान और क्रिया करने की सामर्थ्य रखती है उसे शक्ति कहते हैं। इसी प्रकार जो चराचर जगत् को जीवित रखने में शक्त (समर्थ) है उसे शक्ति कहते हैं।

इन्द्रियाणां समस्तानां मनसः आत्मनश्च या।

शक्ता तिमिरनाशाय सा शक्तिः प्राणदा मता।।

जो समस्त इन्द्रियों के मन के और आत्मा के अन्धकार को दूर करने के लिये शक्त रहती है वही प्रकाशशीला प्राणदायिनी कही गई है।

तत्सत्तया समायुक्ता जन्तवो जन्तवः स्वयम् ।

चैतन्या सा परा शक्तिः परतत्त्वप्रकाशिका।।

जिस की सत्ता से समायुक्त होकर सभी जीवधारी जीववान् प्राणवान् रहते हैं। वह चैतन्यरूपिणी पराशक्ति परतत्त्व को प्रकाशित करने वाली होती है।

चिद्रूपा प्राणरूपा च ज्ञानरूपा च सा स्वयम् ।

व्यक्ताव्यक्तस्वरूपा च सर्वतत्त्वेषु व्यापिका।।

वह भगवती शक्ति चिद्रूपा है, प्राण स्वरूपा है, स्वयं ज्ञानरूपिणी है, व्यक्त रूप वाली भी है, अव्यक्त रूप वाली भी है और सभी तत्वों में परिव्याप्त है।

साधकानां महासिद्धिर्यथा वै ब्रह्मदर्शनम् ।

कुण्डलिन्यपि सा देवीर्महाशक्तिर्बुधैर्मता।।

वह शक्ति साधकों के लिये महासिद्ध रूपा है जिसके द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार होता है। उसे विद्वान् लोग भगवती कुण्डलिनी महाशक्ति कहते हैं।

एवं प्रकारेण सा ब्रह्मणः शक्तिः ब्रह्मस्वरूपिणी भगवती महामाया कुण्डलिनी महायोगे प्रयुज्यते।

इस प्रकार ब्रह्मस्वरूपिणी ब्रह्म की शक्ति महायोग शास्त्र में महामाया भगवती कुण्डलिनी कही जाती है।

२-११-६२ प्रातःकाल ।।२०।।

सा शक्तिः कुण्डलिनी भगवती ज्ञेया। कुत्र तत्पातः ?

उस भगवती कुण्डलिनी शक्ति को जानना चाहिये। उसका संचार कहाँ होता है ?

साधकेषु च तत्पातः तेषां शक्तिविबोधनम् ।

चालनं स्फुरणं वापि प्राणोत्थानं च जायते।।

उस शक्ति का संचार साधक शिष्यों में होता है और तब उनकी शक्ति का उद्बोधन होता है। उस शक्ति का चालन, स्फुरण होता है और साधक के प्राणों का उत्थान होने लगता है।

यदा च साधके सानुकूलत्वमुपजायते, समर्थगुरोरनुग्रहोपलभ्यते तदा शिष्येषु तेषु साधकेषु गुरूः स्वयं शक्तिपातं करोति। स्वशक्त्या शिष्यस्य सुप्तां प्राणशक्तिं कुण्डलिनीं वा जागृतां करोति। गुरोः शक्तिं सम्प्राप्य साधकस्य शिष्यस्य शक्तिः ज्ञानवती क्रियावती च भवति।

जब साधक में सानुकूलता उत्पन्न होती है और समर्थ गुरू का अनुग्रह भी प्राप्त होता है तब उन साधक शिष्यों में गुरू स्वयं ही शक्तिपात कर देता है। अपनी शक्ति से शिष्य की सुप्ता कुण्डलिनी को एवं प्राण शक्ति को जगा देता है। गुरू की शक्ति प्राप्त करके साधक शिष्य की शक्ति ज्ञानवती एवं क्रियावती होने लगती है।

सम्प्राप्ते च क्रियायोगे नाना कार्यवती सती।

सा शक्तिःजृम्भते चोर्ध्वं तस्माद् योगः प्रसिद्ध्यति।।

क्रियायोग के प्राप्त होने पर नाना प्रकार की आसान मुद्रादि क्रियाओं को कराती हुई वह शक्ति उर्ध्वगमन के लिऐ छटपटाती है और उसी से योग की सिद्धि होती है।

साधकाः अनुगृहीताः शिष्या एव सन्ति।

अनुगृहीत शिष्यों को ही साधक कहा जाता है।

पातात् जागृतेरपि भवन्ति लक्षणानि ।।३।।

शक्तिपात से शक्ति के जागरण होने के लक्षण भी दीखते हैं।

यथा – उष्णत्वं कम्पनं स्वेदं रोमाञ्चं जायते यदा।

अश्रूणां पतनं वापि प्रथमं लक्षणं विदुः।।

शरीर में ऊष्णता की प्रतीति, कम्पन होना, पसीना आना और आँसू आना आदि शक्तिपात के प्रथम लक्षण होते हैं।

श्वासप्रश्वासविच्छेदः अंगानां चालनं क्वचित् ।

क्वचित् पश्वादिनादं च द्वितीयं लक्षणं विदुः।।

श्वास प्रश्वास का विच्छेद होना, कभी कभी अंगों का भाँति भाँति से संचालित होना और कहीं कहीं सिंह, कुत्ता, सियार आदि पशुओं की जैसी आवाज निकलना यह द्वितीय प्रकार के लक्षण होते हैं।

आनन्दः परमः शश्वद् अन्तरे चानुभूयते।

प्रबोधश्चपि सर्वं तत् तृतीयं लक्षणं शुभम् ।।

एकाएक भीतर परम आनन्द की अनुभूति होना, और एकाएक ज्ञान का उदय होना, यह शुभकारक तृतीय लक्षण हैं।

एवं लक्षणबाहुल्यं वर्तते शक्तिजागृतौ।

संस्कारैः शक्ति भेदैश्च भिन्नं भिन्नं प्रजायते।।

इस प्रकार शक्ति के जागने पर नाना प्रकार के लक्षण दिखाई पड़ते हैं। ये लक्षण शक्ति के भेद से और शिष्य के संस्कारों के भेद से भिन्न प्रकार के शिष्यों में भिन्न-भिन्न दिखाई पड़ते हैं।

लक्षणानि न प्रोक्तानि असंख्यानि पराणि च।

समये समये शक्तिः स्वयमेव प्रकाशयेत् ।।

लक्षण तो असंख्य प्रकार के होते है जिन्हें शक्ति स्वयं समय समय पर प्रकट करती रहती है।

एवं लक्षण दर्शनानुमानेनापि च ज्ञेयं यत् शक्तिः कुण्डलिनी महामाया क्रियावती भूत्वा जागृति गतेति।।

इस प्रकार के लक्षणों के प्रकट होने पर अनुमान कर लेना चाहिये कि महामाया भगवती कुण्डलिनी शक्ति अब जागृति को प्राप्त हो गई है।

लक्षणैर्जागृतिबोधः ।।४।।

लक्षणों के द्वारा शक्ति के जागरण होने का बोध होता है।

मन्त्रबीजाक्षरा देवी विशुद्धा च सरस्वती।

कण्ठदेशं समायाता तन्निदेशाद् वहाम्यहम् ।।

मन्त्र बीजाक्षर स्वरूपिणी सत्वगुण प्रधाना विशुद्धा भगवती सरस्वती मेरे कण्ठ में विराजमान हो गयी है और मैं उसी की आज्ञा से बोलता हूं।

पूर्वं शंकितमासीद् यत केनोपायेन तद्भवेत्, अर्थात् शक्तिपातस्य के उपायाः? केन प्रकारेण च शक्तिपातः भवति, तदुच्यते।

पहिले शंका की गई थी कि शक्तिपात किस प्रकार होता है ? अर्थात् शक्तिपात का क्या उपाय है, किस प्रकार शक्तिपात होता है, वही बताया जाता है।

सानुग्रहो यदा एव परः स गुरूशिष्ययोः।

सानुकूलस्य भावेन शक्तिपातस्तदा भवेत्.।।

वह "पर" शिव गुरू और शिष्य दोनों के लिये अनुग्रह पूर्ण होता है और गुरू एवं शिष्य दोनों की परस्पर भावों में अनुकूलता आती है तब शक्तिपात हो जाता है।

शक्तिपातस्तदनुग्रहेण सानुकूलयोः गुरू शिष्ययोः इत्यपि उक्तम् । भवति च शक्तिपातस्य क्रम, उपायः प्रकारः।

साक्षात् शिव शक्ति के अनुग्रह और शक्तिसम्पन्न गुरू और शिष्य की सानुकूलता से शक्तिपात होता है यह कहा जा चुका है। शक्तिपात का क्रम, उपाय और प्रकार भी होता है।

तत्पातस्य प्रकारत्रयम् ।।५।।

उस शक्तिपात के तीन प्रकार हैं।

दर्शनात् स्पर्शनाच्चैव भाषणाद् सद्गुरोरपि।

शक्तिपातस्त्रिभिः रूपैः क्रियते शक्तिदेशिकैः।।

सद्गुरू अपने शिष्य को दर्शन से, स्पर्श करके और सम्भाषण करके तीन प्रकार से शक्तिपात किया करता है।

प्रथमः- यः जागृतकुण्डलीकः समर्थगुरूर्भवति स एव जागृतां शक्ति दर्शनादेव शिष्यदेहे पातयति, अर्थात् स्पृष्ट्वा तस्य सुप्तां भुजगीं संचालयति प्रबोधयति। तच्छक्तिं च क्रियान्वितां कारयति। स्वनाभिदेशात् स्वशक्तिमादाय नेत्राभ्यां धारारूपेण तत्र संचारयति। येन संचारेण शिष्य - साधकस्य कुण्डलिनी शक्तिः क्रियावती भवति।

प्रथमः- जिस गुरू की कुण्डलिनी शक्ति स्वयं जागृत है वह समर्थ गुरू ही अपनी जागृता शक्ति को शिष्य देह में पात करता है। अर्थात् शिष्य की सुप्ता कुण्डलिनी (भुजंगी) को संचालित करके प्रबुद्ध कर देता है। शिष्य की शक्ति को क्रियाशीला कर देता है। अपने नाभि देश से अपनी शक्ति अपने नेत्रों में धारण करके फिर धारा रूप से उसे शिष्य के देह में संचारित करता है जिसके संचार से साधक शिष्य की कुण्डलिनी शक्ति क्रियावती हो जाती है।

नाभिदेशात् समाकृष्य शक्तिमादाय नेत्रयोः।

पुनस्ताभ्यां स्वयं शक्तः पातयेत् शिष्यदेहके।।

समर्थ गुरू को चाहिये कि पहिले वह अपनी नाभि देश से कुण्डलिनी शक्ति को उठाकर अपने नेत्र में धारण करें और फिर शक्ति सम्पन्न होकर उसे शिष्य के शरीर में संचारित कर दे।

धारा रूपेण या शक्तिः जागृता तत्र गच्छति।

तदा शिष्य शरीरे च प्रवेशं याति सा ध्रुवम् ।।

जो शक्ति धारा रूप से जागृत हुई शिष्य के शरीर में पहुंचती है वह अवश्य ही शिष्य देह में प्रवेश कर जाती है।

अतएव शास्त्रे समर्थगुरोः भावितात्मनः निर्देशोऽपि विहितोऽस्ति। कथितं च।

इसीलिये शास्त्र में भावितात्मा समर्थ गुरू के लिये निर्देश भी किया गया है। कहा भी है किः-

गुः शब्दः अन्धकारः स्यात् रू शब्द स्तन्निरोधकः।

अन्धकार निरोधत्त्वात् स गुरुः प्रोच्यते बुधैः।।

गु शब्द अन्धकार का वाचक है और रू का अर्थ निरोध करना है। अन्धकार का निरोध करने के कारण विद्वान् लोग उसे गुरु कहा करते हैं।

अतएव - अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया।

चक्षुरून्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः।।

जिस गुरू ने ज्ञान रूपी शलाका द्वारा अज्ञान रूपी अन्धकार से अन्धे हुए शिष्य के चक्षु खोल डाले हैं उन सद्गुरू महाराज को मेरा नमस्कार है।

इत्यनेन समर्थगुरूशक्ते पुष्टिर्भवति। एवमनेन प्रकारेण स शक्तः भावितात्मा गुरूः स्वशिष्ये शक्तिपातं करोति।

इन वचनों द्वारा समर्थ गुरू की शक्ति की पुष्टि होती है और इस भाँति वह भावितात्मा (अनुभवी) गुरू ही शिष्य में शक्तिपात कर सकता है।

शक्तिस्तु सर्वजन्तूना देहे सुप्ताऽवतिष्ठति।

दर्शनाद् बोधयेद् यस्तां स समर्थः गुरू स्मृतः।।

शक्ति तो सभी प्राणियों के शरीर में सोई हुई विद्यमान रहती है। देखने मात्र से जो उसे जगा दे उसे समर्थ गुरू कहते हैं।

पुनश्च स्पर्शनात् कथितं च।

फिर स्पर्श से भी शक्तिपात किया जाता है कहा भी हैः-

यत् स्थानं भ्रुवयोर्मध्ये त्रिपुटी कथ्यते बुधैः।

मन्त्रपीठं महाबोधं तद्धे स्पृशति सद्गुरूः।।

दोनों भौंहों के बीच में जो स्थान है उसे ज्ञानी जन त्रिपुटी कहते हैं। वह महाबोध का स्थान है और मन्त्रपीठ भी है। उसे सद्गुरू स्पर्श करते हैं।

तत्र स्पर्शनमात्राद्धि सुप्ता शक्तिस्तु शाम्भवी।

आधारे सुष्मणा सार्धं तदैव स्फुरतां ब्रजेत् ।।

उस त्रिपुटी के स्पर्श मात्र से सोई हुई शाम्भवी शक्ति मूलाधार में सुषुम्णा मार्ग से भीतर कम्पित होने लगती है।

गुरोः अंगुष्ठाग्रभागमात्रस्पर्शनात् त्रिपुट्यां शक्तिसंचरणं जायते, सुषुम्णामार्गेण तद्गत्वा आधारे प्रसुप्तां तत्कुंडलिनीं संक्षोभयति । तत्संक्षोभेण तस्यां स्फुरणं जायते। येन सा जागृता भवति। उद्बोधनाच्च ऊर्ध्वगमनाय च चेष्टते। तदा बोध्यं यत् शक्तिपातः समर्थो जातः।

त्रिपुटी में गुरू द्वारा हाथ के अंगुष्ठ के अग्रभाग के स्पर्श से शक्तिसंचार हो जाता है। त्रिपुटी द्वारा प्रविष्ट हुई वह शक्ति सुषुम्णा मार्ग से मूलाधार में जाकर सुप्ता कुण्डलिनी को क्षोभित कर देती है। गुरू की शक्ति के संयोग से उसमें स्फुरण होने लगता है जिससे वह

जाग जाती है और ऊर्ध्वगमन के लिये सचेष्ट होती है। तब समझना चाहिये कि शक्तिपात पूर्ण सम्पन्न हुआ है।

शम्भोः या शाम्भवी शक्तिः तं प्राप्तुं चेष्टते यदा।

तदा नाना क्रियाः सद्यो जायन्ते साधके शुभाः।।

शिव की शाम्भवी शक्ति जब शिव से मिलने की चेष्टा करती है तब नाना प्रकार की शीघ्र सुन्दर क्रियायें साधक के शरीर में होने लगती हैं।

तदा शक्तिः स्वयं सिद्धा मन्त्रसृष्टिं नवां नवाम् ।

करोति साधकस्यार्थे स्वयं चैतन्य रूपिणी।।

तब स्वयं सिद्धा शक्ति नाना प्रकार की स्वयं मन्त्र सृष्टि करने लगती है। वह शक्ति स्वयं चैतन्यरूपिणी है और साधक का सर्वथा कल्याण करने को प्रवृत्त रहती है।

स्पर्शनादपि गुरोः समर्था शक्तिः शिष्यदेहे प्रविष्टा भवति। अत-एवोच्यते।

गुरू की समर्थ शक्ति स्पर्श द्वारा भी शिष्य के देह में प्रविष्ट हो जाती है। अतएव कहा जाता है।

सुप्ता कुण्डलिनी देवी स्पर्शनादेवजागृता।

तस्मात् स्पर्शनकारेण दीक्षां कुर्यात् क्वचिद्बुधः।।

गुरू के स्पर्शमात्र से ही सुप्ता कुण्डलिनी जागृत हो जाती है। इसलिये सद्गुरू को चाहिए कि वह स्पर्श द्वारा दीक्षा करें।

भाषणाद् मन्त्ररूपेण क्रियते यच्च साधके।

मन्त्रमुच्चार्य तस्मै तत् प्रददाति क्वचिद् गुरूः।।

साधक शिष्य को मन्त्र बोल कर जो सुनाया जाता है वह भाषण द्वारा शक्तिपात है। इसीलिये कभी कभी सद्गुरू मन्त्र उच्चारण करके शिष्य में शक्तिपात किया करते हैं।

सिद्धं चैतत् मन्त्रं चिच्छक्तिसमन्वितं मन्त्रमुच्चार्य गुरूः तन्मुखेनापि समुच्चारयति। तस्माद् हि तस्मिन्नपि शक्तिपातः शक्तिसंचरणं भवति। तदापि तत्प्रभावेण जागृतिमागच्छति भगवती कुण्डलिनी महाशक्तिः पुनरेवं प्रकारेण दीक्षाविधिः इति वदन्ति योगविदः। अपरं च क्वचित् समर्थः गुरूः दूरस्थं साधकं संकल्पप्रयोगेणापि दीक्षितं करोति। संकल्पेनैव तत्र शक्तिसंपातं करोतीति। केनोपायेन तद्भवेदिति व्याख्यातम् ।

शक्ति समन्वित उस चैतन्ययुक्त सिद्धमन्त्र का उच्चारण सद्गुरू करते हैं। और शिष्य के मुख से भी करवाते हैं, उससे भी शिष्य में शक्तिपात हो जाता है। मन्त्र प्रभाव से भी भगवती महामाया कुण्डलिनी शक्ति जाग जाती है। योगज्ञ गुरू लोग मन्त्र द्वारा भी दीक्षा का विधान करते हैं।

शक्तिपात का एक अन्य प्रकार भी है। कभी कभी समर्थ गुरू दूर देश में रहने वाले साधक को केवल अपने संकल्प के द्वारा भी दीक्षित करके शक्तिपात कर देते हैं। किस उपाय से शक्तिपात होता है इसकी व्याख्या कर दी गई है।

३-११-६२ प्रातः ।।२२।।

किमर्थं कोऽर्थलाभश्च इति शंकायामुच्यते। अस्ति शक्तिपातस्यापि प्रयोजनम् । बिना प्रयोजनेनात्र किंचिदपि कार्यं न विद्यते। शक्ति जागरणार्थैव शक्तिपातो भवति, इति मूलं प्रयोजनम् ।

शक्तिपात से क्या लाभ है, क्या प्रयोजन है इस शंका पर उत्तर यह है कि शक्तिपात का भी कुछ प्रयोजन अवश्य है। बिना किसी प्रयोजन के इस शक्तिपात मार्ग में कोई कार्य नहीं होता है। शक्ति के जागरण के लिये ही शक्तिपात होता है बस यही एक मुख्य प्रयोजन है।

आसनाभ्यसनं लक्ष्यं प्राणायामं द्वितीयकम् ।

मलसंशोधनं नाडिचक्रे चक्रविभेदनम् ।।

शक्तिपात का प्रयोजन या लाभ प्रथम आसनों का अभ्यास, प्राणायामों का अभ्यास, नाडीजाल में मलसंचय को संशोधित करना और चक्रों का विभेदन करना आदि प्रथम लक्ष्य है।

शम्भोर्वियुक्ता या शक्तिः शाम्भवी दिव्यरूपिणी।

तत्संयोगः परं लक्ष्यं परब्रह्मणि लीनता।।

भगवान् शिव से वियुक्त हुई दिव्य रूपिणी शाम्भवी शक्ति का पुनः शिव के साथ संयोग कराकर परब्रह्म में लीन हो जाना ही सर्व श्रेष्ठ शक्तिपात है।

शम्भुर्वसति कैलासे मूलाधारे शिवा वसेत् ।

तस्यास्तत्र गतिं कृत्वा तत्संयोगः प्रयोजनम् ।।

भगवान् शिव कैलाश में निवास करते हैं और मूलाधार में भगवती भवानी शक्ति निवास करती हैं। उसी शक्ति की गति शिव तक करवाकर उन दोनों का परस्पर संयोग करना ही प्रयोजन है।

यावत् शिवो वियुक्तश्च शिवया नैव संगतः।

तावन्न जायते सिद्धिः तस्मात् तौ योजयेद् बुधः।।

जब तक शिव अपनी शक्ति से वियुक्त है और अपनी शक्ति शिवा से नहीं मिलते हैं तब तक सिद्धि प्राप्त नहीं होती है। अतः बुद्धिमान् को चाहिये कि उन दोनों का संगम करवा लें।

तयोर्योगेन योगस्य मार्गः क्षेम करो भवेत्।

तस्मात्तत्रैव संयत्नः विधेयः साधकैः सदा।।

उन दोनों के परस्पर संयोग से ही योग का मार्ग श्रेयस्कर बनता है। इसलिये साधकों को चाहिये कि सदा शिव शक्ति के पारस्परिक संयोग के लिये ही प्रयत्न में लगे रहें।

एतदपि सुमहत् प्रयोजनं वर्तते। अन्यान्यपि दृष्टान्यदृष्टानि बहुविधानि प्रयोजनानि सन्ति। यानि प्रयोजने जाते सति स्वयं भगवती मायाशक्तिः कुण्डलिनी स्वयं प्रकाशयति। सर्वे तानि ज्ञातुमपि न शक्नुवन्ति।

यह भी एक बड़ा प्रयोजन है। और बहुत से अन्यान्य दृष्ट अदृष्ट प्रयोजन भी हैं जिन्हें आवश्यकता पड़ने पर भगवती महामाया कुण्डलिनी शक्ति स्वयं प्रकाशित करती रहती है। सब कोई उन्हें जान नहीं सकते।

प्रयोजनं विना स्रष्टुः सृष्टिर्नैव च दृश्यते।

प्रत्यक्षं छन्नरूपं वा तत्र लक्ष्यं ध्रुवं स्मृतम्।।

स्रष्टा की सृष्टि में निष्प्रयोजन कोई भी वस्तु नहीं दीखती है। वह प्रयोजन कभी साक्षात् दृष्ट होता है और कहीं कहीं पर छिपा रहता है।

कथितं च शास्त्रेः- प्रयोजन मनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते इति।

शास्त्र में कहा भी है कि प्रयोजन के बिना कोई मूर्ख से मूर्ख व्यक्ति भी किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता है।

तस्मात् शक्तिपातस्यापि अस्ति प्रयोजनम्। येन प्रयोजनं विना निष्फलाः यौगिकाः क्रियाः।

इसलिये शक्तिपात का भी प्रयोजन है जिसके बिना योग की सभी क्रियायें निष्फल हैं।

कोऽर्थलाभश्चः- अर्थलाभस्तु ऐहिकी पारमार्थिकी सिद्धिः। ब्रह्मण ज्ञानं तद्दर्शनं कृत्वा तस्मिन्नेव लीनता। देहसिद्धिः अपरसिद्धिश्च एवं महायोगसिद्धिः परमोलाभः।

लाभ क्या है ? इहलौकिक और पारलौकिक सिद्धि है। ब्रह्म का ज्ञान करना, उसके दर्शन करके उसी में लीन हो जाना यह प्रयोजन है। देह की सिद्धि होना और अन्यान्य सिद्धि होना तथा महायोग की सिद्धि होना सबसे बड़ा लाभ है।

तस्मान्महायोगसिद्धिः ।।६।।

शक्तिपात से महायोग की सिद्धि होती है।

अस्मिन् शक्तिपातमार्गेदीक्षितः कश्चिदपि तदा योगसि[illegible] समर्थो भवति। राजहठमन्त्रलयादि योगपद्धतयः अस्मिन् महायोगे स्वयमेव सिद्धाः भवन्ति।

इस शक्तिपात मार्ग में दीक्षित कोई भी व्यक्ति तब महायोग की सिद्धि प्राप्त करने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। राजयोग, हठयोग, लययोग, मन्त्रयोग आदि योग की विभिन्न पद्धतियाँ इसी महायोग में स्वयं सिद्ध हो जाती हैं।

अयमेवार्थलाभः यत् परमानन्दप्राप्तिः, तत्सुखनुभूतिः तदेवावस्थितिरिति।

परमानन्द की प्राप्ति होना, परतत्त्व की सुखानुभूति होना, और उसी में अवस्थिति होना यही शक्तिपात का अर्थ लाभ है।

अर्थलाभस्य अनेके भेदाः सन्ति।

अर्थलाभ के अनेकों भेद हैं।

महायोगस्य संसिद्धिः ऐहिकी पारमार्थिकी।
जायते शक्तिपातेन शक्तिजागृतिसम्भवा।।

ऐहिकी और पारमार्थिकी महायोग की सिद्धि होना स्वरूपफलप्राप्तिशक्तिपात के द्वारा कुण्डलिनी शक्ति की जागृति से ही होती है।

अयमेवार्थलाभश्च शक्तिपातस्य वर्त्मनि।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तत्प्राप्तिकामुको भवेत्।।

शक्तिपात के मार्ग में यही फल प्राप्ति है। इसलिये सर्व प्रकार के प्रयत्नों द्वारा शक्तिपात दीक्षा की इच्छा करनी चाहिये।

३-११-६२ सायम् ।।२३।।

तज्जागृतौ भेदयोग्यता ।।७।।

शक्ति की जागृति होने पर चक्रभेदन की योग्यता प्राप्त होती है।

यदा शक्तिः जागृता भवति तदा तस्यां भेदनयोग्यता समायाति, सा च प्रबलतमा सती क्रियावती जायते।

जब शक्ति जागृत होती है तब उसमें चक्रभेदन की योग्यता आ जाती है। वह शक्ति प्रबलतम होकर क्रियावती हो जाती है।

ननु भेदयोग्यता या प्रोक्ता तदा तत्र किं भवति ? इत्युच्यते।

प्रश्न है कि जो भेदन योग्यता बताई गई है, उसमें तब क्या होता है। इस पर कहते हैं कि:-

यावन्मार्गं निरुद्धं स्यात्तावन्नैव गतिर्भवेत् ।

जब तक मार्ग निरूद्ध रहता है तबतक शक्ति में गति नहीं आ पाती है।

कथं भेदो भवेत् शक्त्या मलविध्वंसनं कथम् ।

कथं वा गतिमाप्नोति सर्वं तद् ब्रूहि मे शुभे।।

चक्रों का भेदन शक्ति द्वारा किस प्रकार होता है, मल का नाश किस प्रकार होता है और शक्ति गतिमत्ता कैसे प्राप्त करती है, हे मंगलमयी माँ ! यह सब मुझे बताओ।

कस्य सा भेदनं कृत्वा मलंकस्यापसारयेत् ।

कथं चोर्ध्वं समायाति कारणं किमु तत्र तत् ।।

वह शक्ति किसका भेदन करती है, किसका मल अपसरण करती है और किस प्रकार ऊपर चढ़ती है और इन सबका क्या कारण है।

अस्तुः- यदा सा शक्तिः जागृता सती ऊर्ध्वगमनाय चेष्टते, शिवस्य या शिवा शक्तिः शिवसंगमनाय ऊर्ध्वगामिनी भवति, तदा स्वकीयं मार्गं परिष्करोति। मार्गावरोधमपसार्य सा तदा तत्र गन्तुं प्रभवति। अतः सा स्वयमेव तदर्थं प्राणायाम-परायणा दृश्यते। प्राणायामेन सा नाडीशुद्धिं विधाय तद्बलेनोद्दीपिता भवति। तदा प्राणायामं कारयित्वा चक्रभेदनायग्रन्थिच्छेदनाय यतते।

तो सुनो ! जब वह शक्ति जागृत होकर ऊर्ध्वगमन के लिये चेष्टा करती है, शिव की वह शिवा शक्ति शिव से मिलने के लिये ऊर्ध्वगामिनी होती है तब अपने मार्ग का परिष्कार करती है। मार्ग की रूकावटों को हटाकर ही वह शिव तक पहुंचने में समर्थ होती है। इसलिये वह स्वयं ही मार्ग साफ करने को प्राणायाम करने में प्रवृत्त होती है। प्राणायाम के द्वारा नाड़ीशुद्धि करके उसके प्रभाव से वह उद्दीपित होती है। प्राणायाम करवाती हुई वह चक्रभेदन के लिये और ग्रन्थिच्छेदन के लिये प्रयत्न करती है।

प्राणायामपरायणा भगवती शक्तिः स्वयं शाम्भवी

उद्दीप्ता मलध्वंसनं प्रतिक्षणं नाडीगतं कुर्वती।

प्राणांश्चोर्ध्वमुखान् विधाय संततं भावाकुलाकुण्डली

युक्ता प्राणवती शिवेन भवितुं सा भेदयोग्या भवेत् ।।

वह भगवती शाम्भवी शक्ति प्राणायाम में परायण होती हुई प्रतिक्षण उद्दीप्त होकर शरीर की नाड़ियों में भरे हुए मलों को नष्ट करती हुई, प्राणों को ऊर्ध्वमुख करती हुई निरन्तर भावाकुल होकर बलवती होकर अपने प्रिय शिव से संगम करने के लिये चक्रभेदन के योग्य बन जाती है।

एवं प्रकारेण सा स्वमार्गं संशोधनाय क्रियावती भवति।

इस प्रकार वह अपने मार्ग का संशोधन करके कियावती हो जाती है।

४-११-६२ प्रातः ।। २४।।

सा च प्राणायाम साध्या ।।८।।

वह शक्ति प्राणायाम साध्या है। प्राणायाम से बलवती होती है।

पूर्वं कथितं यत् सा शक्तिः स्वयमेव प्राणायामं कारयित्वा प्रथमं मलसंशोधनाय प्रभवति। तदा च प्राणायामेन सह शारीरिकीं मानसिकीं प्राणात्मिकां च क्रियां विधाय स्वमार्गाविष्कारं करोति।

पहिले कहा गया है कि यह शक्ति स्वयं प्राणायाम करवाकर पहिले मलशोधन के लिये प्रवृत्त होती है। तब प्राणायाम के साथ शारीरिकी मानसिकी और प्राणसम्बन्धी अनेकों क्रियायें कराती हुई अपने लिये मार्ग बनाती है।

यतः- प्राणायामैर्विनानाडीशोधनं न भवेत् क्वचित् ।

तदर्थं चेष्टते सद्यः सा देवी परमेश्वरी।।

प्राणायाम के बिना नाड़ी शोधन कभी नहीं हो सकता है। इसलिये वह परमेश्वरी शक्ति निरंतर प्राणायाम करवाकर उसके लिये चेष्टा करती है।

यथा लौहकारः समलं लौहं वह्नौ प्रक्षिप्य भस्त्रां ध्मानि मलनाशं च करोति, तद्वत् सापि जागृता शक्तिः प्राणायामैः भस्त्रादिभिः नाडीनां मलविध्वंसनं करोति। मलविध्वंसनेन तस्याः गतिः सर्वत्र सुगमेति सत्यम्।

जिस प्रकार लोहार मैले लोहे को आग में डालकर धौंकनी धौंकता है और लोहे का मल साफ कर देता है उसी भाँति जागृता कुण्डलिनी शक्ति भस्त्रादि अनेकों प्राणायामों द्वारा नाडियों का मल नाश करती है। मल विध्वंसन हो जाने पर कुण्डलिनी की शक्ति सर्वत्र सुगम हो जाती है, यह सत्य है।

शास्त्रेऽपि कथितमस्ति "ध्मायन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि मलामलाः" इति।

शास्त्र में भी कहा गया है कि धौंकनी से धौंके गये धातुओं के मल जिस प्रकार साफ किये जाते हैं। इत्यादि।

प्राणाधीनं मनः। तदा प्राणायामे कृते सति मनोऽपि स्थिरत्वमायाति। तदा सा महामाया कुण्डलिनी शक्तिः सुषुम्णा द्वारेण गतिं करोति। मूलाधारे कम्पवती सती पूर्वं मूलाधारमेव शोधयति। यतः-

मन प्राणायाम के अधीन है। प्राणायाम करने पर मन स्थिरता को प्राप्त हो जाता है। तब वह महामाया कुण्डलिनी शक्ति सुषुम्णा द्वार से गति करती है। मूलाधार में कम्पन करती हुई वह पहिले मूलाधार का ही शोधन करती है। क्योंकि :-

आधारः सर्वशक्तीनां स्थितिकारणमुच्यते।
विरुद्धाश्च विलुप्ताश्च शक्तयस्तत्रपीठके।।

समस्त शक्तियों की स्थिति का कारणभूत मूलाधार चक्र आधार स्वरूप है उसी पीठ में सभी शक्तियाँ निरुद्ध रहती हैं और छिपी रहती हैं।

प्राणायामैः स्वयमेव विक्षुब्धास्ताः विचलिताः भवन्ति। येन तस्यां अग्निवर्णता राजते। तत्र च सा पृथिवीपीठं जेतुं यतते।

वे शक्तियाँ प्राणायाम से स्वयमेव विक्षुब्ध होकर विचलित होती हैं जिससे उसमें अग्नि के समान वर्ण दीखता है। वहाँ पर वह शक्ति पृथ्वीपीठ को जय करने का यत्न करती है।

कम्पात् पीठात् प्रधावति।

कम्प के कारण उस पीठ से दौड़ती है।

कदाचित्त्वरया यातं क्वचिच्चैव शनैः शनैः।
क्वचित्कृत्वा महानादं जायते मार्गगामिनी।।

कभी द्रुत गति से चलती है, कभी धीरे धीरे चलती है और कभी कभी महानाद करती हुई वह शक्ति अपने मार्ग में चलती है।

४-११-६२ सायं।। २५।।

मूलाधारे स्थिता कामपीठके च सुसंस्थिता।
विजित्य पृथिवीतत्त्वं पीतवर्णा प्रजायते।।

कामपीठ के अन्तर्गत मूलाधार में संस्थित हुई वह शक्ति पृथ्वी तत्त्व का जय करने पर पीत वर्ण की दीखती है।

पीत वर्णयदा देवी स्ववर्णे परिवर्तयेत् ।
तदा तत्त्वजयं कृत्वा साधारा कम्पते भृशम् ।।

जब वह शक्ति देवी अपनी अग्नि वर्ण को छोड़कर पीत वर्ण में बदलती है तब वह पृथिवी तत्त्व का जय करके अत्यन्त तीव्रगति से मूलाधार सहित कम्पित होती है।

मूलाधारे स्वपीठे कामात्मके स्थितैव सा पृथिवीतत्त्वजयाय उद्यता भवति। तदा तस्यावर्णमपि स्वल्पकालाय पीतवर्णं जायते। (न कालानियमः) पुनश्च सा वर्णपरिवर्तनं कृत्वा तद्वर्णमपि स्ववर्णे समावेशयति। येन तद्विजयस्य लक्षणं जायते। तदा सा पुनः कुण्डलौ विधूनयति।

कामपीठ रूप अपने मूलाधार के पीठ में ही वह पृथ्वी तत्त्व के जय के लिये उद्यत होती है। तब उसका वर्ण भी कुछ काल के लिये (समय का नियम नहीं है) पीत वर्ण की हो जाती है और पुनः पीत वर्ण को अपने वर्ण में मिला देती है। इस लक्षण से समझना चाहिये कि वह तत्त्व जय कर रही है। फिर वह अपने दोनों कुण्डलों को कंपाती है।

इडा च पिङ्गला चैव द्वौ शक्त्यः कुण्डलौस्मृतौ।।
तौ विधूय च सा देवी सुषुम्णासंगता भवेत् ।।

इडा और पिंगला ये दो शक्ति के कुण्डल कहे गये हैं। उन दोनों का विधूनन करके वह देवी सुषुम्णा के साथ मिल जाती है।

अथवा - या च सुप्ता दशा तस्याः कुण्डल्याकार धारिणी।
कुण्डली तेन सा प्रोक्ता कुण्डलाख्या च संस्थिता।।

अथवा-शक्ति की जो सुप्तावस्था है वह कुण्डलाकार होती है। अर्थात् कुण्डलीमारे हुए सर्प की भाँति। इसीलिये उसे कुण्डलिनी कहा गया है। वह कुण्डल मारे सोई हुई रहती है।

इडायाः पिङ्गलायाः शुद्धिं प्रथमं करोति। तत्रैव ब्रह्मग्रंथि शिथिलयति। (तत्रापि नास्ति कालस्यावधारणा)।

पहिले इड़ा और पिंगला का शोधन करती है। वहीं पर ब्रह्मग्रन्थि को शिथिल करती है (यहाँ भी समय का नियम नहीं है)।

स्वल्पेन महता वापि कालेन विदधाति सा।

क्रियां भेदात्मिकां सर्वां ततो मार्गं च विन्दति।।

अल्पकाल में अथवा दीर्घकाल में कभी भी वह चक्रभेद की क्रिया करते हुए अपने मार्ग को पा लेती है।

मुक्ता च विचरत्यूर्ध्वं विधूतकल्मषा स्वयम् ।

मार्गमासाद्य कल्याणपरकं मोक्षदायकम् ।।

कल्याणकारी और मोक्षदायक मार्ग को पाकर वह शक्ति स्वयं सम्पूर्ण कालिमा मैल का शोधन करके उन्मुक्त होकर ऊपर की ओर चढ़ने लगती है।

एवं प्रकारेण तद्विचरणस्य संचरणस्य क्रमः उपलब्धो भवति। प्राप्ते क्रमे सा एकदा संचरिता पुनः सुषुप्तिं नैव गच्छति।।

इस प्रकार उसके संचरण और विचरण का क्रम मिल जाता है। एक बार क्रम या मार्ग प्राप्त हो जाने पर फिर वह कभी भी सोती नहीं है।

क्वचिन्निरूद्धा च क्वचिद्विरूद्धा क्वचित् सुबुद्धा च क्वचित् विबुद्धा।

नानाक्रियाकार्यवती च शैवी शिवस्य शक्तिः शिवमेव याति।।

वह शक्ति कभी निरूद्ध रूप में अर्थात् रूक रूक कर, कभी विरूद्ध रूप में जैसा बताया गया है उसमें उलटे रूप में, कभी तीव्र गति से जागृत होकर कभी-कभी विशेष रूप से जागकर और नाना प्रकार की क्रियायें एवं मुद्रा आदि कराती हुई शिव भगवान् की वह शक्ति अन्त में शिव के पास ही चली जाती है।

५-११-६२ प्रातःकाल।। २६।।

तदा संगमेच्छा ।।१।।

तब उस शक्ति की शिव से संगम की इच्छा होती है।

अस्तु। समर्था बलवती शक्तिः शिव संगमाय व्यग्रा भवति। तदा स्वमार्गं परिष्कुर्वती ऊर्ध्वं शिवस्थानं प्रति गतिं करोति। तथाच।

अच्छा। समर्थ और बलवती कुण्डलिनी शक्ति शिव के साथ संगम के लिये छटपटाती है। तब अपने मार्ग को साफ करती हुई ऊपर शिव के निवास की ओर गति करती है। कहा भी है:-

शिवस्य सहयोगेन विना स्थातुं न शक्यते।

तस्माद् व्यग्रा महाशक्तिस्तत्रगन्तुं प्रचेष्टते।।

शिव के सहयोग के बिना वह शक्ति रह नहीं सकती है, इसलिय व्यग्र होकर वह महाशक्ति शिव तक पहुंचने की चेष्टा करती है।

समाधिस्थः शिवस्तत्र रन्ध्रादुपरिसंस्थितः।

तीर्त्वाचक्रंपथं सम्यक् तत्र याति शिवा तदा।।

न वै बोधयितुं शक्ताः सहसा शिवयाऽपि सः।।

ब्रह्मरन्ध्र के ऊपर शिव समाधि में मग्न बैठे रहते है। चक्रों के मार्ग को पार करके शिवाशक्ति तब वहाँ तक पहुंचती है। वह शिवा भी सहसा समाधिस्थ शिव को एकाएक प्रबुद्ध नहीं कर सकती है।

रन्ध्रभागादुपरिस्थितः शिवः विमुक्तः समाधिस्थस्तिष्ठति। प्रबलाऽपि शिवा तत्समाधिभङ्गाय न प्रभवति। यद्यपि सा आसनध्यानप्राणायामपुष्टापि प्रबलापि वर्तते, तथापि सा शिव समाधिं विघटयितुं न शक्नोति। कुतः ? यतः:-

ब्रह्मरन्ध्र भाग के ऊपर स्थित शिव विमुक्त भाव से समाधि में मग्न रहते हैं। प्रबल शक्ति भी उनकी समाधि भंग करने में समर्थ नहीं होती है। यद्यपि वह आसन ध्यान प्राणायाम आदि से पूर्ण परिपुष्ट हो चुकी होती है, फिर भी वह भगवान् शिव की समाधि तोड़ने में समर्थ नहीं हो सकती है क्यों ? इसलिये कि:-

यदि भंगः समाधेस्तु शिवस्य सहसा भवेत् ।

तदा सर्वे च तत् प्राप्तिं कर्तुं यत्नैर्बिना सदा।

स्वयं शिवा न शक्नोति यत्कर्तुंयत्नतोऽपिवा।।

शिवार्पितं वशीकर्तुं न शक्नोति समाधिगम् ।।

यदि शिव की समाधि का भंग सहसा समाधि से हो जाया करें तो सभी लोग उसकी प्राप्ति बिना किसी प्रयास के करलें जिस काम को स्वयं शिवा शक्ति भी यत्नपूर्वक नहीं कर सकती है, उन्हें तो स्वयं शिवा भी वश में नहीं कर सकती है, क्योंकि वे समाधि में रहते हैं।

तदा तत्र कामस्यागमनं तद्दहनं च भवति।

तब वहाँ काम का आगमन होता है और उसका दहन भी हो जाता है।

तस्माद् कामदहनोद्यमः ।।१०।। रहस्यं तस्य विषये।

इसलिये काम के दहन का शिव उद्यम करते हैं। इस विषय में रहस्य है।

कामेश्वरी महामाया काममादाय वै तदा।

शिवबोधार्थमायाति तस्मात् स जागृतः शिवः।।

तब महामाया कामेश्वरी भगवती शिवा कामदेव को साथ लेकर शिव की समाधि भंग करने के लिये आती है, तब शिव जी समाधि से उठते हैं।

तृतीयं नेत्रमुद्घाट्य वह्निजालं विकीर्य च।

कामनाशाय संसक्तः सद्यः संजायते भृशम् ।।

तब शिव भगवान् तृतीयनेत्र खोलकर अग्नि की ज्वाला का प्रसार करते हैं और काम के नाश के लिये तुरन्त सन्नद्ध हो पड़ते हैं।

ततस्तन्नेत्रजो वह्निः दहनात्मस्वतेजसा।

करोति भस्मसात् कामं कामेश्वरि पुरः स्थितम्।।

तब उनके नेत्र से उठी हुई वह्नि अपने भस्मकारक तेज के द्वारा काम को कामेश्वरी शक्ति के सामने ही भस्म कर देते हैं।

यत्र कामेश्वरी कामभावं वशीकरोति। कथं स कामदाहः। कोऽत्र भेदः। किमत्र रहस्यमिति। तद् ज्ञेयम् ।

यहाँ कामेश्वरी कामभाव को वश में कर लेती है इसलिये उसे कामेश्वरी कहा जाता है। कामदाह क्यों होता है, इसमें क्या रहस्य है, इसे जानना चाहिये।

कथं कामेश्वरी कामं करोतीति वशानुगम् ।

कस्य दाहः रहस्यं किं तत् सर्वं च निवेदय।।

अब कामेश्वरी भगवती काम को वशीभूत कैसे करती है ? किसका दाह होता है ? इसका क्या रहस्य है ? यह सब मुझे बताइये।

नहि गोप्यमगोप्यं वा तस्मिन् सर्वत्र संस्थिते।

ज्ञानिनां ज्ञानबोधाय तत् प्रकाशं करोम्यहम् ।।

उस सर्वज्ञ शिव के सर्वत्र व्याप्त होने के कारण उनसे तो कुछ गोपनीय या अगोपनीय नहीं है, फिर भी ज्ञानी जिज्ञासुओं के बोध के लिये उसे मैं प्रकट करती हूं।

भगवती सरस्वती पृष्टा सती वदति यत् तत्र बहु रहस्यं विद्यते किन्तु यत्र सर्वत्रैव परप्रकाशस्य सत्ता वर्तते, तदा न किमपि रहस्यम् । पुनरपि ये न जानन्ति तेषां ज्ञानबोधाय रहस्यप्रकाशं कर्तुमपिशक्यते। तच्च करोति सा।

भगवती सरस्वती कहती हैं कि जहाँ सर्वत्र परप्रकाश की सत्ता है वहाँ तो कुछ भी रहस्य नहीं है, किन्तु जो जिज्ञासु नहीं जानते हैं उनके ज्ञान के लिये रहस्य का प्रकाश किया जा सकता है। वही वह करती है।

८-११-६२ सायंकाल ।। २७।।

कामस्य दहनं प्रोक्तं यत्तदेव वदामि ते।

दहनं द्विविधं प्रोक्तं भेदनच्छेदनात्मकम् ।।

काम का जो दहन कहा गया है उसे तुम्हें बताती हूं। कामदहन दो प्रकार का होता है। एक भेदन और दूसरा छेदन।

भेदनं चक्रजालस्य छेदनं ग्रन्थिनां च तत् ।

पश्चात् देह समुद्भूतः दाहः संजायते पुनः।।

षट् चक्रों का भेदन और ब्रह्मग्रन्थि विष्णुग्रन्थि और रूद्रग्रन्थि इन तीन ग्रन्थियों का छेदन होता है। फिर देह से उत्पन्न ऊष्मा द्वारा काम का दाह हो जाता है।

यदा महामाया भगवती शैवी शक्तिः ऊर्ध्वप्राणात्मिका कैलासं (रन्ध्रादुपरिभागे) गत्वा शिवसंगमाय व्यग्रा भवति, तदा समाधिस्थः शिवः तां न विलोकयति। सा च सहसा तत्समाधि भंक्तुं न प्रक्रमते। तदा सा कामवती अर्थात् विशिष्टभावसमन्विता कामभाव विशेष भावनां च समदाय शिवं प्रति प्रेरयति। तद्विशिष्टभाव-प्रभावेण सृष्ट्युत्पादकरूपेण तस्मिन् ईक्षणशक्तिः प्रस्फुरिता भवति। तदा समाधिं विहाय, अस्ति कश्चित् कुतोऽपि यो मामपि क्षोभयति। सः कः इति विचारयति। तदैव सः शक्तिं समायातां वीक्ष्य भग्नसमाधिकः कामभावनाशाय तद्दहनाय चेष्टते।

जब महामाया भगवती शैवी शक्ति ऊर्ध्वप्राणात्मिका रूप से कैलास (कन्द के पीछे ब्रह्मरन्ध्र के ऊपर) जाकर शिव-संगम के लिये व्यग्र होती है तब समाधिस्थ शिव उपस्थित शक्ति को नहीं देख पाते हैं। वह शक्ति भी सहसा शंकर की समाधि भंग की चेष्टा नहीं करती है। तब वह शक्ति विशिष्ट कामभाव को लेकर शिव को प्रेरित करती है। उसी विशिष्ट भाव के प्रभाव से- "एकोऽहं बहुस्याम्" रूपी सृष्टि के उत्पादन के विशेषभाव की उस शिवभाव में इच्छा शक्ति का उदय होता है। तब समाधि को छोड़कर- "कहीं कोई दूसरा भी है जो मुझे भी क्षोभित कर रहा है" इस प्रकार विचार करते हैं। तभी वे शक्ति को समीप में आई हुई देखते हैं और समाधिभंग के क्रोध से कामभाव के नाश के लिये उसे जलाने के लिये प्रवृत्त होते हैं।

कामं वीक्ष्य पुरःस्थितं च विकलां कामेश्वरीं शाम्भवीम् ।

विक्षुब्धः स्वसमाधिभङ्ग कुपितः नेत्रे समुद्घाट्य सः।।

तद्दग्धुं शिवया समागमनधीः संजायते सोऽद्यतः।

नेत्रं चैव तृतीयकं ज्वलनदं विस्मारयत्यर्थतः ।।

अपने सम्मुख उपस्थित काम और शाम्भवी कामेश्वरी को विकल देखकर अपनी समाधि भंङ्ग के क्रोध से वह शिव भगवान् अपनी आँख खोलते हैं। शिवा के साथ संगम की भावना से वे उस काम को भस्म करने के लिये उद्यम होते हैं। अग्निमय तृतीय नेत्र को नितरां विस्तीर्ण कर लेते हैं।

शिवा कामं स्ववशानुगं विधाय तत्सहाय्येन तत्र स्वात्मानं संयोजयितुकामा सर्वकार्यं कारयति। यथा च।

शिवा भगवती काम को अपने वशवर्ती बनाकर उसकी सहायता से शिव के साथ अपने को संयोजित करने की इच्छा से सब कार्य करवा देती है। जैसे-

न कामदहनात् पूर्वं शिवशक्तिसमागमः।

तदेव जागृता शक्तिः कामदा काम-रूपिणी।।

कामदहन से पूर्व शिव-शक्ति का समागम नहीं हो सकता है। कामदहन के पश्चात् ही जागृता भगवती कुण्डलिनी शक्ति कामदा और कामरूपिणी कहलाती है, अर्थात् समस्त कामनाओं को देने वाली बनती है।

कामेश्वरी महामाया कामदा कामरूपिणी।

कामकलाहिता देवी कामाख्या कथ्यते बुधैः।।

उस देवी को ज्ञानी लोग कामेश्वरी, महामाया, कामदा, कामरूपिणी, कामकला, कामाख्या आदि कई नामों से पुकारते हैं।

सा देवी रूपकामाक्षी शिवयोगाय व्याकुला।

कामं च जागृतं कृत्वा स्वकामाय प्रजायते।।

शिव भगवान् के संयोग के लिये व्यग्र होने वाली देवी आँखों में रूप की रचना की कामना करने की इच्छा रखने वाली, कामभाव को जागृत करके अपने अर्थ की सिद्धि के लिये तत्पर होती है।

तदैव शिवे संकल्पात्मकता जायते। वैकल्यात् सृष्टेरभावः। विकल्पात् संकल्पः। ततः सविकल्पः ततश्च निर्विकल्पः। इति रहस्यम् ।

तभी शिव में संकल्प का उदय होता है। संकल्प के उदय न होने से सृष्टि नहीं हो सकती है। विकल्प से ही संकल्प का उदय होता है। तब सविकल्प अवस्था है। फिर निर्विकल्प स्थिति आती है। तात्पर्य है कि शक्ति के जागृत होने पर साधक को सविकल्प और निर्विकल्प दोनों स्थितियों का अनुभव होता है। व्यष्टि में यही सृष्टि और संहार है।

६-११-६२ प्रातः ।। २८।।

निष्काम सकामयोस्तयोः संयोगः ।। ११।।

निष्काम शिव और सकाम शक्ति इन दोनों का संयोग होता है।

हिमालये स्थितोदेवः शिवः नित्यसमाधिगः।

तद्बोधाय महाशक्तिः जायते कामरूपिणी।।

शिव भगवान् सदा हिमालय में निरन्तर समाधि में रहते हैं। कामरूपिणी महाशक्ति उनको जगाने का यत्न करती है।

यदा कामः, वासनात्मको भावः शिव सम्मुखे समायाति तदा सः स्वशरीरे एव वसन्तं पश्यति। वसन्तशब्दस्यार्थः- वसन्ति अग्निबाणाः यत्र स वसन्तः। शिव शरीरे समाधौ ये अग्निकणाः निश्चेष्टाः आसन् ते वसनयोग्याः कार्यकरणयोग्याः भवन्तीत्यर्थः।

जब काम, वासनात्मक भाव शिव के समीप आता है तब अपने शरीर में ही वह वसन्त को देखता है। वसन्त शब्द का अर्थ है- जिसमें अग्निकण निवास करते हैं। शिव के शरीर में समाधि अवस्था में जो अग्निकण निश्चेष्ट पड़े थे वे अब वसनयोग्य अर्थात् कार्य करने के योग्य हो जाते हैं।

ते सर्वे अग्निकणाः वाहकात्मिकया शक्त्या संयुक्ता एकत्र सम्भूय तृतीयनेत्रस्य रूपं धारयन्ति। तेषामेव शक्त्या स शिवः विगतसमाधिकः कामं अर्थात् वासनाजन्यभावं, अथवा अवशिष्टसंस्कारजभावं, अथवा वृत्तिनिरोधावशिष्टं रागात्मकंभावं, अथवा कामं कामनारूपात्मिकाया वृत्याः स्वभावं ज्वालयति। भस्मसात् करोति।

वे सभी अग्निकण वाहकात्मिका शक्ति में संयुक्त होकर घनीभूत हो जाते हैं और तृतीय नेत्र का रूप धारण कर लेते हैं। उन्हीं की शक्ति से वह शिव समाधि से उठ पड़ते हैं और काम को-वासना जन्यभाव को अथवा अवशिष्ट संस्कार जन्य भाव को, अथवा वृत्तिनिरोध से बचे खुचे रागात्मक भाव को अथवा कामनारूप वृत्ति के स्वभाव को जला डालता है, भस्मसात् कर देता है।

भस्मत्वे सति अवशिष्टा अपि वासनात्मकाः कामनात्मिकाः भावसंस्काराः तदा केवलं शुद्धां स्वरूपविमुग्धां शिवां स शिवः पश्यति। अर्थात् समाधिभंगात् पश्चादापि केवलं शून्यावस्थं केवलं ज्ञानमेव तत्रावतिष्ठते। येन सृष्टिनिर्माणं न जायते।

काम के भस्म होने पर शेष बचे हुए वासनात्मक, कामनात्मक भाव संस्कार ही शेष रहते हैं। तब शिव अपने शुद्ध रूप पर विमुग्ध हुई शिवा को देखते हैं। अर्थात् समाधि भंग के पश्चात् भी केवल शून्यात्मक ज्ञान ही वहाँ रहता है। जिससे सृष्टि-निर्माण नहीं हो सकता है।

कामं विशिष्ट भावसंस्कारं भस्मीभूतं विलोक्य शिवस्य च शून्यज्ञानत्वं विभाव्य पुनः साधारा शक्तिः तज्जीवनाय तस्मै विशुद्धरूपदानाय प्रार्थयति। तस्मिन् काले शिवे संकल्पो जायते। तदैव कामजाया रतिः आयाति इति। राति एकीकरोति उद्भावयति सम्मिश्रयति सपिण्डीकरोति पृथक्भूतानि तत्त्वानि पदार्थकणान् वा सा रतिः। सत् शक्तिः सदात्मिका सृष्टिकारिणी शक्तिः संकल्पमात्रेणैव सृष्टिविधायिका सच्छक्तिः प्रादुर्भवति पुनश्च।

विशिष्टभाव संस्कार रूप काम को भस्मीभूत देखकर और शिव के शून्य ज्ञानत्व भाव को समझ कर फिर वह आधारभूता शक्ति काम के पुनरूज्जीवन के लिये - उसे विशुद्धस्वरूप प्रदान करने के लिये शिव से प्रार्थना करती है। उस समय शिव में संकल्प का उदय होता है। तभी काम की भार्या रति आती है। रति का अर्थ- जो "राति" अर्थात् एकीकरण करती है, पृथक् - पृथक् हुए तत्वों का या पदार्थ कणों को उद्भावित करती है, एकत्रित करती है, सम्मिश्रित करती है, और सपिण्डित करती है उसे रति कहते हैं। सदात्मिका वह शक्ति तब सृष्टि कारिणी बनती है और संकल्पमात्र से सृष्टि करने में समर्थ उस शक्ति का प्रादुर्भाव होता है, और फिरः-

संकल्पात् जायते कामः कामः सत्शक्ति-संयुतः।
पदार्थोद्भूतचैतन्यं चिच्छक्ति याचते पुनः।।

संकल्प से काम की उत्पत्ति होती है और काम सदात्मिका शक्ति से समन्वित होता है। घनीभूत पदार्थों का चैतन्य शक्ति की अपेक्षा करती है।

ततः सृष्टेः कलानांसमुद्भवः ।।१२।।

तब सृष्टि की कलाओं का उद्भव होता है।

योगकलानां उद्बोधनं भवति।

योग सम्बन्धी कलाओं का उद्बोधन होता है।

शकलाः, प्रधानाः, अप्रधानाः, विक्षेपकाः, समाकर्षकाः कलास्तत्र जृम्भन्ति। कामविजयेनैव शक्तिसमागमः। पुनश्च कलानुभूतिः।

शकला, प्रधाना, अप्रधाना, विक्षेपक, समाकर्षक इन कलाओं का समुद्भव होता है। कामविजय से ही शक्ति का समागम शिव के साथ हो सकता है। तब फिर कलाओं की अनुभूति होती है।

कलानामावासः भवति यत्र स कैलास शिखरः। शि, ख, रः। शिवः शिवा वा यत्र खः शून्यं, तस्मात् विरतिं गतो, र रमते स शिखरः। क + ई = के। ए कै। कं शून्यं समाधिविहाय ई, ईक्षणं कृत्वा एति गतिं करोति, गच्छति क्रियाकरणाय इति। तदा च तत्र कलानां लासः विलासः भवति।

जहाँ कलाओं का आवास होता है उसे कैलास कहते हैं। शिखर का अर्थ है- शि अर्थात् शिव, ख अर्थात् शून्य, र अर्थात् रति करना। शिव शून्य समाधि को छोड़कर जहाँ शक्ति से रति करता है उसे शिखर कहते हैं। कैलास की व्याख्या ऐसी है कि क + ई = के। क अर्थात् आकाश शून्य-समाधि को छोड़कर ई अर्थात् ईक्षण करके इच्छा करके ए = एति, गति करता है गमन करता है। लास अर्थात् जब वहाँ कलाओं का लास अर्थात् विलास होता है कलाओं की सृष्टि होती है।

तदा च विन्दुरूपः शिवः शुक्रसमाकारः बीजरूपा शिवा रजः समाकारा संयोगं गच्छतः। तदा, संकल्पिकात्मिका सृष्टिर्भवति। योगसृष्टिः यत्र शिवः रमते। तदैव- "एकोऽहं बहुस्यां प्रजायेय" इति भावस्याभ्युदयो भवति। पुनश्च यदा एक एव समस्त विश्वे व्याप्तो भवति तदा सर्वं ब्रह्ममयं जगदित्यस्य वाक्यस्य भावोऽपि ज्ञातुं शक्यते। अत एव कथितं च एकोऽहं बहुस्याम्, शिवभावोदयोऽस्तु मे। तस्मादेव विज्ञेयं सर्वं ब्रह्ममयं जगत् इति।

तब विन्दु रूप शिव जो शुक्र रूप में है, बीज रूपा शक्ति जो रजो रूपिणी है वे दोनों परस्पर संयोग को प्राप्त होते हैं। तब संकल्पात्मिका सृष्टि होती है। संकल्पात्मिका सृष्टि को योग सृष्टि कहते हैं। उसी सृष्टि में शिव रमण करते हैं। तभी वहाँ उस में "मैं अकेला हूं, बहुत बनूं" इस भाव का उदय होता है। जब एक शिव ही अद्वितीय रूप में सर्वत्र व्याप्त रहते हैं तब सब कुछ ब्रह्ममय है यह ज्ञान साधक को होता है। इसलिये "सर्वब्रह्ममयं जगत्" आदि उपनिषद वाक्यों की सार्थकता होती है।

६-११-६२ सायंकाल ।। २९।।

शिवः यावत् समाधिस्थस्तावत् संकल्पवर्जितो भवति। शक्ति सहयोगेन तस्मिन् कामदाहानन्तरं संकल्पात्मकता आगच्छति। तदा स कल्याणं करोति, कैलासस्थः शिवः इत्युच्यते तदपीत्थम् ।

शिव जब तक समाधिस्थ रहते हैं तब तक वे संकल्प से रहित रहते हैं। कामदाह के अनन्तर शक्ति के संयोग से उनमें संकल्पात्मकता आती है। तब वे कल्याणकारी हो जाते हैं। शिव कैलासवासी कहे जाते हैं वह इस प्रकार हैं।

कः शब्दः ब्रह्मपरकः कः शून्यस्य च वाचकः।

कस्यार्थं सुखमत्येवं कस्य व्याख्या कृता वुधैः।।

क शब्द ब्रह्म का वाचक है और क शून्य का भी वाचक है क का अर्थ सुख भी होता है इस प्रकार विद्वानों ने "क" की व्याख्या की है।

क ब्रह्म। ब्रह्माण्डोदरवर्तीति। अथवा शून्य समाधौ च। स ईक्षणसमन्वितो भूत्वा ए एजते, कम्पते संकल्पात्मको जायते। तदा लासस्तत्र शक्तिलासयुक्तो भवति। स्वयमपि स लावण्यमयो भवति। तत्र च या रतिः सत् प्रकृतिः सापि लावण्यवती, आकर्षणवती दृश्यते। यश्च पुनः जीवितः संकल्पः सकामः सोऽपि लावण्य युक्तः सृष्टिकरणाय प्रेरयति। तदा तत्र तेषां सर्वेषां कामादीनां समन्वयः, सम्बन्धः संयुक्तिः, समापत्तिः समर्थभावः प्रादुर्भवति यद्बलेन कादि हादि विद्यानां कामविद्यानां जन्म भवति। क इ ए ल आ स ह इत्येतान्यक्षराणि मन्त्राक्षराणि भवन्ति। अनुलोमविलोमाभ्यां अक्षराणां विपर्यासात् कामविद्यामयं सर्वं मन्त्रबीजाक्षरं भवेत् ।

क = ब्रह्म, अर्थात् ब्रह्माण्डोदरवर्ती, अथवा शून्यसमाधि में वह शिव इच्छायुक्त होकर ए = एजते, कम्पित होता है, संकल्पात्मक होता है। तब वह शक्ति के नाम से युक्त होता है। स्वयं भी वह लावण्ययुक्त होता है और वहाँ जो सत्प्रकृति रूप रति है वह भी लावण्यवती आकर्षणवाली होती है, साथ ही पुनरूज्जीवित संकल्परूप काम है वह भी लावण्य युक्त होता है जो सृष्टि निर्माण की प्रेरणा देता है। तब वहाँ उन सभी का समन्वय, संयोजन, समापत्ति, समर्थभाव आदि प्रादुर्भूत होते हैं। जिसके बल से कादि हादि विद्याओं का, काम विद्याओं का जन्म होता है। क इ ए ल स ह ये मन्त्राक्षर पैदा होते हैं। अनुलोम और विलोम से अक्षरों के विपर्यास से सब मन्त्र बीजाक्षर से परिपूर्ण कामविद्यारूपी मंत्र सृष्टि होती है।

कामविद्या महाविद्या या सृष्टेः सृजनात्मिका।
शिवशक्ति समायुक्ता सैव सिद्धिप्रदा स्मृता।।

कामविद्या को महाविद्या कहा गया है जो सृष्टि की सृजनात्मिका सृष्टि है और शिव-शक्ति के समागम रूपा है वही सिद्धि देने वाली कही गई है।

शिवशक्ति समायुक्तः कामश्च ज्ञानसंगतः।
महाविद्याप्रभावेण जायते योगकारकः।।

शिव शक्ति के संयोग से युक्त और ज्ञान से समन्वित काम (संकल्प) महाविद्या के प्रभाव से योग सिद्धि कारक होता है।।

रन्ध्रात् कन्दाच्च सेतोश्च यत् स्थानं परिवर्तनम् ।

तत्र गूढं महागूढं रहस्यं गोपनीयकम् ।।

ब्रह्मरन्ध्र, कन्द और सेतु स्थान से पीछे जो भाग है उसमें गूढ़ अतिगूढ़ गोपनीय रहस्य सन्निहित है।

गोप्यं गोप्यं महद्गोप्यं शास्त्रेषु यच्चभाषितम् ।

तत् तत्रैव च द्रष्टव्यं ज्ञातव्यं चैव तत्त्वतः।।

शास्त्रों में जो तत्त्व परमगोप्य महागोप्य कहा गया है उस तत्त्व को वहीं पर जाना और देखा जा सकता है।

स्वयं शक्तिर्महादेवी रहस्यं स्वयमेव सा।

समुद्घाद्य प्रबोधाय साधकाय प्रयच्छति।।

वह महादेवी शक्ति स्वयं ही उस अतिगोप्य रहस्य को साधकों के प्रबोध के लिये खोलकर प्रदान कर देती है।

७-११-६२ प्रातः ।। ३०।।

वन्देतां त्रिपुरेश्वरीं भगवतीमासां कलानां कलाम् ।

समस्त कलाओं की अधिष्ठातृ देवी भगवती त्रिपुरेश्वरी को मैं नमस्कार करता हूं।

यदा रन्ध्रादुपरि परवर्ति भागे कामादीनां समन्वयो भवति तदा शिवः शाम्भवीं मुद्रां शक्त्यै प्रयच्छति। पुनः त्रिपुरविजयाय शिवः चेष्टते। त्रिपुरं अवस्थात्रयं, कालत्रयं, शरीरत्रयं, तेषु स्वाधिकारं करोति। तज्जेतुं कामपीठाधिष्ठितः स तमेव श्रीपीठस्वरूपेण परिवर्तयति। श्रीपीठे च श्रीविद्यायाः प्रादुर्भावो भवति। त्रिपुरविजयान्तरं सैव शक्तिः महामाया त्रिपुरा इति कथ्यते। त्रिपुरं त्रिगुणमपि ज्ञेयम् । तत् त्रैगुण्यावस्था विद्यते। तदैव समाधिः सिद्धौ यत्नो विधेयः। भगवती महामाया तदैव त्रिपुरासुन्दरीरूपमाप्नोति यदा त्रिपुर विजयो भवति।

जब रन्ध्र के ऊपर परवर्ती भाग में कामादियों का समन्वय होता है तब शिव अपनी शक्ति को शाम्भवी मुद्रा प्रदान करते हैं। फिर शिव त्रिपुर विजय के लिये उद्यत होते हैं। जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति इन अवस्थात्रय को, भूत, भविष्य, वर्तमान इन तीन कालों को, स्थूल, सूक्ष्म, कारण इन तीन शरीरों को त्रिपुर कहते हैं। इन तीनों प्रकार के त्रिपुरों में शिव अपना पूर्ण अधिकार प्राप्त करते हैं। उसे जीतने के लिये वह कामपीठ में अधिष्ठित होकर उसे श्री पीठ में परिवर्तित कर देते हैं। उस श्रीपीठ में श्रीविद्या का प्रादुर्भाव होता है। त्रिपुर विजय के अनन्तर ही वह भगवती महामाया त्रिपुरा नाम से कही जाती है। सत्व, रज, तम इन तीन गुणों को भी

त्रिपुर कहा जाता है। क्योंकि वहाँ त्रिगुणावस्था रहती है। तभी वहाँ समाधि सिद्धि के लिये प्रयास किया जाता है। भगवती महामाया तभी त्रिपुरा सुन्दरी रूप धारण करती है जब त्रिपुर का विजय हो जाता है।

तदा कलानां विकासोऽपि जायते। कलाः पञ्चदश कलाः, असत् क्षीयमाणाः। एका च कला अक्षीयमाणा भवति। इयमेव च पञ्चदशाक्षरी। अन्ते श्रीः इति संयोज्यः। या च शीर्यते। अत्र शम्भुः सदैव शक्त्या सह रमते सा श्रीः अक्षीयमाणा कलावती।

तब कलाओं का विकास होता है। कलायें १५ होती हैं जो घटती बढ़ती रहती है। एक कला कभी घटती बढ़ती नहीं है, वह नित्य एक रूप अक्षीयमाण रहती है। यही पञ्चदशाक्षरी विद्या है। अन्त में श्री जोड़ दिया जाता है। यहाँ शम्भु भगवान् सदा अपनी शक्ति के सहित रमण करते हैं इसलिये उसे श्री कहते हैं। वह अक्षीयमाणा कला ही श्री कही जाती है।

७-११-६२ सायं ।। ३१।।

श्रीपीठे श्रीविद्यायाः समुद्बोधो भवति। पञ्चदशाक्षरी षोडशाक्षरी च सा श्रीविद्या। तत्र कादि विद्या या सा काम सृष्टिपरा विद्या। सा शक्तिविद्या पञ्चकलावती विद्यते। कामकला, शिवकला, शक्तिकला, रतिकला, श्रीकला। अथवा कल्यते शक्ति सौन्दर्य प्रदीयते यया सा कला। अथवा कस्य महाप्रकाशस्य परस्य प्रकाशं आददाति गृह्णाति सा कला। या च पर प्रकाशं प्राप्य गतिशीला भवति सा कला। पञ्चकलादि कलाः त्रिगुणात्मिकाः पञ्चदशसंख्यकाः भवन्ति।

श्रीपीठ में श्री विद्या का समुद्भव होता है। वह श्री विद्या पञ्चदशाक्षरी और षोडशाक्षरी है। उसमें कादि विद्या कामसृष्टिकारिणी कामविद्या है। वह शक्ति विद्या पाँच कलाओं से युक्त है। कामकला, शिवकला, शक्तिकला, रतिकला और श्रीकला। कल्यते अर्थात् जो शक्ति सम्बन्धी सौन्दर्य प्रदान करती है उसे कला कहते हैं। अथवा क अर्थात् सूर्य महाप्रकाश "पर" का प्रकाश जो ले ले उसे कला कहते हैं। जो पर शिव के प्रकाश को ग्रहण करके गतिशील होती है उसे कला कहते हैं। उपरोक्त पाँच कलायें सत्त्व, रज तम इन तीन गुणों से गुणित होकर १५ होती हैं।

हादि शिवविद्या अपि पञ्चैव भवन्ति। ताः अपि त्रिगुणात्मिकाः पञ्चदश भवन्ति। तदेव पञ्चदशकलात्मिकाः पञ्चदश विद्याः जायन्ते। श्री सकला कला विराजते। ताः षोडशात्मिका अपि भवन्ति। पञ्च कादि विद्याः पञ्चा हादि विद्याः एवं दशमहाविद्यारूपेण प्रोच्यन्ते। कलानां विकासो ह्रासो वा आनुलोम्येन भवति। पञ्च दशाक्षरं च इत्थम् ।

हादि विद्या भी पाँच ही होती हैं। वे भी गुणत्रय से गुणित होकर पन्द्रह संख्या वाली हो जाती हैं। जब नित्या कला "श्री" उसके ऊपर जोड़ दी जाती है तो ये विद्यायें या कलायें सोलह हो जाती हैं। इसे षोडशी विद्या कहते है। पांच कादि विद्या और पाँच हादि विद्या दोनों मिलकर दश होती हैं। उन्हें ही दश महाविद्याओं का रूप दे दिया गया है। कलाओं का विकास और ह्रास क्षय - वृद्धि अनुलोम और विलोम क्रम से होता है। ये पन्द्रह अक्षर इस प्रकार हैं।

प्रथमाक्षरं समादाय पूव त्यक्त्वा द्वितीयकम् ।

तृतीयं चैव संयोज्य त्रिपुरं कथ्यते भृशम् ।

अन्तिमाक्षरपर्यन्तं इत्थं तद्योजयेद् बुधः।।

पहिले वर्णमाला का प्रथमाक्षर लेकर दूसरा अक्षर छोड़ता जाय और तृतीय अक्षर को ग्रहण करता जाय। अन्त तक यही प्रणाली रखी जाय।

कं गं चं जं टं दं पं बं इति दशः। हं सं, लं क्षं श्रीं इति पञ्चदशः। अथवा - क ख घ, च छ झ, ट ठ ढ, त थ ध, प फ भ। अल्पप्राण महाप्राण शक्तिसंयोगात् अन्ते श्री नित्या कला संयोज्या। यया सदैवानन्दस्योदयो जायते। अनेन प्रकारेण श्री विद्या मूलाक्षरं ज्ञात्वा त्रिपुरा सुन्दरी भवेत् ।

जैसे :- कं गं चं, जं, टं डं नं दं पं बं ये दस होते हैं। हं सं लं क्षं श्री ये मिलाकर पन्द्रह हो जाते हैं। अथवा- क ख घ, च छ झ, ट ठ ढ, त थ ध, प फ भ, इन अल्पप्राण- महाप्राण वर्णों में बिन्दुरूप शक्ति के संयोग से अन्त में नित्या कला रूपी श्री शब्द को जोड़ देना चाहिये, जिससे सदा आनन्द का उदय होता रहता है। इस भाँति श्रीविद्या के मूलाक्षरों के ज्ञान द्वारा त्रिपुरा सुन्दरी बनती है अर्थात् उसका मन्त्र शरीर बनता है।

तेषां स्वरूपं पीठं ज्ञात्वा तच्छक्तीनां समावेशं वा त्रिप्रकारेण करोति। ब्रह्मरूपेण, विष्णुरूपेण, रूद्ररूपेण, सृष्टिरूपेण, स्थितिरूपेण, संहाररूपेण सा भगवती त्रिपुरा विद्यते। यतः सा नित्य नित्य कलावती वर्तते अंतः सुन्दरीति विशेषणेन युज्यते।

उनके पीठ और स्वरूप का ज्ञान करके उनकी शक्तियों का समावेश तीन प्रकार से किया जाता है। ब्रह्मरूप से सृष्टि, विष्णुरूप से स्थिति और रूद्ररूप से संहार। क्योंकि वह षोडशी कला नित्या कला है अतः त्रिपुरा के साथ सुन्दरी विशेषण लगाया जाता है।

त्रिपुरं च महाभागं विविधोर्ध्वगामि तत् ।

बीजं विन्दुं च नादं च तन्मार्गं योगविद् विदुः।।

वह महनीय त्रिपुर तीन प्रकार से ऊर्ध्वगामी होता है। तीन रूप से अर्थात बीजरूप से, बिन्दुरूप से और नादरूप से। उस त्रिविध मार्ग को योग के ज्ञाता लोग जानते हैं।

मार्गत्रयं समीकृत्य या तत्र प्रबला भवेत् ।

कलाश्चाप्युन्मिता यावत् यद्वा सा त्रिपुरा भवेत् ।।

तीन मार्गों का समीकरण करके जो बलशालिनी बनती है और अपने साथ कलाओं को भी ऊर्ध्वमुखी बनाती है, उसे त्रिपुरा कहते हैं।

८-११-६२ प्रातः ।। ३२।।

पूरकं रेचकं चैव कुम्भकञ्च ततः परम् ।

त्रिपुरं योगविज्ञाने प्रवदन्ति मनीषिणः।।

पूरक, रेचक और कुम्भक इन तीनों को योगविज्ञान में विद्वान् लोग त्रिपुर कहते हैं।

तत्र कृत्वा जयं तावत् श्रीपीठे मनसः स्थिते।

बिन्दुरूपः शिवः शक्तिं प्रबुद्धां चाधिगच्छति।।

उक्त तीनों प्राणों को जय करने पर श्रीपीठ में मन के स्थिर करने पर बिन्दुरूपी शिव जागृता शक्ति को प्राप्त कर लेते हैं।

तदा च त्रिपुराधीशी शक्तिः सा सकला स्मृता।

विकला त्रिपुरारूढा सकला तद्विजित्य सा।।

तब त्रिपुराधीश्वरी वह शक्ति सकला (कला युक्त) कही जाती है। जब तीनों प्राणों में विजय नहीं किया रहता है तब उसे विकला (कला-रहित) कहते हैं, किन्तु पूरक, रेचक, कुम्भक पर विजय करने पर उसे सकला कहते हैं।

प्राणोत्थानपरा देवी त्रिपुरा त्रिपुरसुन्दरी।

प्राणों के उत्थान होने पर उस शक्ति को त्रिपुरसुन्दरी कहते हैं।

अथवा - ऐं ह्रीं क्लीं त्रिपुरं दिव्यं दिव्यैश्वर्यविभूषितम् ।

तद्विजित्य शिवःशक्तिं समाप्नोति यदा तया।।

अथवा - ऐं ह्रीं क्लीं इन तीन बीजाक्षरों को जो दिव्य ऐश्वर्य भूषित हैं, त्रिपुर कहा जाता है। इन तीन मन्त्रों की सिद्धि होने पर शिव जब अपनी शक्ति प्राप्त करते हैं तब-

सा शक्तिस्त्रिपुरा ख्याता महायोगप्रसाधिका।

ऐं ह्रीं क्लीं अत्र त्रिकं त्रिकं चाक्षरं त्रिक्रम् ।।

वह शक्ति महायोग में सिद्धि देने वाली त्रिपुरा कही जाती है। ऐं ह्रीं क्लीं इन बीज मन्त्रों में तीन बीजाक्षर हैं और प्रत्येक में तीन तीन अक्षर हैं।

नव जायन्ते। नवार्णवेऽपि तन्मन्त्रम् । नव अर्णाः अक्षराः शक्तिपूर्णाः शक्तिबीजांकुराः, त एव यदा प्रस्फुरन्ति तदा त्रिपुरा शक्तिः जागृता भवति, महासरस्वती, महालक्ष्मी महाकालिका रूपेण। सैव शक्तिः त्रिपुरेति कथ्यते।

वे अक्षर मिलकर नौ हो जाते हैं। नवार्णव में भी ये ही बीजाक्षर हैं। नौ अक्षरों को नवार्ण कहते हैं। शक्ति पूर्ण और शक्ति बीज से पूर्ण वे हो जब साधक में परिस्फुरित होते हैं, तब त्रिपुरा शक्ति जागृत हो जाती है। महासरस्वती, महालक्ष्मी और महाकाली रूप में इसी नवार्णमन्त्रशक्ति को त्रिपुरा कहते हैं।

त्रिपुराज्ञानमित्युक्तं जगत् सर्वं चराचरम् ।

इस समस्त चराचर में त्रिपुरा ओतप्रोत है। उसका ज्ञान ही त्रिपुरा का ज्ञान है।

सा च श्रीविद्या विमण्डिता। कथं सा शक्तिः श्रीसमन्विता। कथं च सा शक्तिः आदि शक्तिः। कथं च सा ध्येया। ज्ञेया वा इति नाना कल्प विकल्पं समुत्थितम् सर्वे ज्ञानिनः विमुग्धा जाताः।

वह त्रिपुरा सुन्दरी श्रीविद्या से अलंकृत है। वह शक्ति श्री से समन्वित किस प्रकार है? वह आदि शक्ति किस प्रकार है ? उसका कैसे ध्यान करना चाहिये ? कैसे उसका ज्ञान हो ? इस प्रकार नाना प्रकार के संकल्प उदित होने पर सभी ज्ञानी जन मुग्ध हो जाते हैं।

का सा विद्या सदा ज्ञेया याऽमरत्वं प्रयच्छति।

विषमं विषमादाय नियच्छति हितैषिणी।।

वह कौन सी विद्या सदा ज्ञातव्य है जो अमरता को देती है। विषय विष को खींचकर जो हितैषिणी बनकर प्रकट होती है।

यदा शंका न विच्छिन्नाः शान्तैर्दान्तैः तपस्विभिः।

तदा सरस्वती देवी स्वयं वचनमब्रवीत् ।।

तपस्या मे रत शान्त दान्त महात्मा लोग भी जब उक्त प्रश्नों का समाधान नहीं कर सके तब भगवती सरस्वती स्वयं रहस्य को बताने लगीं।

श्रीविद्या परमा विद्या योगिनां मोददायिनी।

विषस्य हरणं कृत्वा अमरत्वं प्रयच्छति।।

योगी जनों को आनन्द देने वाली श्रीविद्या ही सबसे श्रेष्ठ विद्या है जो साधक के विष का हरण करके अमरत्व प्रदान करती है।

वह महनीय त्रिपुर तीन प्रकार से ऊर्ध्वगामी होता है। तीन रूप से अर्थात बीजरूप से, बिन्दुरूप से और नादरूप से। उस त्रिविध मार्ग को योग के ज्ञाता लोग जानते हैं।

मार्गत्रयं समीकृत्य या तत्र प्रबला भवेत् ।

कलाश्चाप्युन्मिता यावत् यद्वा सा त्रिपुरा भवेत् ।।

तीन मार्गों का समीकरण करके जो बलशालिनी बनती है और अपने साथ कलाओं को भी ऊर्ध्वमुखी बनाती है, उसे त्रिपुरा कहते हैं।

८-११-६२ प्रातः ।। ३२।।

पूरकं रेचकं चैव कुम्भकञ्च ततः परम् ।

त्रिपुरं योगविज्ञाने प्रवदन्ति मनीषिणः।।

पूरक, रेचक और कुम्भक इन तीनों को योगविज्ञान में विद्वान् लोग त्रिपुर कहते हैं।

तत्र कृत्वा जयं तावत् श्रीपीठे मनसः स्थिते।

बिन्दुरूपः शिवः शक्तिं प्रबुद्धां चाधिगच्छति।।

उक्त तीनों प्राणों को जय करने पर श्रीपीठ में मन के स्थिर करने पर बिन्दुरूपी शिव जागृता शक्ति को प्राप्त कर लेते हैं।

तदा च त्रिपुराधीशी शक्तिः सा सकला स्मृता।

विकला त्रिपुरारूढा सकला तद्विजित्य सा।।

तब त्रिपुराधीश्वरी वह शक्ति सकला (कला युक्त) कही जाती है। जब तीनों प्राणों में विजय नहीं किया रहता है तब उसे विकला (कला-रहित) कहते हैं, किन्तु पूरक, रेचक, कुम्भक पर विजय करने पर उसे सकला कहते हैं।

प्राणोत्थानपरा देवी त्रिपुरा त्रिपुरसुन्दरी।

प्राणों के उत्थान होने पर उस शक्ति को त्रिपुरसुन्दरी कहते हैं।

अथवा - ऐं ह्रीं क्लीं त्रिपुरं दिव्यं दिव्यैश्वर्यविभूषितम् ।

तद्विजित्यि शिवःशक्तिं समाप्नोति यदा तया।।

अथवा - ऐं ह्रीं क्लीं इन तीन बीजाक्षरों को जो दिव्य ऐश्वर्य भूषित हैं, त्रिपुर कहा जाता है। इन तीन मन्त्रों की सिद्धि होने पर शिव जब अपनी शक्ति प्राप्त करते हैं तब-

सा शक्तिस्त्रिपुरा ख्याता महायोगप्रसाधिका।

ऐं ह्रीं क्लीं अत्र त्रिकं त्रिकं चाक्षरं त्रिक्रम् ।।

वह शक्ति महायोग में सिद्धि देने वाली त्रिपुरा कही जाती है। ऐं ह्रीं क्लीं इन बीज मन्त्रों में तीन बीजाक्षर हैं और प्रत्येक में तीन तीन अक्षर हैं।

नव जायन्ते। नवार्णवेऽपि तन्मन्त्रम् । नव अर्णाः अक्षराः शक्तिपूर्णाः शक्तिबीजांकुराः, त एव यदा प्रस्फुरन्ति तदा त्रिपुरा शक्तिः जागृता भवति, महासरस्वती, महालक्ष्मी महाकालिका रूपेण। सैव शक्तिः त्रिपुरेति कथ्यते।

वे अक्षर मिलकर नौ हो जाते हैं। नवार्णव में भी ये ही बीजाक्षर हैं। नौ अक्षरों को नवार्ण कहते हैं। शक्ति पूर्ण और शक्ति बीज से पूर्ण वे ही जब साधक में परिस्फुरित होते हैं, जब त्रिपुरा शक्ति जागृत हो जाती है। महासरस्वती, महालक्ष्मी और महाकाली रूप में इसी नवार्णमन्त्रशक्ति को त्रिपुरा कहते हैं।

त्रिपुराज्ञानमित्युक्तं जगत् सर्वं चराचरम् ।

इस समस्त चराचर में त्रिपुरा ओतप्रोत है। उसका ज्ञान ही त्रिपुरा का ज्ञान है।

सा च श्रीविद्या विमण्डिता। कथं सा शक्तिः श्रीसमन्विता। कथं च सा शक्तिः आदि शक्तिः। कथं च सा ध्येया। ज्ञेया वा इति नाना कल्प विकल्पं समुत्थितम् सर्वे ज्ञानिनः विमुग्धा जाताः।

वह त्रिपुरा सुन्दरी श्रीविद्या से अलंकृत है। वह शक्ति श्री से समन्वित किस प्रकार है? वह आदि शक्ति किस प्रकार है ? उसका कैसे ध्यान करना चाहिये ? कैसे उसका ज्ञान हो ? इस प्रकार नाना प्रकार के संकल्प उदित होने पर सभी ज्ञानी जन मुग्ध हो जाते हैं।

का सा विद्या सदा ज्ञेया याऽमरत्वं प्रयच्छति।

विषमं विषमादाय नियच्छति हितैषिणी।।

वह कौन सी विद्या सदा ज्ञातव्य है जो अमरता को देती है। विषय विष को खींचकर जो हितैषिणी बनकर प्रकट होती है।

यदा शंका न विच्छिन्नाः शान्तैर्दान्तैः तपस्विभिः।

तदा सरस्वती देवी स्वयं वचनमब्रवीत् ।।

तपस्या में रत शान्त दान्त महात्मा लोग भी जब उक्त प्रश्नों का समाधान नहीं कर सके तब भगवती सरस्वती स्वयं रहस्य को बताने लगीं।

श्रीविद्या परमा विद्या योगिनां मोददायिनी।

विषस्य हरणं कृत्वा अमरत्वं प्रयच्छति।।

योगी जनों को आनन्द देने वाली श्रीविद्या ही सबसे श्रेष्ठ विद्या है जो साधक के विष का हरण करके अमरत्व प्रदान करती है।

श्रीपीठं संस्थिता शक्तिः श्रीचक्रेण समागता।
श्रीविद्या ज्ञान सम्पन्ना कलासृष्टिं करोति सा।।

यह शक्ति श्री पीठ में संस्थित रहती है, श्रीचक्र के साथ उसका सम्बन्ध है, यह श्रीविद्या ज्ञान से पूर्ण सम्पन्न है और वही कलाओं की सृष्टि किया करती है।

कलास्ताः शीतलाः सर्वाः विषोष्माणं हरन्ति च।।

श्रीविद्या से समुद्भूत वे कलायें सभी अमृत की भाँति शीतल हैं जो साधक की विष-पूर्ण ऊष्मा को हरण कर लेती हैं।

अत एव श्रीविद्याज्ञानं तत्रैव भवति। कथं श्रीविद्या श्रीशक्तिः आविर्भवति। तत्रापि श्रीविद्या गायत्रीमन्त्रस्य पूरिका भवति। तत्र च "भर्गो देवस्य धीमही" त्यस्मिन् शक्तेः ध्यानं प्रोक्तमस्ति। रथन्तरं साम, मरूतः अश्विनी इति त्रयं गायत्र्याश्चरणत्रयम् । आनीतवन्तः। अर्थात् त एव एकैकस्य चरणस्य बोधं कृतवन्तः। तत्र च भूः भुवः स्वः इत्यस्य ऐं ह्रीं क्लीं इत्यस्य संयोगं विधाय शक्ति समासादितवन्तः। शक्तिरेव श्री विद्यारूपेण त्रिपुरा सुन्दरी रहस्यं ज्ञापयति।

इसलिये श्रीविद्या का ज्ञान वहीं पर होता है। श्रीविद्या, श्रीशक्ति सबसे आदि क्यों मानी गई है। क्योंकि श्रीविद्या गायत्री मन्त्र की पूरिका मानी गई है, "भर्गो देवस्य धीमही" इस चरण में शक्ति का ध्यान बताया गया है। रथन्तर साम, मरूद्गण और अश्विनी कुमार ये तीनों ही गायत्री का एक एक चरण लाये हैं अर्थात् उन्होंने ही गायत्री के एक एक चरण को बोध प्राप्त किया था। गायत्री के भूः भुवः स्वः इस व्याहृति में ऐं ह्रीं क्लीं इन बीजाक्षरों का संयोग करके उन्होंने शक्ति प्राप्त की थी। शक्ति ही श्रीविद्या रूप में त्रिपुरा सुन्दरी का रहस्य बताती है।

८-११-६२ सायं ।। ३३।।

ललिता बगुला तारा बाला ज्वालामुखी तथा।
कामेश्वरी महामाया लीला शाकम्भरी स्मृता।।
त्रिपुरा शक्तयस्त्वेताः सर्वसिद्धिप्रदायिकाः।।

ललिता, बगुला, तारा, बाला, ज्वालामुखी, कमेश्वरी, महामाया, नील सरस्वती, शाकम्भरी ये सब त्रिपुरा की शक्तियाँ हैं जो सभी सिद्धियों को देने वाली हैं।

अन्याश्चापि विशेषायाः तास्तु ज्ञात्वा अशेषतः।
योगी योगसमापन्नः प्राप्नोति परमां श्रियम् ।।

और भी अन्यान्य त्रिपुरा की विशेष शक्तियां है जिन्हें समग्र रूप से जान कर योगी योगसिद्धि प्राप्त करके परम शक्ति और विभूति प्राप्त कर लेता है।

किन्तु, किमनेन रहस्येन ज्ञानेन यावन्नाभ्यासः कृतः, न च तत् स्वयं अनुभूतम्, अतः-

किन्तु जब तक अभ्यास नहीं किया और स्वयं अनुभव नहीं किया तब तक इस रहस्य को जानने से क्या लाभ है। इसलिये:-

ज्ञानात् श्रेष्ठतमं ध्यानं ध्नानाद् पीठेगतिः शुभा।
तत्रैव गमनाद् योगी समाधिस्थः प्रजायते।।

ज्ञान से श्रेष्ठ ध्यान कहा गया है और ध्यान से ही शक्तिपीठ में शोभना गति होती है। उसी श्रीपीठ में पहुंचकर योगी समाधिस्थ होता है।

असौ स्वानुभूति परकः। तत्र च गन्तव्यम् । सर्वं च त्रिपुरा रहस्यं स एव जानाति यः कलाविज्ञानं जानाति। कलाविज्ञानावसरे त्रिपुरा रहस्यं सुस्पष्टं भवति।

यह स्वानुभूति का विषय है। वहीं पहुंचना है। सम्पूर्ण त्रिपुरा रहस्य को वही जानता है जो कलाओं का विज्ञान जानता है। कलाओं के विज्ञान के अवसर पर ही त्रिपुरा रहस्य सम्यक् प्रकार से स्पष्ट होता है।

ज्ञात्वापि त्रिपुरा भेदं दृष्ट्वाश्चर्यमपि महत् ।
यावन्न जायतेऽभ्यासः तावत् किं योगिना कृतम् ।।

त्रिपुरा के रहस्य को जानकर और आश्चर्यमय महान् विभूतियों को देख कर भी जब तक योगी अभ्यास नहीं करता है, तब तक सब निष्फल है।

अतः पूर्वं समभ्यस्य पश्चात् तद्रहस्यज्ञानं स्वयमेव भविष्यति, अतः अद्य प्रभृति अपरं च ज्ञानध्यानाभ्यासं बोधयामि। तिष्ठतु तावत् महादेवी भगवती शारदा, महायोगेश्वरस्य कुण्डलेश्वरस्य कथनमिदम् ।

अतः पहिले अभ्यास कर लेना चाहिये फिर उसके रहस्य का ज्ञान स्वयं ही हो जायेगा। आज से आगे अब अन्य प्रकार के ज्ञान, ध्यान और अभ्यास बताऊगी। अब महादेवी भगवती शारदा तब तक रूकी रहें। महायोगेश्वर कुण्डलेश्वर गुरू गोरक्षनाथ बाबा ने उपस्थित होकर उपर्युक्त शब्द कहे। १०-११-६२ प्रातः ।।३४।।

कुण्डलेश्वरेण सह जयपुर-काञ्चीपुर-गोरक्षपुरभ्रमणम् । तेन च गोविन्दगिरेः अभ्यास कथनम् नाभेः सप्राणायामादिक्रियाचालनम् ।

कुण्डलेश्वर श्री गोरक्षनाथ बाबा के साथ ध्यान में जयपुर काञ्चीपुर और गोरखपुर नगरों में, जहाँ जहाँ गोरखनाथ बाबा का अपना स्थान रहा था, भ्रमण किया गया। गोरखबाबा ने, गोविन्दगिरि ने जिस प्रकार योगाभ्यास किया था, उसे दिखाकर बताया। प्राणायाम सहित नाभि चलाने की क्रिया बताई। तदनन्तर चार दिन तक केवल अभ्यास ही चलता रहा।

१५-११-६२ सायं प्रातः ।।३५।।

श्री गोरक्षनाथ बाबा की वाणीः-

हट्ठड़ बैठ के पट्ठड़ हाथ। सोय कहावे सिद्धनाथ।।

१६-११-६२ सायं प्रातः।। ३६।।

प्रथम पाताल की गुफा बैठि के धमक के फेरि आकाश धावे।

नाथ की नाथ से नाथ को नाथि के

सिद्धयोगी महासिद्धि पावे।।

१७-११-६२ प्रातः सायं ।। ३७।।

केवल अभ्यास हुआ।

१८-११-६२ प्रातः सायं ।। ३८।।

शशा ऊपर बैठि सिंह गाजे।

देखि के नाथ का नाद बाजे।।

नाद का शब्द चहुं ओर राजे।

देखि के सिंह तुरन्त भाजे।।

पीन पाणि बिना आग के आग लगावे नाथ कहावे।

अलख लखावे जोग जगावे तो सो नाथ कहावे।।

सां सां हाले हां सां चाले ऐसी डोरी हाथ।

कूप गहन्ता शब्द वदन्ता सो तो जाणे नाथ।।

कूप विशन्ती कहाँ दिशन्ती डोमिन आगे आवे।

कूपहि शोधे ताहि प्रबोधे तो अमृत रस प्यावे।।

२०-११-६२ प्रातः सायं ।। ३९।।

गहन कोठरी बज्र केवाड़ा ता में लागा ताला।

ताला खोल के भीतर बैठे सो तो है गुरू आला।।

भीतर बड़ा उजाला भासे एक मणीधर आगे।

देख उजाला भीतर पैठे जब तो सर्पिणी जागे।।

कहीं न जावे कहीं न आवे पुनि अमृत रस पावे।

ना सो खट्टा ना सो मीठा जो चाखे सो जाने।।

ताला खोलने का तरीका।

पीठ को तान दे नासिका ध्यान दे।

कमल को भींच ले स्वास को खींच ले।।

नाभि को भींच ले बैठि भीतर तहाँ ज्योति पावे।

२१-११-६२ ।। ४०।।

रेचकं कुम्भकं चैव पूरकं त्रिविधात्मकम् ।

त्रिप्राणशक्तिसम्पन्नं त्रिपुरा तन्त्रिगद्यते।।

पूरक, रेचक और कुम्भक ये तीन प्राणों की शक्तियां है। योगी के लिये यही त्रिपुरा है।

प्राणेषु राजिता शक्तिः मूले नाभ्यां च कण्ठके।।

तत्रैव शक्तिमासाद्य योगी प्राप्नोति तां शुभाम् ।

मूलाधार, नाभि और कण्ठ इन तीन स्थानों में स्थित प्राणों में शक्ति निवास करती है। इन्हीं तीन स्थानों में शक्ति प्राप्त करके योगी उस कल्याणकारिणी शक्ति को प्राप्त करता है।

त्रिधार्थं त्रिगुणा चैव त्रिवृता प्राणरूपिणी।

त्रैतमाव्याप्य सा शक्तिः त्रिपुरा कथ्यते बुधैः।।

तीन लक्ष्यों को धारण करती हुई तीन गुणों वाली तीन प्रकार की प्राणस्वरूपा वह शक्ति सब प्रकार से त्रैतभाव में व्याप्त है, अतः उसे त्रिपुरा कहा जाता है।

त्रैतमद्वैत द्वैतञ्च त्रिविधं रूपमात्मजम् ।

कृत्वा या द्वैतमाप्नोति सा देवी त्रिपुरा मता।।

साधक का अपना रूप भी त्रिविध है। जैसे, स्थूल, सूक्ष्म कारण इन तीन शरीरों द्वारा उसका त्रैत है। ब्रह्मरूप में अद्वैत है। शिव और शक्ति के रूप में द्वैत है। यही कहा गया है कि त्रैत, द्वैत और अद्वैत इन तीनों भावों को लेकर भी जो अद्वैत भाव प्राप्त करती है वही त्रिपुरा भगवती कही गई है।

सहजा सरहस्या सा सानन्दा चित्समन्विता।

दशधा दशस्थानस्था दशशक्तिभृताऽमृता।।

वह त्रिपुरा शक्ति स्वाभाविकी सहजा है, रहस्यपूर्ण है। सत्, चित् और आनन्दरूपा है। वही दश स्थानों में निवास करती हुई स्थान भेद से दश प्रकार की हो जाती है। दश स्थानों में दश शक्तियों को धारण करती हुई वह अमृतस्वरूपा हो जाती है।

सैव देवी महादेवी त्रिपुरा सर्वमोदिनी।

तस्या रहस्यं संवेद्यं तत् स्वयं भासते परम् ।।

वही महादेवी भगवती त्रिपुरा सुन्दरी देवी सदा आनन्दरूपा है, उन्हीं का रहस्य जानना चाहिये वह रहस्य स्वयं योगाभ्यासी को जागृता शक्ति बता देती है।

अकृत्वा प्राणसंरोधं अकृत्वा प्राणसंग्रहम् ।

अकृत्वा शक्तिमुद्बुद्धां स योगी नामधारकः।।

प्राणों का निरोध किये बिना और प्राणों की शक्ति संचय किये बिना और शक्ति का जागरण करके जो योगी कहलाता है वह केवल नामधारक योगी है।

अतः शक्तिजागरणं कृत्वा सहजभावेन त्रिपुरा साध्या भवति। सर्वं शक्त्युत्थानसम्भवम् ।।१।। इति सूत्रितम् । यदा प्राणानां महाशक्तिः समुत्थिता भवति तदा स्वयमेव त्रिपुरास्वरूपं दृश्यते। तद्रहस्यं च सुसरलतया बोधगम्यो भवति।

इसलिये शक्ति जागरण करके सरलता से त्रिपुरा की सिद्धि होती है। शक्ति के उत्थान से सब कुछ सम्भव हो जाता है।।१६।। ऐसा सूत्र में कहा गया है। जब प्राणों की महाशक्ति उठती है तब स्वयमेव त्रिपुरा का स्वरूप दिखाई पड़ता है और उसका स्वरूप सरलता से बोधगम्य हो जाता है।

प्रयासलभ्यं नहि तद्रहस्यं ज्ञातुं न शक्नोति दृढ़ेन कश्चित् ।

स्वयं क्रिया रूपधरा हि शक्तिः रहस्य बोधं प्रकरोति सद्यः।।

वह रहस्य प्रयास करने से उपलब्ध नहीं होता है और हठयोग से उसे कोई नहीं पा सकता है। जब शक्ति स्वयं क्रिया का रूप धारण करती है तब स्वयं ही साधक को रहस्य का ज्ञान हो जाता है।

नमोऽस्तु भगवत्यै वाग्देव्यै नमः।।

भगवती वाग्देवी को नमस्कार है।

श्रीविद्या परमा विद्या श्रीपीठः पीठसंज्ञकः।

नखात् शिखं समस्तं च शरीरं पीठसंज्ञकम् ।।

श्रीविद्या परम श्रेष्ठ विद्या है। शरीर को ही श्रीपीठ कहा गया है। नख से लेकर शिखा पर्यन्त समस्त शरीर को श्रीपीठ कहा जाता है।

तत्रैव विविधा देव्यः नाना पीठाधिसंस्थिताः।

तासामेकमपि ज्ञात्वा सिद्धिमाप्नोति साधकः।।

उसी शरीर में नाना पीठों में संस्थित नाना प्रकार की शक्ति देवियां निवास करती हैं। उनमें से एक का भी ज्ञान होने पर साधक सिद्धि प्राप्त कर लेता है।।

श्रीविद्या च महाविद्या योगिनां योगसिद्धिदा।

सा वै बलवता लभ्या प्राणसंयमसाधिना।।

वह परमा श्रीविद्या योगियों को योग सिद्धि प्रदान करने वाली है। वह बलवान् साधक द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है जिसने प्राणों के संयम को सिद्ध कर लिया हो।

एवं कृते सति यदा प्राणाः बलवन्तः भवन्ति, तदा तत्प्राप्तिः सुलभा जायते। तदर्थं च "पीठ को तान दे" इत्यादि करणीयम् । दशमहाविद्याज्ञानमपि तत्र कोष्टके प्रविश्यैव भवति। तत्रैव जागृत कुण्डलीकः ज्योतिर्दर्शनविधौ तासां स्वरूपमपि परिचिनोति। स्वरूपपरिचयेन तासां ध्यानं, तासां ज्ञानं च सर्वं सुलभं भवति। कथितं च शास्त्रेऽपि "हृदये ललिता देवी" इत्यादि।।

इस प्रकार साधना द्वारा जब प्राण बलवान् बन जाते हैं तब उसकी प्राप्ति सुलभ हो जाती है। उसके लिये "पीठ को तान दे" इत्यादि पहिले बताई गई क्रिया करनी चाहिये। दशमहाविद्याओं का ज्ञान भी उसी शरीर के भीतर प्रवेश करने पर होता है। वहीं कुण्डलिनी के जागृत होने पर ज्योति दर्शन के समय साधक को उन शक्ति देवियों का परिचय भी मिल जाता है। स्वरूप के परिचय होने पर उनका ध्यान और उनका ज्ञान भी सुलभ हो जाता है। शास्त्र में इसीलिये कहा है "हृदये ललिता देवी" ललिता देवी हृदय में रहती हैं" इत्यादि।

तत्र शरीरात्मके श्रीपीठे शक्ति जागृतिं विधाय दिव्यशक्तीनां दर्शनं, ध्यानं ज्ञानं च कर्तव्यम् । शक्तिश्च गुरूकृपैव लभ्या। अनुग्रहसाध्या भवति। तदुपलब्धौ च सर्वं स्वयमेव सहजं सुलभं भवति।

उस शरीरात्मक श्री पीठ में शक्ति को जगाकर दिव्यशक्तियों का दर्शन, ध्यान एवं ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। शक्ति गुरू की कृपा से ही प्राप्त होती है। क्योंकि वह अनुग्रह-साध्या है। अनुग्रह द्वारा शक्ति प्राप्त होने पर सब कुछ स्वयमेव सुलभ हो जाता है।

२२-११-६२ प्रातः ।। ४२ ।।

त्रिपुरायास्तु या शक्तिः दशधा या च गद्यते।

सा षट्चक्रात्मिका शक्तिः षड्रूपा भेदनात्मिका।।

जो त्रिपुरा की शक्ति दश प्रकार की कही गई है वह षट् चक्रो मे स्थित है और छः रूपों से वह भिन्न - भिन्न स्वरूप की होकर चक्रों का भेदन करती है।

बीजे विन्दौ च नादे च नादान्ते चापि राजिता।

चतुर्धा त्रिगुणा शक्तिः दशरूपा स्थिता मता।।

यह त्रिगुणात्मिका शक्ति बीज में बिन्दु में, नाद में और नादान्त में चार प्रकार से स्थित हुई दश प्रकार की होती है।

दशविद्याविभागेन शक्तिं दत्वा दशात्मिकाम् ।

त्रिपुरं त्रिविधं कालं त्रिलोकं त्रिगुणं च यत् ।।

दश विद्याओं के विभाग से शक्ति को दशात्मिका कहा जाता है। त्रिपुर भी तीन प्रकार का है। जैसे कालत्रय, लोकत्रय और गुणत्रय भेद से।

समाहृत्य सदानन्दा शिवत्वं प्रददाति सा।

तदा शिवस्तदा ख्यातः सदानन्दविमण्डितः।।

उपर्युक्त सभी विभागों को समेट कर वह शक्ति साधक को शिवत्व प्रदान करती है। तब शिव को सदा आनन्द विमण्डित कहते हैं उन्हीं का नाम सदाशिव भी है।

तत्रानंदं विधायैव तद्रूपं परमं भवेत् ।

आनन्दश्च निरानंदं उभयोर्मध्यके भवेत् ।।

वहां आनन्द का अनुभव करते हुए साधक, तद्रूप होकर आनन्द और निरानन्द दोनों के मध्य की स्थिति में रहता है। उस स्थिति को आनन्द स्थिति भी नहीं कह सकते हैं, क्योंकि आनन्द का अनुभव उस दशा में नहीं है, निरानन्द भी नहीं कह सकते हैं क्योंकि आनन्द का अभाव भी उस स्थिति में नहीं है।

तत्रानन्दमभिव्याप्य त्रिपुरा सार्थका ध्रुवा।

तस्याः स्थितिः स्वरूपाय आनन्दाय च जायते।।

आनन्द स्थिति को पूर्णतया व्याप्त करके वहां त्रिपुरा की सार्थकता होती है वहां वह आनन्द स्वरूपा ही हो जाती है।

पुनः कलास्वरूपेण भासते उन्मनात्मिका।

रहस्यं तावदेव स्यात् यावन्नैव सदाशिवः।।

तब वह त्रिपुरा शक्ति कलाओं के रूप में उन्मनी कला के रूप में भासित होती है। शक्ति का रहस्य वहीं तक रहस्य है जब तक सदा शिव की स्थिति प्राप्त नहीं होती है।

सदाशिवस्वरूपे तु नोर्ध्वं स्याद् तद् रहस्यकम् ।

उन्मनी रूपपर्यन्तं रहस्यं विद्यते क्वचित् ।।

सदा शिव की स्थिति प्राप्त हो जाने पर उससे ऊपर फिर कोई रहस्य नहीं रह जाता है। उन्मनी भाव के पूर्व कहीं कहीं रहस्य रहता है।

पश्चात् स्वरूपसंस्थानं समाधिस्थं न संशयः।

उन्मनी स्थिति के बाद निःसंशय स्वरूप में स्थित होकर साधक समाधिस्थ हो जाता है।

एवं प्रकारेण त्रिपुरा महाविद्या यदा भेदनरूपा शक्तिः शिवं आनन्दयुक्तं करोति तदा त्रिपुरा स्वरूपं परिवर्त्य अपरं रूपं धारयति। तद्रूपमपि साधकैः बोध्यम् ।

इस प्रकार भेदन रूपा त्रिपुरा शक्ति जब शिव को आनन्दयुक्त करती है तब त्रिपुरा भगवती अपने स्वरूप को बदल कर दूसरा रूप धारण कर लेती है। वह रूप भी साधक को समझना चाहिये।

२२-११-६२ सायं ।। ४३।।

सा देवी त्रिपुरा सिद्धा सकला कलया कला।

कलावती कलाधारा पूर्णिमा भास्वरूपिणी।।

वह सिद्धा त्रिपुरा देवी फिर कलाओं से पूर्ण होती है। कलाओं के सहित होने के कारण उसे कलावती, कलाधारा कहते हैं। जैसे पूर्णिमा को चन्द्रमा अपनी षोडश कलाओं से पूर्ण रहता है, उसी प्रकार वह त्रिपुरा महाशक्ति भी होने के कारण पूर्णिमा नाम से कही जाती है। उस स्थिति में वह केवल भास्वरूपिणी अर्थात् प्रभा-स्वरूप रहती है।

सदा शिवस्य पश्चात् पुनः कलानां विकासो भवति। तदा पूर्णत्वे च प्रतिबिम्बिते परमशिवस्य प्राप्तिर्जायते। तदा कला, विकला, सकला कलाकला इत्यादीनां भूमिका च साधारा जायते।

सदाशिव शिव की स्थिति के पश्चात् फिर कलाओं का विकास होता है। पूर्णत्व के प्रतिबिम्बित होने पर परमशिव की प्राप्ति होती है। तब कला, विकला, सकला, कलाकला आदि भूमिका आधार सम्पन्न बनती हैं।

कलाओं का बोध करना भी सत्य है। यह सुलभ भी है। अपने आप में भी है और सर्वत्र भी है। उसी का ज्ञान सुलभ करना है।

मार्गाः पृथक् सन्ति, लक्ष्यमेकम् ।।

मार्ग पृथक् पृथक् हैं और लक्ष्य एक है।

शक्तिसम्पातयोगात् सुलभगमनम् ।। १४।।

शक्तिपात महायोग के द्वारा लक्ष्य तक पहुंचना सुलभ हो जाता है।

यदा शक्तिसम्पातो भवति तदा शीघ्रमेव स्वयं शक्तेर्लाभो जायते।

जब शक्तिपात होता है तब शीघ्र ही स्वयमेव शक्ति-लाभ हो जाता है।

येन च शीघ्रमूर्ध्वगमनं जायते।

जिससे शीघ्र ही ऊर्ध्वगमन होने लगता है।

तत्त्वानुभवगम्यं नादनादान्ताभ्याम् परः ।।

यद् वेद्य तदेव परमशिवः ।। १५।।

नाद ओर नादान्त की स्थिति में तत्त्व ज्ञान अनुभवगम्य होता है। जो ज्ञातव्य है उसे परमशिव कहते हैं। ज्ञातव्य परम शिव हैं और परम साधन महाशक्ति है।

ज्ञानं ध्यानं जपश्चैव केनोपायेन सत्वरम् ।

जायन्ते वशमायान्ति ज्ञातुमिच्छामि शारदे।।

हे शारदा माँ ! ज्ञान, ध्यान और जप किस उपाय से शीघ्र ही अधिकार में आते हैं इसे मैं जानना चाहता हूँ।

तदुत्तरयति:- सर्वमेतन्महाशक्तिर्भगवती योगकुण्डली।

जागृता परमा सिद्धा सिद्धानां सिद्धिदा भवेत् ।।

उसी का उत्तर माँ देती है:- भगवती कुण्डलिनी महाशक्ति जागृता होकर जब परम सिद्ध हो जाती है तब साधकों को वह सभी प्रकार की सिद्धि देने लग जाती है।

तदेव परमं ज्ञानं ध्यानं चैव जपस्तथा।

सिध्यते सा कृपालभ्या तद्गुरोः शरणंव्रज।।

तभी परम ज्ञान, परम ध्यान, परम जप सिद्ध होता है। वह शक्तिपात और शक्ति जागृति गुरूकृपा द्वारा प्राप्त होती है, इसलिये तुम गुरू की शरण में जाओ।

२३-११-६२ प्रातः ।। ४४।।

या शक्तिस्त्रिपुरा देवी वामनीत्यभिधीयते।

स्वर्गं मृत्युं च पातालम् अभिव्याप्य स्थिता स्वयम् ।।

जो त्रिपुरा देवी वामनी नाम से कही जाती है वह स्वर्गलोक, मर्त्यलोक और पाताल लोक इन तीनों में व्याप्त होकर रहती है।

वलिं शुक्राभिधानं सा पाताले च नियच्छति।

तदा बलिः चलच्चक्रस्वर्गं गन्तुं प्रचेष्ठते।।

वह वामनी शक्ति शुक्ररूपी बलि को पाताल पहुंचा देती है। तब बलि चंचल होकर स्वर्ग को पुनः जाने की चेष्टा करता है।

तत्रैव स्थातुकामः सः स्थितिभेदाय जायते।

तदा सा भगवती देवी वमिनी च महाबला।।

त्रिपुरं व्याप्य तं धृत्वा पातालं प्रापयत्यलम् ।।

वह बलि नामक शुक्र स्वर्ग में ही रहने की इच्छा करता है और मर्यादा भेद की चेष्टा करता है। तब त्रिपुरा भगवती महाबला वामनी शक्ति तीनों लोकों को व्याप्त करके उस शुक्ररूपी बलि को पाताल पहुंचा देती है।

तत्र स्थितो हि सः पूर्णा सकलां काम संस्थितिम् ।

सुस्थितां सुस्थिरां कृत्वा विकाराय न जायते।।

पाताल पहुंचकर यह शुक्र फिर काम की परिणति हो मूर्छित और स्वस्थ बना देता है और पुनः विकार उत्पन्न नहीं करता है।

तदा सत् चित् आनन्दः इति त्रिकं संयुक्तं भवति। तदा सच्चिदानन्दसदाशिवः तत्रैव मोदते, मोदयति च। तदैव भवति आनन्दस्योपलब्धिः। सत् मूलाधारे, चित् सर्वत्र व्याप्तः, मूलाधारादाज्ञाचक्रपर्यन्तम्। तदा उभयोः संयोगः आनन्दाय समर्थो भवति। आनन्दं प्राप्य शिवः सदाशिवो भवति। पुनः परमशिवस्य दर्शनाय तत्र प्रापयितुं भगवती त्रिपुरा महामाया सैव कुण्डलिनी प्रचेष्टते। आनन्दात् परमशिवस्य दर्शनं जायते कलाधारेण ।।१६।।

तब सत् चित् और आनन्द इन तीनों का संयोग होता है और सच्चिदानन्द सदाशिव वहीं मोदित होते हैं और मोदित करते हैं। तभी साधक को आनन्द की उपलब्धि होती है। सत् मूलाधार में और चित् सर्वत्र व्याप्त है, मूलाधार में आज्ञाचक्र पर्यन्त, तब दोनों का संयोग आनन्द की उत्पत्ति करता है। आनन्द को प्राप्त करके शिव सदाशिव बन जाते हैं। फिर सदाशिव परम शिव के दर्शन की चेष्टा करते हैं और वहां तक पहुंचाने के लिए भगवती महामाया त्रिपुरा कुण्डलिनी शक्ति स्वयं प्रेरित करती है। कलाओं के आधार से आनन्दपूर्वक परमशिव के दर्शन होते हैं।

२३-११-६२ सायम् ।। ८५।।

कलाज्ञानं अन्तर्दर्शनाय ।।१७।।

अन्तर्दर्शन के लिये कलाओं का ज्ञान होता है।

कल्यते कलनं क्रियते यया सा कला। अथवा कलनं क्षयोपचयं च विद्यते तत्र सा कला। कला एव स्पन्दवती।

जो कलन करे उसे कला कहते हैं। अथवा कलन अर्थात् बढ़ना और घटना जहां क्षय और वृद्धि होती हो उसे कला कहते हैं। कलाही स्पन्दवती अर्थात् गतिशीला है।

विन्दुः संस्तम्भरूपेण स्थितः स्वात्मस्वरूपकः।

तत्र स्पन्दो भवेत् सद्यः तस्मात् संजायते कला।।

जब विन्दु स्थिर रूप में स्तब्ध रहता है तब वह अपने स्वरूप में स्थिर रहता है, निश्चेष्ट रहता है। उसमें जब एकाएक कम्पन होता है तब कलाओं का उदय होता है।

तदा कलेति सा ख्याता क्षयोपचयसंकरा।।

विन्दुश्चन्द्रनिभः ज्ञेयः स्पन्दधारा कलास्मृता।।

क्षय और उपचय होने वाली मिली जुली स्पन्द-शक्ति को कला कहा जाता है। विन्दु चन्द्रमा की भांति है और उसमें जो कम्पन से ज्योति धारा निकलती है उसे कला कहते हैं।

अधस्तादुपरोधस्तात् सा प्राणकलना कला।

विकला अपरा सापि विशिष्टा विगता यता।

नीचे से प्राणों का ऊपर चढ़ना और ऊपर से प्राणों का नीचे आना यह प्राणों का क्षय और अपचय कला कहलाती है। दूसरी विकला है जिसमें गति की हीनता है और प्राणों की विशिष्ट गति का अभाव है।

क्वचित् प्रवृद्धा क्वचिदप्रवृद्धा क्वचिद्विलीना क्वचिदेव तूर्णा।

क्वचिद् विशिष्टा बहुज्योतिराधृता विबुद्धवुद्धा विकला कला सा।।

कभी कला रूप में ज्योति बहुत बढ़ जाती है, कभी मन्द रहती है, कभी विलीन हो जाती है, कभी शीघ्र ही तीव्र होती है। कभी विशिष्ट रूप से बहुत बढ़ी हुई ज्योति दीखती है इस प्रकार जागृता ज्योति कला जो एक रूप में स्थिर न रहे उसे विकला कला कहते हैं।

विकला सा भवति यत्र ज्योतिः स्वरूपं क्षीयते उपचीयते च। इत्थंभूतेन वैशिष्ट्येन विमण्डिता सा सकलात्मिका भूत्वा स्थिरत्वमाप्नोति। पुनः सकलेन शब्देन प्रोच्यते।

विकला उसे कहते हैं जहां ज्योति का स्वरूप कभी क्षीण होता है और कभी बढ़ता है। इस प्रकार के क्षय-वृद्धि के वैशिष्ट्य से विमण्डित होती हुई यह विकला स्थिरता को प्राप्त होकर सकला का रूप धारण करती है।

सहिताभिः समस्ताभिः कलाभिः राजते यदा।

तदा सम्पूर्णतां याति सकला तेन प्रोच्यते।।

समस्त कलाओं के सहित जब शोभायमान होती है तब सम्पूर्णता को प्राप्त होकर यह सकला नाम से कही जाती है।

सदा स्थिरा शक्ति प्रकाशशालिनी, संहृत्य सर्व विकला कलाकुलम्।
विन्दौ गतिं तीव्रतमां विधाय, तत्रैव भासं विपुलं रुणाद्धि।।

विकला के समस्त कला समूहों को समेट कर प्रकाश से पूर्ण शक्ति स्थिर रूप से बिन्दु में तीव्रतम गति करती हुई वहीं पर महाप्रकाश को घनीभूत करके रोक लेती है।

यथा लौकिक व्यवहारे सम्पूर्णचन्द्रः सकलः पूर्णः इत्युच्यते। तथैव यदा समस्ताः कलाः सम्भूय विन्दौ एव गतिशीलाः भवन्ति, तत्रैव निरूद्धाः सन्त्यः विशिष्टां ज्योतिष्मतीं शक्तिं विस्तारयन्ति। तदा सर्वत्रैव शीतलत्वमायाति। तथा च-

जिस प्रकार लोक में १६ कलाओं से युक्त चन्द्रमा पूर्ण कहलाता है, उसी प्रकार जब समस्त कलायें एकत्र होकर विन्दु में ही गतिशील हो जाती हैं और वहीं निरूद्ध होकर विशिष्ट ज्योतिष्मती शक्ति का विस्तार करती हैं, तब सर्वत्र शरीर में शीतलता का अनुभव होता है। कहा भी है:-

आनन्दात् जायते स्पन्दः स्पन्दात् संजायते गतिः।
गतिर्मन्दा तथा तीव्रा सम्भूय सुस्थिरा ध्रुवा।।

आनन्द से स्पन्द की उत्पत्ति होती है स्पन्द से गति होती है, यह गति कभी मन्द होती है और कभी तीव्र होती है और एकत्र होकर सुस्थिर हो जाती है।

अन्तर्दर्शनज्ञानाय चेष्टते च पुनः पुनः।

तब साधक अन्तर्दर्शन के ज्ञान के लिये निरन्तर चेष्टा करता है। तभी "बैठ के गुफा में ज्योति पावे" यह बात पुष्ट होती है।

पुनः सकलस्य बोधानुभवे कलाकला इत्यस्यापि समाभासः संजायते।। तत्र निर्विकल्पसविकल्पयोः स्थितिः समुद्भवति। सर्वम् अन्तर्गतमेव प्रतिभासते। तदा किमपि अज्ञातमज्ञेयं, अलभ्यं न वा अदृश्यमिति।

फिर सकल के बोधानुभव होने पर कलाकला इसका भी समाभास हो जाता है। उसमें निर्विकल्प और सविकल्प की स्थिति हो जाती है। सभी बातें भीतर ही भीतर होती हैं। तब कुछ भी अज्ञात, अज्ञेय और अलभ्य और अदृष्ट नहीं रहता है।

गुरूध्यानी गुरू ज्ञानी पावे। सो ही ज्योति दिखावे।।

२४-११-६२ प्रातः ।।४६।।

तदान्तर्दृष्टिः ।।१७।।

तब साधक को अन्तर्दृष्टि आ जाती है।

यदा कलानुभूति क्रियते तदा अन्तर्दृष्टिर्जायते।

जब साधक कलाओं का अनुभव करता है तब अन्तर्दृष्टि का उदय होता है।

वहिर्यागं परित्यज्य अन्तर्यागं समाचरेत् ।

बाहरी यजन को छोड़कर साधक को अन्तर्यजन करना चाहिये।

यथा व्यवहाररूपेण पूजनं कृत्वा प्राणप्रतिष्ठां च विधाय पुनस्तत्पूर्त्यर्थं योगादिकं समाचरन्ति जनास्तद्वत् साधनासम्पन्नभूमिकत्वेऽपि प्राणापानसमानव्यानोदानानां परस्परं संक्रमणं विधाय प्राणापाने च जुहूयात् । इति प्राणाहुतियागं कुर्यात् । सर्वं तत्र प्राणायामाधीनम् । प्राणायामं च जागृता भगवती कुण्डलिनी स्वयमेव कारयति। तत्रैव तत्परः साधकः अन्तर्यागं करोति। यदा प्राणाः प्रतिष्ठिताः बलवन्तः भवन्ति, तदा यागेन सर्वं सुस्थिरमन्तर्गतं भवति। "प्राणाधीनं जगत् सर्वम्" इत्युपयुज्यमानत्वात् यदा अन्तर्गता दृष्टिर्भवति तदा तत्रैव सर्वमनुभूयते, रम्यते दृश्यते च नान्यत्र। अत एव कथितं च।

जिस प्रकार लोक में पूजन करके प्राण प्रतिष्ठा करके फिर उसकी पूर्ति के लिये मनुष्य योग आदि साधन किया करते हैं, उसी भाँति साधन सम्पन्नता की भूमिका में भी प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान इन पाँच प्राणों का परस्पर संक्रमण करके प्राण और अपान का हवन किया जाता है। अर्थात् प्राण रूपी आहुति देकर यज्ञ करना चाहिये। यह सब प्राणायाम के अधीन है। प्राणायाम स्वयमेव जागृता भगवती कुण्डलिनी स्वयं करवाती है। उसी में तत्पर हुआ साधक अन्तर्याग करता है। जब प्राण प्रतिष्ठित होकर बलवान् बन जाते हैं तब याग के द्वारा सब कुछ सुस्थिर और सम्पन्न हो जाता है। सारा जगत् प्राणों के अधीन है। जब अन्तर्दृष्टि हो जाती है तब वहीं सब कुछ अनुभव में आता है वहीं साधक रम जाता है और देखता है और अन्यत्र कहीं नहीं जाता है। इसलिये कहा है कि:-

गोरक्षनाथ बाबा की वाणीः-

ना कहिं जावे ना कहिं आवे सो अन्तर ही पावे।
बाहर दृष्टि न जावे अवधू अन्तर ही सब पावे।।
गुरू ज्ञानी गुरू ध्यानी पावे अन्तर्ज्योति बतावे।
ज्योति जगावे अन्तर पावे कहीं न आवे जावे।

अतएव "सर्वं स्वात्मनि पश्यति" इत्यादि सिद्धं भवति। अन्तर्यागेनैव "मद्याजी जायते नरः" इति। एषा एव समाधेः पूर्वावस्था, तदन्तरं यद् ज्ञातव्यं तद् ज्ञातं भवति। सर्वमिदं च कुण्डलिनी जागरणे स्थितम् ।

इसलिये "सब कुछ भीतर ही देखता है" यह कथन सिद्ध होता है। अन्तर्याग से ही मनुष्य "मद्याजी" अर्थात् भगवान का भजन करने वाला बनता है। यही समाधि की पूर्वावस्था कही गई है। उसके बाद जो ज्ञातव्य है वह भी ज्ञात हो जाता है। यह सब कुछ कुण्डलिनी शक्ति के जागरण पर निर्भर है।

२४-११-६२ सायम् ।।४७।।

अथ अन्तर्दृष्ट्याधिकरणम् ।।

अब अन्तर्दृष्टि सम्बन्धी अधिकरण आरम्भ होता है।

अन्तर्दृष्टिर्यदा भूयात् बहिर्ज्ञानविवर्जिता।

तदा सर्वत्र पश्यन्ति योगिनस्तत्त्वदर्शिनः।।

बाह्य ज्ञान से विवर्जित जब साधक को अन्तर्दृष्टि प्राप्त होती है तब वे सर्वत्र योगी लोग तत्त्वदर्शी बनकर सर्वत्र सब कुछ देखने लगते हैं।

दृष्टिः संयाति तत्रैव यत्रैव परमः शिवः।

बोधावस्था तदाऽऽयाति यत्र ज्ञानं त्रिधात्मकम् ।।

अन्तर्दृष्टि होने पर दृष्टि वहीं जाती है जहाँ परमशिव है। तब बोधावस्था आती है। जिसमें त्रिविध ज्ञान साधक को होता है।

अन्तर्ज्ञानं बहिर्ज्ञानं ज्ञानं चैव द्विधात्मकम् ।

स्वयमेव समायाति न तत्र यत्नमास्थितम् ।।

ज्ञान दो प्रकार का है। अन्तर्ज्ञान और बहिर्ज्ञान। ये दोनों ज्ञान स्वयं ही होने लगते हैं। इसमें यत्न करने की आवश्यकता नहीं रहती है।

गोरक्षनाथ बाबा की वाणीः-

ना कहिं जावे ना कहिं आवे अन्तर ही सब पावे।

सद्गुरू ऐसा पावे अवधू सीधी राह बतावे।।

ज्ञान ध्यान जब सबहि बतावे नहि वह तत्त्व छिपावे।

अवधू सो गुरू ज्ञानी ध्यानी सीधहि सीध लखावे।।

२५-११-६२ सायं प्रातः ।।४८।।

तदा उपासनाभ्यासः ।।४८।।

तब उपासना का अभ्यास किया जाना आरम्भ होता है।

यदा परमशिवस्य दर्शनं भवति तदा शक्तिः स्वयमेव उपासनां वाञ्छति। तद्रूपे एव सम्प्रविष्टुं उत्सुका भवति। तदैव परमशिवः परमाकुलः परस्परं अभिगच्छति,- ज्ञानं कर्म उपासनाम् । तेषां मध्ये ज्ञानं प्राप्य कर्मकृत्वा आनन्दं च समधिगम्य पुनः उपासनाय प्रभवति।

जब परम शिवका दर्शन हो जाता है तब शक्ति स्वयमेव उपासना की इच्छा करती है। उसी के रूप में प्रविष्ट होने को उत्सुक होती है। तब परम शिव भी परम आकुल होकर परस्पर शक्ति के साथ मिलना चाहते हैं और ज्ञान कर्म और उपासना की जिज्ञासा करते हैं। उनमें से ज्ञान प्राप्त करके कर्म करके और आनन्द प्राप्त करके उपासना के योग्य बनता है। तत्त्व में तत्त्व समाये।

सा देवी प्रकटा शक्तिः आत्मरूप प्रदर्शिका।

क्रियां कृत्वा परां दिव्यां पुनस्तत्रैव मोदते।।

रमते परमेणैव शिवेन सह मोदते।।

यह प्रकट रूप वाली शक्ति अपना असली स्वरूप प्रकट कर देती है। परम दिव्य क्रिया करवाकर फिर वहीं मोदित होती है और परम शिव के साथ रमण करती हुई वहीं मोदित हो जाती है।

उपासनेन परमतत्त्व लाभः। उपासनया शक्तिः परशिवस्य सहवासिनी भवति।।

उपासना से परमतत्त्व की प्राप्ति होती है। उपासना से शक्ति परमशिव की सहवासिनी हो जाती है।

२५-११-६२ प्रातः सायम् ।।४९।।

उप समीपे आस्यते इति उपासना। अथवा उप असनं आसनं वा उपसना। यदा शक्तिः शक्तिमता सह सामीप्येन अभिव्यक्ति अधिगच्छति तदा स्थितप्रज्ञा जायते।

उप = समीप में बैठने को उपासना कहते हैं। जब शक्ति शक्तिमान के साथ सामीप्य से अभिव्यक्ति प्राप्त करती है तब स्थितप्रज्ञ की स्थिति प्राप्त होती है।

सुखे वा सुखभूते व द्वन्द्वेवा हर्षनिर्भरे।

नैयाति क्षोभं यच्चित्तं तदा प्रज्ञास्थिता मता।।

सुख में, सुख के कारणों में, द्वन्द्वों में या हर्ष की स्थिति में जो चित्त कभी क्षोभ को प्राप्त नहीं होता है उसकी प्रज्ञा स्थित कही जाती है।

सर्वं तत्रैव संवेद्य अर्धमात्रोपरिस्थिता।

निरोधिका निरोधाय समर्था जायते ध्रुवा।।

अर्धमात्रा के ऊपर स्थित जो निरोधिका कला है सब उसी में अनुभव होता है जहाँ वह सब कुछ निरोध करने में समर्थ होती है।

निरोधिकेति विख्याता सा स्थितिः समताधिका।

निरोधिका नाम से विख्यात जो स्थिति है वह समता वृत्ति से भी अधिक ऊँची स्थिति है।

तदा परमशिवस्य सामीप्यं प्राप्य शक्तिः अभेदात्मिका भूत्वा तत्रैव स्थिता भवति। तत्रस्थितायां तस्यां परमशिवस्य बोधाय भावाः समर्थाः भवन्ति।

तब परम शिव का सामीप्य प्राप्त करके शक्ति अभेदात्मिका बनकर वहीं स्थित हो जाती है। उसके वहाँ स्थित होने पर परम शिव के बोध के लिये भाव समर्थ हो जाते है।

२७-११-६२ प्रातः ।।५०।।

परमशिवस्य दर्शनं उपासनयैव भवति। उपासनया

कोऽहं का सा क्रिया का च किं वाह्याभ्यन्तरे स्थितम् ।

ज्ञायतेकिमप्यत्रैतत् तदाकारा स्थितिश्च सा।।

परम शिव का दर्शन उपासना से ही होता है। मैं कौन हूँ वह कौन सी क्रिया है और वह शक्ति क्या है इस प्रकार का कुछ ज्ञान उपासना से होता है और वह स्थिति तदाकार स्वरूपिणी होती है।

तत्र भेदात्मिका दृष्टिः सहसैव विलीयते।

तदा प्रज्ञा स्वयं चक्षुः चक्षुः प्रज्ञा भवत्युत।।

वहां पर भेदात्मिका दृष्टि स्वयं विलीन हो जाती है। तब साधक की प्रज्ञा ही चक्षु बन जाती है और चक्षु भी प्रज्ञा का कार्य करने लगते हैं। वह प्रज्ञाचक्षु बन जाता है।

ज्ञायते नहि किंचिद्वै स्थितप्रज्ञा तदा भवेत् ।

उस दशा में वाह्य ज्ञान कुछ भी नहीं रहता है और प्रज्ञा स्थित हो जाती है।

परम शिवमधिगम्य यदा प्राणाः ब्रह्मरन्ध्रगताः भवन्ति तदा तत्र स्थितिं विधाय समाधिभूमिकामुपस्थापयन्ति। तत्र

परम शिव तक पहुंचकर जब प्राण ब्रह्मरन्ध्र में प्रविष्ट होते हैं तब वहाँ रूक कर वे समाधि की भूमिका तैयार करते है और तबः-

गोरखवाणीः- आप आप में देखे अवधू

आप आप में देखे। आप आप में पावे।

इति बोधो जायते, सर्वत्र च तथैव आभासते। तदा अवस्थात्रयज्ञानमुत्पद्यते। ध्यानावस्थकं, ज्ञानावस्थकं, बोधावस्थकम् । अनेन ज्ञानत्रिविधात्मकेन सर्वं ज्ञातुं शक्यते। किन्तु तत्रापि "अहं" बोधस्य प्रतिपत्तिः पुनरावर्तते।

इस तरह का बोध होता है, सर्वत्र वही बोध भासित होता है। तब अवस्थात्रय का ज्ञान होता है। ध्यानावस्था का, ज्ञानावस्था का और बोधावस्था का। इस त्रिविध ज्ञान के द्वारा सब कुछ जाना जा सकता है। किन्तु इस स्थिति में भी अहं बोध की प्रतिपत्ति पुनः लौट आती है।

साधारा च निराधारा व्यक्ताव्यक्त स्वरूपिणी।

सर्वज्ञानमयी बोधावस्था च जायते शुभा।।

साधार और निराधार, व्यक्त स्वरूपा और अव्यक्त स्वरूपा सर्वज्ञानमयी बोधावस्था प्राप्त हो जाती है।

यस्यामेवावस्थायां योगिनः योगानुष्ठानपरायणाः स्वात्मानमपि तत्रैव पश्यन्ति। दृष्टिः दृश्यं, द्रष्टा च सर्वमेव पृथक् पृथक् पुनर्भवति यद् ज्ञानं परमात्मकं तदा पञ्चतत्त्वेषु विजयो भवति। दिव्यगन्धस्पर्शादीनां च अनुभूतिः क्रियते। सर्वं च तत् साधकः स्वात्मन्येव पश्यति।

जिस अवस्था में योगी लोग योगानुष्ठान परायण होकर अपना आत्मदर्शन करते हैं, दृष्टि, दृश्य, द्रष्टा इन सबको पृथक् पृथक् रूप में देखने लगते हैं। जब परम तत्त्व का ज्ञान होता है तब पञ्चतत्वों में विजय होने लगती है। दिव्य गन्ध दिव्य स्पर्श आदि की अनुभूति होती है। साधक यह सब कुछ अपने भीतर ही देखता है।

परम शिवेन सह संयुक्ता शक्तिः प्राणान् आकर्षति। तदा शून्यत्वमपि यत्र तत्र अंगेषु व्याप्नोति। क्वचिच्च कदाचित् च सर्वशून्यतापि समायाति। सावस्था निष्पत्त्यवस्था भवति।

जब परम शिव के साथ संयुक्त हुई शक्ति प्राणों का आकर्षण करती है तब यत्र तत्र साधक के अंगों में शून्यता व्याप्त हो जाती है। कभी कभी किसी दशा में समस्त शरीर में भी शून्यता व्याप्त हो जाती है। उस अवस्था को निष्पत्ति अवस्था कहते हैं।

२७-११-६२ सायम ।।५१।।

ब्रह्मरन्ध्रगताः प्राणाः यदा स्थिरत्वमागच्छन्ति तदा रस निष्पत्तिः भवति। तदा "रसो वै सः" इत्यात्मिका प्रतीतिः भवति। रसानुभूतिस्तदेव भवति, यदा परमा परमस्य सामीप्यं प्राप्नोति। चिञ्चिणात्मकस्य ध्वनेः या बोधस्य दशायाः स्थितिः प्रोच्यते तस्याः ध्वनेः संचारः भवितुं प्रारभ्यते। झञ्झणोत्कर्ष समन्वितः कम्परूपः शब्दः प्रचरति यः सर्वं शरीरं चिञ्चिणवत् करोति। तदा परमशिवस्य सान्निध्यमिवानुभूयते।

ब्रह्मरन्ध्रगत प्राण जब स्थिरता को प्राप्त होते हैं तब रस की निष्पत्ति होती है। तब "रसो वै सः" "रस वही शिव है" ऐसी प्रतीति होती है। रस की अनुभूति तभी होती है जब परमा शक्ति परमशक्तिमान् शिव का सामीप्य प्राप्त कर लेती है। चिण् चिण् ध्वनि की बोध दशा की स्थिति जो कही जाती है उस चिण् चिण् ध्वनि का संचार भीतर होने लगता है। तब झण् झण् शब्द से पूर्ण कम्परूप शब्द का संचार होने लगता है जो समस्त शरीर को चिण् चिण् शब्द से व्याप्त कर लेता है। तब परम शिव के सान्निध्य की सी अनुभूति होती है।

शब्दश्चिणात्मको यस्तु झंकारेण प्रपूरितः।
शरीरं व्याप्य शून्याख्यं बोधं कारयति ध्रुवम् ।।

झंकार से प्रपूरित जो चिण् चिण् रूप शब्द है वह समस्त शरीर में व्याप्त होकर शून्यता का बोध करा देता है।

तदा च रोधिका रूपा रोधिनी विमला दशा।
प्राप्यते योगसंसिद्धैः तत्रैव रमते स्वयम् ।।

तब रोधिका रूप रोधिनी विमल दशा को योगसंसिद्ध लोग प्राप्त करते हैं। साधक स्वयं उसमें रम जाता है।

सा दशा या च निष्पतिः सा तदा जायते परा।

वह श्रेष्ठ निष्पति की दशा तब उपलब्ध होती है।

तदा निरोधकत्त्वाभासेन अन्तर्दृष्टिस्थिरत्त्वम् ।।१९।।

तब निरोधकत्व के आभास से अन्तर्दृष्टि की स्थिरता होती है।

पूर्णझंकारात्मकत्वव्याप्तशब्देन झंझणकत्वं प्रबलं भवति। किंचित् काल पर्यन्तं न किमपि ज्ञानं बाह्याभ्यन्तरं च प्रभवति। प्रादुर्भवति च ऊँकारा वैखरी ध्वनिः।

पूर्ण झंकारात्मक शब्द से शरीर में झंझण का कम्प प्रबल होता है। कुछ काल तक बाह्य एवं आभ्यन्तर ज्ञान कुछ भी नहीं रहता है। तब वैखरी रूप में ऊँकार की ध्वनि का प्रादुर्भाव होता है।

सा सहसैव ब्रह्मरन्ध्रादुपरि व्याप्ता भवति। तदा व्यापिका इत्यपि कथ्यते। तस्यां दशायां सर्वं शरीरमात्मज्ञानेन व्याप्तमिव प्रतिभाति। सर्वत्र च प्रकाशान्वितमिवद्दृश्यते।

वह ऊँकार ध्वनि ब्रह्मरन्ध्र के ऊपर सहसा व्याप्त हो जाती है तब उस स्थिति को व्यापिका कहते हैं। उस दशा में सारा शरीर आत्मज्ञान से व्याप्त हुआ प्रतीत होता है और सर्वत्र सब कुछ प्रकाश से पूर्ण दीखता है।

यत्र प्राणाः सुसंव्याप्ताः परमस्य समीपगाः।
नैजन्ते नैव धावन्ति व्यापिका सा दशा स्मृता।।

परम शिव के समीपस्थ प्राण जब भली भाँति व्याप्त होकर न तो काँपते हैं और न कहीं अन्यत्र चलते हैं उस दशा को व्यापिका कहते हैं। २८-११-६२ प्रातः।।५२।।

तदा रसानुभूतिः परमानन्दानुभूतिः क्रियते। निष्पत्तिदशायां निश्शेषेण तस्मिन् परमशिवे एव परम शक्तेः शक्तिपातो भवति, भवति च पूर्णता। यथा च कस्मिंश्चित् परिपक्वफले रसः रूपं गन्धश्च प्रत्यक्षरूपेण दृश्यते अनुभूयते तथैव यदा क्रियाशक्तिः इच्छाज्ञानादिकं सर्वं समादाय परिपक्वावस्थां पूर्णत्वं वाधिगच्छति, तदा दिव्यरसस्य, दिव्यरूपस्य, दिव्यगन्धस्य अधिगमनं क्रियते। स्वयमेव तत् सर्वं साधकस्य कृते प्रादुर्भवति। यस्यानुभूतिं विधाय सोऽपि परमानन्दयुक्तो भवति।

तब साधक को रसानुभूति एवं परमानन्दानुभूति प्राप्त होती है। निष्पत्ति अवस्था में निःशेष रूप से उस परमशिव में ही परमाशक्ति का संपात होता है और पूर्णता हो जाती है, जिस भाँति किसी परिपक्व फल में रस, रूप और गन्ध प्रत्यक्ष रूप में दिखाई पड़ता है उसी भाँति जब क्रियाशक्ति इच्छा-ज्ञान आदि सबको समेट कर परिपक्वावस्था में पूर्णत्व को प्राप्त करती है दिव्यरस दिव्यरूप और दिव्यगन्ध की तब उपलब्धि होती है। साधक को वह स्वयं ही उपलब्ध हो जाता है। जिसकी अनुभूति लेकर साधक स्वयं भी परमानन्दयुक्त हो जाता है।

रसस्य दिव्य रूपस्य गन्धस्य परमस्य च।
क्रियते दिव्य ज्ञानं च दिव्यानुभवमेव च।।
रसो वै स इदं सत्यं सत्यमेवानुभूयते।
स्वयमेव परावस्था निष्पत्तेः सा बुधैः स्मृता।।

दिव्य रूप, दिव्यगन्ध, दिव्यज्ञान एवं अन्यान्य दिव्य अनुभव उस निष्पत्ति दशा में साधक को होते हैं। उस परावस्था में "रस ही वह है" यह बिल्कुल सत्य सत्य अनुभव में आता है। यह निष्पत्ति अवस्था है।

विलीयन्ते प्राणाः परमशिव रूपे यदि तदा।

परा शक्तिर्दिव्या प्रभवति परानन्दभरिता।।

न वै किंचिद् द्वन्द्वं न च विषयहालाहलकृतम् ।

विरूद्धं रूपं वै प्रकटयति तत्रैव विकटम् ।।

विषं सर्वं याति पृथगिति तदा शान्त शमनम् ।।

परम शिव में जब विलीन होकर प्राण शान्त हो जाते हैं तब दिव्य परमा शक्ति परानन्द से पूर्ण हो जाती है। तब किसी प्रकार द्वन्द्व साधक में शेष नहीं रहता है। विषय रूपी विष भी दूर हो जाते हैं। वहीं पर जो भी विरूद्धभाव विकट रूप से प्रकट होते हैं, वे भी सब सर्वथा शान्त हो जाते हैं।

तदा सा शमनी रूपा दशा सद्यः उपजायते।

तब शीघ्र ही शमनी रूपा दशा उत्पन्न होती है।

यत्र शान्तं भवेत् सर्वं विप्लव देह सम्भवम् ।

जहाँ देह में उत्पन्न होने वाले सभी विप्लवं शान्त हो जाते हैं।।

यथा समुद्रे प्रविशन्ति नद्यः तथा च प्राणाः प्रविशन्ति तत्र।

सोद्वेगशान्ताः स्थिरतां प्रयान्ति तथैव सर्वं शमनी करोति।।

जिस प्रकार नदियाँ उद्वेग से समुद्र में प्रविष्ट होकर शान्त हो जाती हैं उसी प्रकार उद्वेग से पूर्ण प्राण परमशिव में प्रविष्ट होकर शान्त हो जाते हैं। शमनी दशा स्वयं ही ऐसा कर देती है।

यथा पयोनिधिं गत्वा शान्तवेगाः सरिद्वराः।

भवन्ति प्राणास्तद्वद् वै शमनीं प्राप्य संस्थिता।।

जिस प्रकार बड़ी-बड़ी नदियाँ समुद्र में जाकर शान्त वेग वाली हो जाती हैं, उसी भाँति शमनी में संस्थित प्राण भी शान्त हो जाते हैं।

तदा शमनमायाति देहोद्भूतमुपद्रवम् ।

तब देह में होने वाले सभी विप्लव भी शान्त हो जाते हैं।

पुनश्च यः सकलः विकलः कलाधारः सदाशिव आसीत् स एव परमशिवस्य पूर्णस्य स्वरूपमधिगच्छति।

फिर जो सदाशिव सकल, विकल कला वाले थे वे पूर्ण परमशिव के रूप में परिणत हो जाते हैं।

पूर्णे या परमा शक्तिः परमेण - सदायुता।

सैव पूर्णा महापूर्णा भवति तत्त्वगामिनी।।

एषा सा निष्पत्त्यवस्था।

परम शिव में मिली हुई जो परमा शक्ति है वही पूर्ण व महापूर्ण होकर परमतत्त्व गामिनी बन जाती है। यही वह निष्पत्ति अवस्था है।

गोरखवाणीः-

गगनमण्डल में बैठि के आसन एक लगावे।

परम और परमा मिलें उनमें प्राण समावे।

ऐसा जब करता करें सो निष्पत्ति कहावे।

निष्पत्त्यवस्थायामनुभूयते शमनीसंगमः ।।२०।।

निष्पत्ति की अवस्था में शमनी दशा के संगम का अनुभव होता है।

सा च सर्वोपद्रवशमनावस्था। तत्र यद् हालाहल विषजं तत् शान्तिम् आयाति।

वह शमन अवस्था समस्त उपद्रवों को शान्त करने वाली होती है, वहाँ हलाहल विष से उत्पन्न जितने भी शारीरिक उपद्रव हैं, वे सब शान्त हो जाते हैं।

यस्य वै शमनी सिद्धा रूद्धा व्याप्ता समा सदा।

स वै प्राप्नोति शं रूपं शंकरं परमं परम् ।।

जिसे शमनी दशा सिद्ध होती है और रोधिनी व व्यापिका सदा समभाव में रहती है, वही साधक कल्याणकारी शंकर के परम रूप को प्राप्त कर लेता है।

अत एव शमनीदशायाः प्रादुर्भावेन महानन्दानुभूतिः भवति। या च अनिर्वचनीया इति।

इसीलिये शमनी दशा के प्रादुर्भाव से महानन्द की अनुभूति होती है जिसे अनिर्वचनीय कहते हैं।

२८-११-६२ सायंकाल ।।५३।।

शमन्यां समत्वाभास्तुलाकोटिवत् ।।२१।।

शमनी अवस्था में तुला कोटि के समान समत्व का आभास होता है।

तस्यां दशायां प्राणानां शमत्वं समत्वं वानुभूयते।

उस दशा में प्राणों का शमन अथवा समभाव अनुभव में आता है।

ऊर्ध्वं गच्छति वै प्राणाः अधोयान्ति शनैः शनैः।

यत्र तद्गमनं नैव शमनी सा दशा भवेत् ।।

प्राण साधक के शरीर में ऊपर की ओर चले जाते हैं और शनैः शनैः नीचे लौट आते हैं, प्राणों में चंचलता का नितान्त अभाव रहता है, इस दशा को शमनी दशा कहते हैं।

तत्रानन्दसमुद्भवति समत्वेनानुभूयते।

परमायाः समीपस्थः परमः समतां व्रजेत् ।।

वहाँ समभाव से आनन्द की अनुभूति रहती है। परमाशक्ति परमशक्तिमान् के समीप में रहकर समभाव से स्थित रहती है।

प्राणाः अधो न ऊर्ध्वं वा गमनागमनं कुर्वन्ति, तदा च श्वासप्रश्वासयोः गति साम्यमुपजायते। तस्मिन् साम्ये सर्वं सममेवाभाति। सानन्दावस्था परमानन्दावस्थेत्युच्यते। यथा च तुलाकोटिधृतपदार्थानां बहुत्वे न च लघुत्वेन च तुलाभागं अधः उपरि गच्छति न च समतामुपयाति तथैव च यावत् प्राणाः समधिकश्वास प्रश्वासमयाः भवन्ति तावत् शमत्वं समत्वं वा नोपभजन्ते। तेषां प्राणानां यदा समभावत्वं जायते तदा शमनी दशा जायते, शमन्यां प्राणानां स्थिरत्वं च भवति। तदैव पूर्णताया प्रतिपत्तिरपि भवति। परमस्य परमायाश्च यत् सामीप्यं समत्वं च तद्वत् तत्रापि ज्ञेयम् ।

प्राणों को गमनागमन न ऊपर को होता है और न नीचे। वहाँ श्वास प्रश्वासों की गति में समता आ जाती है। प्राणों की समता से सभी बातों में समता आ जाती है। वही आनन्द की अवस्था परमानन्दावस्था कही जाती है जिस भाँति तराजू के पलड़ों में रखी दो चीजों के भारी व हल्के होने से पलड़े ऊपर नीचे चलते हैं, उसी भाँति अधिक या कम श्वास प्रश्वासों की गति से उनमें शमता या समता नहीं आ पाती है। उन प्राणों में जब समता आती है तब शमनी दशा आती है उसी में प्राणों की स्थिरता आती है। तभी पूर्णता की प्रतिपत्ति भी होती है। परमा-शक्ति का सामीप्य या समत्व जिस प्रकार है वैसे ही यहाँ भी जानना चाहिये।

तुला कोटि समत्वेन तत् समत्वं मनीषिणः।

जानन्ति प्राणसाम्यत्वं यत्र वै सुस्थिरा क्रिया।।

योगशास्त्रज्ञ विद्वान् प्राणों की तुलाकोटि से तुलना करते हैं, और उसी दशा में क्रिया की सुस्थिरता रहती है।

तत्र सहस्रारे तदुपरिभागे च विन्दुं समाक्रम्य अर्गला भवति। सा अर्गला प्राणसमतां स्थिरत्वेन प्रतिपादयति। अर्गलाध्यानेनैव गतिविच्छेदस्य सन्निरोधो भवति।

वहाँ सहस्रार के ऊपर भाग में विन्दु को आक्रान्त करके अर्गला रहती है। वह अर्गला प्राणों की समता से स्थिरता का प्रतिपादन करती है। अर्गला के ध्यान से ही प्राणों की गतिविच्छेद का सन्निरोध होता है।

अर्गलां रोधिनीत्येके प्रवदन्ति मनीषिणः।

जानन्ति प्राणसाम्यत्वं यत्र वै सुस्थिरा क्रिया।।

मनीषी लोग रोधिनी को ही अर्गला कहते हैं और जहाँ प्राणों की समता होकर क्रिया की सुस्थिरता होती है उसे रोधिनी कहते हैं।

अर्गलोद्घाटनात् चैव तन्निरोधात् तथैव च।

प्राणानां शमनं कृत्वा तत्त्वं पश्यन्ति योगिनः।।

अर्गला के उद्घाटन के द्वारा और प्राणों के वहीं रूक जाने से प्राणों का शमन करके योगी लोग तत्त्व का दर्शन करते हैं।

यो जानाति महामुद्रां अर्गलायाः रहस्यकम् ।

तद् ज्ञात्वा परमा प्रीतिः तुलाकण्टकवत् भवेत् ।।

अर्गला के रहस्य को और तत्सम्बन्धी मुद्रा को जो जानता है उसे जानकर वह साधक तराजू के कांटे की स्थिरता की सी साम्यदशा की आनन्द स्थिति को प्राप्त कर लेता है।

अनने प्रकारेण शरीरे वा अन्य व्यापारेषु वा स्थिरीकरणं स्वयमेव भवति। तदा च-

तब शरीर में अथवा अन्य व्यापारों में भी स्वयमेव स्थिरीकरण हो जाता है और तब:-

गोरखबाबा की वाणीः- श्वास का ताला श्वास की चाभी।
जो जागे सो खोले।।
भीतर बैठ के सब कुछ देखें।
ना बोले ना डोले।

"ब्रज किवाड़ में लागे ताला" का भी यही अर्थ है।

अत एव "समावृत्तिर्जाता" इत्युच्यते। अर्गलारहस्यं केवलं प्राणायामाधीनमेव भवति। प्राणायामं च सिद्धा भगवती महामाया जागृता कुण्डलिन्येव कारयति। अत एव चोक्तम् :-

इसीलिये "वृत्ति सम हो गई है" ऐसा कहा जाता है। अर्गलारम्भ केवल प्राणायाम के अधीन है। प्राणायाम सिद्धा भगवती महामाया जागृता कुण्डलिनी स्वयं ही करवाती है। इसीलिये कहा गया है:-

स्वतः क्रिया प्रसारः ।।२२।।

क्रिया का प्रसार स्वतः होता है।

अनेन स्वतः शक्तिसंचरणात्मकेन क्रियाप्रसरणेन सर्वं सहजं सुकरं च भवति। एतत् सर्वं जागृतशक्त्यधीनम् ।

इस भांति स्वतः शक्तिपात से शक्ति के जागृत होने पर क्रिया का प्रसार होता है और सभी कुछ सहज तथा सुकर हो जाता है। यह सब जागृता शक्ति के अधीन है।

२९-११-६२ प्रातः ।।५४।।

शमनी दशा साप्यनुभव गम्या। तथा च स्वयमेव कुण्डलेश्वराज्ञया समागतेन योगाधिराजेन श्री परमपूज्येन "गोपीचन्द्र" महाराजेन कथितम् ।

यह शमनी दशा भी अनुभवगम्य होती है। अब स्वयं कुण्डलेश्वर श्री गोरक्षनाथ जी की आज्ञा से उपस्थित होकर परमपूज्य योगाधिराज श्री गोपी चन्द्रमहाराज ने कहा:-

श्री गोपीचन्द्र महाराज की बाणी:-

बैठ के दीप जलाले अवधू बैठ के दीप जलाले।
दियाबाती तेल सभी है देख ले दीप जलाले।
आंधी आवे पाणी आवे ज्योति नहीं भरमावे।
बुझे न दीपक जलता जावे ऐसा दीप जला ले।
अवधू ऐसा दीप जलाले।।
एक नार है सार जनावे सोई ताहि जगाले।
अवधू ऐसा दीप जलाले।।
भीतर बैठ के दीप ज्योति में अपनी ज्योति मिलाले।
अवधू ऐसा दीप जलाले।।
ऐसो कौन जो अपने हाथों अपना घर हि जलावे।
अपने घर में अपने हाथों अवधू आग लगावे।
ना मैं ज्ञानी ना मैं ध्यानी ना तपसी ना योगी।
एक तत्त्व पहिचानो, सद्गुरू मिले तो आग लगावे।
ऐसा सद्गुरू राह बतावे घर घर आग लगावे।
अवधू दीप जलावे।।

अनने प्रकारेण तेनाप्युक्तं यत् तत्रैव स्थिरदीपप्रकाशः स्वात्मन्येव पश्येति।

इस प्रकार गोपीचन्द्र जी ने भी कहा कि अपने भीतर ही स्थित स्थिर दीप का प्रकाश देखो।

सर्वं ज्ञानं शारदा दत्त मेतत्,
लब्धं सद्यः कुण्डलेशानुयातम् ।
भूयात् प्रीत्यै साधकानां हिताय
योगः श्रेष्ठः शक्तिपातानुविद्धः।

यह सम्पूर्ण ज्ञान भगवती शारदा से स्वयं श्री गोरक्षनाथ बाबा की उपस्थिति में मुझे प्राप्त हुआ है। शक्तिपात विद्या से परिपूर्ण यह श्रेष्ठ योग साधकों को कल्याण प्रदान करे और उनकी तुष्टि करे।

२९-११-६२ सायम् ।।५५।।

अथ शमन्यन्तरं वाक्परिज्ञानम् ।।२३।।

अब शमनी के पश्चात् वाक्परिज्ञान का प्रकरण प्रारम्भ होता है।

शमनी सस्मिता दशा या भेदद्वयं करोति शमनीं उन्मनीं च। शमनी दशायां समत्वाभासानन्तरं वाक्बोधोऽपिजायते। वाक्चतुष्टयं परा पश्यन्ती मध्यमा वैखरी। या परा सा वहिर्ज्ञान शून्या अन्तर्व्याख्येया। या च पश्यन्ती वाक् सा द्विविधा भवति।

शमनी वह अस्मिता दशा है जो शमनी उन्मनी इन दो भेदों को करती है। शमनी दशा में समत्व के आभास के अनन्तर वाग्बोध भी होता है। वाणी चार प्रकार की होती है- परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी, जो परा वाणी है वह बहिर्ज्ञान से शून्य होती है और उसका अनुभव भीतर ही भीतर होता है, जो पश्यन्ती वाणी है वह दो प्रकार की होती है।

अन्तर्ज्ञानं वहिर्ज्ञानं उभयं सममेव वा।
ज्ञायते तत्रतां विज्ञाः पश्यन्ती संज्ञकां विदुः।।

अन्तर्ज्ञान और बहिर्ज्ञान दोनों ही जब एक साथ होते हैं, विज्ञ जन उस वाणी को पश्यन्ती नाम से कहते हैं।

वाग्देवी नयने विष्टा नयने वाक् समाहिते।
दर्शनं भाषणं सर्वं तत्र संजायते वृहत् ।।

वाग्देवी जब आँखों में स्थित होती है और आँखें जब वाणी से ऐक्य प्राप्त करती हैं, तभी सब प्रकार का देखना और बोलना हुआ करता है।

अन्तर्वाह्यज्ञानस्य समनस्का स्थितिः पश्यन्ती इति। यां केचित् शमनीति वदन्ति। वस्तुतस्तु शमन्यूर्ध्वगता सा पश्यन्ती भवति। सा च द्विपदी। वाह्याभ्यन्तर ज्ञानयुक्ता।

अन्तर्वहिर्ज्ञान की जो समनस्का स्थिति है उसे पश्यन्ती कहते हैं। कोई उसे शमनी भी कहते हैं। वस्तुतः पश्यन्ती वाणी शमनी से ऊर्ध्वगता होती है और वह द्विपदा होती है।

सर्जनाभिमुखी सा च अन्तराभिमुखी तथा।
अत एव च पश्यन्ती द्विपदी प्रोच्यते बुधैः।।

पश्यन्ती वाणी सर्जनाभिमुखी अर्थात् बाह्यसृष्टि के अभिमुख और अन्तर्मुखी दोनों होती है। आँखों से वह बाहर देखती है और भीतर से देखी सुनी वस्तु को स्वर देती है, इसीलिये उसे पश्यन्ती कहते हैं।

पश्यन्तीं गत्वा तस्या अधिगमं च कृत्वा तद्विविधं ज्ञानं जायते। ध्यानात्मकं ज्ञानात्मकं च। तदेवान्तर्गतं बहिर्गतं च भवति। ज्ञानस्य संयोगः तथैव तत्र विद्यते यथा शाखा मूलावच्छिन्नं ज्ञानम् । कश्चिद् वृक्षारूढः वंक्तुं शक्नोति यत् शाखासंयुक्तोऽस्मि, मूलसंयोगी चास्मि। तद्वत् पश्यन्त्यां ज्ञानध्यानात्मकः द्विविधः संयोगः जायते। तत्र सर्वं रहस्यात्मकं यत् किञ्चिदपि परमस्य परमायाश्च परमानन्दावस्थादिकं सुस्पष्टतयानुभूयते।

पश्यन्ती में पहुंच कर उसका अधिगम करके उसका द्विविध ज्ञान होता है। ध्यानात्मक, और ज्ञानात्मक। वही अनतर्गत और वहिर्गत होता है। ज्ञान का संयोग वहाँ उसी भांति शाखा और मूल से व्याप्त ज्ञान। कोई पेड़ पर चढ़ा हुआ व्यक्ति कह सकता है कि मैं शाखा से संयुक्त हूं और वृक्ष की जड़ से भी सम्बन्धित हूं। उसी प्रकार पश्यन्ती में ज्ञान और ध्यान से मिला द्विविध संयोग रहता है। वहाँ सभी रहस्यात्मक परमा शक्ति और परमशक्तिमान का परमानन्दावस्था वाला ज्ञान सुस्पष्टतया से अनुभव में आ जाता है।

पश्यन्ति साधकाः सर्वे पश्यन्तीं प्राप्य तात्विकम् ।
परमानन्दसम्भूतं स्वरूपमद्भुतात्मनः।।

पश्यन्ती को प्राप्त करके साधक लोक परमानन्द से उद्भूत अपने तात्विक और उद्भूत रूप को देखने लगते हैं।

तदैव समागता श्री माता श्री आनन्दमयी अपि ध्यानसमागता कुण्डलेश्वरानुज्ञया वदति।

उसी समय कुण्डलेश्वर श्री गौरक्षनाथ बाबा की अनुज्ञा से ध्यान में उपस्थित हुई श्री आनन्दमयी माँ ने कहाः-

श्री आनन्दमयी माँ की वाणीः-

सब ठीक है, पहिले सुनना पड़ता है, तब जानना पड़ता है। तब देखना होता है और पाना भी हो ही जाता है। इसलिये सत्संग की बात कही गई है। जब सुनेगा ही नहीं, जानेगा कैसे? और जब जानेगा ही नहीं तब देखेगा क्या। और बिना देखे कैसे पावेगा ? जैसे "रामू यहाँ आ" जब रामू सुनेगा ही नहीं कि मुझे पुकारा जा रहा है और न सुनने पर और न जानने पर वह आयेगा क्यों ? जब आयेगा ही नहीं तो उससे जो काम होना था वह नहीं होगा। अतः सुनो और जानों, वहाँ अलख की सत्ता का ज्ञान होता है अनन्त है, अखण्ड है, अद्वैत है और अभेद्य है। अनादि है, अज है, अरूप है उसी को "लखे" अर्थात् देखा जाता है। इसलिये ऐसे दर्शनात्मक ज्ञान को ही अनिर्वचनीय ज्ञान कहते हैं।

अकथ कथा कछु कहीं न जावे।
ऐसा है वह अलख बतावे।।

३०-११-६२ प्रातः को बैठने का अवकाश नहीं मिल सका।

३०-११-६२ सायम् ।।५६।।

तदा महाशिवदर्शनम् शिवासहितम् ।।२४।।

तब महाशिव के दर्शन होते हैं। महाशिवा शक्ति के सहित।

सस्मितायाः या अवस्था समनस्का अमनस्का व प्रोक्ता तत्र समनस्का शमनी शब्देन व्याख्याता। या च अमनस्का स्थितिः सा उन्मनीति ज्ञायते। तस्यां दशायां उत्कर्षरूपेण केवलं मननमेव भवति। यतः सैव प्रकृष्टा अन्तर्ज्ञानस्य महादशा वर्तते।

सस्मिता की जो अमनस्का और समनस्का दशा कही गई हैं वहाँ समनस्का शमनी शब्द से बता दी गई है। जो अमनस्का स्थिति है उसे उन्मनी कहते हैं। उस दशा में उत्कृष्ट रूप से केवल मनन चलता है क्योंकि वही अन्तर्ज्ञान की महादशा होती है।

अन्तर्ज्ञानदशा प्रोक्ता बाह्यज्ञानविवर्जिता।
तत्र सा वाक् परा दिव्या गुहाबद्धानुभूयते।।

बाह्यज्ञान से विवर्जित जो अन्तर्दशा होती है उसमें दिव्य परा वाणी गुहा के भीतर अनुभव में आती है।

पूर्वं ज्ञानं च ध्यानं च उभयं ज्ञायते पृथक् ।
पश्चात् च ध्यानजं ज्ञानं केवलं परिशिष्यते।।

पहिले ज्ञान और ध्यान दोनों अलग-अलग रूप में अनुभूत होते हैं। फिर केवल ध्यान समद्भूत ज्ञान ही शेष रह जाता है।

अत एवोच्यते वाक् सा परा एक पदीति च।

परा एकपदी प्रोक्ता पश्यन्ती द्विपदा स्मृता।।

इसीलिये परा वाणी को एक पदी कहा गया है और पश्यन्ती को द्विपदा बताया गया है।

मध्यमा अष्टपादैश्च नवमी वैखरी भवेत् ।

वैखरी नवधा व्याप्ता नवखण्ड-विराजिता।।

मध्यमा वाणी अष्टपदी होती है और वैखरी वाणी नवपदा। वैखरी वाणी नौखण्डों में व्याप्त होकर विराजती है।

परावाणी महादेवस्य महाशक्ति समन्विता दिव्यज्ञानं महाशिवसंज्ञकं बोधयति। यच्च समाधिजं ध्यानजमपि कथ्यते। मूलात्मकं ज्ञानं तु वर्तते एव। यतः "छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम्" इति शास्त्रोक्तिः।

महादेव की शक्ति से समन्वित परावाणी महाशिवं के दिव्य ज्ञान का बोध कराती है। जिस ज्ञान को समाधिज ज्ञान या ध्यानज ज्ञान भी कहते हैं। मूलभूत ज्ञान तो वहाँ भी रहता ही है, क्योंकि "मूल के नष्ट होने पर न पत्ते रहते हैं और न शाखा ही रहती है" ऐसी शास्त्रों की उक्ति है।

परावाक् शमन्युन्मन्योः अन्तराले प्रादुर्भवति। तद्विषये मनीषिणः स्वात्मानुभूतिपरायणाः विज्ञाः वदन्ति यत् परायाः स्थानं मूलाधारे वर्तते। तत् सत्यं, किन्तु अत्र किंचित् विचारणीयं भवति। साधनावस्थायां गुदभागपर्यन्तं अधः उपरि च मूलाधारसंज्ञकं स्थानम् । किन्तु सिद्धावस्थायां सहस्रारोपरि स्थितमपि मूलाधाररूपेण स्वीक्रियते। तत्रैव परोदयः। "पा मूलाधारे" इति। अत एव कथितं चः-

"तत्रैव यद् गुहास्थानं तत्र सन्निहिता परा"।

परा वाणी शमनी और उन्मनी के अन्तराल में उत्पन्न होती है। आत्मानुभूति में परायण मनीषी योगशास्त्रज्ञ महात्मा लोग परा वाणी का स्थान मूलाधार में बताते हैं। वह है तो सत्य, किन्तु इस पर कुछ विचारणीय है। साधनावस्था में गुदभाव पर्यन्त और उसके ऊपर मूलाधार संज्ञक स्थान है। किन्तु सिद्धावस्था में सहस्रार के ऊपर स्थित भी एक मूलाधार कहा गया है। वहीं पर परा वाणी का उदय होता है। इसलिये शास्त्र में कहा गया है कि सहस्रार के भीतर जो गुहास्थान है वहीं परा वाणी छिपी रहती है। परा वाणी का मूलाधार वही स्थान है।

अस्तु, यदा उन्मन्यवस्थायां पराज्ञानं जायते तदा अन्तर्दृष्टि मयं सर्व महानन्दमनुभूयते। यद्यपि सा दशा अनिर्वचनीया तथापि यदनुभूयते तत् ज्ञाताज्ञेयभावेन दृश्यते, श्रूयते ज्ञायते प्रोच्यते च।

अच्छा जब, उन्मनी अवस्था में परावाणी का ज्ञान होता है तब सब महान् आनन्द अन्तर्दृष्टिमय ही अनुभव में आता है। यद्यपि वह दशा अनिर्वचनीय होती है, फिर भी उसमें जो कुछ अनुभूत होता है वह ज्ञाता और ज्ञेय भाव से देखा, सुना समझा और कहा जा सकता है।

९-११-६२ प्रातः ।।५७।।

ज्ञायते तत्र ज्ञातव्यो महादेवो महेश्वरः।

महेशश्च महाशक्ति मण्डितः सा परा दशा।।

जहां पर महाशक्ति से मण्डित महेश्वर महादेव जो ज्ञातव्य हैं, वे ज्ञात होते हैं उस स्थिति को परा दशा कहते हैं।

त्रिकालज्ञानमस्यामेव दशायां प्रादुर्भवति। यस्याश्च—

त्रिकाल ज्ञान इसी अवस्था में प्रादुर्भूत होता है।

ऊर्ध्वमूलमधः शाखः पत्रपत्रसमन्वितः।

महावृक्षः शरीरं तत् महामूले कृताश्रयः।।

पत्र पत्र से समन्वित शरीर रूपी महावृक्ष जिसकी जड़ ऊपर और शाखायें नीचे हैं, वह अपने मूल (सहस्रार) के आश्रित है।

तत्र मूले परा वाणी महाशक्ति विमण्डिता।

महा बोधकरी देवी महानन्दप्रदायिनी।।

उसी मूल (सहस्रार) में महाशक्ति से विमण्डित परा वाणी निवास करती है, जो महाबोध को देने वाली और महानन्ददायिनी है।

आनन्दयति च साधकान् उत्कर्षरूपेण मननं च कारयति स्वयमेव बीजाङ्कुरवत् तस्याः स्थितिः।

वह परा वाणी साधकों को आनन्द प्रदान करती है और उत्कर्षरूप से साधकों को मनन कराती है। बीज और अंकुर की भाँति उसकी स्थिति है।

यथा बीजः धरायां शक्तिं अन्तर्मुखीं करोति, तद्वत् परापि आधारे निहिता बहिर्मुखात् अन्तर्मुखी भवति। यथा च बीजांकुरः प्रस्फुटति तस्याः महानन्दाङ्कुराः प्रस्फुटन्ति।

जैसे बीज की पृथ्वी में शक्ति अन्तर्मुखी होती है, जैसे बीज से अङकुर फूटता है, उसी तरह परा वाणी से भी महानन्द रूपी अंकुर फूटते हैं।

१-१२-६२।सायम्।।५८।।

परामधिगत्य सर्वं ज्ञानम् ।।२५।।

परावाणी को प्राप्त करके सब ज्ञान उत्पन्न हो जाता है।

परावाणी सुधासदृशा महानन्दमयी भवति। तामधिगत्य साधकाः त्रिकालज्ञाः भवन्ति। यद् भूतं यच्च भाव्यं सर्वं जगत् ज्ञानमयं हस्तामलकवद् भवति। तत्तु महाशक्त्युद्बोधनेनैव।

परा वाणी सुधा की भाँति महानन्दमयी होती है। उसे प्राप्त करके साधक त्रिकालज्ञ बनते हैं। जो कुछ भविष्य में होता है, समस्त जगत् का ज्ञान हस्तामलकवत् हो जाता है और यह सब महाशक्ति के उद्बोधन से ही होता है।

परा = प, र, आ। इत्यस्यार्थः। प पातालात् ऊर्ध्वं र रमन्ती रमणं वा विधाय चक्रेषु नाडीषु संस्थानेषु शक्ति संचरणं कृत्वा आ आकाशे गमनं विधाय महाशक्तिरूपं धारयति। अत एव कथितमस्ति।

"पाताल की गंगा आकाश चढ़ा ले" अथवा

"धमक के फेरि आकाश धावे" इति

परायाः महाशक्तेः परशिवस्य अर्थात् महादेवस्य धारणाख्ये ज्ञानानुभवो जायते। तदा तत्र यदनुभवगतं तन्मेधया भवति।

परा स्वरूप महाशक्ति और परम शिव महादेव दोनों की धारणा में ज्ञानानुभव होता है। तब वहाँ जो अनुभव होता है वह मेधा के द्वारा होता है।

मेधा यस्यां महाशक्तेः धारणं भवति सा मेधा। तस्या एव अभ्युदयो जायते तत्र। मे = म + ई + धा = मेधा। मे महादेवस्य महाशिवस्य या ई चित्शक्तिः महेशी महादेवी वर्तते द्वयोः तयोः धा धारणं स्वस्मिन्नेवानुभूतिः यया क्रियते, यया च भवति स्वयमेव सा मेधा भवति। अत एव निष्कलंकाः मन्त्रद्रष्टारः ऋषयः मेधां कामयन्ते स्म। कथितं च तैरेव ऋषिभिर्यत् "यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु"।

जिसमें महाशक्ति का धारण होता हे उसे मेधा कहते हैं। उसी मेधाशक्ति का वहां अभ्युदय होता है। म + ई + धा = मेधा। म अर्थात् महेश की जो ई अर्थात् चित् शक्ति है

उसका धा अर्थात् धारण जिस स्थिति में हो वह मेधा है। महेशी और महेश को ही अपने भीतर धारण करते हुए जो अनुभव हो वह स्वयं मेधा है। इसीलिये निष्कलङ्क निर्मल ऋषिगण मेधा शक्ति की कामना किया करते थे। ऋषियों ने कहा भी है कि "जिस मेधा की उपासना देवगण और पितर लोग करते हैं उसी मेधा द्वारा मुझे हे अग्निदेव ! मेधा सम्पन्न करो।"

मेधावित्वेन भावनात्मिका मन्त्रदृष्टिश्च प्राप्यते। यया सर्वं तदात्मकं रहस्यं भासते। अत एव मेधायाः कामना क्रियते। अपरं च।

मेधावी होने से भावनात्मक मन्त्रदृष्टि भी प्राप्त होती है, जिससे मन्त्रगत देवता का तदात्मक सभी रहस्य ज्ञात हो जाता है। इसीलिये मेधा की कामना की जाती है। और भी कहा है-

सम्प्राणतां दिव्यपरामवस्थां मेधाविनो शक्तिभृतो मुनीन्द्राः।

जानन्ति सर्वां च त्रिकालवार्ता ततश्च संयान्ति महामहेशम् ।।

दिव्य और परा अवस्था को पहुंचे हुए मननशक्ति से सम्पन्न मेधावी मुनि लोग तीनों कालों की सभी बातें जान लेते थे और फिर महा महेश के समीप पहुंच जाते थे।

महा महेशीं च समाभिराध्य शान्तोपसर्गाः प्रभवन्ति नित्यम् ।

शून्याधिसंस्थानभिव्यक्त रूपां मेधां महाशक्तिप्रदां भजन्ते।।

महा महेशी की आराधना करके साधक लोग निरन्तर समस्त उपसर्गों को शान्त करते हैं और शून्य संस्थान में अभिव्यक्त महाशक्ति तक पहुंचाने वाली मेधा शक्ति को प्राप्त कर लेते हैं।

इत्यनेनरूपेण परानुभूतिं कृत्वा तेऽपि महानन्दयुताः भवन्ति। तत्र नास्त्यानन्दस्य क्षरणम् ।

इस प्रकार परानुभूति करके वे भी महानन्द युक्त हो जाते हैं। वहां आनन्द का कभी क्षय नहीं होता है।

२-१२-६२ प्रातः ।।५९।।

परावाणीं समधिगम्य या समाधेः अवस्था प्रादुर्भवति सा युक्तावस्था विद्यते। तत्र न वा सुखं न वा दुःखं किंचित् । तत्र विषयेः-

परावाणी को प्राप्त करके जो समाधि की अवस्था होती है वहाँ न तो सुख है और न कुछ दुःख। उसके विषय में:-

केवलं ज्ञान सम्भूतिः भासते शाश्वती प्रभा।

तत्र न श्यामं न श्वेतं न कृष्णं न च शुक्लकम् ।।

वहाँ केवल शाश्वती ज्ञान सम्भूति की प्रभा भासमान रहती है। वहाँ न श्याम है न श्वेत है न शुक्ल कृष्ण मिश्रण है। अर्थात् सत्त्व, रज तम तीनों से ऊपर की स्थिति है।

न रागो न द्वेषो न दुःखं सुखं च।
एका कला पूर्ण महास्थिता सा।
सानन्दिता व्यक्त महेश शक्तिः।।

वहाँ न राग है, न द्वेष है, न सुख है, और न दुःख है। एक महान् परिपूर्ण कला आनन्द में व्यक्त होने वाली महेश की शक्ति ही केवल रहती है।

किंचित् कालपर्यन्तं सर्वचक्रविनिर्मुक्तं भवति तत् ।

कुछ काल पर्यन्त समस्त प्रपंचक्र से विनिर्मुक्त स्थिति रहती है और तबः-

अखण्डा अनन्ता अभेद्या अक्षेद्या।
अजा निर्गुणा रागद्वेषादि मुक्ता।
महाशक्ति माहेश्वरी मुक्तिदात्री।
महामुक्ति मुक्ता च सद्यः प्रसूते।।

अखण्ड, अनन्त, अभेद्य, अक्षेद्य, अज, निर्गुण, रागद्वेष से सर्वथा मुक्त स्थिति में माहेश्वरी महाशक्ति शीघ्र ही महामुक्ति रूपी अमूल्य मुक्ताफल को देती है।

अनेन प्रकारेण अननुभूतापि साऽऽनन्दभूता, उद्भूतापि सा अनुद्भूता, अजापिसा अनजा इत्यादि रूपस्याधारेण अनिर्वचनीया अनाख्येया भवति।

इस भांति वह अनुभूत न होते हुए भी आनन्द रूप में अनुभूत ही है। व्यक्त होते हुए भी अव्यक्त है। अजन्मा होते हुए भी जात इत्यादि रूप से उसे अनिर्वचनीय कहा जा सकता है।

महाशक्ति समायुक्तास्ततो यान्ति परां गतिम् ।।

महाशक्ति से समायुक्त होकर फिर परमपद को प्राप्त कर लेते हैं।

ये महायोगशक्ति समाराधकाः महाशक्तिसम्पन्नाः भवन्ति त एव तां परां वाचम् अधिगच्छन्ति। यां प्राप्य सर्वदानन्द युक्ताः समदुःखाश्च जायन्ते। न च भीता भवन्ति। चिदधिगमनेन महाचिदोपलब्धिं कृत्वा महेश्वरस्वरूपं ज्ञातुं प्रभवन्ति च।

जो महायोग शक्ति के साधक हैं वे महाशक्ति सम्पन्न हो जाते हैं और वे ही उस परा वाणी को प्राप्त करते हैं जिसे, प्राप्त करके सदा आनन्दयुक्त होकर सुखदुख में सम होते हुए निर्भय हो जाते हैं। चित् शक्ति की प्राप्ति द्वारा महाचित् शक्ति से संयुक्त होकर महेश्वर के

स्वरूप का ज्ञान करने में समर्थ हो जाते हैं।

२-१२-६२ सायंकाल।।६०।।

परावस्थां गत्वा अन्तर्दृष्टिः स्थिरा भवति। तदा सोऽहं इत्यात्मकस्य ज्ञानस्योदयो भवति। तस्मिन् ज्ञाने अजपा गायत्र्याः ज्ञानं पूर्वमेव जायते। यद्यपि अजपा गायत्रीं जीवाः नित्यमेव जपन्ति किन्तु तत् सर्वमज्ञातरूपमेव, यदा चान्तर्दृष्टिः परानुभूतिर्भवति तदा अजपागायत्र्याः ज्ञानं सुस्पष्टं भासते।

परावस्था को पाने पर अन्तर्दृष्टि स्थिर हो जाती है। तब "मैं वही हूं" इस प्रकार के ज्ञान का उदय होता है। उस ज्ञान में अजपा गायत्री का ज्ञान पहिले ही हो जाता है। यद्यपि अजपा गायत्री को प्राणी लोग नित्य जपा करते हैं। फिर भी वह सब जप अज्ञान रूप में ही होता है। जब अन्तर्दृष्टि और परा की अनुभूति होती है तब अजपा गायत्री का ज्ञान सुस्पष्ट हो जाता है।

अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्षदायिनी।

यस्याः ज्ञानसमापन्नः नरो याति परां गतिम् ।।

अजपा नामक गायत्री योगियों को मोक्ष देने वाली है। जिसके ज्ञान से सम्पन्न हुआ साधक परम गति को प्राप्त करता है।

सोऽहं तद्बीज मन्त्रं च चैतन्येन समन्वितम् ।

प्रजप्य स्वयमेवेत्थं हंसाकारः सदाभवेत् ।।

उसका बीजमन्त्र "सोऽहं" है जो चैतन्य से समन्वित है, स्वयं ही इसका जप करके साधक "हंसरूप" बन जाता है।

"सोऽह" मित्यस्य भावना तदाकार प्रतीतिः न च स एव तद्वत् तद्रूपः इत्यर्थः। तदा महादेवः तस्य च महाशक्ति ज्ञानात् परमज्ञानम् । च अजपा जाप ज्ञानमेव। "हंसोहंसे ति तद्गतं जायते अत्र निश्चितम् । अस्तु कथितं चः-

"सोऽह" इसकी भावना का तात्पर्य उसके आकार की प्रतीति है। वही नहीं, किन्तु उसी प्रकार का। तब महादेव और उसकी शक्ति के ज्ञान से परम ज्ञान होता है। अजपा ज्ञान से ही "हंस हंस" इसकी प्रतीति अवश्य होती है। अस्तु, कहा भी है।

यदा देवी शक्तिः प्रभवति स्वरूपे बलवती।

तदा सर्वं सोऽहं गुणित गुणज्ञानं भगवती।।

प्रबोध्यान्तर्दृष्टिं स्थिरयति समां साम्यगुणकाम् ।

तदा जातं सर्वं जगदपि महादेवसदृशम् ।।

जब महाशक्ति देवी बलवती और समर्थ होती है तब "सोऽहं" इसके सभी अनन्त गुणों का, ज्ञान का प्रबोध कराती हुई साम्यगुणवाली अन्तर्दृष्टि स्थिर कर देती है और तब समस्त जगत् महादेव मय ही प्रतीत होने लगता है।

पराविषये योगेश्वरेण कुण्डलेश्वरेण स्वयमागत्य कथितं यत्-

परा के विषय में योगेश्वर कुण्डलेश्वर श्री गोरक्षनाथ बाबा ने स्वयं आकर कहा कि:-

गोरखवाणी:- परा का ज्ञान विशिष्ट ज्ञान है। पर उसके ज्ञान मात्र से कुछ नहीं होता। जब तक वहाँ तक पहुंचने का अभ्यास नहीं होता। कोरे ज्ञान से लाभ नहीं "ज्ञानं भारं क्रियां विना"। जब तक समर्थ गुरू नहीं मिलता, तबतक परा की प्राप्ति होनी कठिन होती है। परा तो शक्ति है जो प्राणों को जीव तत्त्व-शक्ति युक्त कर देती है। आँख कान वाणी वहाँ सब मौन होते हैं। केवल जीवात्मिका शक्ति ही समर्थ रहती है। वहाँ तो दृष्टिपात करते ही जीव तत्त्व की सृष्टि तक हो सकती है। इसीलिये परा को जीवन्ती भी कहते हैं। उसमें जीवन विकासिनी शक्ति आ जाती है। निगुरू और निगुरू का चेला केवल अभ्यास करके वहाँ तक नहीं जा सकता। इसीलिये समर्थ गुरू की आवश्यकता होती है।

समर्थगुरू प्राप्त्यनन्तरं स्वयं बोधः ।।२६।। तत्राधिगमश्च ।। तत्र महाशक्तेः स्फुरणम् ।।२७।। विशिष्टिज्ञानं च ।।२८।। यथा भृंगकीटन्यायात् ।।

समर्थ गुरू की प्राप्ति के अनन्तर स्वयं बोध हो जाता है। वहीं प्राप्ति भी होती है। महाशक्ति का भी स्फुरण तभी होता है। विशिष्ट ज्ञान भी तभी होता है। भृंग कीट की भाँति:- जैसे-

गोरखवाणी:- भृंगरी के समक्ष जो कोई भी कीट आ जाता है भृंगरी उसके मलिन तत्वों को खींचकर उसे अपने रंग में रंग लेती है। कीट को कोई ज्ञान नहीं होता है। भृंगरी को भी तत्त्व परिवर्तन का, स्वरूप में रूपान्तरित करने का ज्ञान नहीं होता। फिर भी निरन्तर अभ्यास-सामर्थ्य द्वारा भृंगरी कीट का रूपान्तर कर देती है। तब फिर समर्थ अभ्यासी ज्ञानवान् गुरू अपने सामर्थ्य द्वारा शिष्ट साधक को अधिकारी बनाकर उसमें अपनी शक्ति का संचार कर उसे भी पर तक पहुंचने का अधिकारी बना देता है। परा के परमोत्कृष्ट ज्ञान के ज्ञाता उस पर पूर्णाधिकार करने वाले बाबा गम्भीरनाथ जी और बाबा विशुद्धानन्द जी थे। उन्होंने परा की शक्ति पर पूर्ण अधिकार कर लिया था। श्री सत्येन्द्रनाथ और गुरू मत्स्येन्द्रनाथ जी तो परा की पूर्णता के साथ-साथ उसके भी ऊपर थे। यह बड़ी महद्दशा है। पर गुरू कृपा या अनुग्रह के बल पर सरल और सुबोध हो जाती है। इसलिये पूर्व में कहा गया है कि "सा तु अनुग्रहैक लभ्या"। अतः ज्ञान, ज्ञान, ज्ञान कोरे ज्ञान से कुछ नहीं होता। कोरा ज्ञानी भारवाही गर्दभ के समान है।

अतः गुरोरनुग्रहात् त्वरया गच्छति स्वाभ्यासेन मन्दगतिः महादेवं यावत् ।।

इसलिये गुरू के अनुग्रह से मन्दगति वाला शिष्य भी गुरू के समीपवर्ती रहकर तीव्र गति से महादेव तक पहुंच जाता है।

३-१२-६२ प्रातः ।।६१।।

अथ संगमस्थान लाभः। संगमः संगमनं संगतिः।

अब संगम स्थान की प्राप्ति-सम्बन्धी प्रकरण कहा जाता है। संगम का अर्थ संगमन और संगति है।

इडा च पिंगला चैव सुषुम्णा गुप्तरूपिणी।
त्रयाणां संगमो यत्र प्रयागस्तत्र वै भवेत् ।।

इडा, पिंगला और गुप्तरूपिणी सुषुम्णा इन तीनों का जहाँ पर संगम होता है वहीं पर प्रयाग होता है।

तत्र स्थितो महादेवः महादेवी सविग्रहः।
तत्र प्राप्तिं विधायैव ततो याति परां गतिम् ।।

वहाँ प्रयाग में महादेवी सहित साक्षात् महादेव जी निवास करते हैं। प्रयाग जाकर ही तब परा गति को साधक प्राप्त करता है।

पराबोधानन्तरं प्रयागस्नानस्य सुखमनुभूयते। यत्र परागतिसमुपलब्धं सर्वं ज्ञानं विशुद्धरूपेणोपलभ्यते। इयं च बोधावस्थैव। ऐश्वर्यावस्था यदाऽऽगच्छति तदा तु ईश्वरस्य महेश्वरस्य महेश्वर्याश्च दर्शनं ज्ञानं सुलभं जायते। अन्तर्यागं बहिर्यागं च कृत्वा निष्कलमषो भूत्वा पुनः प्रव्रज्य प्रयागं गच्छति।

परा के बोध के अनन्तर प्रयाग स्नान का सुख अनुभूत होता है। वहाँ परा दशा में प्राप्त समस्त ज्ञान विशुद्ध रूप में दीखता है। यह केवल बोधावस्था है। जब ऐश्वर्यावस्था आती है, तब तो महेश्वर और महेश्वरी का दर्शन और ज्ञान सुलभ हो जाता है। अन्तर्याग ओर बहिर्याग करके निर्मल बनकर फिर विरक्त होकर प्रयाग जाया जाता है।

अर्थात् पराज्ञानादुपरि यागं करोति। पूर्णाहुतिं ददाति। यागशब्दस्य अर्थः- देवयजनं, पूजनं, त्यागः दानमिति। तत्र विषय विनिर्मुक्तो हि गच्छति।

अर्थात् परा के ज्ञान के ऊपर की स्थिति में याग करता है। पूर्णाहुति देता है। याग शब्द का अर्थ है - देव यजन, देव पूजन, त्याग और दान। वहाँ विषय विनिर्मुक्त साधक ही जाता है।

प्रक्षाल्य सर्वं विषयात्मकं मलं नदीप्रवाहे सततं समाहितः।

प्रयागतीर्थं च प्रयाति सद्यो योगी च बाह्यं जलमाचकांक्षते।।

नदी के प्रवाह में समाहित चित्त से सभी विषायात्मक मलों को धोकर योगी प्रयाग तीर्थ में चलता है और उसे बाहरी जल की आवश्यकता नहीं रहती है।

सा सुष्मणा गुप्त सरस्वती यदा ददाति मार्गं प्रकरोति शक्तिम् ।

संचारयोग्यां च तदा मनुष्यः प्रयागतीर्थं प्रति याति सत्वरम् ।।

जब गुप्त सरस्वती रूपी सुषुम्णा नाड़ी मार्ग दे देती है, तब शक्ति को संचार योग्य बना देती है और तब साधक शीघ्र प्रयाग को चल पड़ता है।

इडा चन्द्रात्मिका गंगा यमुना पिंगला मता।

सूर्यजा स च एवं तत् सुषुम्णा च सरस्वती।।

इडा नाड़ी चन्द्रात्मिका है और गंगा है। पिंगला सूर्यनाड़ी है और सूर्यपुत्री यमुना है। सुषुम्णा गुप्त रहती है। इसलिये वह सरस्वती है।

त्रयाणां सरितां ज्ञानं पवित्रं वारिसंज्ञकम् ।

यो जानाति महोयागी तत्र स्नात्वा प्रसीदति।।

इन तीनों नाड़ियों का ज्ञान ही पवित्र जल कहा जाता है। इस रहस्य को जो जानता है वही महायोगी है और वह वहाँ स्नान करके परितृप्त हो जाता है।

तत्र- **महादेवो देवः परमपरमाशक्ति सहितः,**

महाशक्तिर्देवी प्रकटयति तस्याः गुणमपि।

तदा शम्भोर्ध्यानं भवति नियतं स्वात्मसदृशम् ,

पुनः प्राप्नोत्येषः मुदित प्रतिभः शाम्भवमपि।।

अपनी परमा शक्ति से समन्वित महादेव फिर अपनी शक्ति का गुण और महाशक्ति को प्रकट कर देते हैं। तब भगवान् शिव को भी साधक अपने ही सदृश देखने लगता है और प्रसन्न प्रतिभा सहित वह शाम्भव पद को भी प्राप्त कर लेता है।

सोऽहं, शिवोऽहं इत्यात्मकं सर्वबोधात्मकं ज्ञानं प्रयाग एव भवति। तत्र सर्वं सममेव दृश्यते। शम्भुः, सर्वत्र समभावना। समभावत्वेन वा शं कल्याणाय भवति शम्भुः। सर्वत्र समभावना। समत्वभावेन वा शं कल्याणं भवति। तदा भगवती शाम्भवी शक्तिः प्राणिमात्रमहमेव, यथा अहं तथा सर्वे प्राणिनः इति बोधं कारयति। अत एव च शास्त्रोक्तिः सार्थवती भवति। "ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किंचिद् जगत्यां जगत्" इति।

"मैं वही हूँ", "मैं शिव हूँ" इस प्रकार का बोधात्मक ज्ञान प्रयाग में ही होता है। वहाँ सब कुछ समभाव में दीखता है। शम्भु का तात्पर्य होता है, सर्वत्र सम भावना, समत्व भाव से "शं" अर्थात् कल्याण करने के लिये जो तत्पर रहे। सर्वत्र सम भावना का यह भी अर्थ है कि सर्वत्र बराबर जब सम भाव से कल्याण होता है तब भगवती शाम्भवी शक्ति समस्त प्राणिमात्र को आत्मरूप ही देखती है। जैसे मैं हूँ वैसे ही सब प्राणी हैं इस भाँति का बोध कराती है। इसलिये यह शास्त्रोक्ति अर्थवती होती है कि "इस जगत् में सर्वत्र ईश्वर ही व्याप्त है"।

निरीक्षणपरीक्षणदृष्टिः सुस्थिरा भवति। एनामेव शाम्भवी मुद्रामिति योगिनो वदन्ति। अत्र पापानां सत्ता न विद्यते।

प्रयाग में निरीक्षण परीक्षण दृष्टि सुस्थिरा होती है। इसी को शाम्भवी मुद्रा योगी लोग कहते हैं। शाम्भवी मुद्रा की स्थिति में पाप की सत्ता नहीं है।

पापं स्वमार्गं स्वाभाविक मार्गं विहत्य अन्यत्र गमनं पापम् । अन्यत् न किमपि। अस्तु। प्रयागगमनात् पूर्वमेव शक्ति जागरणात् साधकः निष्पापो भवति। प्रयागं गत्वा तु निर्विषयात्मकभावोऽपि जायते। तदा माहेश्वरी स्थितिः।

अपने स्वाभाविक मार्ग को छोड़कर अन्यत्र गमन करने को पाप कहते हैं, किसी दूसरे को नहीं। प्रयाग गमन से पूर्व ही शक्ति के जागरण से साधक निष्पाप हो जाता है। प्रयाग पहुंचकर तो निर्विषयात्मभाव भी होजाता है। तब माहेश्वरी स्थिति प्राप्त होती है। प्रयाग मे ही शिवतीर्थ है। यही जीवन्मुक्त अवस्था कही जाती है। कुण्डलिनी जागरण से ही शिवतीर्थ में जाना होता है।

३-१२-६२ सायंकाल ।।६२।।

विरजां विमलाम्बु संयुतां दृष्ट्वा तत्र स्नात्वा तज्जलं पीत्वा विगतविकारो नरः महेश्वरं द्रष्टुं समर्थो भवति।

निर्मल जल से पूर्ण विरजा नदी को देखकर और उसमें स्नान करके तथा उसे पीकर साधक विकारहीन हो जाता है और तब वह महेश्वर का दर्शन करने में समर्थ होता है।

गोरखवाणीः- विरजा महाशक्ति है। उस शक्ति का ज्ञान होने पर या उसको प्राप्त कर लेने पर सभी प्रकार के ज्ञान सुलभ हो जाते हैं। प्रयाग में पहुंचकर विरजा, इडा, पिंगला, सुषुम्णा के निम्नस्तर पर है। वज्र अर्थात् मूलाधार से जागृता कुण्डलिनी के साथ वह भी प्रयाग तक पहुंच जाती है। वहीं उसका स्थिर निवास है। सुषुम्णा के मार्ग पा जाने पर विरजा अपने स्थान पर स्थिर हो जाती है। कहा गया है कि वह-

क्वचिच्च मन्दा त्वरया क्वचित् क्वचित् क्वचिच्च नीलाम्बुधरा विभाति।

क्वचित् सभोगा च प्रयाति सा वै तत्रैव गत्वा च यती प्रसीदति।।

वह विरजा नदी कहीं मन्दगति से, कहीं द्रुत गति से चलती है, कहीं-कहीं काले मेघ की भांति दीखती है, कहीं लहरों के फन उठाती चलती रहती है। साधक वहाँ पहुंचकर प्रसन्नचित्त हो जाता है।

गोरखवाणी:- "आगे न्हावे नाथ का चेला"। उसमें नाथ का चेला ही सर्वप्रथम स्नान करता है।

"अवधू चल तू अब रे प्रयाग",
जहाँ विराजे विरजा उसमें,
चलकर वहाँ नहा ले,
जो चाहे सो विरजा नहा के
जा प्रयाग में पा ले। अवधू.।

विरजा को योगी लोग तत्त्वनाड़ी भी कहते हैं। इसी विरजा से समस्त लघु नाड़ि-समूह का संचरण होता है, जिनमें ज्ञानादि का आभास विद्यमान रहता है। विरजा रजहीन है। वहाँ स्नान करने से योगीजन भी रजहीन अर्थात् विकार रहित हो जाते हैं। विरजा तक पहुंचने के लिये मार्ग शुद्धि की आवश्यकता होती है। महाशक्ति कुण्डलिनी जागृता होकर सुषुम्णा की गति को तीव्र कर देती है और मल शुद्धि के पश्चात् पुनः वहाँ तक सरलता से पहुंच जाता है। एक मार्ग यह भी है कि जब महाश्वास नादरूप से प्राणों को ब्रह्मरन्ध्र के ऊपर खींच वहाँ प्रयाग के स्थल पर व्याप्त हो जाता है जब मन्दध्वनि के साथ भी योगी वहाँ तक अपने प्राणों को पहुंचा कर स्नान करते हैं।

विरजा च महानाडी सर्वतत्त्वार्थबोधिनी।

तां प्राप्य स महायोगी तया सार्धं प्रमोदते।।

विरजा महानाडी समस्त तत्त्वों का बोध कराने वाली होती है। उसे प्राप्त करके महायोगी उसके साथ प्रमुदित हो जाता है।

विरजा च महाशक्तिः या च सर्वत्र गामिनी।

तत्त्वानां स्थितिरूपा सा सदैवोज्वलविग्रहा।।

सर्वत्र गमन शीला विरजा महाशक्ति जिसमें समस्त तत्त्वों की स्थिति है वह सर्वदा उज्वल विग्रह वाली है।

विरजा स्वरूपज्ञानमप्यवश्यं करणीयं विद्यते। तथाः-

विरजा के निर्मल ज्ञान को भी प्राप्त करना आवश्यक होता है। कहा भी है:-

तनुनता समुज्वला विभासिनी सूक्ष्मरूप प्रतिमा प्रहासिनी।

ऊर्ध्वमार्ग परिभोग वासिनी ज्ञानतन्तु विलसत् विकासिनी।।

वह विरजा नाड़ी बहुत पतली है, लचीली है, सदा विभासित होने वाली है। सूक्ष्मरूप में हंसती हुई, चमकती हुई दीखती है। ऊर्ध्वमार्ग की ओर चलती रहती है। ज्ञान तन्तुओं में फैलकर विकसित हो जाती है।

गोरखवाणी:- वह लघु जलवाली है। किन्तु समुज्वल है, विरज है। विभा से सदैव परिपूर्ण रहती है। सूक्ष्म रूप से प्रतिमा को अपने हास के रूप में उद्गीर्ण करती रहती है। ऊर्ध्वप्रयाग-भाग का जो भोग है अर्थात् आवर्त है, उसमें निवास करने वाली है। ज्ञान तन्तुओं का विकास कराकर उसमें विलसन शक्ति को स्थिर रूप देती है। वह ज्ञानकूप परिमण्डित है। सुषुम्णा को इसी ज्ञानकूप से शक्ति मिलती है। यह ज्ञानकूप गम्भीरावर्त सा है। सरस्वती सुषुम्णा यहाँ से ज्ञान प्राप्त करती है, इसलिये इसे भी गम्भीरावर्त नाभि कहते हैं। यह विरजा शक्ति विराट रूपवती है। अनन्त ब्रह्माण्डों की शक्तिदायिनी है। चित्शक्ति इसका एक अंश मात्र है। यह विरजा सूक्ष्म है। पश्यन्ती वाक्शक्ति और परा वाक्शक्ति के पश्चात् जब दिव्यान्तर दृष्टि होती है तब उसका बोध होता है। अतएव शास्त्र में कहा गया है कि "दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे रूपमद्भुतम्"। विरजा के उस अद्भुत विराट् रूप का दर्शन दिव्यचक्षु अर्थात् परावाणी की [illegible]प्ति के बाद ही होता है। उस विरजा की झलक पाते ही:-

कस्त्वं कोऽहं जनकः क[illegible] का ते माता भ्राता कश्च।

दारा पुत्रं वित्तं किञ्च सर्वं तत्र तु नैवं नैवम् ।।

इस प्रकार का बोध होने लगता है और अनिर्वचनीय शान्ति का भी आभास होने लगता है।

जागृता विरजा देवी महाज्ञानं प्रयच्छति।

महादेवस्य सामीप्यं तदैव प्राप्यते स्वयम् ।।

विरजा देवी जागृता होकर महाज्ञान प्रदान करती है। तुरन्त उसी समय महादेव का सामीप्य प्राप्त हो जाता है।

विरजा सम्भवं ज्ञानं विमलं कामदं मतम् ।

नानाविभूति-सम्पन्नं नानाश्चर्य-समन्वितम् ।।

विरजा से सम्भूत ज्ञान विमल और सभी कामनाओं की पूर्ति करने वाला है। नानाविध विभूतियों से सम्पन्न है और नाना प्रकार के आश्चर्यों से पूर्ण है।

नानारूपधरं नीलं लोहितं श्वेत संज्ञितम् ।

नानारूपधरं शुभ्रं शीतांशुसदृशं परम् ।।

वह विरजा नाना प्रकार के रूप धारण करती है। कभी नीला कभी लाल कभी श्वेत कभी स्वच्छ चांदनी की ज्योति सदृश।

विरजां दिव्यप्रभायुतां भगवतीं ज्ञानाम्बु संव्यापृताम् ,
चित्राधारवतीं विचित्रवदनां विद्युन्निभां कम्पदाम् ।
नित्यां नव्यनवार्थबोध जनकां तीर्थे शिवे संस्थिताम् ,
वन्दे योगिजनस्य ध्यानसरलां सर्वैक श्रेष्ठां कलाम् ।।

वह भगवती विरजा दिव्य प्रभा वाली है। ज्ञानाम्बु से परिपूर्ण है। चित्र विचित्र आधार वाली है, विचित्र मुख को धारण करने वाली है। विद्युत् की भाँति चमकीली है, शरीर में कम्पन देने वाली है। वह शिवतीर्थ अर्थात् सहस्रदल की कर्णिका में स्थित शिव में लिपटी रहती है। नित्य नवीन-नवीन बोध को देने वाली है। योगिजनों के ध्यान में सरलता से आ जाती है वह सर्वोच्च श्रेष्ठ कला है।

गोरखवाणीः- वह एक स्फटिक मणि के सदृश है। उसमें समस्त नाड़ि तन्तुओं का प्रतिबिम्ब पड़ता है। वह प्रतिबिम्बवती भी। है सर्वत्र भासप्रदा भी है।।

४-१२-६२ प्रातः ।।६३।।

वन्दे तां विरजामभेदजनकामेकामनेकां स्वकाम् ।

अभेद बुद्धि को उत्पन्न करने वाली उस विरजा को मैं नमस्कार करता हूँ जो एक होते हुए भी अनेक है।

विरजा भगवती महानाडीरूपा अथवा महाब्रह्मनाडीरूपा अथवा महाब्रह्मनाडी ब्रह्मज्ञानदायिनी वर्तते। तां ज्ञात्वैव ब्रह्मज्ञानोपलब्धि जायते।

विरजा भगवती महानाड़ीरूपा है। महाब्रह्मनाड़ी रूपा है अथवा ब्रह्मज्ञान देने वाली महाब्रह्म नाड़ी है। उसे जानकर ही ब्रह्मज्ञान की उपलब्धि होती है।

विरजाधिगमाद् ब्रह्मज्ञानम् ।।१।।

विरजा की प्राप्ति से ब्रह्मज्ञान होता है।

तस्मादेकाधिकरणम् ।।२।।

उसकी प्राप्ति से ही एकाधिपत्य प्राप्त होता है।

स्वरूपाभासः ।।३।।

उसकी प्राप्ति से स्वरूप का आभास भी होता है।

सा च सर्वत्र तत्त्वेषु ।।४।।

वह सर्वत्र तत्त्वों में व्याप्त रहती है।

सा शक्तिः ज्ञानं ददाति। यया शक्त्या सर्वत्र तदेकमेव प्रतीयते महायोगिनस्तत्स्वरूपं इत्थं पश्यन्ति।

वह शक्ति ज्ञान देती है। जिस शक्ति से सर्वत्र सब कुछ एक सा भासता है। महायोगी लोग उसके स्वरूप को इस प्रकार देखते हैं।

उर्णनाभसमतन्तुजालिकाममृताभिधृतकिरण मालिकाम् ।
विहितमार्गशुभमन्तरालिकां कामयन्ति यतिनो विशालिकाम् ।।

मकड़ी के जाल के सदृश वह व्याप्त है। अपने किरणों में अमृत भरे हुए है। अपने आप बनाये हुए भीतर के अपने मार्ग में ही छिपी रहती है, यती योगी लोग उसी विशाल सर्व-व्यापिनी विरजा भगवती की कामना करते हैं।

गोरखवाणीः- यह ऊर्णनाभ मकड़ी की भाँति स्वनिर्मित तन्तुजाल के मध्य में स्थित रहती है। वहीं से प्रति तन्तुजाल में शक्ति किरणों का प्रस्फुटन करती रहती है। यह अपने मार्ग पर स्थिर होकर प्रत्येक तन्तु को अन्तराल से ही शक्ति प्रदान करती रहती है। उसी विरजा को यती लोग चाहते हैं। यह ब्रह्मनाड़ी ब्रह्मज्ञान प्रदायिनी है। निज शक्ति उसका एक अंश मात्र है। वह पूर्ण कलावती है। कला, विकला, सकला, कलावती का वह उद्गम स्रोत है। अतः वह पूर्णा है। वह विराट रूपवती है। परन्तु उसकी प्राप्ति दिव्य चक्षुवालों को ही होती है। "दिव्यं ददामि ते चक्षुः" इसीलिये कहा गया है। पुनः "पश्यामि देवांस्तव देव देहे" का बोध होता है। भीतर ही सब देवों के दर्शन होने लगते हैं। फिर ब्रह्मज्ञान होता है जिसमें समत्व की भावना आती है। ब्रह्मज्ञानी तो वही हो सकता है जो "श्रीखण्ड च न विष्ठायां भेद पश्यति योनरः" किन्तु यह दृष्टि अत्यन्त दुर्लभ भी होती है। ब्रह्मज्ञान कोई गुड़ का गोला नहीं है जो केवल ज्ञान मात्र से या कथन मात्र से ही प्राप्त हो जाय। यह विकट मार्ग पर चलकर ही मिलता है। या फिर महामाया भगवती कुण्डलिनी की जागृति पर ही सुलभ हो सकता है। केवल जान लेने से कुछ नहीं होता। शक्ति स्वयं उस तत्त्व तक अपने आप पहुंचाती है। सीधे-साधे जाने का यही शक्ति सम्पात से शक्ति जागरण का मार्ग है। ज्ञान का मार्ग भी लम्बा मार्ग है।

मां सरस्वतीः- लम्बे मार्ग से नहीं सीधे मार्ग से चलो।

(पुनः शारदा मां ने कहा और मां श्रीआनन्दमयी जी से कहलाया।)

आनन्दमयी माँः- हाँ ठीक है, सुनना भी चाहिये, जानना भी चाहिये, देखना भी चाहिये और पाना भी चाहिये। क्रमशः शनैः शनैः बाबा कुण्डलेश्वर (गोरखबाबा) ने कहाः-

गोरखवाणीः- और जो बिना सुने जाने सीधे वहीं पहुंचा दिया जाय तो सीधा भी पहुंच सकता है। पुनः वहीं पहुंचकर देखा, पाया जायेगा। (इस कथन के बाद स्वयं क्रिया चालू हो गई)। ५-११-६२ प्रातः ।।६४।।

अनन्तां भावनीं भव्यां कामदां तन्तुतत्त्वदाम् ।
स्वाभीष्टां विरजां वन्दे ब्रह्मरूपविबोधिकाम् ।।

अनन्त रूपों में जिसकी भावना की जाती है, जो समस्त कामनाओं को देने वाली है, ज्ञान तन्तुओं के तत्वों का दर्शन देने वाली, अपना अभीष्ट देने वाली ब्रह्मरूप का साक्षात्कार करने वाली भगवती विरजा को मैं प्रणाम करता हूं।

चतुः शरीरा च चतुर्विधस्थिता विराजमाना च विराड्विभूतिभिः।
चतुर्भुजा शक्ति चतुष्टयावृता वन्दे सदा तां विरजां महेश्वरीम् ।।

जो विरजा भगवती चार शरीरों वाली है, अपनी विराटविभूतियों के सहित चारभेद से स्थित रहती है। चार शक्तियों से घिरी हुई है और चार भुजाओं वाली है उस महेश्वरी विरजा भगवती को मैं प्रणाम करता हूं।

गोरखबाबाः- विरजा सत्, चित्, आनन्द और तत् समष्टि रूप से स्थित है। ये समस्त शक्तियां विरजा की ही हैं। विरजा के ज्ञान से शरीर में ही सब तीर्थ सब संगम और सब देवता देखे जाते हैं। फिर किसी तीर्थ में जाने की आवश्यकता नहीं रहती है।

अयोध्यां मथुरां मायां काशीं काञ्चीमवन्तिकाम् ।
राजद्वारावतीं चैव देहे पश्यति योगवित् ।।

अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्ती और द्वारावती इन पुरियों को योगी लोग अपने ही शरीर में देखते हैं।

मूलाधारे अयोध्या च मथुरा मणिपूरके।
मायावती हृदाकाशे कण्ठे काशी च विद्यते।।
आज्ञा चक्रे भवेत् काञ्ची ततश्चोर्ध्वमवन्तिका।
यत्र द्वारावती प्रोक्ता तत्र सा विरजा स्थिता।।

मूलाधार में अयोध्या है, मणिपूर चक्र में मथुरा है, हृदय चक्र (अनाहत चक्र) में मायावती है। कण्ठ में (विशुद्ध चक्र) में काशी है। आज्ञा चक्र में काञ्ची है और उसके ऊपर अवन्ती है। उससे ऊपर जहां पर द्वारावती है वहीं पर विरजा का स्थान भी है।

द्वारं कपालमध्यस्थं यस्यास्तद्वारमिष्यते।
द्वारावती ततः प्रोक्ता सर्वमार्ग प्रदर्शिका।।

कपाल के मध्य का द्वार ही, जिसका द्वार (प्रवेश द्वार) है और जहां से सभी मार्ग देखे जा सकते हैं, इसीलिये उसे द्वारावती कहा गया है।

अतएव तां विरजां कपालकुण्डलामित्यपि वदन्ति। कपाले कुण्डलाकारा या वर्तते महेश्वरी कपालकुण्डलाख्याता कपाले कृत संगमा।।

इसीलिये उस विरजा को कपालकुण्डला भी कहते हैं। जो महेश्वरी कपाल में कुण्डलाकार रूप में स्थित है और कपाल में ही जिसका संगमन होता है।

गोरखवाणीः- वह कपाल कुण्डला महा उष्मवती और महाशीतवती है। "शीतोष्ण समभागा सा"। कुछ योगी लोग उसे कपालभाती करके भी प्राप्त करना चाहते हैं। पर यह भी कठिन है। कपालभाती भी जब स्वयं जागृता कुण्डलिनी के बल से होगी, तभी वह बलवती होकर कार्यसाधिका बनेगी। यह बड़ा भेदमय रहस्य है। कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार में स्थित रहती है। उसी को जगाकर प्राणों को गति को ऊर्ध्वगामी किया जाता है। शक्ति, इच्छा, ज्ञान, क्रिया सभी को समुचित रूप से संचालित करती है। अतः कोई कहते है कि एक कुण्डलिनी मूल में है और एक कपाल में है। दोनों की जागृति भिन्न-भिन्न रूप से होती है और दोनों को एकाकार कर दिया जाता है। इसी को द्वैत में अद्वैत का प्रतिपादन कहते है। किन्तु यह ज्ञानियों का भ्रमचक्र है। वस्तुस्थिति यही है कि महाशक्ति जब जागृत हो जाती है तब वह स्वतः सिद्ध योगप्रदा बन जाती है। विरजा का अस्तित्व कपाल में है, परन्तु जब तक उसका पुच्छ नीचे से हिलता नहीं तब तक वह भी प्रच्छन्न ही रहती है। वह अन्तः सलिला है, मरुस्थल की अन्तः सलिला की भांति। शक्ति जागरण से बालुका-निस्सरणवत् उसका भी प्रच्छन्न रूप प्रकट हो जाता है। यह काम स्वतः भगवती जागृता कुण्डलिनी करती है। वह स्वयं पाताल से आकाश को जाती है और उसके वहां जाने से विरजा का स्वरूप प्रत्यक्ष हो जाता है। पुनः द्वैत का अद्वैत हो जाता है। ये सब ब्रह्मैक्य के सोपान मात्र हैं।

विरजा में स्थिति और संहार की शक्ति रहती है। उत्पत्ति उसके वश में नहीं, क्योंकि वह स्वयं दूसरे की शक्ति को प्राप्त कर उसका संचरण प्रसरण और संवरण मात्र कर सकती है।

अतएव कपालकुण्डला विरजा कुण्डलिनी-शक्ति जागरणेन प्रकटस्वरूपा भवति। तत्र स्वयमेव सर्वमनुभूयते।

इसीलिये कपालकुण्डला विरजा कुण्डलिनी शक्ति के जागरण से प्रकट रूपा होती है। वहां साधक को स्वयं अनुभव होता है।

कपालकुण्डलां वन्दे शीतोष्ण-समविग्रहाम् ।
सर्वाभीष्ट-प्रदां नव्यां नवीनाभीष्टकारिणीम् ।।

शीत-उष्ण समविग्रहवाली भगवती कपालकुण्डला को मैं नमस्कार करता हूं, जो समस्त अभीष्टों को देने वाली है और नित्य नूतन नूतन अभीष्टों को सिद्ध करती रहती है।

गोरखबाबाः- यह भी एक रहस्य ही है। इसकी भी व्याख्या हो सकती है।

५-११-६२ सायं ।।६५।।

अमलां विमलां ज्ञान-प्रदां तां विरजामहम् ।
वन्देऽहं विपुलां चित्रां वज्रानाडिसुदर्शनाम् ।।

चित्रा और वज्रा नाड़ी के भीतर सुन्दर रूप में दीखने वाली अमल, विमल ज्ञानप्रदा भगवती विरजा को मैं नमस्कार करता हूँ।

गोरखवाणीः- बिरजा की एक विशिष्ट ज्ञानवती सत्ता से चित्रा और वज्रा का ज्ञान होता है। इस ज्ञान को भी ऐश्वर्यावस्था रूप ज्ञान कहते हैं। ऐश्वर्य की भावना के आजाने से विरजा भगवती कहाती हैं। भग सम्पत्ति का नाम है।

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग-इतीरणा"।

गोरखवाणीः- ऐश्वर्य सम्पन्नता, धर्मबोध प्राप्ति सम्पन्नता, यशः सम्पन्नता, श्री सम्पन्नता ज्ञान और वैराग्य सम्पन्नता ये विभूतियां ही हैं। इनका उद्भास करा कर इनको अनुभूति के योग्य बनाकर साधक योगी का इन पर अधिकार हो जाता है। फिर इन पर अधिकार करके उनमें स्वयं ईश्वरीय भावना आ जाती है। अर्थात् हम सब कुछ कर सकते हैं, यह भाव उदित हो जाता है और वे उसी में लिप्त होकर निजगन्तव्य एवं प्राप्य को भूल जाते हैं। अतः कहा गया है कि-

"सर्वं तन्निष्फलं ज्ञेयं यावद् ज्ञानं न वर्तते।
प्राप्ते ज्ञाने च वैराग्ये तदपि निष्फलं हि तत् ।।

जब तक ज्ञान नहीं होता, तब तक सब कुछ निष्फल है। ज्ञान और वैराग्य के प्राप्त हो जाने पर वह भी निष्फल हो जाता है।

गोरखबाबाः- ऐश्वर्यादि सब कुछ मिलने पर भी यदि ज्ञान नहीं हुआ तो सब व्यर्थ है और ज्ञान होने पर भी यदि वैराग्य न हुआ तो भी सब व्यर्थ है। ऐश्वर्य और वैराग्य के प्रत्याहार से ही ऐश्वर्यादि का समन्वय हो सकता है। ऐश्वर्य और वैराग्य, श्री और वैराग्य, धर्म और वैराग्य, यश और वैराग्य, ज्ञान और वैराग्य। इस प्रकार के प्रत्याहार से ऐश्वर्यप्राप्ति विक्षेपजनिका नहीं हो सकती, क्योंकि सर्वत्र वैराग्य का भाव रहता है। "यद्यस्ति शोभनं यदि नास्ति वा का चिन्ता।"- इस भाव से युक्त होने पर पुनः स्वलक्ष्य-भ्रष्ट होने की सम्भावना नहीं रहती है। ऐश्वर्य त्रिविध कहा गया है। स्वकुल, विकुल और कुलाकुल। स्वकुल अर्थात् स्वसमूह में ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री का समावेश होता है। इन्हें ज्ञान और वैराग्य से सन्नियन्त्रित रखा जाता है, ऐसा न होने से इन में शिथिलता आ जाती है, अर्थात् इनकी स्थिति न होने से इनमें विकुलता आ जाती है, अर्थात् इनकी विशिष्टता विशेष सत्ता शक्ति हीन हो जाती है और फिर ज्ञान और वैराग्य ही अकुलाकुल में रह जाते हैं। इनके मूल में चित्रा और वज्रा अपना प्रभाव दिखाती रहती है।

चित्रा च लोहिता ज्ञेया वज्रा श्वेता निगद्यते।
एकैश्वर्यं द्वितीया च वैराग्यं वोधयत्यलम् ।।

लोहिता चित्रा ऐश्वर्य की ओर आकृष्ट करती है। श्वेता वज्रा वज्रवत् वैराग्य भावना को, विरागता को व्यक्त करती है, विषमय और अमृतमय तत्त्व का अभ्युदय यहीं से प्रारम्भ होता है। यहां पर-

तस्माद वैपरीत्यदर्शनम् । सा चाविद्या। अविद्या पुरूषार्थप्रतिरोधिका वैपरीत्यापसरणाद् वस्तुस्थितिः।

यहीं से वैपरीत्य दर्शन होता है। उसे अविद्या कहते हैं। अविद्या पुरूषार्थ की प्रतिनिरोधिका है। वैपरीत्य के अपसरण होने पर ही यथार्थ ज्ञान होता है।

गोरखवाणीः- कोई योगी ऐश्वर्य को अमृत और वैराग्य को विष समझने लगता है। ईश्वरीय भाव के आ जाने पर पुनः भोगेच्छा बलवती हो जाती है, और कुछ योगीजन तो ऐसी स्थिति में ही अपने लक्ष्य को भूल जाते हैं। इसलिये पलटा खाना कहते हैं।

कभी न पलटा खाये योगी कभी न पलटा खाये।
विष को अमृत अमृत को विष जो देखे सो भरमाये।
भरमा योगी पलट न जाने सो तो पलटा खावे।

इस पलटे अर्थात् वैपरीत्य भाव को भी विरजा भगवती विशिष्ट सत्ता से शान्त कर देती है। मुमुक्षु भाव को उत्पन्न कर देती है। पर इस कोटि तक अविद्या अवशिष्ट रह जाती है। अनात्म में आत्मदर्शन करना, अचिन्त्य की चिन्ता अप्राप्य की प्राप्ति- कामना, असत्य को सत्य समझना, अगम्य को गम्य समझना यह अविद्या है। शक्ति जागरण के महाप्रकाश से अविद्यान्धकार स्वयं नष्ट हो जाता है। क्योंकि अविद्या जब तक रहेगी, मुमुक्षु भावना तब तक मन्द पड़ी रहेगी। विरजा भगवती पुनः दिव्य स्वरूप को पाकर चित्रा और बज्रा पर आवरण डाल कर अविद्या अपसरण कराती है। तब महेश्वर और महेश्वरी का बोध एवं एकत्वभाव जागृत होता है। यह ऐश्वर्य दशा का रहस्य है।

६-११-६२ प्रातः ।।६६।।

ऐश्वर्यं द्विविधं प्रोक्तं दैवासुरस्वरूपकम् ।।

दैवी ऐश्वर्य और आसुरी ऐश्वर्य इन दो भेदों से ऐश्वर्य दो प्रकार का होता है।

गोरखवाणीः- दैवी ऐश्वर्य और आसुरी ऐश्वर्य ये दोनों ही प्रवृत्ति और निवृत्ति के द्योतक हैं। इन से युक्त होकर ईश्वरभाव को प्राप्तयोगी की समस्त शक्तियां सोपाधिक हो जाती है। धूमाग्निवत् यथाः- काष्ठ प्रज्वलित होते समय धूम से आवृत रहता है। वह धूम उसकी उपाधि है, अर्थात् समल धर्म है, किन्तु जब वह जलकर निर्धूमांगार का रूप धारण कर लेता है

तब वह निरूपाधिक हो जाता है। जब योगी की समस्त शक्तियां दैवी और आसुरी दोनों प्रकार के ऐश्वर्य से विहीन हो जाती हैं, तब उनमें अंगारत्व धर्म आ जाता है, अर्थात् समस्त रूप में वे निर्मल हो जाती हैं। लकड़ी आगे जल कर अंगार का सृजन करती है और पीछे सरकती हुई धूम का निस्सरण भी करती जाती है। उसी भांति महाशक्ति स्वतः उपाधि विनाश द्वारा वृत्तियों की शक्तियों को निरूपाधिक बनाकर निर्मल दिव्य बना देती है। तब मोक्षात्मिका भावना प्रबल रूप धारण करने लगती है। बज्रा, चित्रा पर आवरण पड़ जाता है। अर्थात् उनकी शक्तियां क्षीण हो जाती हैं। यथा दीप प्रकाश में अन्धकार की सत्ता स्थिर नहीं रहती, उसी भाँति के प्रचण्ड प्रकाश में ज्वलिताभा में सब लघु शक्तियाँ प्रच्छन्न हो जाती हैं। प्रकाश तेल के आधार पर जैसे घटता बढ़ता रहता है वैसे ही शक्ति की मन्द तीव्रता पर अन्य शक्तियाँ भी कार्यशीला होती रहती हैं और निष्क्रिय भी पड़ जाती हैं। पुनः मोह की भावना प्रबल हो जाती है। मोक्ष क्या है ? किसका मोक्ष ? कैसा मोक्ष ? वृत्तियों का मोक्ष या उपाधिक रूपों का मोक्ष, या आवरण का मोक्ष या अविद्या का मोक्ष, या ऐश्वर्य का मोक्ष, या माया का, यह सब भी महारहस्य ही है। त्रिपुरारहस्य के समान ही यह रहस्य भी भेदमय हैं।

६-१२-६२ सायम् ।।६७।।

सौदामिनीसमप्रभामविभक्तरूपाम्,

भेद्योन्नतां-मृदुल-मुग्ध-कान्तिम् ।

ध्यानोज्वलां सकल जीवभरां परां च

आद्यां भजामि महनीय-महत्त्वपूर्णाम् ।।

विद्युत् के समान प्रभाववाली, अविभक्त रूपवाली, जलभरे मेघों की भांति मृदुल और भरपूर मुग्ध कान्ति वाली, ध्यान से और उज्वल होने वाली समस्त प्राणियों से पूर्ण, महनीय महत्त्वपूर्ण उस आद्या भगवती को मैं भजता हूं।

आद्या शक्तिर्महादेवी माहेश्वरस्वरूपिणी।

चराचरमभिव्याप्य या स्थितैश्वर्यशालिनी।।

महेश्वर स्वरूपिणी आद्या महाशक्ति समस्त चराचर को व्याप्त करके स्थिर रहने वाली महान् ऐश्वर्य से परिपूर्ण है।

तां देवीं सकलाधारां ब्रह्मरूपप्रबोधिनीम् ।

द्रष्टुमिच्छामि नित्यां वै स्वात्मन्येव महेश्वरीम् ।।

उस सकलाधार स्वरूपा, ब्रह्मस्वरूप का प्रबोध देने वाली भगवती नित्या महेश्वरी को मैं अपने ही भीतर देखना चाहता हूँ।

गोरखवाणीः- भगवती महामाया कुण्डलिनी जब शक्तिपात संप्रयोग से जागृत होकर ऐश्वर्य की स्वामिनी होकर ऐश्वर्योद्भूति करती है, तब वह ऐश्वर्य उपाधि के रूप में दृष्टिगोचर होता है। किन्तु जब ऐश्वर्योपाधि विगत हो जाती है, तब वही महेश्वर् और उसकी माहेश्वरी शक्ति ब्रह्म-ब्रह्माणी के रूप में अभिव्यक्त होने लगते हैं। निर्धूमाङ्गारवत् वह महातेजः पुंज अपनी सत्ता का प्रसार करने लगता है।

"स्वात्मन्येवापि पश्यन्ति ब्रह्मरूपे मनस्विनः।"

मनस्वी योगी लोग अपने भीतर ही ब्रह्मरूप का दर्शन करते हैं।

तत्र गत्वा परमानन्दादुपरिस्थमपि महानन्दस्यानुभूतिः भवति।

वहां पहुंच कर परमानन्द से ऊपर स्थित महानन्द की अनुभूति होती है।

एवं चः- भिद्यते हृदय ग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।

इस प्रकार, हृदय की गांठ टूट जाती है और समस्त संशय दूर हो जाते हैं।

महेश्वरस्य परब्रह्मणः रूपं दृष्ट्वा योगिनः मोक्षाय चेष्टन्ते। पुनः योऽपि संशयः मायारूपः आवरणः, स सर्वदैव विनश्यति, तस्मिन् विनष्टे सति निरूपाधिकस्य ब्रह्मणः सामीप्यानुभूतिं कृत्वा मुक्तो भवति मानवः।

महेश्वर परब्रह्म का रूप देखकर योगी लोग मोक्ष की चेष्टा करते हैं। फिर जो भी मायारूप संशय आवरण है, वह सदा के लिये विनष्ट हो जाता है। उसके विनष्ट होने से निरूपाधिक ब्रह्म की सामीप्य अनुभूति करके मानव मुक्त हो जाता है।

तत्र विचारेभ्यो मुक्तिः, संशयात् मुक्तिः, जीवनबन्धनाद् मुक्तिः, कार्यालापान्मुक्तिः। सा मुक्तिदशा साधना कालेऽपि सायुज्येनानुमीयते। अतः समाधि दशा दृष्टभूमिका जायते।

वहां विचारों से मुक्ति, संशय से मुक्ति, जीवनबन्ध से मुक्ति, कार्यालाप से मुक्ति हो जाती है। वह मुक्ति दशा साधना काल में भी साथ साथ अनुभव में आती रहती है। इसलिये समाधि की दशा की भूमिका पहिले ही साधक देख लेता है।

समाधेः दृढत्वेन धारणाध्यानयोः पुष्टिः।।५।।

समाधि की दृढ़ता से धारणा और ध्यान की पुष्टि होती है।

योगस्याष्टाङ्गेषु धारणा, ध्यानं समाधिः, इति। त्रयस्तत्र परिमिता, परमपूर्णाः पूर्णाधिकाराश्च जायन्ते। सैव समाध्यवस्था यां कामयन्ते योगिनः। यां प्राप्य च तस्मिन्नेव स्वात्मानं संयोजयन्ति। तत्रैव च लीनाः भवन्ति। अतएव ब्रह्मलीना अपि च ते उच्यन्ते।

योग के आठों अंगों में धारणा, ध्यान, समाधि आते हैं किन्तु वहां वे जो परिमित हैं वे तब परम पूर्ण हो जाते हैं और साधक का उन पर पूर्ण अधिकार हो जाता है। वही ध्यानावस्था है जिसकी योगी लोग कामना करते हैं। जिसे प्राप्त करके उसी में अपने आप को लगा देते हैं। वहीं लीन हो जाते हैं। इसीलिये उन्हें ब्रह्मलीन भी कहते हैं।

गोरखवाणीः- किन्तु यह सब ज्ञानियों का विषय है। बाबा कुण्डलेश्वर गोरखनाथ का कथन है कि जो लोग कहते हैं पहिले सुनो, फिर जानो, देखो और पाओ, वह भी ठीक ही है, पर वह भजनानन्दियों का या भगवत्यानन्दियों का मन्थर मार्ग है, लम्बा मार्ग है। शक्तिपात महायोग में शक्ति क्रियावती होकर यथाशीघ्र कार्य साधिका होती है। वहां सब कुछ स्वतः सिद्ध होता है। पहिले पालो फिर देखो, फिर जानो और पश्चात सुनो और सुनाओ।

वस्तु प्राप्ति के पश्चात् ही अन्य बातों में प्रत्यय होता है। अतः पहिले सीधे पाताल से आकाश जाओ, पाताल की गंगा को आकाश चढ़ालो और वहां जाकर ब्रह्म के दर्शन करो, उसे पाओ। फिर देखो दिव्य दृष्टि से और फिर ज्ञान की प्राप्ति भी कर लो दिव्य दृष्टि से। यह मार्ग सीधा है और सुलभ भी है। जानने और सुनने से ही कुछ नहीं होता, प्राप्ति होनी चाहिये। प्राप्ति पर ही सब निर्भर है।

७-१२-६२ प्रातः कालीन व्याख्या विस्मृत रही।

७-१२-६२ सायंकाल ।।६८।।

गोरखवाणीः- गोरख योग जगावे रे बाबा गोरख योग जगावे।

योग जगे सब संशय भागे, सारा मोह नशावे।।

सोई सांपिन जागे अवधू वह तो फण फैलावे।।

जागे सांपिणि, नाथ नथावे।

सार ताहि कि नाथहि जाणे, नाना नाच नचावे,

गोरख योग जगावे।।

ब्रह्म कहे वैदान्ती ताको मर्म न पावे।

गोरखनाथ निरञ्जन ताही परम पुरूष बतलावे।।

अलख निरञ्जन यही ब्रह्म है गोरखनाथ बतावे।।

अश्विनी मुद्रा से प्राणायाम करो। ब्रह्म ही अलख निरञ्जन पुरूष है, जिसकी प्राप्ति योग द्वारा सहज है। वहां तक जाने के लिये सर्पिणी को नाच नचाना पड़ता है। कुण्डलिनी पर पूर्ण अधिकार, तब सब कुछ प्राप्त हो जाता है।

८-१२-६२ प्रातः काल ।।६९।।

✓ **कुण्डलेश्वर बाबा गोरखनाथ ने कहा कि-** क्रिया को जागवती करो। फटाकों से आसन ऊपर उठेगा। चक्रचालन उसे ठीक रखेगा। पूंछ पकड़कर फटकारने से सर्पिणी फुफकार करेगी। उसकी फुफकार को सुनो। फुफकारते फुफकारते कुछ काल के लिये वह निर्जीव सी पड़ जायेगी। पड़ेगी, पड़ने दो, फिर वह जो करावे करते रहो।

८-१२-६२ सायंकाल ।।७०।।

चञ्चद् विद्युत् प्रभासां सरसिज वदनां वल्लकीं वादयन्तीम् ।
ज्ञानानन्दामृतां तां सकल कलकला ज्ञानयुक्तां शरण्याम् ।।
सिद्धैः संसाधकैर्या प्रतिपलममलेमानसे दृष्टरूपा।
देवीं शुभ्रांशुतुल्यप्रकटितविभवां शारदां नौमि तां त्वाम् ।।

चपल विद्युत की प्रभा की भांति चमकीली, कमल की भांति मुखवाली, वल्लकी वीणा को बजाती हुयी, ज्ञानानन्द का अमृत धारण करने वाली, समस्त सुन्दर कलाओं के ज्ञान से युक्त, शरण देनेवाली, साधक और सिद्ध लोग जिसका दर्शन प्रतिपल अपने निर्मल हुए मानस में करते हैं, चन्द्रमा की भांति जिसका विभव प्रकट हो रहा है, ऐसी मां भगवती शारदे तुम्हें प्रमाण करता हूं।

यद् ज्ञानं परमं दिव्यं परमानन्ददायकम् ।
तत सर्वं ज्ञातुमिच्छामि वद मे त्वं सरस्वति।।

जो ज्ञान परम दिव्य और परम आनन्दायक है, हे माँ सरस्वती ! मैं उसे जानना चाहता हूं।

यत् प्राप्य प्रातिभंचक्षुः सर्वं पश्यन्ति योगिनः।
त देव हि मे दातुं समर्था त्वं सरस्वति।।

जिस प्रतिभा चक्षु को पाकर योगी लोग सब कुछ देख लेते हैं, उसे देने की क्षमता, हे माँ सरस्वति ! तुम में ही है।

वाक्सिद्धि तन्महद् ज्ञानं त्रिकालात्मकमेव हि।
प्राप्तुमिच्छामि हे देवि देहि मे तत् सरस्वति।।

हे भगवती सरस्वति ! जो त्रिकालात्मक महान् वाक्सिद्धि का ज्ञान है, मैं उसे प्राप्त करना चाहता हूं। हे माँ ! वही मुझे दो।

लब्ध्वा तव कृपां पूर्णा धन्यतां यान्ति मानवाः।
मयि तां च कृपां कृत्वा सर्वं दर्शय शारदे।।

हे शारदे माँ ! तुम्हारी कृपा प्राप्त करके सभी मानव धन्य हो जाते हैं। कृपा करके मुझे सब कुछ दिखा दो।

सर्वं पृष्टं त्वया वत्स ज्ञानं यद् ब्रह्मबोधकम् ।।

प्रीताहं संप्रवक्षामि तच्छ्रणुत्वं समाहितः।।

हे वत्स ! तुमने सब कुछ पूछ डाला। जो ज्ञान ब्रह्मबोधक है, उसे मैं कहूंगी। तुम समाहित चित्त से उसे सुनो।

महाशक्ति समाराध्य प्राप्यते ब्रह्मबोधम् ।

ज्ञानं स्वयं कृपा मेऽत्र कारणं सन्निबोधय।।

महाशक्ति की आराधना करके ब्रह्मबोधक ज्ञान स्वयं मेरी ही कृपा से प्राप्त होता है, इसमें कारण इस प्रकार समझो।

योगाभ्यासरता ये च ये सन्ति शक्तिसाधकाः।

तेषां तद्ज्ञानगम्भीरं स्वयमेवोपजायते।।

योगाभ्यास में लगे रहने वाले और सदा शक्ति की साधना करने वाले जो लोग हैं, उन्हें वह गम्भीर ज्ञान स्वतः हो जाता है।

यद् यद् ज्ञानं क्रिया या चर्शिता सापि तत्त्वतः।

शक्तिपातविधौ ज्ञेया शक्तिस्तत्र हि कारणम् ।।

जो जो ज्ञान और क्रियायें रहस्य रूप में बताई जाती हैं, वे सब शक्तिपात महायोग मार्ग में ही प्राप्त होती हैं इसमें साक्षात् शक्ति ही कारण है।

योगेश्वरेण रूद्धापि यत्ते उक्तवती स्वयम् ।

ज्ञानं तद् नो भवेत् येन संशयः मार्गरोधकः।।

योगेश्वर गोरख बाबा के मना करने पर भी जो ज्ञान मैंने तुम्हें कहा है, यदि मैं उसे तुम्हें न कहती तो तुम्हें संशय हो जाता और संशय मार्ग का रोधक हो जाता है।

ज्ञात्वा तच्छुलभं मार्गं जायते नात्र संशयः।

तस्मात् प्रोक्तवती सर्वं ज्ञानं ते हित कारकम् ।।

इस शक्तिपात के सुलभ मार्ग को प्राप्त करके कोई संशय नहीं रहता है। इसलिये तुम्हारे कल्याण कारक उस सम्पूर्ण ज्ञान को मैंने तुम्हें बताया है।

तथापि नाथनाथेशः गोरक्षः शक्तिमान् मतः।

स तन्मार्गं सुसारल्यात् प्रापयिष्यति तत्त्वतः।।

फिर भी नाथ नाथेश्वर यह गोरक्ष योगमार्ग को बताने में शक्तिमान् समर्थ माना गया है। उसी मार्ग में बड़ी सरलता से और सही तरीके से तुम्हें ले चलेगा।

त्वया लब्धो गुरूस्तात समर्थः शक्तिसम्भृतः।

तत्कृपालवमात्रेण सर्वं सिद्धं भविष्यति।।

हे प्यारे वत्स ! तुम्हें शक्ति सम्पन्न समर्थ गुरू प्राप्त हुये हैं। उनकी लेशमात्र कृपा से ही सब कुछ सिद्ध हो जावेगा।

यत् प्रोक्तंप्रातिभंचक्षुः येन सर्वं च ज्ञायते।

प्रतीक्षस्व प्रतीक्षस्व तत् ते शीघ्रं भविष्यति।।

जिसे प्रतिभा चक्षु कहते हैं और जिसके द्वारा सब कुछ ज्ञान होता है, कुछ प्रतीक्षा करो, वह भी तुम्हें शीघ्र प्राप्त हो जायेगा।

स्वयं नाथः अहं चैव जागृता शक्तिरूपिणी।

तत्त्वार्थं बोधयिष्यामः नात्र कार्या विचारणा।।

स्वयं गोरखनाथ और स्वयं मैं तथा जागृता कुण्डलिनी शक्ति ये तीनों ही तत्त्वार्थ का बोध तुम्हें करवा देंगे इसमें कोई विचारणा नहीं करनी चाहिये।

पूर्वजन्म कृताभ्यासः तत्तेऽप्यभ्युदयं गतः।

तस्मात्रातिचिरेणैव तज्ज्ञानं ते भविष्यति।।

तुम्हारा किया हुआ पूर्वजन्म का अभ्यास अब वही सम्प्रति जाग उठा है। इसलिये बहुत शीघ्र ही तुम्हें वह ज्ञान प्राप्त हो जायेगा।

श्रृणु वत्स परं ज्ञानं साधकानां हिताय वै।

किंचित् तत् ते च वक्ष्यामि येन मार्गः ऋजुर्भवेत् ।

हे वत्स ! जो ज्ञान योग साधकों के कल्याण के लिए है, मैं उसे पहले थोड़ा बताऊंगी जिससे मार्ग अधिक सरल हो जायेगा।

साधकाः साधनालग्नाः भ्रमन्ति च क्वचित् क्वचित् ।

तेषां हि भ्रमनाशाय उच्यते तन्मया शुभम् ।।

साधन में लगे साधकों को कहीं कहीं भ्रम हो जाता है, उनके भ्रमनाश के लिये मैं कुछ अच्छी बात बताती हूँ।

संशयः छिद्ररूपेणः प्रत्यक्षः नित्यशो भवेत् ।

तं विहाय स्वकं चितं दृढं कुर्यात् शनैः शनैः।।

योगमार्ग में विघ्न रूप से नित्यशः कोई न कोई संशय आता रहता है। उसे हटाकर अपने चित्त को दृढ़ बनाओ।

विक्षेपाश्च समायान्ति सततं मार्गरोधकाः।

यान् दृष्ट्वा साधको भीतः स्वमार्गं च जहाति तत् ।।

मार्ग में रूकावट डालने के लिये निरन्तर विक्षेप भी आया करते हैं, जिन्हें देखकर साधक लोग अपने साधन मार्ग को छोड़ दिया करते हैं।

किन्तु देवी महाशक्तिः स्वयं सिद्धा महाबला।

तान् विक्षेपान् पराभूय निःसारयति सत्वरम् ।।

किन्तु महाशक्ति देवी भगवती कुण्डलिनी जो स्वयं सिद्धा होकर बलवती हो जाती है, उन विक्षेपों को हटाती हुयी शीघ्र ही साधक को बचा ले चलती है।

कृतं च साधितं चैव सर्वं येन न नश्यति।

तस्माच्छिद्रस्वरूपाँस्तान् विक्षेपान् नाशयेच्च सा

उन सभी विक्षेपों को, जिन के आने पर सब कुछ किया कराया और सिद्ध किया नष्ट हो जाता है, उन विघ्नों को वह जागृता कुण्डलिनी नष्ट कर देती है।

यथा घटे च सम्पूर्णे छिद्रः कश्चित् प्रजायते।

उदकं निःसरेत् तस्माद् कुतस्तत् पूर्णता भवेत् ।।

जिस प्रकार सम्पूर्ण भरे घड़े में कोई छिद्र आ जाय और नीचे से पानी चूता रहे, वह कैसा भरा रहेगा। कभी वह एकदम खाली हो जायेगा।

छिद्राणां टंकनं सम्यक् जानाति कुण्डलेश्वरः।

यो नाथनाथः सः सर्वं समर्थो रोधनाय वै।।

उन विघ्न स्वरूप छिद्रों का टंकन करना यह कुण्डेश्वर नाथों के नाथ गोरखनाथ पूर्ण रूप से जानते हैं और टंकन करने में सिद्धहस्त हैं।

स एव टंकनं कृत्वा छिद्रान् संरोधयिष्यति।

तस्माच्च साधकैः सर्वैः न भेतव्यं कदाचन।।

वे ही टंकन करके छिद्रों का संशोधन करेंगे। इसलिये सभी साधकों को कभी घबराना नहीं चाहिये।

एषोविधिर्महायोगप्रदः प्रोक्तः मयात्र ते।

महाशक्ति-प्रभावेण सर्वं सिद्धं भविष्यति।

नात्र चिन्ता विधातव्या सा स्वयं तत् करिष्यति।।

महायोग को देनेवाली जो यह विधि बताई है वह महाशक्ति के प्रभाव से सबकुछ सिद्ध हो जायेगी। इस सम्बन्ध में कोई चिन्ता की बात नहीं है। वह जागृता भगवती कुण्डलिनी स्वयं सब कुछ कर देगी।

९-१२-६२ प्रातः ।।७१।।

चन्द्रोज्वलां चन्द्रसमानवर्णां चञ्चद्विभाकुण्डलचारूकर्णाम् ।

नमामि नित्यां च विशुद्धज्ञानां सरस्वतीं पुस्तकव्यग्रहस्ताम् ।।

चन्द्रमा के समान उज्जवल, चन्द्रमा के वर्णवाली चमकती हुयी कान्ति वाले कुण्डलों से शोभित कर्णवाली, विशुद्ध ज्ञानवाली, हाथ में पुस्तक धारण करने वाली विशुद्ध ज्ञानवती भगवती सरस्वती को मैं प्रणाम करता हूं।

साधने विक्षेपाः नियताः ।।६।।

साधन में अवश्य ही विक्षेप आया करते हैं।

तेषां निरोधः स्वयमेव भवति ।।७।।

उनका स्वयमेव निरोध जागृता भगवती कुण्डलिनी शक्ति द्वारा होता रहता है।

तत्तु शक्त्यधीनम् ।।८।।

वह शक्ति के अधीन है।

तत्र संबोधकं ज्ञानं द्विविधम् ।।९।।

वहां उस सम्बन्ध में प्राप्तव्य ज्ञान दो प्रकार का है।

समाधिजं, ब्रह्मपरकं च। समाधिजं द्विविधम्, सविकल्पकं निर्विकल्पकं च। ब्रह्मपरकमपि द्विविधम् । तत्परकं तन्निष्ठं च। अन्धकार प्रकाशवत् ।

समाधिज और ब्रह्मपरक। समाधिज भी दो प्रकार का है। सविकल्पक और निर्विकल्पक। ब्रह्मपरक ज्ञान भी दो प्रकार का है। ब्रह्मपरक और ब्रह्मनिष्ठ। अन्धकार और प्रकाश की भाँति।

गोरखबाबाः– अन्धकार में पदार्थ की स्फुरणा नहीं होगी और प्रकाश में पदार्थ स्फुरण रूप से ज्ञान हो जाता है। इसी प्रकार जबतक ज्ञान उद्दीप्त नहीं होता, उसमें स्फुरणा नहीं आती, इन सब की स्थिर धारणा के लिये पहिले शरीर को घटवत् बनाना पड़ता है। चार अवस्थायें जो कही गई हैं (१) घटावस्था (२) आरम्भावस्था (३) परिचयावस्था (४) निष्पत्त्यवस्था।

इसमें पहिले शरीर को घटवत् बनाना पड़ता है। दृढ़ घट में जल स्थायी रूप से रह सकता है। उसी प्रकार दृढ़ शरीर में साधना की शक्ति आ जाती है। तब उसके द्वारा कार्यारम्भ हो जाता है और साधक साध्य का परिचय करने के योग्य हो जाता है।

जिस भाँति समर्थ दीप में तेल स्थिर रहता है, वर्तिका संयोग से तेल ऊर्ध्वसंचारी होकर अग्निसम्पर्क पाकर प्रकाशशील हो जाता है। तद्वत् शरीर भी समर्थ होकर सर्वशक्ति के धारण के योग्य बनकर ब्रह्माग्नि संयोग से साधक को लक्ष्यपूर्ति तक पहुंचा देता है। यद्यपि ये सब विरुद्ध धर्म हैं, फिर भी इनका समवाय विशिष्ट गुणसम्पन्न होकर एक गुणात्मक प्रकाश प्रदान करने योग्य हो जाता है। इसी प्रकार साधक के मार्ग में आने वाले सभी विक्षेप अथवा समवाय स्वतः उसी शक्ति में लीन होकर साधक के लिये कार्यसाधक ही बन जाते हैं। इसीलियेः-

तत्र शक्त्यावेगः तीव्रतम इष्यते ।।१०।।

उस स्थिति में शक्ति का आवेग तीव्रतम होना चाहिये।

अतः शक्ति के आवेग में तीव्रता आनी चाहिये। तीव्र वेग में सभी निरोध धर्म बह जाते हैं। यह कार्य जागृत शक्ति के अधीन होता है। शक्ति जागरण को इसीलिये महत्त्वपूर्ण कहा गया है।

शक्ति जागरणे दत्तावधानता ।।११।।

शक्ति के जागरण में ही विशेष अवधान देना चाहिये। "उत्तिष्ठत, जाग्रत की भावना को इसीलिये शास्त्रकारों ने प्रधानता दी है। साधन पथ का परिष्करण किस प्रकार होता है, इसको स्वयंसिद्धा भगवती प्रदर्शित करती है।"

१०-१२-६२ प्रातःकाल ।।७२।।

विक्षेपा मलसम्भूताः सर्वे ते च मलाश्रयाः।
तेषां प्रक्षालनं कृत्वा सर्वतः निर्मलो भवेत् ।।

विक्षेप मल से उत्पन्न होते हैं और वे सब मल के आश्रित रहते हैं। उनका प्रक्षालन करके सर्वप्रकार से निर्मल हो जाना चाहिये।

गोरख बाबाः- मल से ही विक्षेप होते हैं।

मलयति आच्छादयति आवृणोति, अप्रकटयति, तिरोदधति गुणान् यः सः मलः।

जो मलन क्रिया करे अर्थात् आच्छादन करे, ढक दे, प्रकट न होने दे उसे मल कहते हैं। जो गुणों को आच्छादित कर दे उसे मल कहते हैं।

मलश्चतुर्धा ।।१२।।

मल चार प्रकार का होता है।

मलापसरणं मार्गशोधनाय ।।१३।।

मार्ग शोधन के लिये मलापसरण किया जाता है।

श्रुतं च पृष्टं च तथानुभूतं सर्वत्र सर्वैश्च मलश्चतुर्विधम् ।
शरीरजं तद् हृदिजंच बुद्धिजं तदात्मकं विद्धि स्वमार्ग रोधकम्।।

सभी योगविद्या ज्ञात विद्वानों ने मल चार प्रकार का बताया है ऐसा सुना भी गया है, देखा भी गया है और अनुभव में भी आया है। अपने योग मार्ग का रोधन करने वाला वह मल, शरीरज, मन से सम्बन्धित, बुद्धि से सम्बन्धित और आत्मज चतुर्विध होता है।

गोरख बाबाः- शरीर सम्भूत मल ऐन्द्रिय व्यापार सम्बन्धी होता है। हृदयज अस्थिर धर्मयुक्त होता है। बुद्धिज भ्रान्तिमान् होता है और आत्मज अपने ही आपको अपरिचित समझना होता है। कहा गया है कि "सर्वे रोगाः मलाश्रयाः" समस्त रोग मल के आश्रय से होते हैं। रोग रूज से युक्त हैं। रूज का अर्थ स्थिति में अस्थिरीकरण होता है। आस्था को अनास्था युक्त करने वाले तत्त्वों को रोग कहते हैं जो वस्तुस्थिति की न्यूनता के द्योतक होते हैं, रोग हैं। अतः मलशुद्धि का होना अनिवार्य है।

योग द्वारा इन मलों का अपसरण किया जाता है, निर्मल तभी होता है। सभी वस्तुएँ समल ही हैं। निर्मल तो एक अलख निरञ्जन ही है। जब मल ही न होगा तो निर्मल किसे किया जायेगा। अतः श्यामश्वेतवत्, अन्धकार प्रकाशवत्, रागद्वेषवत् समल और निर्मल की भी सत्ता मानी गयी है। समल को निर्मल करने का ढंग बताया जाना चाहिये। साधारण रूप में कहा भी है किसी ने कि :-

चलो रे मन गंगा जी के तीर।
गंगा नहाये पाप कटत है,
निर्मल होत शरीर ।। चलो रे. ।।

जब साधारण गंगा-स्नान से शरीर का मल दूर होता है, मन में कुछ शान्ति आती है, तब भी महानदी, महागंगा, महाशक्ति है (भगवती कुण्डलिनी) तो उसमें स्नान करने वाले व्यक्ति के चतुर्विध मल कैसे दूर नहीं होंगे। इसीलिये कुण्डलिनी शक्ति को गंगा भी कहा गया है। उसी की जागृति से, उसमें स्नान करने से सब प्रकार के मल दूर हो जाते हैं, और निर्मलता आ जाती है। निर्मलता प्राप्ति के साथ इस साधन के साथ ऊपर साधन भी कहे जायेंगे।

१०-१२-६२।।सायं।।७३।।

इन्दीवराभां प्रविभक्तां शक्तां समस्तैकगुण प्रदात्रीम्।

अध्यात्मविद्यात्ममहाप्रकाशां भासां विभासां च भजे सरस्वतीम्।।

माँ सरस्वती को प्रणाम है जो इन्दीवर आभा वाले अंगों को धारण किये समस्त गुणों की प्रदात्री हैं। अध्यात्मविद्या के रहस्य को समझाने में महाप्रकाश देने वाली हैं।

गोरक्षबाबाः- साधक ! शक्तिपात महायोग को सरल बनाने के लिये टंकन विद्या का ज्ञान भी होना चाहिये। इस विद्या में पल्टा और उल्टा का महत्त्व है। यही मैंने-गंगाधर तीर्थ को भी बताया था। यह परम गुप्त और रहस्यमय है। इसके रहस्य को गोपनीय रखा गया है। गुरु परम्परागत यह टंक विद्या विशिष्ट ज्ञानवती है। पल्टा का तात्पर्य गुद भाग को ऊपर खींचकर, नाभि में लाकर फिर ऊपर से श्वास का हथौड़ा चलाना चाहिये। ऊपर के श्वास का दबाव नीचे के श्वास पर देते हुए बार-बार पेट को चलाना चाहिये और बार-बार स्वल्प हुंकार करके खूब दबाव डालना चाहिये। ऐसा करने से टंक हो जाता है। अर्थात् स्थिरता आ जाती है। भीतर से भी साधक को कुछ जोर लगाना चाहिये गति को कुछ तीव्र करके बल देना चाहिये। ऊपर से चोट लगे अर्थात् श्वास चक्रवत् चलने लगे, तब टंक हो जाता है। इस टंक के आधार पर डकार ऊपर उठते हैं, तब केवली कुम्भक की स्थिति आ जाती है। केवल देर तक श्वास रोकने या रुकने को ही केवली कुम्भक नहीं कहते हैं, केवली कुम्भक में निम्नस्थ उदर की कुक्षियाँ भीतर को धंस जाती हैं और उसमें तनाव होता है। नाभि भी कुछ अन्दर को धंसती है। वक्षभाग और पृष्ठ भाग में तनाव आता है। उड्डियान बन्ध लगाकर तब श्वास स्वतः रुक जाती है। उस श्वास के रुकने पर मद्यप की सी दशा होती है। इस केवली कुम्भक में मन का मैल दूर हो जाता है अर्थात् मन की चञ्चल वृत्तियों में स्थिरता आने लगती है।

फिर कुम्भक छोड़कर श्वास को ऊपर खींचकर रोक देते हैं। वहाँ पर उस समय जोर पड़ने पर जिह्वा दन्त पश्चाद् भाग का स्पर्श करके नीचे की ओर सिकुड़ती है और लम्बिका - काक जिह्वा लम्बी होकर उलट कर छिद्र को बन्द करने लगती है। यह छिद्र बन्द करके टंक हो जाता है ऐसा करने या हो जाने से फिर खेचरी की आवश्यकता नहीं होती है। इस क्रिया को उल्टा क्रिया भी कहते हैं। उल्टा पल्टा का ज्ञान टंक विद्या का मूल आधार है। उल्टा पल्टा ज्ञान लेने पर सर्वत्र स्थिरता आने लगते है। यही क्रिया मन के स्थिरीकरण का साधन है।

यद्यपि इसे बड़े महायोगी जानते हैं और अभ्यास करते हैं, पर बताते नहीं है। इसे महागुप्त कहा गया था। पर अब इसके प्रकाश का समय आ गया है। शक्तिपात् के साधकों के हित के लिये उसके मार्ग को सुगम करने के लिये इस टंक विद्या का प्रसार भी होता है।

११-१२-६२ प्रातः काल ।।७४।।

सरहस्या परा विद्या टंकविद्या च या मता।

तां ज्ञात्वा साधकः सद्यः स्वमार्गमधिगच्छति।।

रहस्यपूर्ण जो परा विद्या है और जो टंक है इन दोनों को जान लेने पर साधक आसानी से अपना मार्ग पकड़ लेता है।

गोरख बाबाः- यह टंक विद्या साधकों के ज्ञान के लिए कही जायगी। मन एक अश्व समान है। इसे खूब दौड़ाओ और कोड़े लगाओ। चलाओ, फिराओ, लोटपोट करना दो, उलट पुलट होने दो, फिर खुरहरी लगाओ और थपथपी दो, फिर चलाओ, फिराओ, घुमाओ और फिर मजबूत खूंटे पर बाँध दो। अर्थात् मन के घोड़े को कपालभाति तथा भस्त्रा प्राणायाम के द्वारा खूब चलाओ, श्वास के कोड़े से उसे पीटो, खूब श्वास प्रश्वास चलने दो। तीव्र गति से चलने दो। श्वास को भीतर खींचकर पेट के भीतर कुछ देर तक रोक लो और फिराओ, तब पल्टे और फटकारें दो। पुनः दोनों कन्धे हिलाकर पीठ के मध्यभाग को हिलाओ, मिलाओ। फिर ऊपर नीचे, नीचे ऊपर श्वास चलाओ। ऐसा करने से मन थक जायेगा। खुरहरी लगाना इसी को कहते हैं। फिर ऊपर से श्वास नीचे से जाकर नाभि को बार-बार टक्कर दो, इसे थपथपी देना कहते हैं।

ऐसा करने से मन अपनी चञ्चल वृत्ति को त्यागकर स्थिर होने लगता है। इसके वशीभूत होने का यह प्रथमोपाय है। फिर इस पर सवार होकर जहाँ चाहो, जितनी दूर चाहो, जा सकते हो।

११-१२-६२ सांयकाल ।।७५।।

वरकमलनिभां तां पादपद्मोपमांच
वदन कमलतुल्यां नेत्रराजीवशुभ्राम।
विगतकलुषभारां तारतारांशुहाराम्
विदित-सकल-शास्त्रां टंकविद्या निधानाम् ।।

सुन्दर कमल के वर्ण वाली, पद्म के समान चरणों वाली, कमल-से मुखवाली, कमल नेत्र वाली, कलुष से विहीन, नक्षत्रों की भाँति दीप्तिमान् हार धारण करने वाली, शास्त्रों का ज्ञान रखने वाली टंक विद्या का खज़ाना धारण करने वाली -

परम सुलभज्ञानां साधकानां च काम्याम्
कलितकरुणधारां कामनामुद्वहन्तीम् ।।
विमलमति-मनोज्ञां योगिगोरक्षरक्ष्यां
सकलमुनिमनोज्ञां नौमि तां टंकविद्याम्।।

परम ज्ञान को सुलभ करने वाली, साधकों द्वारा कामना किये जाने वाली, करुणा की

धारा बहाने वाली, इच्छा रखने वाली, विमल बुद्धि से सुन्दर दीखने वाली, योगी गोरक्षनाथ द्वारा गुप्त रखी गई, समस्त मुनिगणों की अभिलषित उस टंक विद्या देने वाली को मैं प्रणाम करता हूं।

अथ अश्वसंचालनम्।।टंकवंकविद्याधिगमः ।।

अब अश्व संचालन प्रक्रिया में टंक विद्या अथवा वंक विद्या का प्रकरण आरम्भ होता है।

वन्दे बोधमयीं देवीं सर्व विद्यापयोनिधिम्।

टंक वंक परा विद्यां ख्यातुं शक्तां प्रभावतीम्।।

बोधमयी, सर्वविद्याओं की समुद्र, प्रभावशलिनी और प्रत्यक्ष प्रकट होने वाली टंक एवं वंक विद्या को बताने वाली सरस्वती को नमस्कार है।

श्रृणु वत्स प्रवक्षामि टंकविद्यां सुयोगदाम्।

वंकविद्यापि सा खयागगुहायां निहिता हि सा।।

हे वत्स ! सुनो, श्रेष्ठ योग को देनेवाली टंक विद्या को मैं बताता हूं। इसे वंक विद्या भी कहते हैं। यह विद्या रहस्यमयी गुप्त एवं लुप्त है।

न कस्यचित् समाख्याता गोपनीया हि सा सदा।

त्वत्प्रीत्यास्याः समायोगः प्रकाशः क्रियतेऽधुना।।

अब तक यह विद्या किसी को कही नहीं गई है, यह सदा गोपनीय रही है। तेरे ऊपर मैं प्रसन्न हूं। अतः इसे मैं तुम्हारे सामने प्रकट करती हूं।

पूर्व महेश्वरेणैवं महेशीप्रार्थितेन च।

तस्मै ख्याता च या विद्या सा विद्या टंकसंज्ञिता।।

महेश्वरी पार्वती देवी द्वारा प्रार्थित भगवान महेश्वर ने भगवती पार्वती को सर्वप्रथम इसे कहा था, यही टंक नामक श्रेष्ठ विद्या है।

वंकमित्यपि तां केचित् वदन्ति तत्त्वज्ञानिनः।

सा विद्या कुत्रचिद् गूढ़ा अश्वविद्येति प्रोच्यते।।

तत्त्वज्ञानी कोई इसे वंक विद्या भी कहते हैं। कहीं-कहीं इस गूढ़ विद्या को अश्वविद्या भी कहा जाता है।

तां विद्यां मत्सकाशाच्च गोरक्षो ज्ञातवान् पुरा।

गोरक्षो नाथनाथेशः टंकविद्याविशारदः।।

उसी विद्या को पूर्वकाल में गोरक्ष ने मुझसे प्राप्त किया था। तभी नाथ नाथेश गोरक्ष टंक विद्या में निपुण बने थे।

तेन दत्ता क्वचित् कस्मै शक्तिपातविदे ततः।

गुप्ता लुप्ता च सा विद्या तद्रहस्यं न ज्ञायते।।

तदनन्तर गोरक्ष ने किसी शक्तिपातयोग के ज्ञाता योगी को कभी प्रदान की थी और फिर वह विद्या गुप्त और लुप्त हो गई। उसका अब लोक में रहस्य ज्ञात नहीं गया है।

ये केचिद् ज्ञानिनोऽप्यस्याः न वदन्ति पराय ते।

जानन्ति शक्तिसम्पन्नास्तस्मात्सा लोपमागता।।

कुछ इस विद्या के ज्ञाता लोग भी हैं, किन्तु इसे वे किसी अन्य को बतलाते नहीं है। शक्तिसम्पन्न योगी इस विद्या को जानते हैं। इस प्रकार यह विद्या कालान्तर में लुप्त हो गई।

यां ज्ञात्वा साधकः सर्व योगं जानाति तत्त्वतः।

तस्यैव हितबुद्धया सा टंकविद्याभिधीयते।।

जिस विद्या को जानकर साधक तत्त्वपूर्वक योग को जान लेते है, उन्हीं साधकों की कल्याण कामना से मैं टंक विद्या बता रही हूं।

अश्वो मनः समाज्ञेयस्तन्मनोऽश्वः सुसाधितः।

परोपकारकं भूत्वा गन्तव्यं प्रापयेद् ध्रुवम्।।

मन को अश्व, घोड़ा समझना चाहिये। वही अश्वरूपी मन जब सुरक्षित और साधित होता है तो परम उपकारक बनकर गन्तव्य स्थान पर ठीक ले चलता है।

छिद्रं यावच्च व्यायत्तं रुद्धं नैव करोति च।

साधकस्त्वरितं सिद्धिं न प्राप्नोति कदा च न ।।

साधक जब तक फैले हुए छिद्रों को बन्द नहीं करता है तब तक शीघ्र योग सिद्धि को प्राप्त नहीं कर सकता है।

शक्तिपातसमायुक्तास्तद्धारणपरायणाः।

ज्ञात्वापि नैव जानन्ति टंकविद्यां सुनिश्चिताम्।।

शक्तिपात से सम्पन्न होकर भी और उस शक्तिपात की धारणा करते रहने पर भी साधक लोग जानते हुए भी निश्चयात्मक रूप से टंक विद्या का ज्ञान नहीं रखते हैं।

कुर्वन्ति च क्रियाः सर्वा नामहीनास्तथापि ते।

पृथक ज्ञानक्रियाकारा न जानन्ति विभागशः।।

बिना नाम जाने ही भले ही वे सभी क्रियायें उन्हें होती हैं और करते भी हैं, फिर भी क्रिया और ज्ञान का वर्गीकरण न करते हुए पृथक् -पृथक् विभाग में उसे नहीं जानते हैं।

अतः पृथक् -पृथक् ज्ञानं क्रियां चैव तदानुगाम्।

वदामि टंकविद्यायाम् पश्यन्तु साधकाः स्वयम्।।

अतः क्रियाओं का पृथक् -पृथक् ज्ञान और तदनुगामी टंक विद्या को मैं खोलकर बताती हूँ। सभी साधक उसे ध्यान पूर्वक सुनें।

त्वन्मुखाद् टंकविद्यायाः ज्ञानं प्रचरितं भवेत्।

अतः शास्त्रमिदं दिव्यं त्वयि प्रादुर्भविष्यति।।

इस टंक विद्या का ज्ञान तुम्हारे मुख से ही प्रचार प्राप्त करेगा इसलिये इस दिव्य शास्त्र का प्रादुर्भाव तुम पर अवतीर्ण होगा।

वाण्या गोरक्षदेवस्य शास्त्रेणोपहितेन च।

अतः शास्त्रमिदं दिव्यं त्वयि प्रादुर्भविष्यति।।

गोरक्षनाथ की वाणी और शास्त्र इन दोनों का मेल होकर यह दिव्य शास्त्र तुम पर प्रकट होगा।

सर्वत्र साधकानां च हितमुद्धरणं च तत्।

दिव्यशास्त्रस्वरूपेण स्वयं ख्यातिं गमिष्यति।।

साधकों के सर्वत्र हित के लिये और उनके उद्धार के लिये यह दिव्य शास्त्र स्वयं प्रसिद्धि प्राप्त कर लेगा।

श्री गोरखबाबाः- यह टंक विद्या महाशास्त्र के रूप में प्रख्यात होगी जिसके ज्ञान से साधकों की सिद्धि सुलभ हो जायेगी। इसमें मेरी (सरस्वती) और गोरक्षनाथ की वाणी का मिश्रण होगा। अतः यह दिव्य शास्त्र होगा जिसके ज्ञान से साधकों की सिद्धि सुलभ हो जायेगी। यद्यपि इसे गोरक्षवाणी का रूप भी दिया जा सकता था, किन्तु लोक में शास्त्र की मर्यादा भी रखनी है। अतः इसे वाणी की अपेक्षा शास्त्र कहना उचित होगा। यद्यपि महायोगियों को ये ही प्रक्रियायें और क्रियायें, मुद्रायें ज्ञात हैं, पर ये प्रच्छत्र ही हैं। गुरु परम्परा से लभ्य हैं। शक्तिपातदीक्षितों को विशेषकर इन क्रियाओं का ज्ञान और अभ्यास भी होना चाहिये, क्योंकि बिना क्रिया के ज्ञान भार स्वरूप होता है। यों तो सभी साधकों को यह शास्त्र लाभप्रद होगा।

१२-१२-६२ प्रातः काल।।७६।।

गोरखबाबा :- अश्व संचालन मुद्रा क्रिया के रूप में बताई जाती है। जब अश्व चलकर थक जाय। लोट पोट हो जाय तब उसके ऊपर हाथ फेर कर थपथपी दो। जोर से

ऊपर की वायु को नीचे ले जाओ और नीचे की वायु को ऊपर उठाओ। यदि अश्व में कुछ चांचल्य होगा तो पता लग जायेगा। अर्थात् समस्त गात्र को, शरीर को हिचकोला लगाओ। फिर श्वास को लेते हुए सिर को ऊपर नीचे करो। उससे रीढ़ की हड्डी और गर्दन में तनाव आयेगा। धीरे-धीरे पेट भीतर को भिचेगा। तब समझो कि अश्व ढीला पड़ कर वशीभूत हो रहा है। फिर उसको वशीभूत करके दूरातिदूर जाया जा सकता है। उसे जिधर चाहे घुमाया जा सकता है।

१२-१२-६२ सायंकाल।।७७।।

ज्ञानागारां ज्ञानवतींनित्यस्वरुपाम् ।

भास्वररुपां टंकविधां टंकयुतांताम् ।।

दत्त्वा या वै सर्वहितं सद् विदधाति ।

नौमि सदा तां वाग्विभवां सर्वगिरेशीम् ।।

ज्ञान से भरपूर, ज्ञानवती, नित्यस्वरुपिणी, भास्वररुपा, छिद्रों को बन्द कर देने वाली टंक विद्या को देकर जो देवी समस्त साधकों का हित करती है, उस समस्त वाणियों की ईश्वरी भगवती को मैं प्रणाम करता हूँ।

या विद्या च पराविद्या टंकनाख्या विशेषतः ।

तां ज्ञात्वा साधको नित्यं मोदते योगवित् सदा ।।

जो परा विद्या कही गई है, विशेष रुप से उसका निर्देश टंक विद्या से ही है। योग ज्ञाता साधक उसे जानकर नित्य प्रमुदित और उत्फुल्ल हो जाता है।

एनामेव पराविद्यां लब्ध्वा नृत्यति मानवः ।

साचैवाश्वोदरी विद्या क्वचिदेव प्रकाशते ।।

इसी परा विद्या को प्राप्त करके साधक हर्ष में नाचने लगता है। इस अश्वोदरी को कभी किसी ने पकट नहीं किया। गुप्त रखा।

यथा छिद्राणि रुद्धानि घटस्थं निर्मलं जलम् ।

तथा विमलमात्मानं तत्र पश्यति आश्विक ।।

इस अश्वविद्या का ज्ञाता साधक अपनी निर्मल आत्मा के दर्शन उसी भांति कर लेता है जैसे घड़े के सभी छिद्रों के बन्द हो जाने पर उसके भीतर शुद्ध जल दिखाई दे जाता है।

कृत्वा मलोदरीं मुद्रां गुदभागस्य चालनम् ।

अधश्चोपरिभागे तत् अश्ववत् मलत्यागके ।।

गुदभाग को ऊपर और नीचे चालन करते हुए मलोदरी मुद्रा करनी चाहिये। जैसे घोड़ा

मलत्याग के समय अपने गुदभाग को बार-बार भीतर बाहर करता है।

या मुद्रा अश्विनी मुद्रा तदभिन्ना च मलोदरी ।

नीचैर्गत्वोपरि याति त्वेषा गुदसमीरणे ।।

योगशास्त्रों में जिसे अश्विनी मुद्रा कहा गया है, मलोदरी मुद्रा उससे भिन्न है। इस मलोदरी में गुदाभाग बाहर भीतर आता जाता है और अपान वायु भी बाहर भीतर आता जाता है।

अश्वोदरी द्वितीया च मुद्रा पाचनशक्तिका ।

सा क्रियारुप मासाद्य अश्वोदरसमाकृतिः ।।

दूसरी मुद्रा अश्वोदरी है, जो पाचन क्रिया करती है। इस क्रिया में घोड़े की भाँति पेट बाहर को फुलाकर क्रिया करनी पड़ती है। यह क्रिया मन्दाग्नि का पूर्ण नाश करती है।

अश्वो वमति वै यत्र शकृत् पिण्डं पृथक्-पृथक् ।

कारणं तत्र किं ज्ञेयं किं तद् ज्ञातुं च शक्यते ।।

घोड़ा पिण्ड-पिण्ड रुप में अलग-अलग लीद त्याग करता है। (घोड़े को कभी पतली टट्टी नहीं होती) इसमें विशेष कारण यही है कि उसका उदर-गठन इसी प्रकार है कि उसके विशिष्ट भाग में वायु का पूरण हुआ रहता है।

सैषा चाश्वोदरी मुद्रा वातेनोदरपूर्णिका।

यावदाकण्ठकं वायुं पूरयेत् पूरयेत् सुधीः।।

इसीलिये इसे अश्वोदरी मुद्रा कहते हैं कि साधक वायु से पूरा पेट गले तक लबालब भर लेता है और पेट को आगे की ओर उसी भाँति करता है जैसे घोड़े का पेट रहता है।

तदा शनैः शनैः सर्वं वायुवेगं विरेचयेत् ।

उदरं निम्नगं कृत्वा सिद्धयेदश्वोदरी क्रिया।।

फिर धीरे-धीरे वायु को बाहर निकाल देता है। पेट को थोड़ा नीचे झुका कर अश्वोदरी मुद्रा सिद्ध होती है।

उपस्थाद् गुदपर्यन्तं या गता दीर्घनाडिका।

पुरः पश्चात समाकृष्य कर्षमुद्रा तदोच्यते।।

लिंग और गुदा तक जो लम्बी मोटी नस गई है, उसे सामने से पीछे की ओर खींचा जाता है उसे कर्ष मुद्रा कहा जाता है।

या मुद्रा कर्षिका प्रोक्ता सा च कर्षवती प्रिया।

यदि वा क्षरते वीर्यं तन्निरोधं करोति सा।।

कर्षिका मुद्रा को कर्षवती मुद्रा भी कहा जाता है। यह मुद्रा साधकों को बहुत प्रिय है। क्रियाओं में वीर्य-क्षरण होता हो तो यह मुद्रा उसे रोकती है।

स्वप्नदोषादि जालानां सैवमुद्रा प्रणाशिका।

गुदोपस्थं समाकृष्य कुर्यान्नसिकया स्फुरन् ।।

यही मुद्रा समस्त स्वप्नदोष आदि विकारों को नष्ट कर देती है, गुदा और लिंग को ऊपर की ओर नाक के पपोटे खींचते हुए भीतर श्वास खींची जाती है।

बारं-बारं विधायैवं कर्षमुद्रा प्रजायते।

इस फड़ फड़ाती नाक से श्वास खींचकर यह मुद्रा लगातार करनी पड़ती है।

अश्वहेषी श्रुता सर्वैः कुर्यात् तद्वन्महारवम् ।

कण्ठकम्पं शिरः कम्पं कृत्वा श्वासं त्यजेद् भृशम् ।।

घोड़े का हिनहिनाना सभी ने सुना होगा। उसी प्रकार होंठ फड़ फड़ाते हुए सिर का कंपन करते हुए, गला कंपाते हुए, श्वास बाहर छोड़ते हुए जोर की कम्पपूर्ण ध्वनि करना चाहिये।।

एषा मुद्रा महामुद्रा पुष्णाति परमां श्रियम् ।

स्वरसंस्थापनं कृत्वा ज्ञातव्या सा क्रिया सदा।।

यह हषा मुद्रा साधक की कान्ति बढ़ा देती है और चंचल मन को स्थिर कर देती है। स्वर का ठीक संस्थापन करके यह मुद्रा करनी चाहिये। इसका ज्ञान किसी अभ्यासी से सीखना चाहिये।

अश्वो यथा महावेगात् दूराद् दूरं च हेषते।

तथैव हेषणं कृत्वा हेषा मुद्रां प्रसाधयेत् ।।

बड़े बेगपूर्वक घोड़ा जिस भाँति हिनहिनाता है और आवाज़ दूर तक सुनाई पड़ती है, उसी प्रकार हिनहिनाते हुए श्वास बाहर छोड़ते समय सिर हिलाते हुए और होंठ फड़फड़ाते हुए यह क्रिया करनी चाहिये। इस क्रिया की सिद्धि करनी चाहिये।

१३-१२-६२ प्रातः काल ।।७८।।

तडित्प्रभा-भास्वर-कान्त कान्ति-विराजमानां च विशिष्ट बोधे।

रोधैश्च शोधैश्च महाविनोदैः सुसाधकैः सार्धमनन्त वेगैः।।

विभ्राजमानां हृदि सन्निविष्टां भावैक-भाव्यां मनसा च शक्यां।

तां भावये निर्मलकां वरेण्यां या मे सदा देवि ददाति ज्ञानम् ।।

मैं सदा उस वरेण्य निर्मल और केवल भाव से ही भवनीय तथा मन से ही भाव में ला सकने योग्य माँ सरस्वती का मन से ध्यान करता हूँ, जो माँ साधकों की अनन्त वेगवती क्रियाओं के द्वारा, नाना प्रकार के अवरोधों को दिखाती हुई, शरीर, मन, बुद्धि, चित्त आदि का रोधन करती हुई, बड़े विनोद पूर्वक सदा साधकों के हृदय में बैठकर विराजमान हो जाती है। जब साधक को विशिष्ट बोध देना होता है तो विद्युत् की भाँति चमकीली जिसकी कान्ति हो जाती है।

मुद्राज्ञानं क्रियाज्ञानं ज्ञानमित्युभयात्मकम् ।
ज्ञातव्यं साधकैस्तस्मात् सद्यः कार्यफलं भवेत् ।।

योगसाधना का शीघ्र फल प्राप्त करने के लिये मुद्राओं एवं क्रियाओं का एक साथ ज्ञान प्राप्त कर लेना परम आवश्यक है।

एता मुद्राः क्रियाः सर्वाः सुलभाः स्वल्पकालिकाः।
द्वाभ्यां चतुष्टयेनैव भवन्त्यभ्यासमागताः।।

ये सब बताई गई मुद्रायें और कियायें बड़ी सरल और अल्पकाल में सिद्ध होने वाली हैं। दो या चार दिन के भीतर ही इन में सिद्धहस्तता प्राप्त हो जाती है।

अश्ववारो यथा चाश्वं समारुढो विराजते।
मुद्राक्रियाधिकारस्य तद्वद्विभ्राजते स्वयम् ।।

जिस प्रकार घोड़े पर सवार घुड़सवार निर्भय होकर रहता है और अधिकार-प्राप्त घोड़े को लेकर जहाँ चाहे आ जा सकता है। उसी भाँति मुद्राओं और क्रियाओं में अधिकार करके साधक सुशोभित होकर रहता है।

कदाचिदग्रतः कृत्वा पश्चात् कृत्वा कदापि च।
कदाचिदुदरं बद्धवा घोटकं वशमानयेत् ।।

पेट को कभी बाहर करते हुए, कभी पीछे भीतर की ओर करते हुए, कभी इधर उधर घुमाते हुए श्वास रुपी घोड़े को साधक अपने वश में कर ले।

तस्मान्नैव तदा तस्य सदश्वात् पतनाद्भयम् ।
एवं मुद्रां क्रियां कृत्वा यत् सिद्धेत् सिद्धमेव तत् ।।

सधे हुए घोड़े पर सवार साधक को फिर गिरने का भय नही रहता है। क्रियाओं और मुद्राओं द्वारा सिद्ध करना होता है, साधक उसे सिद्ध कर लेता है।

एका परा महामुद्रा या मुद्रा फलदा शुभा।
तां ज्ञात्वा सरलत्वेन साधको योगमाप्नुयात् ।।

एक मुद्रा बड़ी श्रेष्ठ है, जो बहुत लाभप्रद है। वह बड़ी सरल है, उस महामुद्रा को जानकर साधक योगसाधना की सिद्धि प्राप्त कर लेता है।

सा मुद्रा लम्बिनी मुद्रा मनोवेगावरोधिका।
सद्यः फलप्रदा सैव एकैव परमाद्भुता।।

उस मुद्रा को लम्बिनी मुद्रा कहा जाता है, यह मुद्रा मन के चंचल वेग को तत्काल रोक देती है। यह शीघ्र फल देने वाली है। यह मुद्रा एक अकेली ही परम अद्भुत है।

वामहस्तं ततो कृत्वा दक्षिणस्य करोपरि।
अंगुष्ठेन च अंगुष्ठं मेलयेत् साधकः स्वयम् ।।

दांये हाथ की हथेली के ऊपर बांये हाथ को सीधा रखकर, दोनों हाथों के अंगूठों को परस्पर मिला देना चाहिये।

पुनर्मुष्टिं समाबद्धय मध्ये रिक्तस्थले स्थितम् ।
कृत्वा नितम्बभागं वै किञ्चिदूर्ध्वं शनैः शनैः।।

फिर मुट्ठी बाँधकर बीच का खुला भाग छोड़ दें, नितम्ब के हिस्से को धीरे-धीरे, थोड़ा-थोड़ा ऊपर की ओर खींचता चला जाना चाहिये।

दीर्घनाडीमुपस्थानीं मुष्टिकोपरि स्थापयेत् ।
पूर्णभारं समारोप्य तत्रैव निश्चलो भवेत् ।।

उपस्थानी नाड़ी (गुदा व लिंग के बीच की लम्बी नाड़ी) मुट्ठी के ऊपर स्थापित कर दें, उसी में शरीर का पूरा भार रख लें और उसी पर निश्चल होकर बैठ जायें।

साधिता लम्बिनी मुद्रा मनोवेगावरोधिनी।
मनश्चञ्चल्यमाहन्ति तदेनां धारयेद्बुधः।।

लम्बिनी मुद्रा की सिद्धि हो जाने पर सभी मनोवेग अवरुद्ध हो जाते हैं। मन की हर प्रकार की चंचलता इस मुद्रा से नष्ट हो जाती है। इसलिये साधक को इस मुद्रा का अवलम्बन करना चाहिये।(२ नं० मुद्रा)

१३-१२-६२ सायंकाल ।।७९।।

मुद्रां विद्यां परोत्कर्षां परां परपदप्रदाम् ।
वदामि यां च वै ज्ञात्वा श्रेयः प्राप्स्यसि वै ध्रुवम् ।।

परम उत्कर्ष देने वाली, ऊँचे पद तक पहुंचाने वाली श्रेष्ठ मुद्रा की विद्या तुम्हें बताती हूं जिसे जानकर तुम अवश्य ही श्रेय प्राप्त कर लोगे।

एका मुद्रा महामुद्रा सापि गुप्ता न भासिता।

तां मुद्रां भासये तेऽद्य श्रृणु वत्स समाहितः।।

एक मुद्रा बहुत महत्त्वपूर्ण है, जो गुप्त है और कभी किसी को प्रकट नहीं की गई है। हे वत्स ! उस मुद्रा को मैं तुम्हें बताती हूँ, तुम सावधानी से उसे सुनो।

मुद्रा श्रेष्ठा च सा मुद्रा झंपिनी झंपनात्मिका।

तस्याश्च ज्ञानमात्रेण क्रियामात्रेण वै ध्रुवम् ।।

वह श्रेष्ठ मुद्रा झम्पिनी मुद्रा है, जिसमें ऊपर उछलना होता है। उसके ज्ञान मात्र और क्रिया मात्र से ही अवश्यः-

ऊर्ध्वं गच्छन्ति वै प्राणाः मनश्च स्थिरतां व्रजेत् ।

झंपिनी च महामुद्रा या प्रोक्ता तत्त्वतो मया।।

प्राण ऊपर की ओर चढ़ने लगते हैं और मन में स्थिरता आ जाती है। तत्त्वपूर्वक "यथा नाम तथा गुणः" के अनुसार उस महामुद्रा का नाम झम्पनी रखा गया है।

सा मुद्रा झंपमात्रेण स्थिरतां स्थापयेन्मनः।

मनसः स्थिरतां याते क्रिया वेगवती भवेत् ।।

झम्प मुद्रा के झटकों से ही मन स्थिर हो जाता है। मन की स्थिरता होते ही क्रिया वेग बढ़ने लगता है।

यावद् यथा च तद्ज्ञानी स्ववशे च विशेषतः।

अपरा स्कन्धिनी मुद्रा सा च प्राणार्थधारिणी।।

दूसरी स्कन्दिनी मुद्रा है जिस पर अधिकार करने पर जब तक वह लगी रहेगी तब वह प्राणों और मन को रोकी रहेगी।

प्राणानां धारणं कृत्वा संघर्ष याति सा ततः।

स्कन्धयोरुपरिभागे कृत्वा गोलकमन्ततः।।

ग्रीवासंघर्षणं कृत्वा सा क्रिया सिद्धिदा भवेत् ।।

प्राणों को रोक कर दोनों कन्धों के ऊपरी भाग में अर्धगोलाकार बनाकर गर्दन को घिसना चाहिये। गर्दन को रगड़ते-रगड़ते उस मुद्रा पर अधिकार प्राप्त हो जाता है।

सा च दिव्या परा दिव्या स्कन्धिनी स्कन्धरोधिका।

तस्मात् समाहितत्वेन विधेया हि क्रिया हि सा।।

यह स्कन्दिनी मुद्रा बड़ी दिव्य है और कन्धों को स्थिर कर देने वाली है। अतः यह

क्रिया बड़ी सावधानी से करनी चाहिये। गर्दन की रगड़ तब तक की जाय जब तक गर्दन थक न जाय। फिर गर्दन स्थिर करके नितम्ब भाग को रगड़ना चाहिए।(४ नं० मुद्रा)

सरला या चवै मुद्रा कर्पूरी कर्पूरात्मिका।

सापि श्रेष्ठा महामुद्रा सद्यः फलवती भवेत् ।।

हाथ की कोहनी से सम्बन्धित एक सरल कर्पूरी मुद्रा है। यह भी बड़ी श्रेष्ठ महामुद्रा है, जो तुरन्त लाभ देने वाली है।

कर्पूरीमुद्रया सर्वं चाञ्चल्यं च विनश्यति।

क्रोडे कृत्वा च तौ हस्तौ शिरो भूमौ निधापयेत् ।

कर्पूरी मुद्रा से मन की सभी चञ्चलता नष्ट हो जाती है। हाथों को बगल में लाकर कोहनी पृथ्वी पर टेक दो।

पुनर्नाभिगतं श्वासं ब्रह्मरन्ध्रे प्रवेशयेत् ।
कर्पूरभागमादाय भूमौ कृत्वा ततः स्थितिम् ।।
ग्रीवां हस्तौ समारोप्य सम्बद्धौ च ततः उभौ।
संबद्धौ च ततो हस्तौ ग्रीवांभारोद्वहां बलाम् ।।
निम्नभागं समादाय समत्वं च भवेत्ततः।
तदा वै परमा शान्तिश्चाञ्चल्येन विवर्जिता।।
समायाति स्वयं काले तस्मिन् यत्र च कर्पुरी।।

फिर नाभि में अटके श्वास को ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश करा दो, भूमि में कोहनी टेक कर गर्दन में दोनों हाथ मिलाकर बाँध लो। हाथों से ग्रीवा को खींच लो। इस मुद्रा से परम शान्ति प्राप्त होती है और मन की चञ्चलता दूर हो जाती है। इस मुद्रा के अभ्यास से स्वयं ही यथा समय प्राणों का प्रवेश ब्रह्मरन्ध्र में हो जाता है। मन भी बिलकुल स्थिर हो जाता है। (५ नं० मुद्रा)

१४-१२-६२ प्रातः ।।८०।।

धावनं पावनं कृत्वायाचाश्वमाश्विनी परा।
सा दिव्या मार्गबोधार्थं एवमेवं प्रकाश्यते।।

श्वास रुपी घोड़े को दौड़ाते हुए और उसे शुद्ध बनाते हुए यह अश्वविद्या साधकों के मार्ग का इसी प्राकर मार्ग प्रदर्शन करती है। इसलिये इसका ज्ञान साधक को बताना चाहिये।

या विद्या साधकानां च स्वयमेव समागता।
नाथनाथेश्वरस्यैव कृपा तत्र च ज्ञायताम् ।।

साधकों के हित के लिए जिस अश्व विद्या का स्वयं अवतार हुआ है, इस में यही समझना चाहिये कि नाथ नाथेश्वर महाराज गोरक्षदेव की साधकों पर महती कृपा है।

तां विद्यां च समालम्ब्य साधको निश्चलो भवेत् ।

सारल्येन प्रमाणेन तस्मात्सा च प्रकाश्यते।।

उस विद्या को प्राप्त करके साधक निश्चल हो जाता है। इसलिये सरल तरीके से उस विद्या को प्रकाश में लाया जा रहा है।

नानासाधन-सम्पन्नाः नानाज्ञानसमन्विताः।

गच्छन्ति च तया तत्र यत्र यत्र च संस्थितिः।।

जिस विद्या के अवलम्बन से साधक लोग नाना प्रकार से साधन सम्पन्न बन जाते हैं और उस का अवलम्ब करके जो पर तत्व है वहाँ स्थिति प्राप्त कर लेते हैं।

किन्तु तेषामुपप्राप्ति-साधनं यदि विद्यते ।

पूर्वं तु नैव संयान्ति यातुं न प्रभवन्त्यपि।।

किन्तु यदि साधक के पास इस विद्या का साधन न हो तो वह ज्ञान और साधन प्राप्त नहीं हो पाता और वहां तक पहुंच नहीं पाते हैं। यदि साधन में लगे रहें तो भी।

तदा मार्गावरोधेन गन्तुं तत्र न शक्यते।

अतः मार्गविशोधाय बोधाय तस्य वै सदा।।

इस विद्या के बिना मार्ग अवरोध होने के कारण पहुंच नहीं पाते हैं। इसलिये मार्ग का शोधन करने के लिये और बोध का उपाय बताने के लिये-

एषा विद्या पराविद्या टंकनाख्या प्रकाश्यते।

यह टंक नामक विद्या सर्वश्रेष्ठ विद्या है, जिसका सम्प्रति तुम्हारे सम्मुख प्रकाश किया जा रहा है।

अन्यां वक्ष्यामि ते वत्स मुद्रा तां चाश्वबन्धिनीम् ।।

बद्धा अश्वेन संयाति तस्मात्स परिचितो भवेत् ।।

हे वत्स अन्त में मैं अश्वबन्धिनी मुद्रा तुम्हें बता रहीं हूँ। श्वासरुपी घोड़ा जब बाँध दिया जाता है तो वह परिचित हो जाता है और उसके द्वारा यथेच्छ गमन होता है।

यदा वै चञ्चलः सोऽश्वः स्वं स्थानं बन्धितो भवेत् ।

जायते साधितस्तत्र न च गन्तुं स इच्छति।।

जब वह घोड़ा अपने स्थान पर बांध दिया जाता है, तब वह भलीभाँति सधकर प्रशिक्षित हो जाता है और उससे यथेच्छ गमनागमन किया जा सकता है।

या च मुद्रा मया प्रोक्ता अश्वस्य बन्धने मता।

तया च मुद्रया अश्व आयाति स्ववशे स्वयम् ।।

अश्वबन्धिनी जो मुद्रा कही जा रही है वह श्वास रूपी घोड़े को बाँधने के उपयोग में आती है। इस मुद्रा में अश्व स्वयं वश में आ जाता है।

अतएव च सम्प्रोक्तं तद् ज्ञानं तत्क्रिया च वै।

कष्टात् कष्टतरा सा च न ज्ञातव्या कदाचन।।

इसीलिये इस क्रिया को और इस ज्ञान को बड़े कष्ट और परिश्रम से बड़े ज्ञानी प्राप्त कर सकते हैं। कभी कभी तो इसे मालूम भी नहीं कर पाते हैं।

उभौ च हस्तौ सुनिधाय तद्गले संयोज्य द्वारे निहितं तदस्य।

तद्धारणे कीलकसन्निभेन तत्रैव श्वासो लघुतां प्रयाति।।

दोनों हाथों को गले के पीछे की ओर मिला कर बाँध लेना चाहिये। इस प्रकार खूंटी में जैसे घोड़े को बाँधा जाता है उसी प्रकार वहीं पर श्वास की गति मन्द पड़ने लग जाती है।

दृष्टिं च दत्वा हि अधः प्रदेशे श्वासं च मन्दं प्रकरोति सद्यः।

शनैः शनैः श्वासममन्दरूपं चायाति तत्रैव च बन्धनं यत् ।।

इस मुद्रा में दृष्टि नीचे की ओर कर लेनी चाहिये। इसप्रकार शीघ्र ही श्वास प्रश्वास मन्द होने लग जाता है। धीरे धीरे श्वास की गति मन्दता होने पर वह समता में आ जाता है। यही श्वास के घोड़े का बन्धन कहा गया है।

संचालनं तत्र च कार्यमेतद् द्वयोस्तयोर्वा करयोः क्वचित् क्वचित् ।

तत्रैव सर्वं जपमन्त्ररूपं जाप्यं च जापः मुदमातनोति।।

इस मुद्रा में बीच-बीच में दोनों हाथों को हिलाते रहना चाहिये। इस मुद्रा में सभी मंत्रों का जप करने में बड़ा आनन्द मिलता है। (६ नं. मुद्रा)

ॐ अथ स्थानपरिचायिका मुद्रा।

इसके अनन्तर स्थानपरिचायिका मुद्रा कही जाती है।

हस्तावुभौ कक्षगतौ च कृत्वा मन्दं च मन्दं जपमाचरेत।

तच्चर्वणं चर्वित-मन्त्रजापं सिद्धि भवेत् तत्र च संस्थितेन।।

दोनों हाथों को दोनों कोखों में दबाकर मन्द मन्द रूप में जप करते रहना चाहिये। इस प्रकार जप करने को "चर्वित चर्वण" कहते हैं। घोड़ा घास चबाकर मुंह में भर लेता है, फिर बैठकर उसी को पुनः चबाता है। इसे जुगाली करना भी कहते हैं, इस मुद्रा में जप करने से मन्त्रसिद्धि शीघ्र होती है। (७ नं. मुद्रा)

१४-१२-६२ सायंकाल।।८१।।

प्रफुल्लवदनाम्बुजां कनक-कान्ति-समविग्रहाम् ।

अनन्तपरिवोधिकां नमामि तां तत्त्वशोधिकाम् ।।

खिले कमल-से मुखवाली, सुवर्ण की कान्ति के समान शरीर वाली, तत्वों का शोधन करने वाली और अनन्त ज्ञान का बोध देने वाली भगवती को मैं प्रणाम करता हूँ।

शारदां नौमि तां देवीं दिव्यां टंकभिधायिनीम् ।

टंकनोद्देशज्ञात्रीं च वन्दे तां शारदां शुभाम् ।।

वन्दे तां वाङ्मयीं देवीं वागर्थप्रतिपक्षिकाम् ।

प्रतिपत्तिसमायुक्तां प्रतिपत्ति विबोधिकाम् ।।

प्रतिपत्तिधृता-धारां प्रतिपत्ति-समाकुलाम् ।

व्याप्तां तां प्रतिपत्याख्यां टंकटंकोत्करीं पराम् ।।

मैं उस दिव्य सुन्दर शारदा माँ को नमस्कार करता हूँ जो टंक रूप है, जो टंकविद्या के तात्पर्य को बताती है। वाणी और अर्थ का रहस्य बताने वाली, समर्पण भाव को देने वाली, समर्पण के आशय को बताने वाली वाड्मयी माँ को मैं प्रणाम करता हूं। शरणागति ही जिसका आधार है, शरणागति ही जिसका स्वरूप है, टंकविद्या को छानवीन कर बताने वाली उस व्यापक जगदम्बा को मैं प्रणाम करता हूँ। (८ नं. मुद्रा)

अथ मुद्रा समाख्येया सैव मुद्रा पटात्मिका।

पटवाससमायुक्तां पटबोधविधायिकाम् ।।

अब पट्टबन्धिनी मुद्रा बताई जाती है, जिसमें सिर पर पट्टी बाँधने जैसी क्रिया होती है। पट् अर्थात् किवाड़ बन्द करने जैसा भाव होता है या पर्दा डाल देने जैसा होता है। (८ नं. मुद्रा)

पट्टसंबोधिनीं मुद्रां ज्ञात्वा यां प्रचरेत्क्रियाम् ।

सर्व उष्णहरां तां च कपाले कृतसंचयाम् ।।

यह मुद्रा कपाल में संचित पूर्ण उष्णता गर्मी को दूर भगा देती है। घड़े के छिद्रों को बन्द करके फिर बाहर से और कपड़मिट्टी कर दी जाय तो वह और अधिक पक्का हो जाता है, उसी भाँति टंक विद्या की अन्य क्रियाओं से शरीर रूपी घट के छिद्र बन्द होने पर इस पट्टबन्धिनी मुद्रा से टंक को और अधिक पक्का कर देना चाहिये, यही तात्पर्य है।

एका सा रिक्तहस्ताभ्यां स्वैरेणैव समाहिता।

अपरा हस्त संयुक्ता अत्रैवाधारदायिनी।।

एक तो बिना हाथों का सहारा लिये ही सावधानी से की जाती है, और दूसरी हाथों को मिला कर हाथों का सहारा लेकर की जाती है।

कपाले भारमारोप्य हस्तयोरूभयोः शुभम् ।

ऊष्माणं चैव संहन्ति सर्वारोग्यप्रदं हि तत् ।।

दोनों हाथों को मिलाकर कपाल भाग में समारोपित कर दो। यह मुद्रा सब प्रकार की आरोग्यता देने वाली होती है और सिर की गर्मी को दूर कर देती है। (८ नं. पर मुद्रा)

एषा वै सुभगा मुद्रा गारूडीत्यभिधीयते।

खगेन्द्र गरूडाख्येन तद्वत्सा फुर्फुरायते।।

इस सुन्दर कल्याणप्रद मुद्रा को गारूडी-मुद्रा भी कहते हैं। गरूड़पक्षी की भाँति इस मुद्रा में हाथों का स्फुरण, हिलाना डुलाना होता है।

एषा वै गारूडी मुद्रा गरूडेन समादृता।

गरूडेन समं नेत्रप्रकाशं दीर्घतां नयेत् ।।

गरूड़ पक्षी ने इस मुद्रा को अपनाया है। इसलिये इस मुद्रा के धारण से गरूड़ की भाँति नेत्रों का प्रकाश बढ़कर तीव्र दृष्टि हो जाती है।

एतां मुद्रां सदा कृत्वा स्वल्पं स्वल्पं शनैः शनैः।

नेत्रयोर्ज्योतिराप्नोति ज्योतिषां प्रतिशाश्वतीम् ।।

नित्यप्रति थोड़ा थोड़ा, धीरे धीरे इस मुद्रा के करने से नेत्र की ज्योति बढ़ती है और फिर वह नेत्र ज्योति चिरस्थायी हो जाती है।

कदाचित् क्षरते नीरं तप्तं वै शीतलं क्वचित् ।

कपोलभागमायाति शीतोष्णं तेन मापयेत् ।।

इस मुद्रा में आखों से कभी गरम कभी ठंडा जल बहता है और कपोल भाग तक आ जाता है। इससे सिर की गर्मी और ठंडक को जान लेना चाहिये।

योगपट्टाभिधा मुद्रा योगिनां च परा प्रिया।

तां कुर्वन्ति सदा ते च ये जनाः योगमाश्रिताः।।

योगियों की परम प्रिय दूसरी एक योगपट्टिका मुद्रा भी है। योगारूढ़ साधक सदा इसी मुद्रा को किया करते हैं।

शरीरं काष्ठवत् कुर्यात् सरलं उपरिस्थितम् ।

मेरूदण्डं स्थिरं कृत्वा प्रान्तेन च स्थिरो भवेत् ।।

शरीर को सीधा काठ की तरह दृढ़ करले। मेरू-दण्ड को स्थिर करके उसके सहारे सारे शरीर को उत्तोलित कर लेना चाहिये।

किञ्चिन्नैव प्रकर्तव्यं करणीयं न विद्यते।

केवल श्वासमास्थाय काष्ठवत् स्थितिमाचरेत् ।।

इस मुद्रा में अन्य कुछ भी क्रिया न करनी चाहिये, किसी भी अंग का परिचालन न हो। केवल श्वास-प्रश्वास चलता रहे और शरीर काठ की तरह सीधा और अकड़ा रहे।

यदि वा नैव तच्छक्यं शरीरं सन्निरोधितुम् ।

तदा ग्रीवासमासक्तौ हस्तौ च योजयेत् सुधीः।।

यदि ऐसा कर सकना सम्भव न हो तो दोनों हाथ गर्दन में सहारे के लिये लगा देना चाहिये। शरीर की स्थिति काठ की तरह दृढ़ और स्थिर रहे। शरीर का कोई अंग हिले नहीं।

एवं कृत्वा पुनर्भूयः परीक्षा जायते शुभा।

कृत्वा परीक्षणं विज्ञः साधकानां गतिं मतिम् ।।

इस मुद्रा से ही साधक की साधन-क्रियाओं की ठीक परीक्षा हो जाती है। जितनी देर तक यह मुद्रा को जा सकेगी, उतने ही मात्रा में साधक का साधन ठीक समझना है।

मन्तव्यां माननीयां च गन्तव्यां वै न चेष्यते।

सर्वमेतत् शरीरस्थं काष्ठवत् काष्ठिका क्रिया।।

इस मुद्रा में मनन, चिन्तन, गति सब कुछ नहीं होता है। इस मुद्रा में बस शरीर काठ की भाँति रखकर काठ की ही भाँति शून्य छोड़ देना पड़ता है। (९ न. मुद्रा)

ज्ञानं करोति मुद्राणां क्रियाणां पक्वतामसौ।

एवं कृत्वा स जानाति साधकः स्वयमेव हिं।।

सिद्धामसिद्धां वा सर्वां क्रियां मुद्रां महारथिः।।

साधक की समस्त क्रियाओं और मुद्राओं की इस मुद्रा द्वारा पहिचान हो जाती है। इस मुद्रा द्वारा साधक स्वयं जान लेता है कि मेरी क्रियायें ठीक चल रही हैं या नहीं, साधन ठीक चल रहा है या नहीं। यह मुद्रा जितनी देर तक लगाने की क्षमता रहेगी, समझ लो कि उतना ही अच्छा साधन चल रहा है।

जागृता च हि या देवी सर्वकार्यार्थसाधिका।
सर्वत्र सर्वदा सा वै वन्दे नित्यां महेश्वरीम् ।।

जो भगवती जागृता होकर समस्त कार्य सिद्ध कर देती है, जो सदा सर्वत्र व्यापक है, उस नित्या महेश्वरी भगवती कुण्डलिनी महाशक्ति को मैं प्रणाम करता हूँ।

महेश्वरी महाशक्तिः योगनिद्रा प्रदायिनी।
जागृता शारदा सैव ज्ञानं सर्वं ददातु मे।।

योग निद्रा प्रदान करने वाली महेश्वरी महाशक्ति, जो शरीर में जागृता होती है वही भगवती शारदा मां के रूप में मुझे समस्त ज्ञान प्रदान करें।

मुद्राणां परमा मुद्रा परमार्थ-प्रसाधिका।
उत्कर्षमायाति यया मुद्रया धारणा शुभा।।

मुद्राओं में सर्वश्रेष्ठ मुद्रा जो परमार्थ सिद्ध करने वाली है और जिस मुद्रा से साधक उन्नति करता चला जाता है और धारण करने पर जो कल्याण प्रदान करती है।

शम्भोर्या परमा-शक्तिः शाम्भवी यतिमानिता।
मुद्रा या शाम्भवी यस्याः ज्ञानाद् ज्ञानं प्रजायते।।

जो भगवान शिव की परमा शक्ति है, भगवान् शिव ने स्वयं जिसका आदर किया है वह मुद्रा शाम्भवी मुद्रा है, जिसके जान लेने पर दिव्य ज्ञान होता है।

दिव्यदृष्टिः समायातिरन्तर्ज्ञानं तथैव च।
बहिर्ज्ञानं च संयाति सा मुद्रा शाम्भवी मता।।

जिससे दिव्य दृष्टि हो जाती है, अन्तर्ज्ञान और बहिर्ज्ञान स्वतः हो जाता है, उसे शाम्भवी मुद्रा कहते हैं।

मुद्राणां निकषोपलं भगवती या शाम्भवी प्रोच्यते,
शम्भोः सा परमा परा परभृता पारार्थ-सन्दर्शिका।
सा घोरा घनघोर घुर्घुरघुरा मुद्रा च या शाम्भवी,
दिव्यं या च ददाति चक्षुरमलं ज्ञानं च तत्त्वार्थकम् ।।

यह शाम्भवी मुद्रा समस्त मुद्राओं की कसौटी है। इसका सम्बन्ध भगवान् शम्भु से है और भगवान् शम्भु ने आदरपूर्वक इसे अपनाया है, यह गुप्त लुप्त बातों व विषयों को दिखाने वाली है। यह घोर, घनघोर, साधक को घुर्घुरा कर एकाग्र कर देती है, यह दिव्य ज्ञान देने वाली तत्त्वार्थ को बताने वाली और दिव्य चक्षु प्रदान करने वाली शाम्भवी मुद्रा है।

मुद्रा या शाम्भवी मुद्रा विकटा विकटार्थिका।

ज्ञानेन चापि सम्पन्ना बहिरभ्यन्तरेण च।।

यह शाम्भवी मुद्रा बड़ी विकट है, विलक्षण है, इस मुद्रा से बाह्य जगत् एवं अन्तर्जगत के सभी बातों का ज्ञान साधक को हो जाता है।

तस्मात् सा शाम्भवी मुद्रा शश्वदभ्यासमागता।

सिद्धिदा जायते कालात् न कालनियमो हि तत् ।।

निरन्तर अभ्यास करते रहने पर यह मुद्रा सिद्ध हो जाती है, इसमें कोई समय का नियम नहीं है। किसी को शीघ्र और किसी को देर में इसकी सिद्धि होती है।

कदाचित् स्वल्पकालेन बहुकालेन वै क्वचित् ।

क्वचिच्च दीर्घकालेन शाम्भवी सिद्धिमाप्नुयात् ।।

कभी स्वल्प काल में, कभी बहुत काल में और कभी बहुत लम्बे समय में इस शाम्भवी मुद्रा की सिद्धि होती है। सिद्धि के अनन्तर अमूल्य बन जाती है।

कृत्वा शरीरं सुदृढं च सुस्थिरं कम्पादिहीनं विगतालसेन।

पुनश्च जिह्वां लघुरूपिणीं च अग्रे स्वयं चालयते स्वयं च।।

निरालस्य पूर्वक शरीर को स्थिर सीधा कम्पविहीन रखकर जीभ को आगे की ओर साधक परिचालन करता है, इससे जीभ के रेशे नरम और ढीले पड़ जाते हैं।

जिह्वायाश्चालनं कृत्वा तालुमध्ये शनैः शनैः।

कृत्वा च घर्षणं तस्याः पुनस्तां स्थिरतां नयेत् ।।

जिह्वा का चालन करके धीरे-धीरे तालु के बीच जिह्वा की नोक को रगड़ना चाहिये, फिर उसे स्थिर करलेना चाहिये।

तालुभागे च यदभागं जिह्वाया अग्रवर्तितम् ।

संस्थापयेत्तु तत्रैव तस्माद् ध्यानं प्रजायते।।

जो जिव्हा का अग्रवर्ती भाग है उसे तालु के अग्रभाग में लगा देना चाहिये, इससे उसी भाग पर ध्यान जमा रहता है जहाँ जीभ लगी रहती है।

एवं कृत्वा सदाकाले कालेनैव समाचरेत् ।

बहुकालगते तस्माद् बहुज्ञानं भविष्यति।।

निरन्तर इस प्रकार करते हुए बहुत काल पश्चात् बड़े बड़े अनुभवात्मक ज्ञान होने लग पड़ते हैं। यह मुद्रा नित्य नियमपूर्वक करनी चाहिये।

एतादृशं च तद् ज्ञानं ज्ञानिनां निश्चयात्मकम् ।

क्रियासंसिद्धिजं ज्ञानं सर्वं द्रष्टुं च शक्यते।।

खेचरी मुद्रा से उद्भूत वह ज्ञान इस प्रकार का होता है कि जिसे निश्चयात्मक, भ्रान्तिहीन ज्ञान कह सकते हैं। इस ज्ञान के द्वारा साधक बाहर भीतर का सब कुछ क्रियाकलाप देख और जान सकता है।

नेत्रयोः कर्षिका दृष्टिस्तत्रैव विनयाति ताम् ।

यत्र तालुगता जिह्वा रन्ध्रभागेन संस्थिता।।

साधक की दृष्टि वहीं खिंची चली जाती है, जहाँ जीभ लगी है। तालुभाग के छिद्र में लगा हुआ जिह्वा का अग्रभाग हठात् साधक की दृष्टि को वहीं खींचकर ध्यानस्थ कर देता है।

भूयोभूयश्च तां दृष्ट्वा भूयो भूयश्च संस्मरेत् ।

ॐ इत्येकाक्षरं ब्रह्म शनैश्च जपमाचरेत् ।।

उस स्थान का बार बार दर्शन करता रहे और बार बार स्मरण करता रहे और धीरे धीरे ॐ इस अक्षर ब्रह्म का जप करता रहे।

द्वितीया शाम्भवी मुद्रा मेरूदण्डनतोन्नताम् ।

शिरो निम्नं विधायैव हनुं कण्ठे च स्थापयेत् ।।

एक दूसरी शाम्भवी मुद्रा भी होती है, जिसमें मेरूदण्ड का झुका रहना या सीधा रहना यथेच्छ रहता है। सिर नीचे झुकाकर ठोड़ी, को कण्ठ में लगा देना चाहिये और मेरूदण्ड चाहे झुकाये रहो चाहे सीधा किये रहो।

नेत्राभ्यां हृदयं नाभिं अथवा कण्ठचक्रकम् ।

विलोकयेत् समुद्घाट्य तत्र पश्यति स स्वयम् ।।

खुली आँखों से हृदय देश को, नाभि को अथवा कण्ठ चक्र में दृष्टि जमा लेनी चाहिये वहाँ साधक स्वयं दर्शन करता है-

परं च परमं दिव्यं प्रकाशं बहुभासितम् ।

तं प्रकाशं विलोक्यैव शाम्भवी शुभतां व्रजेत् ।।

एक परम दिव्य प्रकाश को जो बहुत प्रकार के रंगों का है, उस प्रकाश के दर्शन करते ही शाम्भवी मुद्रा मंगल कारक हो जाती है।

षण्ठमास कृतेनैव अभ्यासेन शं भृशम् ।।

शाम्भवी सिद्धिमायाति प्रयत्नं च ततः कुरू।। (आगे वर्णन है)

बारम्बार निरन्तर इस प्रकार लगन से अभ्यास करने पर ६ मास में शाम्भवी मुद्रा सिद्ध हो जाती है।। इसलिए इस पर तुम प्रयत्न करते रहो।

सरला घूर्णिका मुद्रा शरीरं भ्रामयेत् च या।

नित्यं च साधकैर्नित्या कर्तव्या घूर्णिका क्रिया।।

घूर्णिका मुद्रा बड़ी सरल है। इस मुद्रा में नितम्ब भाग को स्थिर रखकर ऊपर का पूरा शरीर चक्की की भाँति घूमता है। साधकों को यह क्रिया नित्य करनी चाहिये।

घूर्णी च घूर्णिका घूरा इति रूपा प्रकाशिता।

सा सर्वकायजं क्लेशं विनिहन्ति तदैव च।।

इस मुद्रा को घूर्णी, घूर्णिका और घूरा इन नामों से भी कहते हैं। इसमें साधक को मूर्च्छा आ जाती है और शरीर की सारी थकावट दूर हो जाती है।

सर्वा मुद्रा क्रियाः सर्वाः कृतास्तत्रैव साधकैः।

एकैव घूर्णिका तस्मात् समशान्तिः प्रजायते।। (आगे वर्णन है)

साधक चाहे कितनी भी क्रियायें और मुद्रायें करले, यदि शरीर या किसी अंग से पीड़ा हो जाय तो एक अकेली घूर्णिका मुद्रा से सब काय क्लेश दूर हो जाता है। इस मुद्रा से चित्त भी शान्त हो जाता है।

१५-१२-६२ सायंकाल।।८३।।

कमलाक्षीं कमलप्रियां कमलनां कामप्रियाराधिताम् ।

कान्ताङ्गी कनकोत्तमां कलकृतिं कण्ठे कलाधारिणीम् ।।

कालज्ञां कमनीयमध्यसुभगां भालांङ्कितां कां गतिम् ।

कालाकालकलावतीं कलवतीं कामाक्षरीं कामये।।

कमल सी आँखों वाली, कलाओं की प्यारी, काम और रति द्वारा आराधित, सुन्दर शरीर वाली, कनक सी कान्ति वाली, सुन्दर कृति वाली, कण्ठ में कलाओं को धारण करने वाली, काल ज्ञान रखने वाली, सुन्दर कमर वाली, भाल में चन्द्रकला धारण करने वाली, काल और अकाल सम्बन्धी कलाओं वाली, काम विद्या के अक्षरों वाली कलावती देवी को प्रणाम करता हूं।

अपरा चावशिष्टा च एका सापि महाक्रिया।

महामुद्रा महामन्त्रा महासार्था महामयी।।

एक बड़ी उत्तम महाक्रिया और महामुद्रा है, जो बड़ी रहस्यमय है, महत्वपूर्ण है और बड़ी महिमा वाली है, उसे भी बताना परम आवश्यक है।

सा वै सम्भूयते मुद्रा सर्वभावेन भावनी।

यां कृत्वा सकलां शान्तिमानन्दं चाधिगच्छति।।

वह मुद्रा सर्वभावों से भरी हुई है। शक्तिपात साधक को वह स्वयं हुआ करती है, इसलिये उसे सर्वतोभाविनी मुद्रा कहते हैं। इस मुद्रा के करने से शान्ति और आनन्द प्राप्त होता है।

अपरा परमोद्योता द्योतिका भाविता क्रिया।

सर्वभावमयी सा च सर्वदृष्टि प्रदायिका।।

इस मुद्रा से साधक के भीतर प्रकाश खुलता है और नाना प्रकार के भावों का उदय होता है, सब प्रकार की दृष्टियाँ इससे खुल जाती हैं और यह मुद्रा सर्वभावमयी है।

सा मुद्रा चान्तिमा मुद्रा षोडशी परमाद्भुता।

एतां तां ज्ञानमात्रेण क्रियामात्रेण वै नरः।।

यह अन्तिम और सोलहवीं मुद्रा है, और परम अद्भुत है। इस मुद्रा के करने के ज्ञानमात्र से और कियामात्र से

योगमार्गसमालम्ब्य याति तत् परमं पदम् ।

न तस्य पतनाद् भीतिः स्खलनाच्चैव नो भयम् ।।

साधक योग मार्ग का अवलम्बन करके परम पद को प्राप्त कर लेता है। उसके गिर पड़ने की फिर शंका नहीं है और न ही इधर उधर भटकने का भय है।

मुद्राणां च क्रियाणां च आधारं स्वयमेव हि।

आधाराधेयभावेन क्रिया मुद्रा उभावपि।।

यह मुद्रा समस्त मुद्राओं और क्रियाओं की आधारभूता है। यों तो सभी क्रिया और मुद्रायें आधार और आधेय रूप से परस्पर सम्बन्धित हैं।

साधकस्य हितायैव भवन्ति परमोज्वला।

या मुद्रा भाविनी मुद्रा सर्वभावेन भाविनी।।

ये सभी क्रियायें और मुद्रायें परम उज्वलता से साधक के कल्याण के लिए ही होती हैं, जो सर्वतोभाविनी मुद्रा है वह सब भाँति हर स्थिति में साधक को करनी चाहिये।

अस्याः क्रियापि मे वाच्या श्रृणु त्वं तां समाहितः।

कर्णयोर्हस्तमाधाय उभया उभयात्मकी।।

तुम समाहित होकर सुनो, इसकी क्रिया भी मुझे बता देनी है। दोनों हाथों को अपने दोनों कानों में रख लेना चाहिये।

कनिष्ठिकां पृथक् कृत्वा अङ्गुष्ठं च अधो नयेत् ।
अङ्गुष्ठौ हनुभागे च संयोज्य तौ शनैः शनैः ।।

कनिष्ठिका अंगुली को अलग कर लेना चाहिये। अंगूठों को नीचे की ओर ले आना चाहिये। अंगूठों को हनुभाग में धीरे-धीरे मिला देना चाहिये।

कर्णयोः रन्ध्रभागे च अङ्गुलीः स्वयमाधरेत् ।
अस्मात् कर्पूरभागौ च जानुसन्धिगतावुभौ ।।

इससे अंगुलियाँ कान के रन्ध्रभाग में स्वयं आ जाती हैं। दोनों जानुओं की सन्धि में दोनों हाथों की कोहनियाँ अटका देनी चाहिये।

कृत्वा भारं समारोप्य अधस्ताच्च स्थिरो भवेत् ।
सर्वं शनैः शनैर्यावत् तीव्रं तीव्रं क्वचित् क्वचित् ।।

सारे शरीर का भार कुहनियों पर डालकर नीचे के भाग को स्थिर रखना चाहिये। बीच बीच में स्वेच्छापूर्वक कभी धीरे कभी तीव्र श्वास-प्रश्वास लेता रहे।

यदीच्छेद् ज्ञानमाकृष्य पूरयेद् रेचयेच्च वा।
कृत्वा मुद्रां च तां शुद्धां सर्वशान्ति प्रदायिनीम् ।।

कभी कभी इच्छा हो तो पूरक और रेचक भी करता रहे। इस प्रकार इस मुद्रा के करने पर परम शान्ति का लाभ होता है। यह मुद्रा मन को भी शुद्ध कर देती है।

साधको योगमाप्नोति कर्तव्या सापि साधकैः।
एषा क्रिया मया प्रोक्ता अन्तिमानन्तशक्तिदा।।

सर्वतोभाविनी मुद्रा साधक को सदा करनी चाहिये। इससे साधक योग प्राप्त कर लेता है। यह मुद्रा अनन्त शक्ति देने वाली अन्तिम मुद्रा मैंने बताई है।

मनसो भावना सर्वा सा तत्र रोधयत्यपि।

मन की जितनी भी कुभावनायें या योग-विरोधी भावनायें हैं, उन्हें यह मुद्रा तत्काल दूर कर देती है।

इति टंकन विद्यायामश्वसंचालन प्रकरणं परिसमाप्तम् । प्रकरणस्य समाप्तौ भगवत्याः सरस्वत्याः एतत्कथनं परिपूर्णं भवतु ।। ॐ ।।

टंक विद्या के अन्तर्गत अश्वसंचालन नामक प्रकरण समाप्त हो गया। इस प्रकरण की समाप्ति पर भगवती माँ सरस्वती का कहा हुआ भी साधकों की कामनाओं की पूर्ति करने वाला बने ।। ॐ ।।

१६-१२-६२ प्रातः काल ।।८४।।

ॐ अथ टंकविद्यास्थानपरिचय गमनाधिकरणम् ।

ॐ अब टंक विद्या के अन्तर्गत स्थानपरिचय गमन नाम का अधिकरण आरम्भ किया जाता है।

सदश्वः साधितोऽप्यश्वः गमनाय प्रचोदितः।
कुत्र तेन च गन्तव्यं तस्मात् तत् परिचयोभवेत् ।।

सिखाया पढ़ाया सधा घोड़ा हो, यथेच्छ गमनागमन करने को सदा तैयार भी रहे, फिर भी यदि उसे यह ज्ञात न हो कि जाना कहाँ और किधर है, अतः स्थान का परिचय होना चाहिये।

स्वयमज्ञातमार्गस्तु स्थानाधिपरिचयं विना।
न शक्नोति ततो गन्तुं गत्वा वा स्खलितो भवेत् ।।

जिसने स्वयं मार्ग नहीं जाना है और मार्ग से परिचय नहीं किया है, वह जा नहीं सकता है, यदि किसी प्रकार पहुंच भी जाय तो भी लक्ष्य तक पहुंच कर गिर पड़ेगा।

गहनं घाटिभिर्युक्तं कष्टात् कष्टतरं हि तत् ।
येनाश्वेन च गन्तव्यं अश्ववारेण वै पुनः ।।

जिस मार्ग से घोड़े को जाना है, वह बड़ा गहन है, बड़ी बड़ी बीहड़ घाटियां हैं, अश्ववार को बड़ी बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

तन्मार्गं दर्शयिष्यामि नाथो वा दर्शयिष्यति।
गोरक्षः स्वयमागत्य येन तत् संस्तुतं भवेत् ।।

उसी मार्ग को मैं दिखाऊंगी, गोरखनाथ भी स्वयं यहाँ उपस्थित होकर दिखायेंगे। इस भाँति यह मार्ग संस्तुत, प्रशस्त बन जायगा।

अश्वो बलसमायुक्तः साधको बलवानपि।
तत्र गन्तुं समर्थो नो मार्गं गोरक्षदर्शितम् ।।

घोड़ा कितना ही बलवान् क्यों न हो, और साधक भी कितना ही बलशाली क्यों न हो, यदि गुरू गोरक्षनाथ उस मार्ग को नहीं दिखायेंगे तो वहाँ जा सकने में सवार असमर्थ होगा।

न हानिः स्याद् गते तस्मिन् मार्गे गुरूप्रदर्शिते।
अथवा भीषणं मार्गं दृष्ट्वा वा चलितो भवेत् ।।

इसलिये गुरू साथ में हों, वे मार्ग दिखाने चल रहे हों तो उस मार्ग से चलने में कोई भय अथवा हानि नहीं होगी। अन्यथा साधक भीषण मार्ग को देखकर ही विचलित हो जायगा।

यदा स्थानस्य ज्ञानं च ज्ञानं चैव स्थलस्य च।

तदा गन्तुं च शक्नोति साधकः कृतनिश्चयः।।

जब स्थान का ज्ञान होगा और गन्तव्य स्थल का ज्ञान होगा तभी दृढ़निश्चय वाला साधक उस मार्ग से जा सकेगा।

यदि वोद्विजते सोऽश्वः कशाघातं प्रयोजयेत् ।

शक्तिविद्युत्कशाघात-ताडितो याति सः पुनः।।

चलते चलते अगर घोड़ा रूक जाय तो चाबुक मारना चाहिये फिर घोड़ा शक्ति की विद्युत रूपी कशाघात से मार खाकर चल पड़ता है।

या शक्तिः कुण्डली ख्याता जागृता सा महाबला।

बलान्नयति तं तत्र यत्र स्थानाऽङ्गितं कृतम् ।।

जो जागृता कुण्डलिनी महाशक्ति है जब जाग पड़ती है, तब बड़ी बलवती हो जाती है। वही बलपूर्वक वहाँ से चलती है जहाँ लक्ष्य है और जिस स्थान पर पहुंचने को कहा गया हो।

तदर्थं परिचयस्तस्य गमनस्य विशेषतः।

प्रोच्यते स्थानमित्येतत् नियमस्तेन गम्यताम् ।।

इसलिये मार्ग का परिचय और चलने की विधि का परिचय बताया जाता है। इसलिये इन सब बातों को भली प्रकार समझ लो और जान लो।

मूलाधारात् समारभ्य चोर्ध्वं यायात् सदश्वकः।

घाटीः पाषाणखण्डांश्च तीर्त्वा खण्डमखण्डकम् ।।

मूलाधार से लेकर ऊपर सहस्त्रार पर्यन्त चलने में सधे हुए घोड़े को बीच बीच में बड़ी बड़ी घाटियों, पाषाण खण्डों और अनेक खण्ड अखण्ड दर्रों को पार करना पड़ता है।

चक्रान् सर्वान् समाक्रम्य न तत्र स्थितिमाचरेत् ।

घोटकं धावयेत् तीव्रं ततो मार्गं च सन्तरेत् ।।

एक चक्र से दूसरे चक्र तक जाने के बीच में घोड़े को तेज दौड़ाना पड़ता है, रूकना नहीं चाहिये। घोड़े को तेज दौड़ाता जाना होगा, तब मार्ग पार किया जा सकेगा।

षट्चक्रं कठिनं मार्गं रूद्धं गन्तुं न शक्यते।

किन्तु शक्तिसमापन्नः तद्विजित्य प्रयाति तत् ।।

षट्चक्र का मार्ग बड़ा कठिन है, जटिल है और रूका हुआ है, उससे यों चलना बड़ा कठिन है। शक्ति सम्पन्न साधक ही उसे जीत कर, वश में कर के चल सकता है।

वल्गाँ दृढ़तरां धृत्वा मुखे अश्वस्य धावतः।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च दर्शयेदश्वमास्थितः।।

दौड़ते हुए घोड़े की वल्गा, लगाम हाथ में पकड़े रहे, जोर से जकड़े रहे। घोड़े पर सवार होकर उसकी प्रवृत्ति और निवृत्ति की ओर इशारा देता रहे।

मुखं च सम्मुखं कृत्वा स्थापयन्नचलो भवेत् ।

तदा तुष्टो मनस्त्वश्वः तीव्रवेगेन धावति।

मार्ग की ओर नजर रख कर अचल रूप से घोड़े पर सवार हो जाय। तब घोड़ा भी जान लेता है कि सवार भी अच्छा होशियार है और सन्तुष्ट होकर मन रूपी घोड़े को तीव्र वेग से ले चलता है।

सावधानेन गन्तव्यं मार्गं तत् परिचितं शुभम् ।

न तत्र भीतिमापन्नो गन्तुं शक्नोति साधकः।।

वह कल्याण-मार्ग भलीभाँति परिचित है, उस पर सावधानी से चले, चलते चलते घबड़ाना नहीं चाहिये, नहीं तो जा नहीं पायेगा।

अत एव क्रियाः सर्वाः मुद्राः सर्वाश्चदर्शिताः।

यास्तदा वर्मरूपेण रक्षां कुर्वन्ति सर्वदा।।

इसीलिये नाना प्रकार की क्रियायें और मुद्रायें सब कुछ पहिले ही बता दी गई हैं, जो चलने के लिये तैयार साधक सवार के लिये कवच का काम करती हैं, रक्षा करती हैं।

तासां ज्ञानं क्रियाभ्यासं कृत्वा विगतसाध्वसः।

साधकः स्थानसंज्ञानान्निर्भयो याति तत् पदम् ।।

उन सबका ज्ञान और उन सभी क्रियाओं का अभ्यास निर्भय होकर साधक को सर्वथा कर लेना चाहिये फिर साधक मंजिल का ज्ञान प्राप्त करके वहाँ तक स्वयं पहुंच जाता है।

एतत् सर्वं पुनस्तत्र गोरक्षः कथयिष्यति।

स एव तद्विधिज्ञश्च मार्गज्ञश्च सुयोगवित् ।।

इन सब बातों को भी यह गोरक्षनाथ फिर से बतायेंगे, ये ही उनकी विधि जानते हैं, उस मार्ग को जानते हैं, और योग-मार्ग के सर्व श्रेष्ठ ज्ञाता हैं।

नवमं खण्डपर्यन्तं सारल्येन च संस्तुतम् ।।

प्रापयिष्यति गोरक्षः अल्पकालेन सत्वरम् ।।

गोरक्षनाथ तुम्हें नवम खण्डपर्यन्त प्रशस्त मार्ग द्वारा बड़ी सरलता और आसानी से जल्दी से जल्दी अल्पकाल में ही पहुंचा देंगे।

इस विषय को सर्व-जन-हित के लिये अब गोरक्ष बतायेगा।

हरि ॐ तत्सत् । **नमो गोरक्षदेवाय पीठेश्वराय ।। ॐ।**

पीठेश्वर श्री गोरक्षदेव को नमस्कार हो।। ॐ।

गोरखबाबा :- यह टंक विद्या का विषय योग साधनावालों के लिये परम लाभप्रद है, जिससे वे गन्तव्य मार्ग पर सुलभ रूप से पहुंच सकते हैं। माँ भगवती सरस्वती के दूध को पीकर पला यह शरीर है, माँ की चरणों की धूल से पुष्ट बने इस शरीर की क्या शक्ति है, बात यह है कि कृपा तो मां की ही है। मां अपने तुतलाने वाले बच्चे को भी कहती है कि यह अच्छी तरह बोल रहा है, सबसे अच्छा है, सब कुछ जानता है, मैं भी ऐसा ही हूं, अबोध हूं, कुछ नहीं जानता हूं, मेरे नाम केसामने नाथ लगा है, नाथ का तो बड़ा अर्थ होता है। जो सब कुछ नाथ दे, सब कुछ कर दे, पर मेरी तो शक्ति ही कुछ नही है, फिर भी यह जो टंक विद्या कही गई है, वह परमोपयोगी है और स्वल्पकालिक है। यह मनरूपी घोड़े को वश में करने का सरल से सरल उपाय है, इससे मन वशीभूत हो जाता है, पर घोड़ा तैयार है, सुशिक्षित है, सधा हुआ है, घुड़सवार भी सावधान है। अब चलना है, पर चलना कहाँ है ? जब कोई स्थान ही ज्ञात नहीं तो घोड़ा कहाँ जायेगा। इसलिये स्थान परिचय हो जाना चाहिये, तब आसानी से घोड़ा वहाँ तक पहुंचा देगा, जहाँ जाना है। चलने के पूर्व घोड़े की बल्गा (लगाम) दायें बायें खींचो, दोनों ओर खींचो अर्थात् मन रूपी अश्व को प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों मार्ग दिखाओ। पर मुख उसका सीधा रखो, दोनों ओर देखकर भी रास्ता अपना ही पकड़े रहो, मार्ग बीहड़ है, अपरिचित है, ऊबड़-खाबड़ है। खाई और खन्दक हैं। घाटियां हैं, खण्ड खण्ड पत्थर हैं। उनको पार करके जाना है। अब जाने का बल पा लिया है, महामाया शक्ति का बल है, चलो, यह मार्ग नीचे से ऊपर को जाता है, मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक। षट् चक्र का चक्कर पार करके, तीन नाड़ी रूपी खाई पारकर घोड़े को सीधा कुदा दो। पहुंचा दो नवें चक्र पर, वहीं पहुँचना है, घोड़ा अड़ सकता है, बिगड़ सकता है। उसे शक्ति स्वयं कशाघात करके बिगड़ने नहीं देगी। पर यदि बिना मार्ग और स्थान के परिचय के चलोगे तो गिर पड़ोगे, चोट आ जायेगी, घोड़े को भी और साधक को भी। इसलिये-

गोरखभेद बतावे रे अवधू, गोरख भेद बतावे, गोरख भेद बतावे।
ऊबड़ खाबड़ मारग टेड़ो कैसे कोई जावे।
भूले भटके ठोकर खावें फिर भी राह न पावे।
गोरख जोग जगावे रे बाबा, गोरख भेद बतावे।
गोरख सभी तहाँ को जावे जोगी जंगम संत्ता।।
सीधी राह न पावे मारग रहे भटक भरमन्ता।।
पाव न अन्ता, गमन करन्ता, सीधी पन्थ गहन्ता।।
सीधी राह बतावे गोरख भरमत भेद भणन्ता।।

जो कोई जाना चाहता है, मार्ग बता देते हैं, परिचय करा देते हैं। ज्ञान वाला पहुंच जाता है। स्थान और मार्ग का भेद कोई - कोई जानते हैं। जैसे तैसे कुछ देर से पहुँच भी जाते हैं। पर सावधानी से और जल्दी से जाना ठीक होगा। चलो और पहुँचो। यही भेद टंक विद्या बताती है। इसलिये टंक विद्या की ये मुद्रायें और क्रियायें बहुत भेद-भरी हैं, जो तुम्हारे लिये बताई गई हैं। ॐ तत् सत् । अलख निरञ्जन। सत् पुरूष।

१७-१२-६२ प्रातः काल ।।८५।।

नारायणस्याङ्कगतां च भाविनीं नारायणीं तां च अनन्तरूपाम् ।
नाना पुराणीं पुरूषैकभाविनीं हृद्यैकरम्यां परमार्थदायिनीम् ।।

नारायण के अंक में स्थित, उस अनन्तरूपा, भवानी नारायणी, नानापुराणों में वर्णित, पुरूषोत्तम से भावित, परमार्थ को देनेवाली, भक्त हृदय के लिये रमणीय देवी भगवती को नमस्कार है।

महेश्वरस्य या शक्तिः कथिता च महेश्वरी।
यां शक्तिं वै समादाय मानवो याति तत्पदम् ।।

महेश्वर की जो शक्ति महेश्वरी कहलाई जाती है, जिस शक्ति को प्राप्त करके मानव उस परम पद को प्राप्त कर लेता है।

सुखेन समभूतेन यत्र गन्तुं न शक्यते।
तत्र सा परमा शक्तिः परमेण समन्विता।।

उस पद तक सुखपूर्वक आसानी से जाया नहीं जा सकता है, जहाँ पर वह परमा शक्ति परमेश्वर से समन्वित होकर रहती है।

तत् स्थानं तत्र गन्तव्यं यत्रैव प्राप्तिकामना।
तदेव च परं धाम कथयन्ति मनीषिणः।।

मनीषी लोग उसी को गन्तव्य स्थान कहते हैं, उसी की प्राप्ति की कामना किया करते हैं, वही परम धाम है।

केचिद् गच्छन्ति तद्रष्टुं केचिद् गन्तुं च सोद्यताः।
केचिद् गच्छन्ति तत्रैव परमार्थस्य दर्शकाः।।

कोई उसे देखना चाहते हैं, कोई वहाँ जाने को उद्यत होते हैं। कोई वहाँ पहुंच जाते हैं और वे पहुंचने वाले ही परमार्थ-दर्शी बन जाते हैं।

कथितं च तथा शास्त्रे श्रुतं च साधकैर्जनैः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।।

शास्त्र में कहा भी गया है और साधक जनों ने सुना भी होगा कि "मेरा धाम वही है जहाँ पहुंच कर फिर जन्म मरण में लौटते नहीं हैं।"

गन्तुं वाञ्छन्ति सर्वेऽपि सर्वेषां भावनापि सा।
किन्तु सर्वे न गच्छन्ति मार्गं तेषां न संस्तुतम् ।।

उस पद तक सभी जाना चाहते हैं और सभी की वहाँ पहुंचने की भावना भी रहती है, किन्तु सभी वहाँ तक पहुंच नहीं पाते हैं, क्योंकि उनके लिये मार्ग परिचित नहीं है।

नाना-साधन-सम्पन्नाः अथवा हीन-साधनाः।
षोडशीमात्र-ज्ञानेन क्रिया-ज्ञानेन वै ध्रुवम् ।।

नाना तरह के साधनों से सम्पन्न भले ही हों अथवा साधन हीन ही क्यों न हो षोडशी टंक विद्या के ज्ञान द्वारा और तदन्तर्गत क्रियाओं के ज्ञान द्वारा अवश्य ही-

स्थानपरिचयज्ञानाद् मार्गेण परियान्ति वै।
नास्ति तत्रावरोधस्य सत्ता यत्र च साधुना।।

स्थानपरिचय के द्वारा और मार्गपरिचय से साधक लोग चल ही पड़ते हैं। टंकविद्या के ज्ञान के बाद उनके मार्ग में किसी रूकावट का अस्तित्व ही नहीं रहता है।

"सर्वं च तद् मोहनाशार्थं" सहसा सन्तरेद् विज्ञः घोटकस्थः सुसंस्थितः।
अश्वविद्या च या प्रोक्ता टंकविद्या पुनः पुनः।।

बुद्धिमान् साधक घोड़े पर सवार होकर भलीभाँति पार लग जाता है। जो टंकविद्या और अश्वविद्या बताई गई है, उसके

तस्याःहि ज्ञानमात्रेण क्रियामात्रेण निश्चितम् ।
नाथनाथेन सम्प्रोक्तं मानवो याति तत्पदम् ।।

ज्ञानमात्र से और क्रियामात्र से निश्चय ही उस पद तक पहुँच जाता है। क्योंकि यह विद्या नाथनाथ गोरक्ष देव की कही हुई है।

स्वयं दर्शितमार्गोऽसौ स्वयं यातश्च तत्पदम् ।
दृष्ट्वानुभूततत्त्वार्थः स एव परमः परः।।

गोरक्ष देव ने स्वयं ही उस मार्ग को भलीभाँति देखा है, और उस पद तक स्वयं पहुँचा है। तत्त्वार्थ को स्वयं देखकर और अनुभव करने वाला वही सर्वश्रेष्ठ योगी है।

तेन दृष्टं च ज्ञातं च अनुभूतं च तत्पदम् ।
अत एव स सर्वासां गमनाख्यां परात्पराम् ।।
विद्यां कथयिष्यति वै सर्वां न तत्र विचिकित्सतम् ।।

गोरक्ष नाथ ने स्वयं देखा है, जाना है और साथ ही उस पद का अनुभव भी किया है, इसीलिये वही वहाँ पहुँचाने की सबसे उत्तम रीति बताने वाली समस्त विद्या को तुम्हें बतायेगा। उसके बताने पर फिर तुम्हें कोई संशय नहीं रहेगा। इस विद्या के उपदेश करने का वही परम सिद्ध योग्य अधिकारी है।

गोरखवाणी :- अलख निरञ्जन। यह टंक विद्या की बार बार याद दिलाई जा रही है। यह गुप्त लुप्त है। यह इसलिये बताई जा रही है कि मार्ग परिचित हो जाय। अश्व साधित हो जाय और जब तक उसमें सुस्थिरता नहीं आती, पहुँचने के मार्ग के बीच में ही रह जाता है। जब मूलाधार में स्वाधिष्ठान से ऊपर उठना प्रारम्भ करता है तो उसे बड़ी अड़चनें आती हैं, बाधायें आती हैं। उन पर विजय प्राप्त कर लेना आवश्यक होता है। जिसने साधन प्राप्त कर रखा है उसको वह महाशक्ति की ज्वाला स्वतः अन्धकार में मार्ग बताती चलती है। किन्तु उस मार्ग की परिचयावस्था भी बतानी होती है। अन्यथा साधक कभी कभी भटक जाता है। वहाँ से सर्वप्रथम एक दायरा है। एक छोटा सा घेरा है। जब उस दायरे और घेरे में घोड़ा खड़ा हो जाता है तब अश्व को कूदकर जाना होगा। नीचे से एक खाई है, उसे पार करना होगा। अश्व सावधान रहे। अश्ववार जब कम्पायमान होता है और उसमें शक्ति आ जाती है तब उसमें कूदने की शक्ति आ जाती है, पर महाशक्ति कूदने नहीं देती। अश्व, अश्ववार (घुड़सवार) महाकशाघात करदे, वहीं सब कुछ प्राप्त करना है। आधार भूमि का एक छोर यहाँ है और एक छोर आगे है। वहाँ महाशक्ति क्षीण होने लगती है। और रूक जाती है। समर्थ गुरू का कार्य वहीं पर है। वह उसे जगा देता है। उस वक्त आधार देकर सावधान कर देता है। और कहता है घोड़े पर बैठा रहे। अश्व दौड़ेगा। महामाया कुण्डलिनी शक्ति जब जागृत हो जायगी, तो घोड़े को छोड़ दो, महाशक्ति मणिपूर में आ जायेगी वहाँ इधर उधर नीचे ऊपर मणि ही मणी हैं। उनकी चकाचौंध आकृष्ट कर देगी। आँखों का वातावरण ही बदल जायेगा। आनन्द भूल जायेगा। मणियों की चकाचौंध में बंधा अश्व भी जल स्नान करना चाहेगा। लगवा दो गोता। ठहरना नहीं मन्थन करलो, वहाँ भी इस घोड़े को एकबार घुमाओ, हिला दो, आन्दोलित कर दो। लहरें पैदा करदो। उन लहरों में बैठ कर आने का रास्ता साफ हो जायेगा। फिर जल की छोटी छोटी लहरियाँ दौड़ेंगी। यही साधक के लिये बहुत बड़ी खाई है। माँ सरस्वती ने कहा है- जब तालाब में डूबने वाला आकण्ठ जल पी लेता है तो बेहोश हो जाता है, मरता नहीं, फिर उसका पेट दबाकर सारा जल निकाल दिया जाता है। अर्थात् पेट दबाकर रेचक कर लो। जीवन शक्ति मिल जाती है।

१७-१२-६२ सायंकाल ।।८६।।

शुद्धाम्बोदमयीमनन्त शयनामानन्दपूर्णा महा-
आनन्देन परिप्लुतां परिवहां पारं परं पावनीम् ।

तां देवीं सततं नमामि परमां पारार्थ परापरां
यत्पादाम्बुज सेवनात् परमको हंसः सुमुक्ति भजेत् ।।

स्वच्छ बादलों जैसी, अनन्त पर शयन करने वाली, आनन्दपूर्ण, महान् आनन्द से परिपूर्ण, परम पवित्र करने वाली, परमार्थ मार्ग के छोर तक ले चलने वाली, जिसके चरणों का अवलम्बन करने से साधक परमहंस बनकर उत्तम मुक्ति प्राप्त कर लेता है, उस भगवती मां को मैं नमस्कार करता हूं।

नमो भगवती देवी नमस्ते ब्रह्मबोधिनी।
नमस्तेऽज्ञानसंसारात् तारिणीं ते नमो नमः।।

उस भगवती को नमस्कार है, ब्रह्म को बोध कराने वाली उस मां को नमस्कार है। अज्ञानपूर्ण संसार से पार करने वाली उस तारिणी भगवती को नमस्कार है।

चिदानन्दानन्दां परमसुभगां प्रीतिजनकाम् ,
जरारोगाद् दूरं कृतपरिसरां सारसहिताम् ।
परात् पारं पारं परमपरमां पारपरणीम् ,
अपर्णामद्वैतां विनयमवनीं शुद्धसुभगाम् ।।

चिदानन्दरूपा, आनन्दरूपा, परम सुन्दर, प्रीतिदायिनी, जरा और रोगों को दूर करने वाली, सारभूता, परात्पर परम पद तक पहुंचाने वाली, अद्वैतरूपा, शुद्ध, मनोहर अपर्णा भगवती को बारम्बार नमस्कार है।

नमामि तां द्वैताद्वैतरूपिणीं द्वैताद्वैत विबोधिनीम् ।। ॐ ।।

द्वैत और अद्वैत रूपिणी भगवती को नमस्कार है। द्वैत और अद्वैत का ज्ञान प्रदान करने वाली भगवती को नमस्कार है।

यत्प्रोक्तं मणिपूरके कृतधियां दिव्यं सरोदर्शनम्
स्नात्वा तत्र जले पवित्रमतयो मार्ग च ते यान्ति वै।
तन्मार्गं विकटं सुसारलयुतं सारल्यभाजं परम्
तेषां स्नानवतां च राजसहितं राजत्वराजान्वितम् ।।

योग साधकों को जो मणिपूर चक्र में तालाब के दर्शन की बात कही थी, उस जल में स्नान करने पर बुद्धि निर्मल हो जाती है और वे मार्ग पर चल पड़ते हैं। वह मार्ग बड़ा विकट है, किन्तु सरल तरीके से जाने वालों के लिये वह भी सरल बन जाता है। तालाब में स्नान करने वाले स्वच्छ सुशोभित होकर राजा की भाँति उस राजमार्ग पर चल पड़ते हैं। राजा की भाँति प्रतिष्ठा पाते हैं।

तस्मान्निगाल्य पयसः पूतात्मा पूतविग्रहः।
संयाति सरलं मार्गं अश्वं तत्र च संन्नयेत् ।।

उस जल से भीगे हुए बाहर निकलकर साधक का शरीर और मन पवित्र हो जाता है। फिर घोड़े को सरल मार्ग से ले चलना चाहिये।

शनैः शनैः सुखं यावत् यावन्मार्गं च गच्छति।
न क्लान्ति - नैंव भ्रान्तिः स्यान्निष्क्लान्तो निर्मलो भवेत् ।।

फिर धीरे धीरे, आराम से जब तक घोड़ा चलता रहता है, तब तक थकता नहीं है। भ्रम में भी नहीं पड़ता है। बिना श्रम और थकावट के निर्मल बना रहता है।

निर्मलत्वान्मनोबुद्धिर्मणिवद् भासते स्वयम् ।
दर्शिका तस्य मार्गस्य सा बुद्धिर्जायते स्वतः।।

निर्मल शरीर होने पर बुद्धि और मन भी निर्मल रहते हैं, मणि की भाँति स्वयं साधक चमक जाता है। वह निर्मल बुद्धि स्वयं साधक के मार्ग को दिखाती चलती है।

नित्या सा नूतना नारं नारदां नार संज्ञकाम् ।
दिव्यां तां मार्गमालम्ब्य मार्गभ्रष्टो न जायते।।

वह बुद्धि नित्य नूतन होती रहती है, वह बुद्धि दिव्य है, उस बुद्धि को "नार" कहते हैं, नारद भी उसे कहते हैं। उसे प्राप्त करके साधक मार्ग पा लेता है और मार्ग भ्रष्ट नहीं हो पाता है।

अश्वोऽपि याति उद्विग्नं बिना शान्तस्वरूपकः।
किन्तु तत्र च या शक्ति तत्रैव नहि मुच्यताम् ।।

बड़े शान्त रूप से बिना किसी उद्वेग के घोड़ा भी चलता रहता है। उस स्थिति में जो जागृता शक्ति है उसे छोड़ नहीं देना चाहिये। उसे पकड़े रखना होगा।

पश्चात्तस्य तडागस्य समीपे बहुविघ्नकम् ।
यद्वैराजपथस्तत्र पिच्छलत्वाय जायते।।

फिर उस तालाब के समीप में बड़े बड़े विघ्न भी हैं। क्योंकि तालाब के किनारे राजपथ में फिसलन है। वहाँ सावधानी से संभल कर चलना होगा।

तत्रापि स्खलनाद् भीतिर्निहि तत्रोपजायते।
पदं निधाय वै तत्र सावधानो भवेद् बुधः।।

वहाँ पर गिर पड़ने का भय है। यदि तुम ऐसे स्थान पर पैर जमाओगे, जहाँ पर पैर जमाने से सावधानी रहे तो फिर कोई भय नहीं है। समझदारी यही पर है।

न स्वयं न च वा तस्य भ्रान्तिमश्वश्च गच्छति।

पिच्छलं चापि तन्मार्गं दृष्ट्वा नोद्विजते हि सः।।

शक्ति के अवलम्बन से साधक को न तो स्वयं भ्रम रहता है और न ही घोड़ा भ्रम में पड़ता है। मार्ग भले ही फिसलन वाला हो, फिर भी घोड़ा बिचटता नहीं है, निर्भय और संशय हीन रहकर चलने लगता है।

गोरक्षं नौमि तं देवं योगमार्ग प्रदर्शकम् ।

यत्कृपालवमात्रेण तत्त्व ज्ञानं च प्राप्यते ।।

आहा ! धन्य हैं गोरख बाबा को। योग के प्रशस्त मार्ग को दिखाने वाले गोरक्ष देव को मैं प्रणाम करता हूँ, जिसकी कृपा के लवमात्र से इस योग मार्ग का ज्ञान प्राप्त हो रहा है।

ज्ञानं यत्परमं गुह्यं गुह्याद् गुह्यतरं च यत् ।

तत्सर्वं देवदेवेन गोरक्षेण प्रकाश्यते।।

वह उत्तमोत्तम ज्ञान जो परम गूढ़ है, रहस्यमय है, गुह्य से गुह्यतर है, गुप्त लुप्त है, जो अनधिकारियों को अप्रकाशनीय है, उसे गोरक्ष देव ने सर्वांग रूप से खोलकर रख दिया है।

तस्मात्तमेव त्वं सद्यः सुस्थिरः शरणं ब्रज।

स एव देवदेवस्त्वां तत्र नेष्यति सत्वरम् ।।

इसलिये हे वत्स ! तुरन्त निश्चित और सुस्थिर होकर उसी गोरक्ष की शरण पकड़ लो। वही देवाधिदेव गोरक्ष तुम्हें उस गन्तव्य स्थान तक पहुँचा देंगे।

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। ॐअलख निरञ्जन। माँ सरस्वती की आज्ञा शिरोधार्य है। माँ जो कहती है वह बहुत भारी बात है। सेवक गोरक्ष वस्तुस्थिति में योग की जिन बातों को जानता है उन्हें प्रकाश में लाना चाहेगा और कुछ भी छिपा न रखेगा। माँ की आज्ञा है। शास्त्र का वचन है, मानव का हित है, आवश्यकता है। अतः आने दो। शास्त्र का प्रचलन होने दो। यह हंसी की बात नहीं है। माँ जिन शास्त्रज्ञों और तत्त्ववेत्ताओं को जानती है उसे उन सबका ज्ञान है। बड़े बड़े तत्त्ववेत्ताओं, ज्ञानियों और कुलाचल पर्वतों के रहते हुए भी माँ ने मुझे इस परम कार्य के लिये, इस महाभार के लिये नियुक्त किया है। मैं उसकी गूढ़ातिगूढ़ रहस्यमयी बुद्धि को सुलझा दूंगा। यह टंक विद्या इसलिये प्रसारित की जा रही है कि जो, कुछ सरल भी हो, अल्प -समय में अधिक फल देने वाली हो, युग के अनुकूल हो, युगावलम्बी हो,। ऐसे ही समय में इन मुद्राओं को सुलभ किया जा सकता है। यह विद्यायुगावलम्बिनी है। इस समय शास्त्र की मर्यादा का लोप हो सकता है। इसलिये इसका प्रचार किया जा रहा है।

हम मणिपूर के सम्बन्ध में बता रहे थे। वहां गोता लगाने से निर्मल होता है। नीचे से मार्ग उठा कर जाते हैं। गोताखोर को सावधान होना चाहिये, यद्यपि परमा शक्ति उभारेगी। सावधान ! साधक ! देखो, किस तरह गोता लगाओगे। कोई भी आसन लगा सकते हो। इसके पश्चात् अश्वोदरी मुद्रा लगा लो। इससे नीचे की वस्तु ऊपर आ जायेगी, अर्थात् जो जल का निम्नस्तर का भाग है, वह ऊपर आ जायेगा। अश्वोदरी करो, फिर एकाएक पेट को पीठ की ओर ले जाओ। पेट को पीठ से लगा दो: नाभि में ध्यान लगाकर जग देखो। फिर पेट को फुलाओ, फिर पेट को भीतर ले जाओ। इसमें अन्य अंगों का संचालन कम हो। केवल नाभि को पीठ से टकराने दो फिर पूरक करो, रोके रहो। वहाँ डुबकी लगाना है, फिर ऊपर आ जाओ, और सीधे तन जाओ, फिर श्वास को यथाविधि चलने दो। इस प्रकार पाँच छः बार करो। इसके पश्चात् घूर्णिका का सहारा दो, चक्कर दो, एक, दो, तीन, चार चक्कर दो। नाभि को चलाओ, इन चार चक्करों में आनन्द आना चाहिये। श्वास मन्द-मन्द धीरे-धीरे चलने दो, चेष्टा मत करो। इस तरह सावधान होकर चलने की तैयारी करो। अभी तुम तट पर आये हो, सावधान रहो तट पर आकर अश्व का और अपना पैर ऐसे स्थान पर रखो, जहां फिसलन न हो, क्योंकि यहां से सर्पिणी को साथ ले जाना है। नाथना है, सर्पिणी भी बाहर जा रही है। हथा मुद्रा का अवलम्बन लो, जरा सी हथा मुद्रा करो, मेरूदण्ड झुका लो, कन्धों को जरा ऊपर ले जाओ, नीचे का भाग ही झुके, ऊपर का भाग न झुके, पेट को आगे की ओर थोड़ा धकेलो, नाभि से टक्कर लो, सूख जायेगी सभी बिछलन यहाँ से तुम ज्योति लेकर चलो, ज्योति लेकर बढ़ते जाओ। इसे फिर समझाऊँगा।

नाथले, नाथले, नाथले, नाथ ! तू नाथ ले।
सार को जानले, सर्पिणी नाथ ले।
नाथ की बात को नाथ में नाथ ले।
नाथले, नाथले, नाथले, नाथले, नाथले।।
नाथ की बात से बात को शोध ले।
शोध ले, जानले, मानले।
वायु को वायु से वायु में डाल दे।
वायु के बेग को थामले, थाम ले।।
सांझ की बेला में डूब जा, डूब जा।
एक-से एक दो रत्न की ज्योति का।
ज्योति के ध्यान में भूलना मार्ग मत, दूर जाना तुझे।
नाथले, नाथले, नाथ ले, नाथले, नाथले।
सर्पिणी एक है, नाथ भी एक है, नाथ ले रज्जु से।
साथ में ले चले शान्त करना उसे नाथ की नाथिनी।
सांस की साथिनी साथ ले, नाथदे।।

यह तालाव विचित्र है।

जो कोई ऊ..वे घुसण न पावे।
घुसे तो निकले नाही।
एक बार जो नाथ के निकले।
सो सब जोग को पावे।

पौन पाणि सब सबहि बतावे।
नाथहि नाथहि भावे।
अगम अथाह भरा जल ता में।
कोई थाह न पावे।।
गोरखनाथ सहज में ताको
तहाँ तुरत पहुंचावे।।

१८-१२-६२ प्रातःकाल।।८७।।

आद्या आद्यन्तहीना प्रकटितगुणा निर्मला नित्य शुद्धा।
एका नैका तथाऽजा सकलसुरहिता याऽनजा जन्मयोगा।
कल्लोलानन्दरूपा सुरवर नमस्या दधानामणूनाम्।
प्राणं प्राणस्य तत्त्वं प्रणयगतियुतां प्राणिनीं प्राणिनां च।।

आद्या, आद्यन्तहीना, जिनके गुण प्रकट हो चुके हैं, जो निर्मल एवं नित्य शुद्ध हैं, जो एक भी हैं, अनेक भी हैं, जो अजा हैं और अनजा भी हैं, जो जन्मधारक भी हैं और अजन्मा भी हैं, जो आनन्द के कल्लोल से भरी हैं, सर्वश्रेष्ठ देवों द्वारा बन्दनीय हैं, प्राणों के अणुओं को धारण करने वाली हैं, जिससे सभी जीव प्राणवन्त होते हैं, अतः जो प्राणियों को परम प्रिय लगती हैं, उस माँ भगवती को प्रणाम है।

सुस्थिरं सुनयं स्वस्थं समत्वेन विराजितम्।
भद्रं विभ्राजमानं तं निराधारात्मबोधकम्।।

जो शान्त, धीर, सुस्थिर, सर्वदा समभाव में स्थित हैं, ऐसे मंगलकारक आसन में दीप्यमान हैं जिसके दर्शन से ही द्रष्टा निराधार आत्मा के बोध को प्राप्त कर लेता है।

अनन्तमजमाद्यं च तारातार परं गतम्।
मार्गश्रान्तिवहं वन्दे सिद्धं गोरक्षयोगिनम्।।

अनन्त, आद्य, और अयोनिज उस गोरक्ष देव को प्रणाम है जो तार तार पृथक् करके सभी रहस्यों का भेदन करके पार पहुंचे हैं। साधक के मार्ग की थकावट को दूर करने वाले सहज-सिद्ध गोरक्ष को मैं प्रणाम करता हूं।

नयामि तत्र त्वां यत्र गच्छन्ति योगिनो जनाः।
अबोधं वा सुबोधं वा वोधस्य बोधकांक्षिणः।।

मैं तुम्हें वहां ले जाती हूं, जहां सभी योगी जन जाते हैं। चाहे ज्ञानी हो, चाहे अज्ञानी हो, चाहे ज्ञान की अभिलाषा रखने वाले हों, सभी वर्ग के लोग-

सर्वे च यत्र संयान्ति तत्रैव च नयामि त्वाम्।
स्थानं मार्गं त्वदायत्तं दर्शयित्वा पुनः पुनः।।

जिस स्थान पर पहुँचते हैं वहीं तुम्हें ले चलती हूं। उस स्थान को उस मार्ग को बार-बार दिखाती हुई जो तुमने पकड़ा है, जिस पर तुम चलोगे, चल रहे हो।

आगच्छ भीतिरहित उद्विग्नो मा भवन् क्वचित्।
यदि सन्तरणेऽकांक्षा तथा गच्छान्तिकं मम।।

हे वत्स ! भीति रहित होकर चले आओ। कभी कहीं उद्विग्न न हो जाना। यदि पार उतरने की उत्कण्ठा है तो मेरे समीप चले आओ।

तदाहं त्वां महाबोधं महाबुद्धिप्रसारकम्।
मणिपूरं समाक्रम्य ऊर्ध्वस्ताद् गच्छ सत्वरम्।।

मेरे समीप आने पर, मैं तुम्हें उस मणिपूर चक्र के ऊपर अधिकार करवा दूंगी जो महाबोध दायक है और महाबुद्धि का विकास कर देने वाला है।

मणिपूरो जितो येन तेन सर्वं जितं भवेत्।
महावारि च तत्रैव दुष्करं तरणं हि तत्।।

बस, जिसने मणिपूर विजय प्राप्त कर ली, समझ लो कि उसने सब कुछ जीत लिया। वहाँ पर बहुत गहरा जल है जिसके पार उतरना बड़ा कठिन है।

किन्तु शक्ति समापन्नः सदश्वः अश्ववारकः।
मुखे वल्गां दृढं दत्वा पिच्छलेनापि वर्जितः।।

किन्तु जो साधक शक्ति सम्पन्न है, जिसकी शक्ति जाग गई है, जिसका घोड़ा सधा हुआ है, जो अच्छा घुड़सवार है, वह घोड़े के मुख की लगाम दृढ़ पकड़कर फिसलन से भी बचा रहता है।

कम्पं कृत्वा ततस्तत्र कूर्दनेन समन्वितः।
पारं गच्छति तद् घाद्याः न च तत्र रतो भवेत्।।

तदनन्तर कम्पन करते हुए छलांग लगाकर उस तालाब को पार कर जाता है, उस घाटी के पार निकल जाता है। उस स्थान की शोभा देखने में लगा न रहे।

रतिस्तत्र महाजाता यस्य स रमते यदा।
रमणं तत्र वै कृत्वा उद्धरेद् बहुकालकम् ।।

यदि वहीं सौन्दर्य सुख में रमण करने लग पड़ा तो वहीं फंस जायेगा और फिर वहां से उद्धार पाने में बहुत समय लगेगा। फँस कर वहाँ से निकल पाना बड़ा कठिन काम है।

साधितो मणिपूरः सन् मणिवन्निर्मलां च ताम् ।
बुद्धिं ददाति तत्कार्यसाधिकां परमोज्वलाम् ।।

जब साधक मणिपूर चक्र को सिद्ध कर लेता है तो वह साधित मणिपूर ऐसी निर्मल बुद्धि प्रदान करता है जो परम उज्वल होती है और साधक के योगमार्ग का प्रदर्शन करने वाली होती है।

साधकस्तत्र संलग्नस्तया बुद्ध्या नियोजितः।
स्वयं स्वयं शनैर्याति मार्गस्थानं च ज्ञायते।।

उसी निर्मल बुद्धि से प्रेरित होकर साधक अपने आप धीरे धीरे अपनी ही बुद्धि के प्रकाश में अपने मार्ग को पहिचानने लगता है और चलता रहता है।

शुद्धो वा मणिपूरश्च जायते ज्ञायतां तदा।
यदा वै वासना नोना भोगेच्छा च प्रजायते।

मणिपूर शुद्ध हो चुका है, इसकी पहिचान यह है कि जब भोग वासना में कमी न आवे, भोग करने की इच्छा में तीव्रता आ जावे, भोगेच्छा बलवती हो जाय।

सर्वदैव च यद्भावो भोगेच्छा जनकः स्वतः।
कामोद्दीप्तिकरः पूर्णः संचालयति वै पुनः।।

निरन्तर स्वयं की काम भावना जागृत रहे और उसे पूर्ण करने की इच्छा जोर पकड़े। यह काम भाव साधक को फिर फिर गिरा देगा।

कामस्य भावना प्रौढा रोद्धुं नैव च शक्यते।
चालयत्येव सा तत्र ब्रह्माण्डं ब्रह्मवर्तिनी।।

काम की प्रौढ़ भावना तीव्र हो जाय और रोकी न जा सके, यह बहुत स्वाभाविक है। यही काम भावना समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त होकर उसे कंपा रही है, साधक भी तो उसी में है।

यदि सा भावना निम्ना जागृता दृश्यते क्वचित् ।
ज्ञायतां मणिपूरस्य मन्थनं पूर्णतां गतः।।

यह कामोद्दीपन की निम्नभावना यदि साधक को योगसाधन मार्ग में दिखाई देने लगे तो समझ लो कि मणिपूर का मन्थन अब पूर्ण हो गया है। ऐसी इसकी पहिचान है। यही लक्षण हैं. (कई साधक ऐसी स्थिति में निराश होकर साधना त्याग देते हैं, यह विघ्न है)।

परीक्षा तत्र सा प्रोक्ता कामोद्दीपनभावना।
वासना जनिता सा च भूयो भूयः प्रजायते।।

मणिपूर मन्थन के समय की, बस एक यही परीक्षा का समय है, साधक को फेल नहीं होना चाहिये। काम वासना बार बार उठती रहेगी, जहाँ तक बन पड़े साधक उसे दूर हटाने का प्रयास करता रहे।

तदैव सावधानेन साधकेन पुनः पुनः।
वर्तितव्यं सदा यत्ने न च मूढवदाचरेत् ।।

उस समय साधक सावधानी रखे, बार बार समझ से काम ले, मूर्खता से यथेच्छ आचरण न करे।

यदि सा साधिता चेच्छा भोगेच्छा च वशीकृता।
पुनः सा सर्वमायाति सर्वसिद्धि प्रदायकम् ।।

यदि भोग की इच्छा मणिपूर चक्र भेदन-काल में जीत ली, उसे वश में कर लिया और उस बीच यथेच्छ अनाचार न किया तो वह जागृता शक्ति समस्त प्रकार की, अनेकों प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त करती है। मणिपूर की सिद्धि का स्वयं वरदान प्राप्त होता है।

गोरख वाणी :- मणिपूर का मन्थन बताया जा रहा है। क्रिया बताई जा रही है, उसमें घुसना भी कठिन है निकलना भी कठिन है, नहीं भी है। जो एकबार समस्त योग साधन में, चाहे शीघ्रता कर ले, यह बात पूर्णता को प्राप्त नहीं होती, न तो मणिपूर भेदन ही होता है। मणिपूर को मथना है। साधक ! घबराना नहीं। इस मणिपूर में एक और शक्ति है जो विचलित कर सकती है। आओ, उससे परिचय कराता हूँ। सीधे हो जाओ, हल्के रूप में हथौड़ा ठोको, नाभि चक्र स्थित सर्पिणी के बारे में जो कहा गया है उसकी गर्दन झुका दो, श्वास को ऊपर खींचो।

साधले एक को साध ले एक को जो सधेगा स्वयम् ।
साधले एक को साध ले एक को जो सधेगा स्वयम् ।।
और तू साथ ले जा रहा है जहाँ शक्ति देवी स्वयम् ।
साधना भी तुझे, बैठना, साधले एक को।
पूर्णता प्राप्त कर आपकी ज्योति को देख ले।
देखले देखले लाभ से मुग्ध तू हो नहीं।
कामना जागृता हो सके मारदे मारदे मारदे।।
भावना मार्ग की साधले साधले।
त्याग दे राग की भावना त्याग दे।
शोध दे तत्त्व को उठ खड़ा चल पड़ा जा कहीं।

तू जहाँ जा रहा है वहाँ रोक मत अश्व को रोक मत अश्व को।
एक से एक में ज्योति का वेग ले तस्म को हाथ ले।
एक हाथ में ले लगाम तू एक हाथ में ज्योति।
पीछे सर्पिणी आवे नाथ के रहे सदैव संगोती।
वही सर्पिणी वही सर्पिणी आगे आवे भीतर राह बतावे।
कठिन सुरंग है साधो ! तामें योगी घुस घुस जावे।
अरे, परम तत्त्व का सीधा मारग ऐसा कौन बतावे।
बैठ सुरंग के भीतर साधो ! उल्टा पल्टा खावे।
ताल नहावे सो बल पावे सर्पिणी नाथ नहावे।
आवे सर्पिणी हाथ तो साधो ! सुरंग का तत्त्व बतावे।
आगे आगे सर्पिणी जावे पीछे अवधू धावे।
यही सुरंग है जहाँ न कोई योगी बैठण पावे।
एक मार्ग से पूजा भीजा गोरख राह बतावे।।
सीधी राह बतावे साधो ! सुरंग के पार लगावे।।

चाहे हठयोग हो, चाहे मन्त्रयोग हो, चाहे लययोग हो, चाहे राजयोग हो, कोई भी योग क्यों न हो, वह योग पूर्णता को प्राप्त नहीं होता, जब तक मणिपूर सिद्ध नहीं कर लिया जाता है। मणिपूर में सभी गोता खा जाते हैं, पार नहीं पा सकते हैं। आओ ! मणिपूर को मथना है, घबराना नहीं है, सब सरल हो जायेगा। इस मणिपूर में एक और शक्ति है जो कभी भी तुम्हें विचलित कर सकती है। आओ, सीधे हो जाओ। हल्के रूप में हथौड़ा ठोंकने की बात कही थी, वहाँ पर वह शक्ति साथ चलने को तैयार है। इसे ही वशीभूत करना है। मेरूदण्ड झुका लो। श्वास ऊपर खींचो। नाभि को पीठ पर लगाओ। लगाओ और लगाओ। कुम्भक लगाओ। नसें खिचेंगी। मेरूदण्ड झुकाओ। हुं शब्द करते हुए जब श्वास उठ जाय तो समझो कि ऊपर से सम्बन्ध हो गया है।

मणिपूर में तीन बाधायें आती हैं। १-सिद्धि, २-ज्योतिमणि, और ३-कामोद्दीपन। इन्हीं को वशीभूत रखने का सरल उपाय बताया जाता है, कामभावना को विजय करने के लिये हुंकारो। एक बात और ध्यान रखो, इसके लिये सर्वतोभाविनी मुद्रा का प्रयोग कर लेना चाहिये। उससे कामोद्दीपन से बच जाओगे, वेग शान्त हो जायेगा, मार्ग की अड़चनें दूर हो जायेंगी, यही एक विकट घाटी है। मणिपूर को पार कर लिया तो और अड़चन की चिन्ता नहीं।

१८-१२-६२ सायंकाल ।।८८।।

हरि ॐ तत् सत् ।

विपुलकचकलापमुद्वहन्तीं पद्मसमानदेहकान्तिम् ।
प्रणमामि सदामजां तां विशदां हृदयस्वरूपरूपाम् ।।

बड़े घने केशभार को धारण करने वाली, पद्म के समान शरीर की कान्तिवाली, हृदय को सुन्दर लगने वाली उस निर्मल शुभ्र अजन्मा भगवती सरस्वती को मैं प्रणाम करता हूँ।

नमामि तां महाविद्यां षोडशीं षोडशाक्षरीम् ।
षोडशेन समायुक्तां षोडशस्योपदर्शिकाम् ।।

सोलह अक्षरों वाली उस षोडशी विद्या को प्रणाम करता हूँ, जो षोडश नामक शिव से समन्वित है और जो चिरयुवा षोडशवर्षीय शिव के पास ले जाकर उनके दर्शन करा देती है।

नित्यां परिचयां मुक्तां लुप्तां च ख्यातिमागताम् ।
प्रकटां प्रकटत्वेन प्रकृष्टां कृष्टज्ञानदाम् ।।

नित्य हैं, परिचित जान पड़ती हैं, सर्वतन्त्रस्वतन्त्र हैं, लुप्त होकर भी प्रसिद्धि को प्राप्त हो गई हैं, जो प्रकट भी हैं, अप्रकट भी हैं, सर्वश्रेष्ठ ज्ञान को देने वाली हैं।

नमामि तां महाविद्यां टंकनाख्यां परात्पराम् ।
यस्या हि ज्ञानमात्रेण मार्गं तरति साधकः।।

मैं उसी टंक विद्या को नमस्कार करता हूँ, जो परात्पर है। जिसके ज्ञानमात्र से साधक मार्ग के पार लग जाता है, उस महाविद्या टंक विद्या को प्रणाम है।

स्नात्वा कदुष्णे सलिले स्वेच्छया च विचारतः।
निर्मलो निष्कलो भूत्वा अश्वधावनतत्परः।।

अपनी इच्छानुसार उस कदुष्ण जल में स्नान करके साधक निर्मल बन जावे और कलुष को धो ले। फिर स्वस्थ और तैयार होकर घोड़ा दौड़ाने को तत्पर बन जाय।

पिच्छलं चैव पन्थानं हित्वा याति पुरः पुरः।
अश्वो नयति तं तत्र यत्र सा भुजगी गता।।

वह सधे हुए घोड़े के फिसलन के स्थान को छोड़कर मार्ग पर आगे आगे चलते जाना है और साधक को वहाँ ले जाना है जहाँ वह सर्पिणी चल रही है।

सन्धिस्तत्र च एका सा सरला सुव्यवस्थिता।
येन मार्गेण गन्तव्यं साधकेन शनैः शनैः।।

वहाँ पर एक सरल और सुव्यवस्थित सन्धि है। जिस मार्ग से धीरे-धीरे साधक को अपने गन्तव्य तक पहुंचना है।

प्राणवायुं समाकृष्य भुजगीं पुच्छगोचरः।

सा एव वायुमादाय कर्ष कर्ष प्रयच्छति।।

सर्पिणी के पूंछ के अग्रभाग में प्राण वायु का प्रवेश करना चाहिये। वह सर्पिणी उस प्राण वायु को खींच खींच कर बाहर फेंकती है।

क्वचिच्च सा याति शनैः शनैः क्वचित्
क्वचिच्च वक्रं च ऋजुगापि च क्वचित् ।।

सर्वं समादाय च प्राणवायुं विलेन सा याति महापथेन।।

उस सर्पिणी के पूंछ के छिद्र भाग में प्राणवायु के प्रवेश होने पर, वह कहीं पर कभी धीरे चलती है, कभी टेढ़े मेढ़े चलती हैं, कहीं सीधी चलती है। पूरी प्राणवायु को लेकर वह महापथ में चलती रहती है।

गोरखवाणी :- वह सर्पिणी जो बताई गई है उसके पुच्छ में एक लघुच्छिद्र है। अपनी समस्त प्राणवायु रेचक के रूप में नीचे ले जाने से उसके पुच्छाग्रभाग में प्रवेश हो जाता है। यह मणिपूर के ऊपर का मार्ग है।

सा वै संसर्पणी नाडी विरजा ज्ञानगोचरा।

सर्पणं सर्पणं कृत्वा सर्पणीत्यभिधीयते।।

इस सर्पिणी नाड़ी को विरजा नाड़ी द्वारा चेतना प्राप्त होती रहती है, ज्ञान प्राप्त होता रहता है। यह नाड़ी गतिशील रहती है, सरकती रहती है, इसलिये इसका नाम सर्पिणी है।

सर्वमस्यां च यद्रूपं सर्पणाख्यं तदैव तत् ।

विरजां तत्र पर्यन्तं सा नाडी प्रापयेच्च त्वाम् ।।

इसका जो स्वरूप है, ठीक सर्पिणी की तरह ही है, यही सर्पिणी तुम्हें विरजा पर्यन्त पहुँचा देगी। (विरजा का वर्णन पूर्व प्रकरणों में आ चुका है)

तत्र ते श्वास वायुस्तु यदागच्छति स्वल्पकः।

तदैव मणिपूरस्य अग्रे मार्गं स्फुटं भवेत् ।।

जब तुम्हारा श्वास प्रश्वास मन्द पड़ने लग जायेगा, श्वास प्रश्वास की गति धीमी पड़ने लग जायेगी, तभी मणिपूर के आगे का भाग साफ होने लगता है।

यदि वा क्षरते वायुः क्षरणं चैव तद् भवेत् ।

एकं वा बहुवारं वा श्वास प्रश्वासमाचरेत् ।।

जब प्राण वायु क्षरित होता रहे, श्वास प्रश्वास की मात्रा कम न हो, तो होने दो, बस एक दो बार फिर से दीर्घ श्वास लेकर सब ठीक हो जायेगा।

एवं कृते तु सा नाडी मार्गे च सुस्थिरा स्थिरा।

वायुमादाय यातुं च यत्र सद्यो विधास्यति।।

ऐसा करने पर वह सर्पिणी नाड़ी अपने मार्ग पर तैयार हो जाती है और प्राणवायु को अपने साथ लेकर शीघ्र चलने को उद्यत हो जाती है।

न तत्र धारणा कार्या न चात्र चिन्तयेत् क्वचित् ।

यद् भूतं वर्तिनं यच्च भविष्यति च यद् ध्रुवम् ।।

इस काल में न तो तुम कोई धारणा करना, न किसी बात का चिन्तन करना, जो हुआ है, जो हो रहा है, जो होगा, उस सबको, हे वत्स ! धैर्यपूर्वक देखते चलो।

तत् सर्वं पश्च त्वं वत्स ! तस्मान्मार्गं प्रयास्यसि।

वह सर्पिणी अपने आप ठीक मार्ग से तुम्हें ले चलेगी।

गोरखवाणी :- हरि ॐ तत् सत् । अलख निरञ्जन। माँ आज्ञा। ॐ साधक ! सावधान। मणिपूर के मन्थन की क्रिया बता चुका हूँ। उसका निरन्तर अभ्यास लाभदायक है। इससे मुद्रायें स्वल्पकाल-साध्य हैं। इस युग धर्म को देखते हुए यदि समस्त इच्छुकों को वास्तव में सही मार्ग पर डाल दिया जाय तो स्वयं पहुंचेंगे और पहुंचायेंगे। जब उनको परम स्वाद आने लग जायेगा तो वे औरों को भी बुलाकर ले आवेंगे। मार्ग आसान हो जायेगा। इसलिए क्रियाओं का प्रकाशन ध्यान से सुनो। महामाया कुण्डलिनी स्वतः ही उद्भूत होती हुई तुम्हारे मार्ग की अड़चनों को दूर कर देगी और तुम हंसते खेलते आसानी से पहुच जाओगे। मणिपूर का मन्थन बता दिया गया है। आ जाओ। यदि सर्पिणी का स्वरूप देखना चाहते हो तो उसे नेत्रों में ध्यान से देखो। तुम्हारे मेरूदण्ड में तीन पर्तें हैं। पहिली पर्त सामान्य, दूसरी सुषुम्णा, तीसरी लघुनाडी जिसके जानने की अभी तुमको आवश्यकता नहीं है। उसकी ही पर्त के नीचे महाकुण्डलिनी है। महामाया के जागृत होते ही साधक में स्पन्दन होने लगता है और मणिपूर के पास आते ही उस सर्पिणी में भी स्पन्दन प्रारम्भ हो जाता है। पर वह मार्ग नहीं छोड़ती है। जब हुंकृति का शब्द होता है तो तब उसके पुच्छ का भाग खुल जाता है। उसको ज्ञान विरजा नाड़ी के द्वारा होता रहता है, पर यह ज्ञान प्रापक नहीं होता है। वह दिव्य ज्ञान नहीं होता है। और जब उसके पुच्छभाग का छिद्र खुल जाता है तो उसके भीतर वायु प्रवेश हो जाती है। वह नाथी हुई सर्पिणी है। यहाँ पर तुम्हारी कामभावना मथ दी गयी है। उसमें एकबार फिर चाञ्चल्य पैदा करना है। ध्यान से सुनना और ध्यान से करना।

सीधे बैठो। दोनों हाथों को घुटनों में रखकर मेरूदण्ड को ठीक सीधा करो। ठीक योगपट्टिका की स्थिति में, श्वास को नीचे फेंको थोड़ा, रूको, फिर नीचे की ओर श्वास

छोड़ते हुए झुकते जाओ, योगपट्टिका छूट जाय तो कोई बात नहीं। जैसे नीचे की ओर श्वास छोड़ते हुए झुके थे वैसे ही ऊपर श्वास लेते हुए ऊपर उठ जाओ। जब ऊपर की ओर उठोगे तो पेट भीतर की ओर झुकता चला जायेगा, मेरुदण्ड सीधा रहेगा और कण्ठ में एक गाँठ सी पड़ जायगी। हाथों में जरा जोर देना, कण्ड की वायु को रोक लेना जरा। फिर कुछ पलटा देना, पटाभनेटी भी यही होती है, फट फट फटर फटर फट फट फटर फटर ऐसा करती है। केवल ऐसा कर लेने पर उस सर्पिणी में उद्दीप्ति आयेगी, जरा सा रेचक करो, जरा सा रेचक करो। फिर पूरक करके वायु को रोक देना। मालूम पड़ता है कि लिंग के ऊपर एकाकार हो जायेगा। अज्वोदरी जैसे करते हो। एक धक्का लगा लो, दोनों कुहनियों को आसपास मिलने दो। पेट पर ज्यादा जोर न दो। ऐसा करने पर धीरे-धीरे दोनों घुटनों को कम्पायमान करो। यदि शरीर हिल जाय तो गति उत्तम है। मालूम पड़े कि कांप रहे हो। बहुत हल्के हिलना, झटके लाने से सर्पिणी फिर बैठ जायेगी। उसे सुरंग में घुसने दो। वह तनी होगी, गर्दन तक पहुचने दो। स्वयं करो। इस प्रकार करने से मणिपूर के आगे का रास्ता साफ हो जाता है। एक दूसरा रास्ता है। एक रास्ता उल्टा पल्टा। यह एक दूसरा रास्ता है।

१९-१२-६२ प्रातःकाल ।।८९।।

ॐ ।। मणिपूरविधौ च पण्डितां गुणसंधैश्च सुमण्डितां पराम् ।
परमां परमार्थसाधिकां जननीं तां च विभावये परेशीम् ।।

मणिपूर-भेदन की विधि में पण्डित, अनन्त सद्गुणों में सुमण्डित और परमार्थ की सिद्धि देने वाली भगवती परमा परेशी जगज्जनी को हृदय में स्मरण करता हूँ।

या देवी सर्वचक्राणां ज्ञानं दत्त्वा महन्महत् ।
सा देवी चक्रभेदाय सज्जा भवतु संस्तुता।।

जो भगवती समस्त चक्रों को भेदन का बड़े से बड़ा ज्ञान देती है, वह भगवती चक्र भेदन के लिए अब तैयार हो जावें।

आयातु सा महादेवी साधकानां हिताय वै।
मार्गं स्थानं च तत् सर्वं तस्मै सा वदतु शुभम् ।।

वह महादेवी साधकों के कल्याण के लिये सम्मुख आ जावें और वह मुझे मार्ग तथा स्थान का समस्त परिचय प्राप्त करा दें जिससे साधकों का कल्याण हो।

यद्ज्ञानं दुर्लभं लोके यत् प्राप्तं नैव शक्यते।
तत्सर्वं कथयिष्यामि लोकानुग्रहकांक्षया।।

जो ज्ञान लोक में परम दुर्लभ है और जिसका प्राप्त करना बड़ा कठिन है उसे लोक-कल्याण के लिए और लोक पर अनुग्रह के लिये मैं बताऊँगा।

लोकानां परमाप्रीतिः जायतां शास्त्रसंविधौ।
तस्यच्छेष्ठं च प्रेयं च एतत् शास्त्रं निगद्यते।।

शास्त्रों के विधान में लोक-मानवों की परम आस्था बनी रहे, इस आशय से इस श्रेष्ठ इस लोक और परलोक में प्रीतिदायक, कल्याणकारी शास्त्र कहा जा रहा है।

मुद्राणां च क्रियाणां च ज्ञानाद्ध्यभ्यसनात् सदा।
महाशक्तिर्महाबुद्धिर्महामेधा च प्राप्यते।।

इस शास्त्र में वर्णित मुद्राओं और क्रियाओं के ज्ञान और निरन्तर अभ्यास करने से महाशक्ति, महाबुद्धि और महामेधा प्राप्त हो जाती है।

यां मेधां प्राप्य मेधावी सर्वं ज्ञातुं समर्थकः।
प्रज्ञां चैव ऋतां श्रेष्ठा ऋतम्भरां शुभां शुभाम् ।।

जिस मेधा शक्ति को प्राप्त करके मेधावी साधक सब कुछ जानने में समर्थ हो जाता है। साधक को कल्याणकारिणी श्रेष्ठ ऋतम्भरा प्रज्ञा भी प्राप्त हो जाती है।

लभ्यते प्रातिभं चक्षुर्येन ब्रह्माण्डवर्तिनम् ।
ज्ञानं संजायते तस्मात् प्रतिभा दिव्यनेत्रकम् ।।

इन क्रियाओं और मुद्राओं के अभ्यास से प्रतिभचक्षु भी प्राप्त हो जाता है। जिसके सहारे ब्रह्माण्डवर्ती ज्ञान हो जाता है। दिव्यनेत्र को इसीलिये प्रतिभा भी कहा जाता है।

अन्धो यो नेत्रहीनो यो नैव पश्यति स क्वचित् ।
अतो नेत्रे समालभ्य ज्योतिषां प्रति संचर।।

जो नेत्रहीन है, अन्धा है वह सब कुछ होते हुए भी कुछ देख नहीं पाता है। इसलिए दिव्य नेत्र प्राप्त करके ज्योतिर्लोक में संचार करो।

गोरक्ष ! गोरक्ष !!

गोरखवाणी :- अलख निरञ्जन। नमो आदेश गुरू को। सुरंग में घुसने की तैयारी हो रही है। सामान्य एवं स्वल्प साधन वालों के लिये सुरंग का दरवाजा देखते ही भय का

कारण उपस्थित हो जाता है। सर्पिणी की गति से भीत होते हैं। परन्तु जिए समय इस प्रकार की भावना का संचार होने लगे, कौन जाय, क्या करूंगा, क्या होगा, कैसे होगा तो इन विचारों को निकाल फेंकने के लिए विशिष्ट ॐ ध्वनि करो, उससे ऐसे विचार भाग जायेंगे। मस्ती के साथ फिर चलो, चलना ही काम है, रूको मत, आगे तुम्हारा रास्ता देखा नहीं है, तुम्हें दिखाता हूं, समझाता हूँ, चलो चलो।

चलो आवो रे अवधू मारग तेरा देखा नाही।
सुणा सुणाया देखा आजा पीछे राह दिखाऊं।।
सचमुच देख दिखाया सर्पिणी आगे आगे जावे।
अवधू पाछे धावे, अवधू पाछे धावे।
आजा गोरख खड़ा सामने खड़ खड़ राह दिखावे।
बैठ सुरंग के अन्दर पूंता सबसे न्यारा होले।।
अरे एक तत्त्व से परिचय करले परचा प्यारा हो जा, न्यारा हो जा।।
कौण रहेगा कौण कहेगा वा अमृत को साधो।
अमर अमर तू अमर बनेगा एक तत्त्व को पा ले।।
डरना काम नहीं पूतां पैठण पैठण नाहीं।
चलण फिरण का लाभ करन्ता सो पावे मैमन्ता।।
ध्यान की चक्खु उघाड़ ले बाबा नेतर नेतर सेत्तर केत्तर।।
सबके भीतर भासे बाबा सबके भीतर भासे।
पा के ध्यान के नेत्तर बाबा खोल के रिन्त कपाट।
अवघट घर की राह में कोई बाबा आण न पावे।
खोल के ध्यान का चक्खू बाबा तू सब कुछ दिखलावे।
संशय शशा फुदकता जावे और धारणा दूब चबावे।।
अरे घुसर घुसर के दौड़े आगे पीछे हाथ न आवे।
ध्यान की चक्खु से देखे गोरख पकड़े हाथ धरावे।
सोई शशा आतम ज्ञानी को गर्व के सिंह को खावे।
गोरख बतावे रे बाबा गोरख बात बतावे।।

धवल धवलिताङ्ग संवलितां धवलितत्त्व तरंग सङ्गाम् ।
धवलित तनुगात्र संगसंगीं विधि विहित समान हंस रूढाम् ।।

धवल अंगों से सुशोभित, धवल-तत्त्वों की तरङ्गों को अपने अंग में धारण किये हुए शुभ्र शरीर धारिणी और ब्रह्मा के शुभ्र हंस की भाँति शुभ्रहंस में आरुढ़ हुई।

धवलां धवलाकृतिं दधानां धमनीजालमथापि छादयन्तीम् ।
तां धौतोज्वल पारदर्शनवर्तीं धूमावर्ती भावये।।

धवलाकृति वाली शुभ्रक्रान्ति से धमनी-जाल को ढके हुए धवल और उज्वल कान्ति धारिणी, पारदर्शिनी धूमावती देवी को मैं हृदय में स्मरण करता हूँ।

धां धां धां धारणाख्यां धर धर ध्यानदां शुभां दधानाम् ।
धवलपटधराङ्गीं ध्यानगम्यां धनदसमद्यताङ्गीं धारणां धारयेऽहम् ।।

धां धां धां बीजाक्षरों से धारणा देवी को, धर् धर् वर्णों से ध्यान प्रदान करने वाली कल्याण धारिणी, धवल वस्त्रों को अंगों पर धारण करने वाली, ध्यानगम्या, धनद की भाँति धन को धारण करने वाली धारणा देवी को मैं हृदय में धारण करता हूँ।

प्रोच्यते यत्र वै मार्गं सरलं योगिबोधकम् ।
मणिपूरात् परस्तत्तु ऋजु याति शनैःशनैः ।।

योगियों को बोध देने वाला सरल मार्ग जहाँ बताया जा रहा है, वह मणिपूर चक्र के ऊपर को धीरे-धीरे सीधा चला जाता है।

तत्र किञ्चिच्च किञ्चिच्च रोधकं च विरोधकम् ।
मलं नाडिगतं किञ्चित् तस्य शोधो विधीयताम् ।।

मणिपूर में थोड़ा मल फिर भी बना रहता है जो ऊपर जाने में बाधा डालता है और ऊपर की गति में अवरोधक होता है। नाड़ियों में जमे उस अल्प मल का भी शोधन कर लो।

कृत्वा भस्त्रां क्रियां भूयो भूयश्चैव पुनः पुनः ।
भस्त्रां कृत्वा ततः सद्यो विनाशयति तन्मलम् ।।

ऐसी स्थिति में निरन्तर बार-बार भस्त्रा-प्राणायाम करते रहो। भस्त्रा प्राणायाम से वह शेष रहा मल भी शीघ्र विनष्ट हो जाता है।

तदा वायोश्च यो वेग ऊर्ध्वयातुं समुद्यतः ।
तत्र बाधा न संयाति वायुरुर्ध्वं च गच्छति ।।

तब जो वायु का वेग ऊपर जाने को उद्यत रहता है उसमें बाधा नहीं आती और वायु आसानी से ऊपर चढ़ जाया करता है।

यदा गच्छन्ति डक्काराः वायुस्तत्रनिरुद्धयते।
वायुना वायुमापीड्य वायुं च प्रविसारयेत् ।।

जब डकार आने लगें तो समझो कि वायु वहाँ रुकावट कर रहा है। तब वायु के द्वारा दबाव डालकर वायु को बाहर निकाल देना चाहिये।

तत्र यः सरलो यस्तु छिद्र एकः प्रकाश्यते ।
तं छिद्रं प्राणसंचारं संचरेदूर्ध्वमार्गतः ।।

वहाँ पर जो एक सीधा छिद्र है, उस छिद्र में प्राण वायु का प्रवेश ऊपर के मार्ग की ओर जाने के लिये कर देना चाहिए।।

शनैः शनैः प्रकुर्वति श्वसनं प्रश्वशनं तथा ।
पश्चान्निरोधमाधाय हृदये कम्पनं भवेत् ।।

इसमें धीरे-धीरे श्वास प्रश्वास लेना चाहिये, फिर उसका विरोध करने पर हृदय में कम्पन होता है।

यदा वै कम्पितो वायु हृद्गतः सरलावृतम् ।
तस्मादेतच्च ज्ञातव्यं मार्गं वै सरलं गतम् ।।

जब निरुद्ध वायु हृदय तक पहुंचता है, तब हृदय में कम्पन पैदा कर देता है। इस धड़कन से समझना चाहिये कि अब मार्ग सरल हो गया है।

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। ॐ अलख निरञ्जन। माँ की आज्ञा है कि मणिपूर के आगे का मार्ग बता दिया जाय और घाटी का दर्शन कराया जाय। मणिपूर से हृदय तक आने के लिये न बहुत मोटी न बहुत पतली नाभि से हृदय देश तक हृदय के अग्रभाग तक एक नाली गई है। समान और उदानवायु से प्राणवायु टक्कर खाती है। एक ओर कम्पन शुरु होता है और डकार आना शुरु होता है। समान का स्थान नाभि में है। प्राण का स्थान हृदय में है, उदान का स्थान कण्ठ में है। नीचे के दो वायु पर विजय कर ही लिया है। अपान के शोधन के लिये मलोदरी पर्याप्त है। समान वायु प्राण और उदान के बीच में है। व्यान सर्वशरीर में व्याप्त है।

जिस समय मणिपूर का भेदन हो रहा हो, तब रेचक, पूरक, कुम्भक के बाद भस्त्रा प्राणायाम में मेरुदन्ड को झुका लो। एक दम पीछे का मार्ग खुल जायेगा, एकदम आगे कम्पन आ जायेगा। सुषुम्णा उधर से वायु को प्रवेश करके ले जायेगी। आगे की नाड़ियों में कम्पन कर देगी। चाहे इधर से जाओ, चाहे उधर से जाओ। पहुँचना एक ही जगह है। दोनों अविलम्ब और सरल हैं। यदि पीछे के मार्ग से बढ़ना चाहते हो तो देखो, पूरक कुम्भक करके फिर जोर से धोंकनी चला दो और धौंक दो, धौंकते चले जाओ, धौंक डालो, सहसा एकदम धप से नीचे की ओर झुक जाओ। मेरुदण्ड के झुकते ही एक चट शब्द होगा। चट शब्द का तात्पर्य यह होगा कि रास्ता खुल गया है और जो नाभि से वायु का वेग था वह सर्पिणी के पीछे से वायु प्रवेश हो गई है ओर वह चल पड़ेगी। शनैः शनैः आगे चलती हुई, प्राणों को खींचती हुई, साधक को तत्त्वदर्शन कराती हुई आगे बढ़ती जायेगी। जबतक कम्पन नहीं होगा तब तक कुछ नहीं हो सकता है। भस्त्रा प्राणायाम के बाद कुम्भक लगाओ, श्वास रोक लो। अपने हृदयस्थ भाग पर दृष्टि डाल दो; बन्ध की मुद्रा में, तब मालूम पड़ेगा कि कम्पन हो रहा है। ऐसा प्रतीत होगा कि मूर्च्छा आ रही है। दम घुटने वाला है। जितनी देर ऐसा रोक सको रोको। जब-कुम्भक समाप्त करो तो तुम्हें ऐसा मालूम होगा कि रीढ़ की हड्डी से लेकर हृदय तक, हृदय से कण्ठ तक, भौंहो से लेकर नासिका तक झनझनाहट पैदा हो रही है। वह मूर्च्छा की अवस्था है। ऐसी अवस्था में यदि मूर्च्छा बढ़ा सकोगे तो अच्छा होगा। मूर्च्छा और कम्पन का आना मार्ग सिद्धि के लिये परम शुभ लक्षण है। साधक समझ लेता है कि इस प्रकार जा रहा हूं।

कांपे देश तिहारा रे बाबा कांपे देश तिहारा।
प्राण ही प्राण समान संभाले कण्ठ की वायु भरा ले।
टक्कर देके मारो साधो, एक से एक मिला ले। एक से एक मिला ले २
।।अवधू०।।

अरे तीन वायु का मेल कराले, रे हृदय अपना कंपाले।
रांह दिखवावे ज्योति निराली ताके दर्शन पा ले।
साधो, ताके दर्शन पा ले ।।

अरे जब दर्शन मिल जाय रे साधो ! अरे रांह नहीं पथरीली ।।
कांटा भांटा सांटा न लागे अरे समझले रे तूही।
अवधू अपना हृदय कंपा ले ।।

इस कम्पन में नेक संजोये देख के मन घबरावे ।
पहली सीढ़ी नाथ का चेला ताहि पार कर जावे। मूरछा नहि भरमावे।।

मूर्च्छा आ जाती है, यह प्रारम्भिक अवस्था है। नाथ का चेला उससे घबड़ाता नहीं, घबराकर श्वास छोड़ना नहीं धीरे-धीरे श्वास छोड़ना। एकदम से श्वास छोड़ने का कुपरिणाम होता है, उसका यह होता है कि एक और वायुवेग को ऊपर चढ़ाकर ऊपर को खींचकर रोक रखा है, उसे हृदय में कम्प पैदा करने के लिये रोका है। यदि धम्म से छोड़ोगे तो फिर उससे हंफनी चल जायेगी, फिर दुबारा वायु को उठाने की इच्छा नहीं होगी। इसीलिये

श्वास को नाक से धीरे-धीरे छोड़ने में आनन्द आयेगा। एक मार्ग आगे से है और एक मार्ग पीछे से भी है। दोनों को देख लो समझ लो। हृदय देश में आ जाओ, दोनों वायुओं की टक्कर होने दो, कम्प और डकारें आने दो। समझ लो कि आगे के लिये मार्ग साफ हो गया है, आगे के लिये द्वार खुल गया है।

राह शोध के जोगी जावे अरे ज्ञानी शोध न पावे।
माता की सी राह निराली लटपट लटपल जावे।
राह शोध के अपनी गोरख सबको राह बतावे।
ज्ञानी आवे अरे भगता आवे-आवे जा को भावे।
अपनी -अपनी राह निराली अपनी पर ही जावे।
सरपट चाल चलावे गोरख घोड़ा को दौड़ावे।
मारग शोध के योगी जावे अरे ज्ञानी शोध न पावे ।। ॐ ।।

२०-१२-६२ सायंकाल ।।९१ ।।

वन्दे सरस्वतीं देवीं देवकार्यार्थसाधिकाम् ।

राधिकां मूढचित्तस्य बाधिकां विघ्न-व्यूहकम् ।।

देवकार्यों को सिद्ध करने वाली, मूढ़चित्तों द्वारा आराधना किये जाने पर फल देने वाली और विघ्न समूहों को दूर करने वाली माँ सरस्वती देवी की मैं वन्दना करता हूँ।

विघ्नानां नाशिकां देवीं गुणानामति तत्पराम् ।

प्रकटाप्रकटरुपेण जनकल्याण कारिणीम् ।।

विघ्नों का नाश करने वाली, गुणों को देने में अतितत्पर और प्रकट एवं प्रकटरूप से जनकल्याण करने वाली माँ भगवती देवी को प्रणाम है।

देवि सरस्वति कार्यं कारय पारय शब्दसमुद्रं पारय।

धारय मेधामपि त्वं धारय प्रतिभामग्रे सारय सारय।।

हे देवि सरस्वति ! कार्यों की सिद्धि करो। शब्द समुद्र के पार लगाओ। मुझमें मेधा को धारण कराके मेरी प्रतिभा को सामने प्रकट कर दो।

यां प्रतिभां जनलोके लोका, अधिगच्छन्त्यपि विगतविशोकाः।

या च सदैव त्रिलोकविमोका, तां च सदा मयि धारय धारय।।

उस अलौकिक प्रतिभा को मुझमें धारण करादो जिस, प्रतिभा को प्राप्त करके तुम्हारे उपासक जनसमाज में शोकरहित निर्भय बने रहते हैं और जो प्रतिभा तीनों लोकों के आवरणों को हटाकर उनके रहस्य प्रत्यक्ष बना देती हैं।

एकं शास्त्रं समालभ्य तद् ज्ञानेन करम्बितः।

सिद्धिमायाति तद् ज्ञात्वा क्रियास्तत्र विशेषतः।।

इस एक अकेले शास्त्र का अवलम्बन लेकर और इसके ज्ञान से प्रफुल्लित होकर साधक सिद्धि प्राप्त कर लेता है। विशेषतया इस शास्त्र की क्रियाओं का ज्ञान महत्त्वपूर्ण है।

यत्प्रोक्तं टंकनं शास्त्रं टंक विद्या विमण्डितम् ।

तं ज्ञात्वाभ्यसनात् सद्यः को न याति परां गतिम् ।।

टंक विद्या से मण्डित यह जो टंक शास्त्र कहा गया है, उसे जानकर और उसका अभ्यास करके कौन ऐसा है जो शीघ्र ही परम गति प्राप्त नहीं कर लेता है।

सारल्येन गतः शोकः गतः कालुष्यतां नहि।

केवलं निर्मलो भूत्वा ततो याति महेश्वरम् ।।

इस विद्या के प्रभाव से सरलता से शोक दूर हो जाते हैं, त्रिविध मल दूर हो जाते हैं। फिर केवल निर्मल होकर साधक महेश्वर तक पहुँच जाता है।

अधुना पूर्वमेवैवं प्रोक्तंयद् ज्ञानमुत्तमम् ।

अधीनं च प्रबुद्धं च बोधमायाति ते यदि।।

सम्प्रति और इससे पूर्व जो उत्तम ज्ञान बताया गया है, उसे तुमने पढ़ और जान लिया है, और यदि वह ज्ञान तुम्हारी बुद्धि में टिका रह गया तो -

बोधेन तत्त्वशोधेन रोधेन प्राणसंज्ञकः।

बल : सम्प्राप्यते विज्ञस्तत् प्राप्य च प्रसीदति ।।

उस बोध के द्वारा, तत्त्वशोधन द्वारा और प्राणों के निरोध द्वारा महाप्राण के रूप में विज्ञसाधक बल प्राप्त कर लेता है, जिसे प्राप्त करके प्रसन्न चित्त रहता है।

लब्धं लब्धं महद् ज्ञानं लब्धं लब्धं भविष्यति ।

तस्मादनुद्विग्नमनास्तत्रैवतत्परो भव।।

यह ज्ञान निरन्तर एक के बाद एक क्रमशः प्राप्त होता रहेगा। इसलिये उद्विग्न न होकर निर्भयता पूर्वक इसी ज्ञान और साधना में तत्पर बने रहो।

न ते बुद्धिः क्वचिच्चैव संशयं धारयिष्यति ।

चाञ्चल्यं विगतं दूरं बलवान् बलसम्भृत : ।।

तुम्हारी बुद्धि इस प्रकार कभी कहीं भी संशय को धारण नहीं करेगी। तुम्हारे मन की चंचलता अब दूर हो गई है। अब तुम बल से भरे हुए हो और बलवान् हो गये हो।

भविष्यसि स्वयं त्वं वै चेष्टा तत्र विधीयताम् ।
अभ्यासो नित्यशः कार्य : केषांचित् क्वचिदेव तत् ।।

आगे भी बल सम्पन्न बनते जाओगे। अतः इस शास्त्र की बातों का अभ्यास करते रहो। अभ्यास नित्य करना चाहिये। कहीं-कहीं इने गिने लोगों को ऐसी विद्या प्राप्त होती है।

मणिपूरात्ततश्चोर्ध्वं सर्वं ज्ञातं भविष्यति ।
अधुना सम्प्रवक्ष्यामि मार्गमेकं विशेषत : ।।

तुम्हें मणिपुर से ऊपर की बातें भी ज्ञात हो जावेंगी। अब मैं एक विशिष्ट मार्ग को बताती हूँ जो मणिपुर से ऊपर उठने का है।

क्रियां च तत्र हे वत्स ! कुरु त्वं तत्समाहितः ।
या च ते गदिता मुद्रा भणिता स्थानचायिका ।।

उसकी क्रिया भी बताती हूँ। हे वत्स ! समाहित होकर तुम उसे कर लो, जो तुम्हें पहिले स्थान परिचायिका बतलाई थी -

तां कृत्वा शान्तभावेन सुस्थिरस्त्वं ततो भव।
स्कन्दिनी या च ते प्रोक्ता स्कन्धौ हि त्वं इतस्ततः।।

(१० नं. मुद्रा देखें)

उसे लगा कर तुम शान्त भाव से सुस्थिर हो जाओ। एक स्कन्दिनी मुद्रा भी कही थी, उसी मुद्रा में तुम गर्दन को इधर-उधर चलाओ।

किञ्चिदूर्ध्वं विधायैव पृष्ठभागं च चालय।
पृष्ठचालनमात्रेण चलाचलगतागतम् ।।

गर्दन को कुछ ऊपर उठा कर ढीली रखते हुए पृष्ठभाग को इधर-उधर दायें बायें हिलाओ, पीठ हिलाने मात्र से गर्दन, सिर और पीठ हिलने लगेगी।

एकमद्वितीयं रूपं प्रकटं ते भविष्यति।
तां मुद्रां रूपरूपेण मूर्तरूपेण ते त्वहम् ।।

ऐसा करने पर एक अद्वितीय अपूर्व रूप तुम्हारे सम्मुख प्रकट होगा। इस मुद्रा को मूर्तरूप में प्रत्यक्ष रूप में, कैसे की जाती है :-

आदिशामि श्रृणु तस्मात् कुरु तां त्वं क्रियां शुभाम् ।

उसे बताती हूँ। सावधान होकर तुम उस सुन्दर क्रिया को सुन लो।

हस्तावुभौ कक्षगतौ च कृत्वा स्कन्धौ च निम्नौ सुभगौ विधाय।
तस्माच्च पृष्ठं परिचालयेत् तच्चालनेन सुखमावहेत् ।।

दोनों हाथों की हथेलियाँ दांये-बांये कोखों में दबालो। कन्धों को नीचे झुकालो। इसी मुद्रा में पीठ को दाये बांये हिलाओ (घड़ी के पेन्डुलम की भाँति)। इस मुद्रा में तुम्हें एक विशेष आनन्द प्राप्त होगा।

तत्सुखं परमं दिव्यमेवमेवावभासते।
तत्रैव रमते चित्तं नान्यत्र गन्तुमिच्छति।।

इस मुद्रा के दिव्य सुख में, आनन्द में, जैसा भी जिस साधक को हो, वहीं पर चित्तवृत्ति लगी रहती है और अन्य नहीं जा पाती है।

पुनः संयोज्य तौ हस्तौ तत्रैव स्थापितौ ध्रुवौ।
यदा च चालनं भूयात् दृष्टिं तत्र निधापयेत् ।।

फिर उन मिले हुए दोनों हाथों की मुद्रा में जब हिलने की स्थिति रहे तो अपनी दृष्टि दोनों हाथों के संयोग-स्थान में डाले रहो।

एवं च ज्ञायते तत्र शिरश्चलति वै स्वयम् ।
तस्य छाया स्वरूपेण दर्शनं च भविष्यति।।

तब लगेगा कि तुम्हारा सिर भी दोनों हाथों के बीच के भाग में इधर - उधर हिल रहा है। अपने सिर की छाया के रूप में तुम्हें दर्शन होगें।

तत्रैव पश्य त्वं छायां चलन्तीं चलनात्मिकाम् ।
तदा ज्ञानं च ते तात दिव्यं किञ्चिद् भविष्यति।।

उस छाया को देखते रहो, जहाँ जैसे चले उसे देखते जाओ, तब हे वत्स ! तुमको कुछ दिव्य अलौकिक ज्ञान प्राप्त होगा, एक अनुभव होगा।

क्रियारूपं मया प्रोक्तंतद् ज्ञानं केवलं महत् ।
गोरक्ष : प्रत्यक्षरूपेण दर्शयिष्यति ते स्वयम् ।।

मैंने तो केवल क्रिया का रूप मात्र बताया है। उसे करने के विशिष्ट तरीके को और उसके रहस्य को गोरक्षनाथ स्वयं प्रत्यक्ष रूप से करवा कर तुम्हें बतायेंगे।

स एव सर्वभावेन क्रियाभावं करिष्यति।
वदिष्यति च ते अग्रे तस्मात्त्वं सुस्थिरो भव।।

यह गोरक्ष ही सर्वभाव से इस क्रिया का पूर्ण ज्ञान रखता है। वही क्रिया रूप में तुम्हें बतायेगा। इसलिये तुम सावधानी से सुस्थिर तैयार हो जाओ।

गोरखवाणी : ॐ अलख निरञ्जन। ॐ अलख निरञ्जन।
गोरख जोग जगावे। ॐ साधक ! सावधान ! सावधान ! सावधान !
एक खण्ड को पार-पार कर एक खण्ड को तोड़े।
एक खण्ड में सुरंग से बैठे गोरख अपना रंग न छोड़े ।।
अपना रंग न छोड़े।।

यही रंग है रंग अमोला जाको मोल न पावे।
अरे जो अपने को सुरंग में लावे सो रंग साधे पावे।
रंगले रे गोरख रंग अमोला, अरे रंगले रे गोरख रंग रंगीला।
रंग अमोला।।

ऐसा रंग दे गोरख अब तू अस्तर वस्तर फाटे।
एक बार रंग दियो रंग तो सो कबहूं ना घाटे।।
ऐसा रंग रंगादे अवधू सो कबहूँ ना घाटे।
दूर-दूर से चमके रे रंगा सो पहिचाने सन्ता।।
वाही रंग की रमक रंगीली सुरंग से पैठे चमके।
अरे बैठके चमके बाहर अवधू दम-दम-दम के दमके।।
ताही रंग में रंगले गोरख ....।

यह ऐसा रंग है जिसमें अब रंगाया जायेगा। अभी तो कई तत्त्वों से इस रंग को बनाया था, रंग तैयार है, झरने का पानी भी मिल जायेगा, थोड़ा सा पानी सुरंग में घुस जायेगा। यही है नाथ की भाषा का रंग इसी को अब पहिचाण कहते हैं। जब पहिचाण होने लगेगी तो अवधू यह रंग चमकेगा। रंग में रंगले अपने को। यहीं से एक ऐसा भाव हृदय में आयेगा, जिसको अवहट कहते हैं। अवहट भाव वह मस्ती का भाव है जिसे लाने के लिये अपने घोड़े को जरा संभाल लो। घोड़े पर लगाम लगाले, घोड़े को आगे करदे, बीच में हो जा। सर्पिणी को आगे से रोक दे, घोड़े को सर्पिणी से आगे करदे। तू घोड़े और सर्पिणी के बीच में आ जा क्योंकि यहाँ पर दोनों तरफ रंग देना है। रंग की बौछारें करनी हैं, निर्मल करके आगे बढ़ना है, झरने से पानी लेना है। तब देखो पूतां, ऐसा करो, जो तुमको स्थानपरिचायिका मुद्रा बताई थी, सीधे उसे जरा लगा जाओ, वह लग गई। स्कन्दिनी में गर्दन से रगड़ होती है। गर्दन ढीली ही रखना। जिधर जाय, जाने दो। फिर जरा जो कूल्हे और कूल्हे के ऊपर का हिस्सा है, बिना किसी कोशिश के चला दो। यों:-

नीचे चाले कूल्हा ऊपर हाले चूल्हा (कन्धे)।
नीचे चाले कूल्हा ऊपर हाले चूल्हा।
बीच में हाले झूला।। आहा।
नीचे हाले कूल्हा ऊपर चाले चूल्हा।
बीच में हाले झूला तत्त्व मिले अनमूला।

ऐसा करने से मणिपूर के साधने की भी क्रिया हो जाती है। मणिपूर के साधने में जो त्रुटि रह गई होगी, वह इसके द्वारा अनायास सब पूरी हो जायेगी। बड़ी सरल है, बड़ी गुप्त है, बताना नहीं चाह रहा था। मणिपूर में मैंने इसे छोड़ दिया था। फिर सोचा कि कुछ भी गुप्त नहीं रखना चाहता हूँ, नहीं तो अब तक मेरा सब कुछ करा कराया अधूरा रह जायेगा। पूतां, नहीं रोक सका, बता दिया, कल्याण हो। रखो हाथ, जो परिचायिका मुद्रा है उसे करो। कन्धों को ऊपर मत करना, यानी इधर-उधर, इधर-उधर करते रहो, डुलते रहो। श्वास -श्वास कुछ नहीं करना है। सरल समझ के ऐसा न हो कि ध्यान से उठ जाय, फिर पछताओगे। फिर जो है एक दम से नीचे झुक जाओ। वैसे हिलने हिलने में फिर ऐसा होगा। तुम्हारे पेट का जो बड़ा मोटा मांस है वह ऊपर नीचे नाभि पर रगड़ खायेगा, उसे रगड़ खाने दो, जहाँ रेखा पड़ती है। फिर गर्दन को एकदम झुका दो, जैसे जालन्धर बन्ध लगाते हैं। जालन्धर में तो फट से ठुड्डी एकदम लगा देते हैं, तुम इसे ढीली रखना। चाहे नज़र खोलो, चाहे बन्द रखो। हाथों के मणिबन्ध के बीच हृदय में देखो। धीरे-धीरे जैसे ऊपर करते थे, वैसे धीरे-धीरे, नीचे हल्के-हल्के, झटका देके नहीं चलाना, धीरे-धीरे एक बार इधर जाय, एक बार उधर जाय, देखो तो तुम्हें अपने सिर की छाया वहाँ हिलती हुई नज़र आयेगी, उन दोनों हाथों के बीच। जोर से नहीं करना अवधू ! खतरा हो जायेगा, छाया नहीं दिखाई देगी, उस छाया की, जो वहाँ पर हिलती डुलती दिखाई देगी, वहाँ पर ऐसा मालूम पड़ेगा कि जैसे तुम हाथों को बाँधे हुए हो, तुम्हारे मस्तिष्क से और हृदय से ऐसा ही माथे तक एक कोण बन जायेगा, वह छाया कोण के इधर-उधर जायेगी। कुछ देर उसे देखते और फिर बीच में छाया भी हिलती डुलती दिखाई देगी। फिर जरा हिलो हिलो, शरीर सारा शिथिल होगा और ऐसा मालूम होगा कि कै करने का जी हो रहा है, खबरदार, कै नहीं होगी, घबराना नहीं, यह सब यहीं मथवा दूंगा, यह सरल लाभदायक क्रिया है। इसे गुप्त नहीं रख सका, देखो, कर लो, बस, फिर कुछ जरूरत नहीं रहेगी, आगे को रास्ता बताऊंगा ही। देखो, मूर्च्छा आने लगी, होने लगी, पीछे को जाओ।

साधन मे लगो। इसे समझना। पाँच दिन तक इसे कर लेना। पाँच दिन तक नित्य करो, छठे दिन लाभ होने लगेगा। आज से छः दिन तक किसी भी वख्त कहीं भी करना, लेकिन करना जरुर। ६ दिन पर्यन्त आते-आते एक मस्ती आने लगेगी। इस क्रिया की जो गहराई है, जो कुछ है, सब तुम्हारे सामने आ जायेगा। इस क्रिया को मैं प्राणों से भी अधिक प्यारी समझता था, दे दिया। तुम्हारा भाग्य ।। ॐ ।।

२१-१२-६२ प्रातः काल ।। ९२ ।।

रमां रामा रामं रमण रमणीयां रमणकाम् ।
रसानां सारां तां सरलसरलां सारसहिताम् ।
सदा शक्ति शुभ्रां चिदुदयनिभां नित्यरूपां नमामि।।

चिच्छक्ति की उदयरूपा उस शुभ्रस्वरूपिणी नित्यरूपा भगवती को नमस्कार है, जो रमा हैं, रामा हैं, राम (लक्ष्मी) का जिसमें निवास है, रमण रमणीय हैं, रामणक हैं, रसों की सार हैं, सारसहित हैं, अत्यन्त सरल हैं, गहन तत्त्व को भी सरल रूप में बताने वाली है।

चिदुदयां च शुभदामेकैक मार्ग गामिनीम् ।

भाविनीं भावभारां वै सुशक्ति च नमामि ताम् ।।

चिदुदया नामक, कल्याण प्रदा, एक मार्ग से चलने वाली, भाव स्वरूपा, भाव से परिपूर्ण उस सुन्दर शक्ति को मैं प्रणाम करता हूं।

यदा संजायते ज्ञानं वोधश्चैव प्रजायते।

अहं मुद्रां क्रियां ध्यानं सर्वमेव करोम्यहम् ।।

जब साधक को ज्ञान और बोध हो जाता है (इस शास्त्र का) तब मैं स्वयं ही योग की मुद्राओं और क्रियाओं को तथा ध्यान को करा देती हूं।

अहं करोमि इत्याख्यं ज्ञानं तत्र प्रजायते।

एतद्वै चित्तलीनस्य प्रथमा च दशा मता।।

चित्तलीन होने पर साधक की प्रथम दशा यह होती है कि सब क्रियायें, मुद्रायें और ज्ञान-ध्यान सब कुछ मैं (सरस्वती, शक्ति) ही कर रही हूं।

हृदेशं ज्ञानमायाति चित्तं याति लयं प्रति।

तदा चानाहतं चक्रंहृच्चक्रंयत् प्रकम्पते।।

साधक के हृदय प्रदेश में ऐसा ज्ञान स्वयं अवतीर्ण होता है और चित्त लय की दशा में चला जाता है। तब अनाहत अथवा हृच्चक्र में जो कम्पन होता है-

तत्र वै गमनं तत्र स्थानस्य परिचयो भवेत् ।

तस्य वा भेदनं कृत्वा शक्तिर्याति ततः परम् ।।

उस स्थान में साधक पहुंचता है और उस स्थान से परिचय होने लगता है। उस हृदय चक्र का भेदन होकर शक्ति स्वयं ऊपर की ओर चल पड़ती है।

चैतन्यं चित्स्वरूपं च चित्रार्थं चिल्लयात्मकम् ।

सर्वं भासं च ज्ञानं च तद्भेदेन प्रजायते।।

हृदय चक्र के भेदन से चित् में लय होना, चैतन्य की अनुभूति होना, चित्रविचित्र तत्त्वों से पूर्ण चित्स्वरूप का साक्षात्कार इस सबका आभास और ज्ञान होने लगता है।

तदा ज्योतिः स्वरूपाणामेकं लिङ्गात्मकं लघु।

ज्योतिषां लघुरूपेण लिंगमात्रं प्रतीयते।।

नाना प्रकार की ज्योतियों का पुंजीभूत एक छोटा लिंग दृष्टि में आता है। वह लिंग नाना प्रकार की ज्योतियों से भरा हुआ लिंगमात्र छोटा (अंगुष्ठ आकार का) होता है।

तल्लिङ्गं ज्योतिषां रूपं दृष्ट्वा ज्ञात्वानुभूय च।

चित्तं च लयमायाति समाधेश्च प्रभासनम् ।।

ज्योतियों से भरे उस लिंग का दर्शन करके, अनुभव करके चित्त लय की ओर चल पड़ता है और साधक को समाधि का आभास होने लगता है।

स्वल्पं भासं तदा ज्ञानं स्वल्पं-स्वल्पं प्रजायते।

एवं च तत्र वै ध्यानं तद्धीनं तद्गतं भवेत् ।।

प्रथम अवस्था में ज्ञान का आभास कम मात्रा में होता है। अनुभव शनैः - शनैः बढ़ता चला जाता है। यथा समय ध्यान कभी स्थिर अस्थिर होता हुआ पूर्ण होता जाता है।

किन्तु ज्ञानं च एतावत् अहं सर्वं करोमि तत् ।

स्थिरं भवति कालं च किञ्चिदेव तदास्थितम् ।।

किन्तु यह ज्ञान सदा स्थिर रहता है कि मैं (शक्ति) सब कुछ करवा रही हूं। ऐसा ज्ञान साधक में कभी-कभी बहुत कम स्थितियों में अस्थिर रहता है।

हृच्चक्रं मध्यमं चक्रं भिद्याद् छिद्यात् मनीषि वै।

तत्र भेदेन रूपेण ज्ञानं पञ्चात्मकं भवेत् ।।

मनीषि साधक को चाहिये कि वह हृच्चक्र का छेदन भेदन करले। उसका भेदन छेदन पांच प्रकार का ज्ञान हुआ करता है।

ज्ञानं चैतन्यमेकं च द्वितीयं चिदुदयं तथा।

तृतीयं भासमात्रं च चतुर्थं कर्तृ संज्ञकम् ।।

प्रथम अपने चैतन्य का ज्ञान होता है। दूसरा चिदुदय नामक है। तीसरा केवल भासमात्र है। चतुर्थ कर्ता सम्बन्धी होता है (मैं, साधक कर्ता न होकर माँ भगवती ही सर्वकर्त्री है, ऐसा ज्ञान)।

पञ्चमं शून्यभावं च शून्ये लीनं तथैव च।

एतत् पञ्चविधं ज्ञानं लयाधीनं नयेन्मनः।।

पाँचवा शून्यभाव का ज्ञान, शून्य में लीन होने का अनुभव। इस प्रकार पंचविध ज्ञान साधक के मन को लयस्थिति के आधीन बना देता है।

आत्मानमात्मरूपं च आत्मबोधो महामहत् ।

अत्रागत्य स्वयं जातमुपात्ते ज्ञानमाचरेत् ।।

यहाँ पहुँच कर अपना, अपने स्वरूप का ज्ञान और बड़े से बड़ा आत्मबोध हो जाता है। इस स्वयं हुए, सहज उपलब्ध हुए ज्ञान के अनुसार साधक को अपने उपयोग में लाना चाहिए।

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। सबका कल्याण हो। सबका कल्याण हो। हमने जो मार्ग बताया था उसकी अवस्थाओं को पार कर अब हम उसके पार आ गये हैं। अब अनाहत चक्र, मध्य चक्र, हृदय चक्र के भेदन छेदन उसके पार करने की तैयारी कर रहे हैं। उसका भेदन छेदन मणिपूर की अपेक्षा थोड़ा सरल है और यही ऐसा स्थान है जो प्राणों को, मन को इन्द्रियों को लय में भेजने की चाभी को तैयार करता है। यहीं से लय की अवस्था प्रारम्भ होती है। यहाँ पर आकार के चित्त का उदय होता है और जो शक्ति नीचे से आई थी वह यहाँ स्थिरता ग्रहण करने लगती है। उसे ज्योति में एक पिंडात्मक दीप का दर्शन होता है जिसे ज्योतिर्लिंग कहते हैं। यही है वह ज्योतिर्लिंग जिसके दर्शनों से परमशान्ति मिलती है। हम उस ज्योति में सामने को तैयार होते हैं। लीन होकर उसको प्राप्त करना चाहते हैं। उस ज्योति को प्राप्त कर आगे बढ़ना चाहते हैं। उस ज्योति में बलसम्पन्नता आती है। उस ज्योतिर्लिङ्ग का दर्शन ही लय की अवस्था का प्रारम्भ, समाधि अवस्था का प्रथम चरण है। यहाँ से शुरुआत हो जाता है। जब ज्योतिर्लिंग दर्शन में आता है उसको केवल देख लेने से सब बाधायें समाप्त हो जाती हैं।। ॐ ।

इसके भेदन की क्रिया यों है। यही तो वह चक्र है जिसे हृदय कमल भी कहते हैं। यहाँ पर चरखा घूमता है, किन्तु उस चरखे के घूमने से पंखुड़ियाँ कट गई हैं, सबकी सब तो फिर सब समाप्त ही है, इसी बात को ध्यान में रखकर जरा कठिन हो गया है। इस कमल को विकसित करना है। यह एक कली के रूप में है। और बन्द है और जिस तरह सूर्य की

किरणें अपनी शक्ति को बाहर करके कमल का विकास कर देती हैं उसी तरह यहाँ पर भी महामाया भगवती जागृता कुण्डलिनी शक्ति जो नीचे से ऊपर तक सुरंग से प्राणवायु को यहाँ तक ला गई है जिसकी ज्योति का दर्शन करा दिया गया है वही ज्योति की किरणें जब उस कमल पर पड़ती हैं, उसका स्पर्श करती हैं, उसको सूंघती हैं अर्थात् उसे गुदगुदाती हैं तब हृदय कमल का विकास होने लगता है। कमल का विकास होने से पराग निकलता है। पराग में सुरभि होती है। उस सुगन्धि के लोभी भौंरे उधर खिंच आते हैं। इसी तरह जब हृदय कमल विकसित हो जायेगा उससे चिदुदय की अनुभूति अर्थात् चैतन्य स्वरूप का पूर्ण उदय होना प्रारम्भ होगा और जितनी भी अन्य वृत्तियाँ हैं सब खिंचकर वहीं आकर स्तम्भित हो जायेंगी, फिर वृत्तिबाधा की कोई शक्ति हिला नहीं सकती। इस हृदय कमल को विकसित करने का नाम इसे छेदना भेदना है। इसके तीन तरीके हैं।

पहिला तरीका। बैठ जाओ, रेचक, पूरक, कुम्भक तीनों करके अपनी सामान्य स्थिति में आ जाओ, गर्दन को नीचे झुकाओ। जरा जालन्धर बन्ध लगाओ। फिर श्वास को ऊपर खींचो, फिर ऐसा मालूम होगा कि वायुकण्ठ में रह गई है। उससे एक फुसफुसाहट होगी। जिस प्रकार कुम्भक करने में फुसफुसाहट कम्पन होती थी, वैसी नहीं, वह तो दूसरी बात है। इसमें धीरे से हल्की सिहरन, फुसफुसाहट होगी, वही हल्का कम्पन है। चुपचाप ध्यान में इष्ट मन्त्र जाप करते रहो, श्वास जो चले चलने दो।

एक दूसरी प्रक्रिया भी है। दूसरी प्रक्रिया में और जरा ध्यान दो। लम्बिनी (मुद्रा में देखें) का सहारा लो। उसका मतलब है जीभ को नीचे भाग में लगा दो। श्वास को गले में रोक दो। थोड़ा देर ऐसे ही रहो, फिर उसमें फरफराहट होगी। इसे हठयोगी भी कठिन मानते हैं, पर मैं बता रहा हूँ। मुँह खोल दो, कण्ठ सीधा रहे।

तीसरी क्रिया है :- श्वास का जोर का हथौड़ा। उतनी जोर का नहीं लगाओ। हल्का, ऐसा मालूम पड़े, श्वास नाभि तक गई और ऊपर आई, ऊपर आने पर यहाँ पर तितली के पंखों में जैसा फुट-फुट होगा, हल्का और कमल खुल जायेगा। कमल में पराग विकसित हो जायेगा।

अरे फुटे कमल दल बास सुहावनि निकसे।
फुटे कमल दल बास सुहावनि निकसे।
वाही वास को भौंरा पावे बार-बार फिर आवे।
उड़े पराग पिवे सो भौंरा गगनमण्डल में धावे।।
गगनमण्डल में चक्कर देकर तहाँ ही रम जावे।

गगनमण्डल में रमना अवधू और कहीं न आवे जावे।

अरे लोग कहें अरे मर गया फैंक दो अवधू नींद लगावे।

गोरख फिर उठणे ना पावे और उठे तो सब कुछ बदला।

देखि अरे फिर बाहर सों आवे ऐसी नींद समावे।

जा में ना कुछ भाये ना कुछ आवे।

ऐसी है वह नींद जहाँ जाकर धीरे-धीरे निद्रा आने लगती है। इसी निद्रा को योग निद्रा कहते हैं। आकाश में पहुँचना है। चलते चलो।

हृदय चक्र का ज्ञान ध्यान सब कमल की पांखुडी खोल दे।

कमल तत्त्व में चरखा डोले ताहि डुला दे।

एक-एक से पाँच गुणों का पाँच नाम का सारा।

ऊपर जावे अवधू पकड़े सो नारा दे सहारा।

ऊपर आवे अवधू नारा देवै सहारा।

एक उठे आकाश की ज्योती जो निदरा दिखलावे।

देखे ताहि सब कुछ मैं भूलूँ ऐसी निद्रा आवे।।

नींद में पहुंच जा फिर आगे का रास्ता साफ है। बस अब रास्ता साफ बनाऊँगा।

२१-१२-६२ सायंकाल ।।९३।।

ज्ञानवतां वै ज्ञानगभीरा अर्थवतां वै स्वार्थशरीरा।

बुद्धिपयोनिधि निर्मलनीरा पारे यातुं या मतिधीरा।।

ज्ञानियों के लिये ज्ञान से भरपूर, अर्थवान् लोगों के लिये अर्थरुप शरीर वाली और बुद्धिरूपी समुद्र के निर्मल जल वाली एंवे पार पहुंचा देने वाली माँ को नमस्कार है।

कलितकला कलिताङ्गशरीरा सा मे पातु स्थूलशरीरा।

जब शरीर धारण करती है तो कलाओं का धारण कर लेती है और स्थूल शरीर धारण कर लेती है। ऐसा माँ भगवती मेरी रक्षा करे।

खण्डखण्डात् परां विगलित सर्वभार दूरी कृताम् ।

अमलाममलरूपिणीं भगवतीं वन्दे तां सुमनोक्षताहाराम् ।। ॐ ।।

खण्ड और अनेकों भेदों से परे, समस्त भार को दूर करने वाली, निर्मल रूप वाली तथा धवल पुष्प, धवल स्फटिक व उज्वल मुक्ताहार धारण करने वाली माँ को नमस्कार है।

सुखदं सरलं शुभ्रं मतिमन्मतिदायकम् ।
भावैकविच्छेदपरं तच्छास्त्रं तत्त्वतोऽदभुतम् ।।

वस्तुतः यह शास्त्र बड़ा ही अद्भुत है जो सुखद, सरल, बुद्धिमानों की बुद्धि बढ़ाने वाला, भावों को पृथक्-पृथक् समझाने वाला है। ऐसी महिमा है इस टंक शास्त्र की।

टंकेनानेन वै प्रोक्तं आदिनाथेव संस्तुतम् ।
आदिनाथो ददौ तस्मै मत्स्येन्द्राय प्रसन्नकः।।

सर्व प्रथम आदिनाथ इस टंक शास्त्र से परिचित हुए थे। फिर आदिनाथ ने इस शास्त्र को श्री मत्स्येन्द्रनाथ महाराज को दिया।

मत्स्येन्द्र : सरलं दृष्ट्वा बुद्ध्या चैव विमण्डितम् ।
सर्वभावसमापन्नं गोरक्षं ज्ञानवान् यदा।।

तदनन्तर श्री मत्स्येन्द्रनाथ जीने अपने शिष्य गोरक्ष को निष्कपट बुद्धिवाला, सरल स्वभाव वाला, तथा सर्वभाव पूर्ण, श्रद्धालु, भक्त, निष्ठावान् समझते हुए प्रेमपूर्वक यह विद्या दे दी थी।

स ददौ तत परिज्ञानं गोरक्षाय च धीमते।
योगिने योगयुक्ताय समर्थाय महात्मने।।

मत्स्येन्द्र महाराज ने बुद्धिमान् गोरक्षनाथ जी को, जब देखा कि वे योगनिष्ठ हैं, इस विद्या को धारण करने में पूर्ण समर्थ हैं और जन्मना विशिष्ट-गुण सम्पन्न हैं, तब इस विद्या को दे दिया।

गोरक्षोऽपि यथा काले यथादेशे यथास्थितौ।
ददौ च ज्ञानमेकान्तं कस्मैचिद् योगधारिणे।।

गोरक्षनाथ ने भी ठीक समय जानकर, देश, काल, परिस्थिति को भली-भाँति समझते हुए इस अद्वितीय शास्त्र को किसी योगाभ्यासी को चुपचाप बता दिया था।

एवं बहुतिथे काले गते अद्य पुनः स्वयम् ।
एतद् ज्ञानं प्रवक्षामि मन्मुखाद् गोरखस्य च।।

इस प्रकार बहुत काल बीत जाने पर आज फिर मैं स्वयं (सरस्वती) इस ज्ञान को अपने मुख से और गोरख के मुख से कह रही हूँ।

गोरक्षो गोरखो देव गोरः गोरख रक्षकः।
स एव ज्ञानमेतद्धि रक्षणाय समर्थकः।।

गोरक्ष के अन्य नाम भी हैं- (माँ प्यार पूर्वक कह रही है) यही गोरक्ष, यही गोरख देव, यही गौर, यही गोरख-रक्षक इस शास्त्र की रक्षा करने में समर्थ रहा है। यह गोरखनाथ बड़ा विलक्षण है।

भावनाय च एवैतद् सर्वं ज्ञानं समन्ततः।
तस्मात् पुनः पुनस्तद् वै ज्ञानमद्य प्रकाश्यते।।

इस पूरे शास्त्र के ज्ञान को फिर से बनाने में, उसको सरल तरीके से समझाने में, रहस्य उद्घाटन करते हुए बुद्धि में जमा देने में, अल्पबल वाले, अल्प बुद्धि वाले सामान्य साधकों को उत्साह और धैर्य देकर आगे बढ़ाने में शक्तिसम्पन्न हैं।

अथ टंक विद्याज्ञानाद् मुद्राज्ञानम् ।।

अब यह बताया जाता है कि - टंक विद्या के ज्ञान से मुद्राओं का ज्ञान हो जाता है।

मुद्रा ज्ञानात् क्रियाभिपत्तिः।।

मुद्राओं के ज्ञान से क्रियाओं की प्राप्ति होती है।

क्रियाभिपत्तेः शास्त्राधिगमः।।

क्रियाओं के ज्ञान से इस शास्त्र में पूरा अधिकार प्राप्त हो जाता है।

शास्त्राधिगमाद् पुनः पुनरभ्यसनम् ।।

इस शास्त्र को भलीभाँति समझ लेने से साधक पुनः पुनः अभ्यास करता रहता है।

पुनः पुनरभ्यसनात् क्रियासिद्धिः।।

निरन्तर अभ्यास से क्रियाओं की सिद्धि हो जाती है और वे फलवती हो जाती हैं।

तस्माच्छास्त्राधिगमः।।

फिर इस शास्त्र का असली रहस्य, महत्त्व और मूल्य का ज्ञान होता है।

शास्त्रधिगमाच्चतुर्विध निर्मलत्वम् ।।

इस शास्त्र के श्रवण-मनन-निदिध्यासन से चतुर्विध निर्मलता प्राप्त हो जाती है।

तस्माच्छद्भावः।।

फिर साधक के भीतर सद्भावों का उदम हो जाता है।

तस्मात्तत्त्वज्ञानम् ।।

सद्भावों के द्वारा, (श्रद्धा; लगन-निष्ठा) तत्त्व-ज्ञान हुआ करता है।

तस्मात्तत्त्वज्ञानात् पूर्वमश्वाभिसन्धानम्, सदश्वाधिरोहणं,
तत् प्रचालनं, तन्नयनम् ।।

इस योग शास्त्र के तत्त्वज्ञान से पहिले, साधक घोड़ा ठीक करता है। फिर सधे हुए घोड़े पर सवार होता है, फिर उसे चलाना जान लेता है, और उस सधे घोड़े को जहाँ चाहे ले जा सकता है।

तन्नयनात् पूर्वं स्थानपरिचयो मार्गपरिचयो वा सुसारल्यं गमनसौख्यं च।।

घोड़े को चलाने से पहिले, स्थान का परिचय, मार्ग का परिचय, किया जाता है जिससे सुगमता पूर्वक आसानी से गन्तव्य स्थान में पहुंचा जा सके।

गमनादूर्ध्वप्रगतिः।।

चल पड़ने पर ऊपर की ओर गति होने लग जाती है।

प्रवृत्तिसमापत्तेःसकलंसारल्यं सुबोधो वा प्रतिभासते।।

प्रवृत्ति की समापत्ति हो जाने पर फिर सभी कुछ सरल और सुबोध दीखने लगता है।

तत्प्रतिभासात् दर्शनयोग्यता।।

सरल और सहज लग जाने पर दर्शन की योग्यता आ जाती है।

दर्शनश्रवणगमनाभ्यासेभ्यः सर्वमभ्युदयः।।

दिव्य दर्शन, दिव्य श्रवण, गमन आदि के अभ्यास से सभी प्रकार का अभ्युदय हो जाता है।

ततो निश्रेयससिद्धिः।।

तब निःश्रेयस सिद्धि अर्थात् इहलौकिक, पारलौकिक, कायिक, मानसिक, आत्मिक सिद्धि होती है।

ततश्चिदभ्युदयः।।

तब जीवन में सर्वतो भावेन अभ्युदय होता है।

चिदभ्युदयादूर्ध्वं नाडीनां चक्राणां च भेदनम् ।।

चिदुदय से ऊपर की नाड़ियों और चक्रों का भेदन होता है।

तच्छेदनभेदनात् स्थानपरिचया सुस्थिरा सुपरिचिता अवस्था समायाति। तदा निर्मलं शरीरं निर्मलं मनः।

नाड़ियों और चक्रों के छेदन भेदन से स्थानपरिचय अवस्था सुस्थिर, सुपरिचित और पक्की हो जाती है, तब शरीर निर्मल बन जाता है।

आत्माऽपि निर्मलो भूत्वा निर्मला बुद्धिः संजायते।।

आत्मा भी निर्मल बन जाती है और बुद्धि भी निर्मल बन जाती है।

सर्वं निर्मलत्वम् । तस्मादेषा टंकनविद्या निर्मलत्वेन सुस्थिरा सुज्ञेया च।

सभी कुछ निर्मल हो जाता है। इस टंक विद्या को भलीभाँति जान लेना चाहिये, यह परम पवित्र और सुस्थिर है।

एषा टंकनविद्या मनसः स्थिरत्वसम्पादनाय संधारणाय संज्ञानाय प्रवर्तते।।

इस टंक विद्या का प्रवर्तन मन को स्थिर करने, उस पर काबू पाने और उसकी पहिचान के लिये होता है।

एकेनैव जितेन तेन मनसा सर्वं जितं भवति।।

अकेले उस मन के विजित हो जाने पर सब पर जीत हो जाती है।

एकेनैव तेन ज्ञानेन सर्वं ज्ञातं भवति।।

एक केवल उसी मन को जान लेने पर सब कुछ जाना जा सकता है।

एकेनैव तेन मार्गेण गमनेन सर्वं गमनं भवति।।

एक अकेले इसी मार्ग से चलने पर सर्वप्रकार का गमन सम्पन्न हो जाता है।

एकेनैव तेन स्थानपरिचयेन सर्वं परिचितं भवति।।

एक अकेले उस स्थान परिचय से सब कुछ परिचित हो जाता है।

इत्येतत् महाबोधतत्त्व-प्रक्रिया प्रकटिता तद्बोधाय परिसंचालनाय परिगमनाय परिचयाय एतच्छास्त्रं श्रोतव्यं मन्तव्यं अध्येतव्यं च।।

इस भाँति यह महाबोध की प्रक्रिया प्रकट की गई है। उसे जानने, उसे चलाने, उस पर चलने, और उससे परिचय प्राप्त करने के लिये इस शास्त्र का श्रवण, अध्ययन और अनुशीलन करना चाहिये।

एतत् सर्वं सुकरं सुसरलं सुज्ञातं भूत्वा मनसः सिद्धिं प्रददाति।।

इस शास्त्र में वर्णित सभी कुछ सरल, सुबोध, सुज्ञात होकर मन की सिद्धि प्रदान करता है।

एकेनैव मनसा वशीभूतेन सर्वं वशीभूतं भवति।

बस एक मन के वशीभूत होने पर सब कुछ वशीभूत हो जाता है।

तत्त्वाय तत्त्वज्ञानाय सर्वं भासितं भवति ।। ॐ ।।

तत्त्व तक पहुंचने और तत्त्व ज्ञान के लिये क्या उपयोगी है, सब कुछ ज्ञान में आ जाता है।

सर्वविद्यामयी विद्या एका विद्या च या मया।

भाषिता टंकनाख्या च सर्वसिद्धिप्रदा हि सा।।

जो टंक विद्या मैंने कही है, वह एक अकेले ही समस्त विद्याओं की सारभूत है। समस्त योग-सिद्धियों को देने वाली है।

एषा टंकनविद्या अश्वीविद्या, अश्विनीविद्या सदसद्विबोधिनी एकत्वबहुत्वज्ञाने प्रसंचारिणी, एकोऽहमद्वितीय इत्यस्य प्रबोधकारिणी, धारणाध्यानसमाधिभावानां जनिका जननी स्वरूपिणी। अत एव सा एव टंकनविद्या ज्ञातव्या। अत ऊर्ध्वं टंकविद्याज्ञानात् परात् परं अनाहताख्यं हृदयचक्रभेदनं पुनरपि व्याख्यास्ये।। ॐ ।।

यह टंकन-विद्या, अश्वी विद्या, अश्विनी विद्या इन नामों से भी कही गई है। यह विद्या सत् असत् का बोध प्रदान करती है। एक ब्रह्म और जगत् के नानात्व तक प्रकृष्ट रूप से संचारिणी है। "मैं एक अद्वितीय हूँ" इस शास्त्र वाक्य का बोध करा देने वाली है। यह विद्या धारणा, ध्यान और समाधि पैदा कर देती है, अतः साधक की मातृस्वरूपिणी है। इसलिये इस टंकविद्या का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। इसके अन्तर अनाहतचक्र का भेदन भी कहा जायेगा।

गोरखबाबा :- अ[illegible] ! माँ की बड़ी कृपा है। यह विद्या अनन्त से आदिनाथ ने प्राप्त की, आदिनाथ से मत्स्येन्द्रनाथ [illegible] प्राप्त की, फिर उनसे मुझे, गोरखनाथ ने इसे प्राप्त किया। इसका ज्ञाता जालन्धर भी था। मेरी [illegible] में गणनाथ या गेणीनाथ को भी यह विद्या मालूम थी, फिर लुप्तप्राय हो गई। मैंने इस विद्या [illegible] गोरख-सहजयान भी कहा था। इस टंकन विद्या का उसमें बहुत आधार था। यह विद्या आज पुनः आ रही है। इसके ज्ञाता होंगे। कर्त्ता होंगे। तब गोरख की साधना से लुप्त नहीं होगा। [illegible] परम्परा जागे[illegible] पाना है। दिखा देना है। आवश्यकता है, जगना है, जगा देना है, चलना च[illegible] है। आ[illegible] [illegible], हो गया विचार, ऐसी कोई बात नहीं थी। मैं भी इसी मन्तव्य में [illegible] हो जाय प्रचार जाने [illegible] जाने सार, कोई निःसार। खट्टा मीठा यह संसार। जानों, परन्तु ऐसे रहोः-

शरीर नहि साधे मन नहीं साधे बातें करे निराकारा।

बिन पाणी बिन पौन के बैठ क्या जावे संसारा अवधू।

अवधू ! नाथ कहावे सोई जो मन काया सोधे।

अरे साध साधके पौन पाणि को घट घट में संसारे।।

एक योग यह एक योग है एक शोक इक रोगा।

कोई जाणे जागण हारे कोई यह जाणीं।

ऐसा चन्दन लगाया अवधू बाढे जो बिनु पानी।

ऐसी वाणी बोल रे गोरख जो सब घटहिं समाणी।
सो तो कहे नाथ का चेला जाने नाथहिं नाथ पढ़ा।
अवधू घटहि न घटना खटता खटे नखन्ता।
जो यह तत्त्व न जाने रे पूता ! सो काहे का सन्ता।।

यह गूढ़ विद्या है। घट अघट, खट अखट सबमें सब में तत्त्व समझाने वाले बहुत हैं। यह तो गूढ़ बात है। कुछ भटक गये हैं। बह गये हैं। वह गये। कुछ चले गये। डूब गये, कुछ पार हो गये। लेकिन जिनके पास इन मुद्राओं और क्रियाओं का बेड़ा दे दिया है, निकल जाओ समुद्र के पार। लहरों के थपेड़े खाते हुए भी साफ पार निकल जाओगे। कभी विचलित नहीं हो सकोगे। यदि तुम्हें संसार में भी रहना हुआ तो तुम थपेड़ों को झेलते हुए चले जाओगे। तुम्हारा यह बेड़ा बहुत मजबूत होगा। इस बेड़े की एक एक कड़ी मजबूत है। और जो कोई इस बेड़े का सहारा लेगा, इस पर बैठेगा, कोई ताकत ऐसी नहीं जो उसे रोक सकेगा। महा समुद्र में भी सरलता से हंसते हंसते मस्ती से चला जायगा। क्योंकि वह नाथ का चेला है। नाथ लिया उसने सब को। नाथ लेगा इस नाथ ने ऐसी नाथ हाथ में दी है जो साथ साथ रात दिन बात करती हुई चली जावे, न किसी की घात है, न कोई उत्पात है, न खाई खंघात है। सीधी सी बात है। पहुंच जाओ। मैंने भलाई की इच्छा की, देर से नहीं, जल्दी चलने के लिये। पैरों में बल भी होना था, रास्ता भी दिखाना था, बाधा भी हटानी थी। सब कर दिया, कर रहा हूँ, करूँगा चलो तो।

एक राह मैं दिखाई जो सुरंग के भीतर जाई।
वाही राह चला जो अवधू तो ना ठोकर खाई।।
सीधे चले उस राह से सो पावे पर तत्त।
अरे जो फिसले विचले अरे कैसे पावे गत्व।।
परमपुरुष है अलखनिरञ्जन, अरे आजा वाही देख ले, पाजा।
पावे अलखनिरञ्जन पावे अलखनिरञ्जन।
सो तू वा में आप समा जा, वा में आपु में वाको।
सो सब कुछ तो आपो सो सबकुछ तो जाणे।
जाणै और पहिचाने अरू बैठे बिहचै ठागें।

अब निश्चित स्थान आ गया। यह तो एक मामूली सी बात थी। किन्तु जो असली तत्त्व बताया जा रहा था, यह तो धीरज देने की बात कही थी। जो तुम्हें स्थान परिचायिका के बाद क्रिया बताई थी, वह मत्स्येन्द्रनाथ जी ने मुझे बताई और मैंने उसे गुप्त ही रखा। एक गैणीनाथ (गणनाथ) को बता दिया था, बस, और अब तुमको बताई है। उसे ध्यान से सुनो और करते रहो।

महादेवीं देवीं परम मधुरां जाप्य सुभगाम्,
अनन्तां गीर्वाणीं विकसित सदा सार्थसमुहाम् ।
अनन्तां निर्वेद्यां सकलसहितां बोधविपुलां,
परां वेदैर्वेद्यां परभगवतीं नौमि नवलाम् ।।

परम मधुरा, जप करने में सुन्दर लगने वाली, अनन्ता, उपादेय वस्तुओं को सदा साधक के सम्मुख प्रकट कर देने वाली, कठिनता से प्राप्त किये जाने वाली, विपुल बोध को धारण करने वाली, समस्त कलाओं से विराजमान, वेद जिसे जानते हैं उस गीर्वाणी परा और नूतन भगवती सरस्वती को मैं प्रणाम करता हूं।

अपरामपरिचित शब्दमण्डितामज्ञानैकापसारणे च पण्डिताम् ।
गुणमण्डितामखिलेश्वरीं महेश्वरीं शारदां वन्दे।।

अपरिचित शब्दों से विभूषिता, अर्थात् साधक को जिन शब्दों से परिचय नहीं है, उन्हें भी बता देने वाली, अज्ञान का अपसरण करने में अद्वितीय पण्डित, समस्त गुणों से मण्डित, अखिलेश्वरी महेश्वरी अपरा भगवती शारदा को मैं प्रणाम करता हूं।

निखिलं व्यक्तमव्यक्तं ज्ञानं गूढं सुबोधकम् ।
सर्वं च भावितं यत्ते ज्ञानाय साधकस्य वै।।

व्यक्त अथवा अव्यक्त समस्त गूढ़ ज्ञान को मैंने सब कुछ जो तुम्हें बताया है, वह साधक को भलीभाँति सरलता पूर्वक समझाने के उद्देश्य से कहा गया है।

पूर्वं मलापसारं च ततो निर्मलविग्रहम् ।
ततो मणिसमापत्तिः ततश्च दर्शनं पुरः।।

सर्व-प्रथम मल का अपसारण, तदनन्तर शरीर की निर्मलता करना, तदनन्तर मणिपूर चक्र तक पहुंचना, फिर प्रत्यक्ष ज्ञेय तत्त्व का दर्शन करना।

एतत् सर्वं समौत्सुक्यमौत्सुक्येन विभावितम् ।
सर्वं सम्पूर्णतां यातु यत् प्रोक्तं दर्शितं च यत् ।।

यह सब कुछ उत्सुकता से पूर्ण और जिज्ञासा की पूर्ति से विभावित है। जो कुछ तुम्हें बताया गया है और दिखाया गया है, अब वह सम्पूर्ण होता है, साधकों की सफलता हो।

ॐ । टंकनविद्यायां स्थानपरिचय गमनात्मक समानाधिकरणस्य समाप्तिः। स्वयं सरस्वत्या देव्या विभाषितं गोरक्षेण च निगदितं जितेन्द्रभारतीयस्य मुखात् प्रकटितं हिताय भवतु।। ॐ ।।

ॐ टंकविद्या के अन्तर्गत स्थानपरिचय गमनात्मक समानाधिकरण की समाप्ति हुई, जिसे स्वयं भगवती सरस्वती ने कहा और गोरक्ष देव ने कहा और जितेन्द्र भारतीय के मुख के प्रकट किया, उससे साधकों का मंगल हो। ॐ

२२-१२-६२ सायंकाल ।।९५।।

अथ तृतीय समानाधिकरणं निगद्यते। अथ टंकविद्यायामूर्ध्वाधिकरणं प्रारभ्यते।। ॐ ।।

अब इसके पश्चात् तृतीय समानाधिकरण कहा जाता है। यहाँ से टंक विद्या के अन्तर्गत ऊर्ध्वविद्याधिकरण प्रारम्भ होता है। ॐ ।

चक्राणां नाडिव्यूहानां अधिष्ठात्रीं महालयाम् ।

महाशक्तिं चिदानन्दरूपेण प्लाविकां शुभाम् ।।

चक्रों और नाड़ि-व्यूहों की अधिष्ठात्री, महालया, महाशक्ति, चिदानन्द रूप से सर्वत्र व्याप्त, मंगलकारिणी-

वन्दे बोधमयीं देवीं सर्वचक्रस्थितिप्रदाम् ।

ऊर्ध्वं च गमनं यद्वै निर्विघ्न कारिकां च ताम् ।।

बोधमयी, सर्व चक्रों की स्थिति बताने वाली भगवती मां को मैं प्रणाम करता हूँ। ऊर्ध्वगमन अब करना है इसलिये विघ्नबाधा हटाने वाली देवी को मैं प्रणाम करता हूँ।

गन्तव्यं सर्वचक्राणां उपरिष्ठात्वया हि वै।

तस्मादत्तावधानस्त्वं शास्त्रं श्रृणु क्रियां कुरू।।

अब तुम्हें सब चक्रों के ऊपर पहुंचना है, इसलिये सावधान होकर इस शास्त्र को सुनो और बताई जाने वाली क्रियायें करो।

उभयं शवलमेतत् कारणं कार्यमेय च।

कार्यकारणमात्रेण संयात्यूर्ध्वमकण्टकम् ।।

कार्य और कारण इन दोनों का ही इसमें सम्मिश्रण है। इन दोनों के मिले जुले तरीके से साधक निष्कण्टक रूप से ऊपर की ओर चढ़ता चला जाता है।

अनाहतं विशुद्धं च आज्ञाचक्रं तृतीयकम् ।

त्रयाणां भेदनं कृत्वा तव सिद्धिर्भविष्यति।।

अनाहतचक्र, विशुद्धचक्र, और आज्ञाचक्र इन तीनों का भेदन करके तदनन्तर तुम्हें सफलता मिलेगी।

त्रयाणां भेदनं सद्यो जायते नातिदुष्करम् ।

अनने मार्गबोधेन सर्वं लघु भविष्यति।।

इन तीनों का भेदन शीघ्र हो जाता है, यह अधिक दुष्कर नहीं है। इस मार्ग बोध के तरीके से सब कुछ आसान और सरल हो जायेगा।

त्रयाणां तत्त्वज्ञानेन मुद्राज्ञानेन वै ध्रुवम् ।

क्रियाज्ञानेन तत् सर्वं भेदनं सुकरं भवेत् ।।

इन तीनों चक्रों के तत्त्वज्ञान से, इनसे सम्बन्धित मुद्राओं के ज्ञान से और क्रियाओं के ज्ञान से अवश्य ही इनका भेदन सरल और सुकर हो जायेगा।

अनन्तशक्तिः स्वयमेव यास्यति सार्धं त्वया त्वं सजगो हि तिष्ठ।

सा वै सदा सर्वजनार्द्रचित्ता कारूण्यपूर्णा करूणां विधास्यति।।

असल बात तो यह है कि वह अनन्त जागृता शक्ति स्वयं तुम्हारे साथ चलेगी तुम केवल सावधानी रखो, सजग रहो। वह शक्ति सर्वजन-दयाशीला है, करूणापूर्ण है। वही कृपा स्वयं करेगी।

कृत्वा च रेचकं पूर्वं पूरकं तदनन्तरम् ।

ततश्च कुम्भकं कृत्वा हृच्चक्रंचालयेत् पुनः।।

पहिले रेचक करो, फिर कुम्भक करो। इस कुम्भक से हृदय-चक्र में चालन होगा। उसमें स्पन्दन एवं कम्पन होगा।

कमलस्य विकासेन विकासो मनसः स्वयम् ।

भविष्यति स्फुरं चैव तत्र तत्त्वं च दृश्यते।।

इससे हृदय-कमल खिल उठेगा और स्वयं मन का भी विकास हो चलेगा। वहीं हृदय चक्र में वह तत्त्व दीखने लग पड़ेगा।

एकं वा बहुवारं व प्राणायामं पुनः पुनः।

कारयिष्यति सा शक्तिः या त्वया सह आगता।।

एक बार, दो बार अथवा तीन बार, साधक की योग्यतानुसार और स्थिति के अनुसार, वह जागृता शक्ति स्वयं जो हमारे साथ आई है, प्राणायाम करवायेगी।

त्वया मौनेन सम्भाव्यं दृष्टव्यं तच्च दृश्यते।

यत्तत्त्वं तस्यज्ञानेन कृत्वा चक्रस्य भेदनम् ।।

बस तुम्हें मौन और निष्क्रिय रहकर जो हो रहा हो, जो दीखे, उसे देखते रहना है। जो तत्त्व दिखाई दे उसके ज्ञान से अनाहत चक्र का भेदन हो जाता है।

सुलभं जायते नात्र संशयः क्रियतां क्वचित् ।

हृच्चक्रंसुभगं ज्ञात्वा ध्यात्वा ज्योतिः स्वरूपकम् ।।

इसमें कोई संशय न करो। हृदय-चक्र में ज्योति स्वरूप के दर्शन होने पर और उसका ध्यान करने पर अनाहत चक्र का ज्ञान आसानी से हो जाता है।

ज्योतिर्लिंगं महालिंगं ज्योतिस्ते तु भविष्यति।

तस्मात् त्वं तत्परित्यज्य ऊर्ध्वं गच्छ च सत्वरम् ।।

हृदय-चक्र में एक श्रेष्ठ उत्तम, ज्योति से भरपूर ज्योतिर्लिंग दिखाई देगा। उसे भी छोड़कर तुम शीघ्रता से ऊपर की ओर चल पड़ो।

अनुभूय च सर्वं तत् क्रियामुद्रानिबन्धनम् ।

ऊर्ध्वं मार्गं कथंभूतं कपाटं रूद्धमेव तत् ।।

ऊपर जाने की क्रिया क्या है, मुद्रा क्या है, इस सबका अनुभव करलो। ऊपर का मार्ग कैसा है ? कैसे जानोगे। वहां तो किवाड़ लगे हैं, दरवाजा बन्द है।

उद्‌घाट्य तत्कपाटं च प्रविशेत् तत्र निश्चितः।

अग्रे किञ्चिन्न कर्तव्यं करणीयं न जायते।।

उस बन्द कपाट को खोलकर फिर निश्चित होकर उसमें प्रवेश करो। बस इसके अनुसार तुम्हें कुछ करना नहीं पड़ेगा। फिर करना भी कुछ है नहीं।

एषा चित्तलयावस्था तत्र वै दर्शनं परम् ।

कण्ठचक्रे गते प्राणे कण्ठचक्रंच साधितम् ।।

यहाँ पर चित्तलय की अवस्था आती है। वहीं परम दर्शन होते हैं। कण्ठ चक्र में जब प्राण वायु पहुंचता है तो कण्ठचक्र आसानी से भेदित हो जाता है।

यदा भवति वै वत्स तदा च सा दशा परा।

मुद्राणां च क्रियाणां चावश्यकता न तत्र वै।।

हे वत्स! जब चित्त की लयावस्था आ जाय उस परम दशा में फिर मुद्रा और क्रियाओं की करने की आवश्यकता नहीं रहती है।

सर्वोपशममायाति तत्र ज्ञानं हि केवलम् ।

आज्ञाचक्रं समागम्य विचित्रं परमद्भुतम् ।।

वहाँ सब कुछ शान्त हो जाता है, वहाँ ज्ञान-मात्र रहता है। आज्ञाचक्र में पहुंच में परम अद्भुत-

ज्ञानं ध्यानं महाज्ञानं सर्वं तत्र भविष्यति।

एतावत् कथितं शास्त्रं त्वात्मबोधाय ते पुनः।।

ज्ञान, ध्यान और महाज्ञान सबकुछ वहां हो जायेगा। आत्मबोध के उद्देश्य के लिये यहाँ तक शास्त्र तुम्हें कहा है।

यदि वा ज्ञायते किञ्चित् अग्रे सर्वं विधास्यते।। ॐ ।।

यहाँ तक का जब तुम्हें कुछ अनुभवपूर्ण ज्ञान हो जायेगा तो तब आगे भी कुछ किया ही जायेगा।। ॐ ।।

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। नमो गुरू को आदेश। इस टंक विद्या में मस्ती की दशा है।

एक नशा ऐसो पियो गोरख सबहि समाय।

तामें डूबे सकल समें नशा और नहि खाय।।

कुछ जाने अनजाने कछु तामें कछु न लखाय।

अलख तत्त्व देखे वहाँ ऐसा नाथ बताय।।

जो जाने पावे वही यही योग को सार।

जाको भरमत जगत है ताको यहाँ प्रसार।।

आपुन तो आपुन लहै आपुन आपहिं आपु।

एकहि सब आनन्द तै कहा होय सन्तापु।।

आखिरी तत्त्व की बात यह है कि पुड़िया झाड़ दी है, उसे चाट लो। वही ऊपर काम देगी। यह बहुत ध्यान देनेवाली बात है। यह क्रिया है चिद्बोधिनी मुद्रा स्थायी उसको पकड़ने की है। इसे बहेलिया मुद्रा भी कहते हैं।

२३-१२-६२ सायंकाल ।।९६।।

ॐ नमस्तेऽस्तु भगवत्यै महामायायै जागृतस्वरूपायै कुण्डलिन्यै। ॐ परमप्रबोधविधायकं यच्छास्त्रं यच्च ते ज्ञानं प्रोक्तं तद् भवतु सततं कल्याणाय साधकानाम् ।। ॐ ।।

जागृत स्वरूपा महामाया भगवती कुण्डलिनी को प्रणाम है। परम प्रबोधदायक, जो शास्त्र और ज्ञान तुम्हें कहा गया है वह सदा साधकों का कल्याणकारी बने।

किञ्चिज्जानाति यो योगं यो बहुज्ञश्च तद्विधौ।

एकक्रियापथेनैव तयोः साम्यं कथं भवेत् ।।

जो योग के बारे में कम ज्ञान रखता है और जो योग का अधिक ज्ञान रखता है उन दोनों की परस्पर समानता हो जाय, ऐसी एक ही कौन सी क्रिया है।

किन्तु ज्ञेयं हि यत् सर्वं एषा विद्या परा मता।

अस्या ज्ञानं क्रियां सर्वामनुभूय समं ब्रजेत् ।।

ज्ञेय तो सभी के लिये एक ही है, इसमें कोई भेद नहीं है। अल्पज्ञ और बहुज्ञ की समानता के लिऐ इसी परम विद्या का ज्ञान इसकी सब क्रिया मुद्राओं के ज्ञान से सब में समानता आ जाती है।

एषा विद्या मया प्रोक्ता ज्ञातव्या साधकैर्वरैः।

न च तद्वेदितव्यं यत् सर्वमेव प्रकाशकम् ।।

साधकों को मुझसे कही गयी यह विद्या जान लेनी चाहिये। यह न समझना चाहिये कि-

एतन्नैव च भाष्यं यत् किञ्चिज्ज्ञोऽहं बहुज्ञश्च।

आत्मानं न्यासभूतेन महाशक्त्यै समर्पयेत् ।।

सभी कुछ स्वयं आ जायेगा। यह भी नहीं कहना चाहिये कि मैं अल्पज्ञ हूं या बहुज्ञ हूं। अपने को न्यास रूप में महाशक्ति को समर्पित कर देना चाहिये।

पन्थानं शरणमेतत् पारं याति च साधकः।

तस्माच्छरण्यां तां त्वं वै निखिलं शरणं ब्रज।।

यही शरणागति का मार्ग है, इसी से साधक पार पहुंचता है। इसलिये शरण देनेवाली उस भगवती महाशक्ति की शरण में चले जाओ।

यदि नास्ति अयं भावो गर्वासक्तिश्च जायते।

अहं कर्ता च भोक्ता च विफलं तद्भवेत् समम् ।।

यदि साधक में शरणागति का यह भाव नहीं है, अहंकार भरी आसक्ति है, मैं कर्ता हूं मैं भोगता हूं, यह भाव है, तब सब कुछ विफल हो जायगा। साधक उन्नति प्राप्त नहीं कर पायेगा।

कदाचिच्च कदाचिच्च योगिनामात्मदर्शिनाम्।

एतादृशश्च सः भावः जायते लयमार्गके।।

लय मार्ग में कभी कभी किसी स्थिति में आत्म साक्षात्कार करने वाले योगियों में भी ऐसी अहंकार की भावना उठ पड़ती है। (साधना मैंने की, सिद्धि मैंने पाई, शक्ति का क्या ऐहसान ?)

सर्वं तच्च विहाय साधकवरस्तां दिव्यभावान्विताम् ।

शक्तिं जागृतकुण्डलीं भगवतीं आत्मानमासादयेत् ।

इत्थं स्वं शरणं गतं च मतिमान् सर्वात्मना साधकः,

सिद्धिं योगजयोगभाव विमलां प्राप्नोति सः सत्वरम् ।।

इसलिये उत्तम समझदार साधक को ये सब अहंकार की बातें छोड़ देनी चाहिये। दिव्यभावों से भरी जागृता कुण्डलिनी महाशक्ति भगवती की शरण में चला जाय और उस मॉं को अपना ही स्वरूप समझे। इसी शरणागति के विमल भाव से साधक योगसाधना की उत्तम सिद्धि शीघ्र प्राप्त कर लेता है।

एवं कृते च ज्ञाते च अनुभूते च ज्ञानिना।

नैव ज्ञानं हि तद् याति यद् याति योगसाधके।।

इस प्रकार समझकर और अनुभव करके जो ज्ञान योगसाधक को प्राप्त होता है ऐसा उत्तम प्रातिभज्ञान, अनुच्छिष्ट ज्ञान अन्य ज्ञानियों को प्राप्त नहीं होता है।

अतः सर्वात्मभावेन सर्वत्यागं सदा नरः।

कुर्याच्छक्त्यै हि सा देवी यदिच्छति करिष्यति।।

इसलिये सर्वात्मभाव से साधक सबकुछ त्यागकर महाशक्ति भगवती जागृता कुण्डलिनी को समर्पित कर दे। वही भगवती देवी जो चाहेगी स्वयं करती रहेगी।

अत एव च सम्प्रोक्तंमामेव शरणं ब्रज।

वाक्यमेतत्सदालम्ब्य तत्त्वतः शरणं ब्रज।।

इसीलिये अन्यान्य शास्त्रों में भी कहा है "मामेकं शरणं ब्रज"। बस इस वाक्य का तात्त्विक रूप में अवलम्बन करके महाशक्ति की शरण में चले जाओ।

अस्मिन् महायोगे समर्थभावना। समर्थभावनया प्रचरणं विहरणं च। तस्मात् शरणागतभावनया अनुभवः। तदनुभवेन त्वरिता क्रियासिद्धिः। क्रियासिद्धौ जात्यनुभवः। जात्यनुभवात् सर्वसंस्कारबोधात्मकं यद् ज्ञानं संचितं तद् ऊर्ध्वगमनात् प्रकटितं भवति। तस्माच्च सोऽहंभावः स्थिरतां ब्रजति। अस्य अवस्थात्वेन लयस्य परमदशां यान्तियोगिनो महालयादशां यान्ति।। ॐ ।।

इस महायोग में समर्थ भावना है। समर्थ भावना से प्रचरण और विहरण होता है। इसी से शरणागति भाव का उदय होता है। उस भाव में शीघ्र क्रियासिद्धि होती है।

इति प्रभाषितमेतत् सर्वं टंकनाख्य प्रकरणम् । अस्मिश्च किञ्चित् सहस्रार-विज्ञानं तदपि व्याखयास्ये।

क्रिया सिद्धि से जात्यनुभव होता है। जात्यनुभव से सर्वसंस्कार बोधक जो संचित ज्ञान है, वह ऊर्ध्व गमन के बाद प्रकट होता है। उससे "सोऽहं" स्थिर होता है। इस स्थिरभाव से योगी लोग लय की जो परमदशा महालया है वहाँ तक पहुँच जाते हैं।

आज्ञाचक्रं यदा भित्वा ऊर्ध्वं गच्छति साधकः।

सहस्रगणपर्यन्तं रसयुक्तंतदम्बुजम् ।।

आज्ञा चक्र का भेदन करके जब साधक ऊपर जाता है, तब हजार पत्तों वाला रस से भरा कमल वहाँ परः-

स वै पश्यति तद् दृष्ट्वा आनन्देन समन्वितिः।

भ्रमते चक्रवत् तत्र एकं लिंगं पुनः पुनः।।

साधक देखता है, उसे देख के आनन्द से वह भर जाता है, चक्र की भाँति वह एक एक पत्ते में घूमता है। कमल के बीच में बार बार एक लिंग के दर्शन करता है।

द्रष्टुं स्प्रष्टुं च शक्नोति तत्रैव ध्रुवसंज्ञकम् ।

तद् दृष्ट्वा परमानन्दस्तत्र भूतो विनिश्चितः।।

उस ध्रुव संज्ञक लिंग को साधक देख भी सकता है और छू भी सकता है। उसे देखकर साधक परम आनन्द से भरकर वहीं निश्चिन्त बैठे रहने की इच्छा करता है।

स्पन्दनं स्फुरणं तत्र प्रकरोति पुनः पुनः।

एतद् वै तस्य पद्मस्य विकासः शक्यते बुधैः।।

वहीं पर बार-बार स्पन्दन और स्फुरण करता रहता है। इस प्रकार स्पंदन और स्फुरण से साधक लोग उसका विकास करने में समर्थ हो जाते हैं।

स्पन्दनं स्फुरणं तत्र भूयो भूयः प्रजायते।

यादृशं भ्रमते चक्रंतादृशं भ्रमिपूर्णकम् ।।

बार-बार वहाँ स्पन्दन और स्फुरण होता रहता है। जैसे चक्र घूमता है उसी प्रकार वह सहस्र दल कमल भी अपनी पंखुड़ियों से घूमता है।

शनैः शनैः स्वमार्गेण गन्तव्यं याति साधकः।

गत्वा तत्र परं धाम विन्दते मोदमात्मनः।।

साधक इस भाँति धीरे-धीरे आराम से अपने मार्ग में चलता रहता है। फिर परमधाम तक पहुँच कर आत्मा के आनन्द की उपलब्धि कर लेता है।

यल्लाभात्तत्र सर्वे च रमन्ते ब्रह्मसंज्ञके।

तस्माद्‌ध्र्व पुनश्चैव तत्र या या क्रिया भवेत् ।।

जिसे पाकर सभी ज्ञानीजन ब्रह्म में रमण करते हैं, उसके ऊपर क्या-क्या क्रियायें साधक को होती हैं, क्या-क्या होता है-

तां सर्वां सैव जानाति यस्तत्र गतिमान् भवेत् ।

अनुभूय च तां रूपस्थितिं ब्रह्मविलीनकः।।

उन सब बातों को केवल वही जानता है जो वहाँ पहुंचता है। ब्रह्मलीन साधक उसी रूप और उसी रूप का अनुभव करके-

सर्वं साफल्यमाप्नोति एतद्वै शास्त्रसम्मतम् ।

पूर्ण सिद्धि प्राप्त कर लेता है। यही शास्त्र सम्मत सिद्धान्त है।

इति सरस्वत्या स्वयं प्रभाषितं जितेन्द्रभारतीयमुखात् व्याख्यातं च ऊर्ध्वगमनं परात्पर नामात्मकं पञ्चमसमानाधिकरणं तत् साधकानां कल्याणाय जायताम् । इति।

अन्त में, भगवती सरस्वती द्वारा स्वयं भाषित, जितेन्द्र भारती के मुख से व्याख्यात यह ऊर्ध्वगमन, परात्पर नामक पाँचवाँ अधिकरण साधकों का कल्याण करता रहे। इस प्रकार प्रकरण समाप्त।

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन।
भङ्गी जोर से जोर से जोर से आज बजा दे।
भङ्गी जोर से जोर से जोर से आज बजा दे।
अरे चल तू एक तालाब नहा ले अरू ऐसा नाद सुना दे।
योगी ऐसा नाद सुना दे।।

करदे नाद घोर घृणा का ध्वनि आकाश मिला दे।
सिहर सिहर सिर सिर सिर काँपे ज्योति दिखादे योगी।।
देखले ज्योति को अपनी अवधू अब क्या देख दिखावे।

गोरखनाथ बतावे ताको करे सहज ही सहज बतावे।।

तत्त्व बतायो गत्त्व करायो तत्त्व दिखायो साधो।

अरे एक एक मारग ते आगे जाहि ताहि पहुंचायो।।

करे राह एक ऊपर की सीधी चल चल चल चल योगी।

आजा ताल नहान कराले अरे तू ऐसा ही हो जा।

अमरित बूंद चखे जो योगी अरे सो अपने में खोजा।

अब क्या देखे क्या तू पावे अरे जावे कहाँ अकेला।।

सार सार में गोरख भाख्यो अरे जावे नाथ का चेला।।

अरे तू काहे को अकेला।।

नमो गोरख बाबा की वाणी में जितेन्द्र भारतीय के मुख से टंकन विद्या का गुप्त रहस्य कहा गया है। इसके बाद माँ की इच्छा।

ॐ अलख निरञ्जन। ॐ अलख निरञ्जन। ॐ अलख निरञ्जन।

२४-१२-६२ प्रातःकाल ।।९७।।

हरि ॐ तत्सत्।

नित्या या भगवती शक्तियोंगिनां मार्गदायिनी।

जागृतां नौमि तां देवीं भावसिद्धि करोतु सा।।

योगियों को मार्ग देने वाली जागृता भगवती कुण्डलिनी शक्ति को मैं प्रणाम करता हूं। वह भगवती देवी मुझे भावसिद्धि प्रदान करे।

आदि शक्तिर्महाशक्तिरेका चैव महालया।

कृत्वा लयालये सर्वं लयत्वं याति सद्यः सा ।। ॐ ।।

जो आद्या महाशक्ति है वह एक ही है, उसे महालया भी कहते हैं। वही महालया शक्ति सब कुछ अपने में लय करके स्वयं भी लीन हो जाती है।

सर्वं योगमयं सुनिखिलं संसाररूपं महत्,

सो वै याति प्रमोदनर्तनपरः यः आत्मवेत्ता नरः।

आत्मानं परतत्त्वत्मेव च पुनः जानाति यस्तत्त्वतः।

तं वन्दे परज्ञानसम्भृतपरं योगीश्वरं योगदम् ।।

यह विशाल संसार का स्वरूप पूरा योगमय है। जो मनुष्य आत्मवेत्ता है, वह इस संसार में खुशी से नाचता रहता है। जो अपनी आत्मा को ही तत्त्वरूप से परतत्त्वत्व समझ लेता है, मैं उसी योगदाता योगीश्वर की वन्दना करता हूं, जो परम शिव के ज्ञान से परिपूर्ण है।

योगविद्या पराविद्या लुप्ता याति प्रकाशताम् ।

अत एव च व्याख्यातं शास्त्रं टंकसमन्वतिम् ।।

जो योगविद्यान्तर्गत परा विद्या है, वह लुप्त हो गई थी, अब प्रकाश में आई है। इसीलिये टंक विद्या से समन्वित शास्त्र का व्याख्यान किया गया है।

इदं शास्त्रं यदा लोके प्रचरिष्यति वै तदा।

एका सम्यक् समापत्तिः चित्तोदयविबोधिनी।।

यह शास्त्र जब संसार में प्रचार प्राप्त करेगा तब चित्तोदय-विबोधिनी समापत्ति भली-भाँति सर्वत्र फैल जायेगी और-

सर्वत्र विस्तरं याति कल्याणं जायते तदा।

अत एव च तत्प्रोक्तं व्याख्यातं भाषितं च तत् ।।

सर्वत्र तब कल्याण हो जायेगा। इसीलिये इस शास्त्र की व्याख्या की गई और कहा गया है।

कल्याणाय च सर्वेषां जनानां लोकवासिनाम् ।

यदि वा जीवितं शास्त्रं जीवितं जीवलोकितम् ।।

संसारवासी सभी जनों के कल्याण के लिये यदि यह शास्त्र जीवित रहता है तो तभी संसार का जीवन वास्तव में जीवन कहा जायेगा।

इदं सर्वं स्वयं नित्यं शक्तिसम्पन्नतां व्रजेत् ।

स्वयं शक्तमिदं शास्त्रं स्वयंभाव-प्रबोधकम् ।।

यह नित्य शास्त्र स्वयं ही पूर्ण शक्ति सम्पन्नता को प्राप्त हो जायेगा। यह शास्त्र अपने में पूर्ण शक्ति सम्पन्न है और स्वयं ही अपने भाव को जिज्ञासु के सम्मुख प्रकट कर देने वाला है।

स्वयं योगस्य संसिद्धिदायकं जायते स्वयम् ।

अत्र यन्निहितं गूढं रहस्यं सर्वबोधकम् ।।

यह शास्त्र स्वयं योग की श्रेष्ठ सिद्धियों को देने लायक है। इस शास्त्र में जो भी गूढ़ रहस्य सब प्रकार का छिपा है, वह सुबोध है।

इन्द्रियाणां ततो बुद्धेर्मनसः स्वपरात्परम् ।

एवं सर्वं महाशास्त्र आधारत्वेन कथ्यते।।

इन्द्रियाँ, बुद्धि, मन, आत्मा और परात्पर तत्त्व ये सब कुछ आधाररूप से इस महाशास्त्र में कहे गये हैं।

अस्याधारः समस्तान् वै चित्तदोषान् विनाशयेत् ।

अस्य संश्रवणं चैव भाषणाभ्यसनं पुनः।।

इस शास्त्र का आधार समस्त चित्तदोषों को विनाश करने वाला है। इस शास्त्र का श्रवण, इसके सम्बन्ध में चर्चा तथा इसमें वर्णित क्रिया मुद्रा आदि का अभ्यास-

सर्वकल्याणदं तुभ्यमन्येभ्यश्च भविष्यति।

अत एव इदं शास्त्रं वाणीबद्धात्मकं कृतम् ।।

तुम्हारा और दूसरे साधकों का सर्वतः कल्याणकारी बनेगा। इस शास्त्र को संस्कृत और भाषा दोनों में ही इसीलिये प्रकट किया गया है कि-

यथा सम्यक् स्वरूपेण भृशं वा प्रचरेद् भुवि।

स्वधर्मे निरताः सर्वे सर्वे योगविदो जनाः।।

जिससे भलीभाँति सम्यक् प्रकार से इसका पृथ्वी में खूब प्रचलन हो सके। सभी लोग अपने धर्मकर्म में निरत रहते हुए योग के ज्ञाता बन जावें।

आत्मानं शक्तिसम्पन्नं पश्यन्तु पुण्यमात्मनः।

सर्वे योगविदो लोकाः सुखिनः सन्तु सर्वदा।।

लोग अपने को शक्ति सम्पन्न देख लें और अपने ही पुण्यों का फल प्रत्यक्ष देख लें। योगज्ञाता सभी लोकवासी जन सदा सुखी बने रहें।

शास्त्रमेतत् प्रचरतां कल्याणाय प्रजायताम् ।। ॐ ।।

इस शास्त्र का खूब प्रचार हो और साधकों का कल्याण हो। ॐ ।

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन।

अब हमने जो शास्त्र बताया था, वह साधकों के हित के लिये बताया। यह परमशास्त्र है, गूढातिगूढ है। इसका बोध साधकों को होगा। जब इसका बोध कर लेंगे, तब इसकी क्रिया मुद्रा और औषधियों के ज्ञान एवं अनुभव से अपना और जग का कल्याण करेंगे। इस शास्त्र के प्रचार से जन-कल्याण होगा हरि ॐ तत् सत् ।।

सारस्वत कुण्डलिनी महायोग

(शक्तिपात–शास्त्र)

भाग द्वितीय

ॐ

गोरखवाणी :– हरि ॐ तत् सत् । हरि ॐ तत् सत् । हरि ॐ तत् सत् । अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन।

दीप की ज्योति जलाले, दीप की ज्योति जलाले।
दीप की ज्योति जलाले।।
घट का दीप अघट की बाती, सार का तेल मंगाले।
ता दीपक में स्वास की अगनी, अवधू दीप जलाले।।
अवधू दीप जलाले।।

बैठ दीप की ज्योति में अवधू, अलख निरञ्जन देखे।
ॐ अलख निरञ्जन परम पुरूष है, अरे ताको दर्शन भावे।।
दीवट एक मंगा के अवधू, दीपक ता में संजोले।
एक एक की समझी बूझी, तहाँ बैठ के घोले।।
दीपक एक जला ले।।

जत्ती जोगी और मुनीन्दर, गिन्दर योगी ज्ञानी।
ताको अगम अथाह बतावें, तामें नाहि समावें।।
ताको सहजै सहज संजोली, अरे एकतत्व को झटपट पावे।।
बिनरातां न न संजोली, बूझणियाँ सूझणियाँ जोगी।।
सूझणियाँ मूझणियाँ।।

तोल तोल के सौदा देवै, निर्धनियाँ धन बणियाँ।
अरे ताको हाट में बैठिके अवधू, भला बुरा सब तोले।।
आपुहि आपु सबै कछु देखे, आपुहि आपु निगोड़े।
ताहि दिया मैं सब कुछ खोले, अवधू जोगी बोले।।
बार बार मिलणे का नाही, गोरख सब विध पावै।
क्या जाने कब होय सवेरा, बुझे दीपक तेरा।।
जले तेल बाती जल जावे, ज्योति रहे घनघोरा।।
तीन काल तक बुझे न ज्योती, ताकी ज्योति जलाले।।
अवधू ऐसा दीप जलाले।।

जगमग ज्योति जगे अवधू, जगमग ज्योति जगे।
जगमग ज्योति जगे।।

ता दीपक की ज्योति निराली, धम धम धम ऊपर तत् चमके।।
धमक धमक धम धम धम ऊपर तत् चमके।।
अरे, दमके जमके झमके गमके अवधू। दमके.।।
दमके तामें एक निराली, एक ज्योति से एक ज्योति में।
कञ्चन गंगा डाली, अवधू कंचन गंगा डाली।
ता कञ्चन की गंगा काया जोगीन्दर मुनि भन्ता।
अरे पकड़ें ताकी ज्योति को अवधू, सो जाणे जोग की कन्था।। ॐ ।।

२५-१२-६२ सायंकाल ।। ९८ ।।

हरि ॐ तत सत् । नमस्तेऽस्तु भगवत्यै दिव्यस्वरूपायै
महाशक्त्यै जागृतस्वरूपायै।

हरि ॐ तत् सत् । दिव्यस्वरूपा भगवती महाशक्ति को नमस्कार है।

नमस्ते महायोग-योगाधिकायै नमस्तेऽस्तु सूक्ष्म-स्वरूपाधिकायै।

नमो ज्ञान-ध्याने पराकाष्ठिकायै नमश्वाधिकायै नमश्वाधिकायै।।

समस्त योगों में श्रेष्ठ महायोग से पूर्ण माँ को नमस्कार है। सूक्ष्मरूप के कारण अधिक रूप वाली माँ को नमस्कार है। ज्ञान और ध्यान में पराकाष्ठा रखने वाली माँ को प्रणाम है। सर्वाधिक रूप वाली माँ को बारम्बार प्रणाम है।

प्रमोद परिनृत्यपरिभरां विमण्डितबहुत्रिकाल-ज्ञानात्मिकाम् ।

विलसित-सकलशास्त्र-शोभितां विधैक विद्यगीतां तां कवयित्रीम् ।।

प्रमोद में नृत्य करने वाली, त्रिकाल के विशाल ज्ञान से परिमण्डित, समस्तशास्त्रों से शोभायमान विद्या के व्यसनी विद्वानों द्वारा स्तुति की जाने वाली कवयित्री रूपा माँ शारदा को नमस्कार है।

प्रतिमानसप्रमोद भर्त्री तां वन्दे शारदां सततम् ।

प्रत्येक जन-मानस में प्रमोद भर देने वाली शारदा माँ को मैं नित्य नमस्कार करता हूँ।

अथ एतदधः स्वल्प क्रिया-मुद्रा-पुष्टिकरणम् । लघुत्वेन तत्साधनं एतद्विज्ञानं परमं परमोत्तमम् ।

अब इसके अनन्तर क्रिया और मुद्राओं को पुष्ट करने वाला ज्ञान कहा जाता है। उसका साधन आसान है। उसका विज्ञान परम उत्तम है।

मुद्रा-क्रियापुष्टि करम्। क्रियापुष्टिज्ञानेनानन्दम्। तेन पुष्टिंसमापत्तिः। पुष्टित्वेन च तत्तुष्टिः। तुष्टित्वेन अनुग्रहसुखैक प्राप्तिः। तस्मात् नातिचिरेण नातिकालेन नातिकष्टेन सारल्येन सुगमतया च कायसम्पत्सिद्धिः।

मुद्रायें क्रिया को पुष्ट करती हैं। क्रियापुष्टि के ज्ञान से आनन्द मिलता है। उससे पुष्टि समापत्ति होती है। पुष्टि से तुष्टि प्राप्त होती है, तुष्टि से अनुग्रह द्वारा प्राप्त सुख मिलता है। इसलिये बहुत शीघ्र, बिना अधिक कष्ट के, सुगमतया सरलतया कायसम्पत्ति की सिद्धि हो जाती है।

कायसम्पत्सिद्धिमापन्ने सति, अत्रैव एकं, अपरं, अद्वितीयं, श्रेष्ठं, श्रेय, प्रेयं, त्रेयं प्रमेयं च ज्ञानं परमागच्छति।

काय सम्पत्ति की सिद्धि होने पर इसी जन्म में एक अपूर्व, अद्वितीय, श्रेष्ठ, श्रेय को देने वाला, प्रिय लगने वाला त्रिकालबाधित परम ज्ञान साधक को प्राप्त होता है।

यद् ज्ञानं चापरं ज्ञानं केवलं पुष्टिकारकम् ।

क्रिया-मुद्रा विशेषेण तयोः पुष्टिकरं हि तत् ।।

जो ज्ञान इसके अनन्तर केवल पुष्टिकारक है, विशेषकर क्रिया और मुद्राओं की पुष्टि करने वाला है वह ज्ञान साधकों को हित कारक है।

तद् ज्ञानं गदहं प्रोक्तं गदस्यार्तिनिवारकम् ।

अगदं प्रोच्यते किञ्चिद् यच्च पुष्टिकरं भवेत् ।।

उस ज्ञान को गदह अर्थात् रोगनाशक कहा जाता है। रोगों के कष्टों को दूर कर देता है। वही अगद-ज्ञान थोड़ा, संक्षेप में बताया जाता है जिससे साधक परिपुष्ट बन सके।

विद्या महामहा प्रोक्ता टंकाख्या अश्विनी च या।

अश्वकः साधकः प्रोक्तः येनाश्वो बलवान् कृतः।।

पहिले महान् से महान् जो टंक नामक अश्विनी विद्या बताई थी उसी के कारण साधक को अश्वक (घुड़सवार) कहते हैं, क्योंकि, उसने अपने अश्व को बलवान् बना दिया है।

अश्वे कृते बलवति दृष्टे मार्गे गते च वै।

स्थाने च परिचिते जाते नैवं किञ्चिद् विशिष्यते।।

अश्व के बलवान् कर देने पर, मार्ग के देख लेने पर और उससे चल लेने पर तथा गन्तव्य स्थान का परिचय हो जाने पर फिर विशेष बात कुछ जानने को शेष नहीं रहती है।

अवशिष्टं क्वचित्किञ्चित् यद् गूढं च रहस्यकम् ।

तत्तु भाससमादन्यत् स्वयमेव प्रकाशते।।

थोड़ा बहुत कहीं कुछ यदि गूढ़ रहस्य छूट भी गया हो तो वह भी स्वयं भासमान होकर साधक के सामने प्रकाशित होता रहता है।

तदर्थं साधकेनैव प्रिय-कल्याण-कांक्षिणा।
भाव्यं यत्नपरेणैव सर्वन्यासकृतेन च।।

साधक को अपने हित और कल्याण की कामना से पूर्ण आत्म समर्पण करके साधना में यत्न करते रहना चाहिये ताकि गूढ़ ज्ञान भी उसे भासित हो जाय।

तद्ज्ञानं प्रोच्यते भूयः यत् स्वल्पं लाभदं बहु।
ज्ञात्वा कदाचिद् तद् ज्ञानं फललाभो भविष्यति।।

उसी ज्ञान को फिर से बताया जा रहा है। जो है तो थोड़ा किन्तु लाभप्रद बहुत है। उसे जान कर कभी भी साधक को फल लाभ हो सकेगा।

अश्वो मनः समाख्यात आश्वी विद्या तदन्विता।
तथा च अश्वगन्धायास्तद् ज्ञानमपि ते भवेत् ।।

मन को अश्व कहा गया है, उससे सम्बन्धित विद्या को आश्वी विद्या कहा गया है। अतः अश्वगन्धा औषधि का ज्ञान भी तुम्हे हो जाना चाहिये।

अश्वगन्धा महागन्धा अश्ववद् बलदायिनी।
तस्याः सेवनमात्रेण बलमाप्स्यसि त्वं ध्रुवम् ।।

तीव्रगन्ध वाली अश्वगन्धा जो घोड़े की भाँति बलदायिनी है, उसके सेवन मात्र से तुम अवश्य ही बल प्राप्त कर लोगे।

तद्वै सम्यक् समादाय प्रबोधाय प्रनः पुनः ।
पुष्टिं तुष्टिं च ते दद्याद् अश्वगन्धा महाबला।।

महाबलदायक अश्वगन्धा विधिपूर्वक बार-बार लेते हुए अनुभव करते रहो। वह तुम्हें पुष्टि और तुष्टि दोनों देगी।

समये समये तात् साधना-तत्परो हि त्वम् ।
यावन्नैव स्थिरं याति क्रियाचक्रं मनस्तथा।।

हे वत्स ! कभी-कभी तुम जब साधना में लगे हो और क्रियाचक्र स्थिर न हो पा रहा हो और मन भी स्थिर न हो पा रहा हो।

यदि वा विघ्नमायाति तद्विघ्नस्य निवारकम् ।
औषधमश्वगन्धाख्यं गृहाण त्वं यदा-कदा।।

और यदि साधना में विघ्न आ रहे हों तो उन विघ्नों के लिये यदा-कदा अश्वगन्धा नामक औषधि का सेवन कर लो।

कदाचिद् जायते ते यद् आवश्यकता भवेद्यदि।
तदा ग्राह्या स्वयं सैव अश्वगन्धा महाबला।।

यदि कभी किसी स्थिति में तुम्हें आवश्यकता पड़े तो महाबलदायक अश्वगन्धा को यथा समय ले लिया करना।

मूलं मूलं समादाय चूर्णकं चूर्णकं ऋजु।
स्वल्पं स्वल्पं मुखे धृत्वा पिबेद् दुग्धं च स्वल्पकम् ।।

उसकी केवल जड़ों को लेकर उसका चिकना चूर्ण बना लेना। थोड़ा-थोड़ा मुख में डालकर ऊपर से थोड़ा दूध पी लेना।

एवं कृते महायोगे आपत्तिविघ्नव्यूहकम् ।
शरीरजं महाकष्टदायकं तद् विनश्यति।।

इस महा प्रयोग के करने पर सारे विघ्नजाल जो शरीर को महा कष्ट दे रहे हों सब नष्ट हो जाते हैं।

शरीरं पुष्टिसम्पन्नं तुष्टियुक्तं मनो भवेत् ।। ॐ ।।

इससे शरीर पुष्टिसम्पन्न हो जायेगा और मन भी तुष्टिसम्पन्न बन जायेगा।

गोरखवाणी :- अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। ॐ माँ। साधक! अब छोटे-छोटे तत्त्व के कथन, छोटे-छोटे लाभप्रद कथन, कभी-कभी किसी समय में जिनका प्रयोग किया जा सकता है, उन्हें भी बता देना चाहिये। और जब महामाया भगवती का आदेश हो जाता है तो मन्त्रों की तरह औषधि की सिद्धि भी आती है। योगी को योग सिद्धि होने लगती है तो उसे औषधि सिद्धि का भी ज्ञान हो जाता है। यह शरीर धर्म है। कायकष्ट भी हो सकता है। उसे मिटाने के लिये इस टक विद्या की मुद्राओं को करने वाले साधक को चाहिये कि इसके लिये औषधि भी बता दी जाय। फिर कभी और भी बता दी जायेगी। सदैव नहीं सर्वत्र नहीं, कभी-कभी मस्ती के लिये, बल लाने के लिये, अपनी क्रियाओं और मुद्राओं को पुष्ट करने के लिये और शरीर को भी पुष्ट करने के लिये, मन को भी पुष्ट करने के लिये अश्वगन्धा का सेवन कर लेना चाहिये। इसे अश्वगन्ध भी कहते हैं, इसकी जड़ को कूट छान कर उसका चिकना चूर्ण बना लिया जाय, आवश्यकता पड़ने पर मुख में रख लिया और कुल्ला: दो कुल्ला चार कुल्ला ऊपर से दूध पी लिया। यह प्रक्रिया भी सोते समय होनी चाहिये। लेकिन इसका नित्य अभ्यास नहीं होगा। यह तभी होगा जब कोई साधक अपने को बलहीन निर्बल समझने लगता है। ऐसी दशा नहीं आयेगी, आनी भी नहीं चाहिये। फिर भी

ऐसा होता है कि क्रिया में अधिकता से दौर्बल्य या क्षीणता भी आ सकती है। उस वक्त ऐसी स्थिति में सेवन करना चाहिये। जान लेना चाहियें और जान कर आवश्यकता पड़ने पर सेवन कर लेना चाहिये। टंक विद्या में इसका ज्ञान भी जरूरी था। इस अश्वगन्धा में बड़ा गुण है। अश्व की तरह बल बढ़ाने की ताकत है। इसके सेवन के ढंग भी कई हैं। कई ढंग के नियम हैं। लेकिन इन क्रियाओं और मुद्राओं के साधक को कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। यदि साधक को कभी ऐसी भावना दौड़ पड़े कि शरीर शिथिल तो नहीं हो रहा है, दुर्बलता तो नहीं बढ़ रही है, क्रियायें कहीं गड़बड़ा तो नहीं रही हैं, ऐसी भावना जब आ जाय तब कभी-कभी एक दो दिन इसका सेवन कर लेना, अभ्यास नहीं डालना। हाँ, जब समाधि की दशा आने लगे, अपने आप खोने की दशा आने लगे, तो ऐसी दशा में चाहो तो कुछ काल के लिये सेवन कर सकते हो। इसलिये कि जब तुम अपने आप को भूलकर अचेत पड़े होगे, तब तुम्हारे शरीर में अश्वगन्धा की सारी शक्ति बनी रहेगी और इस प्रकार तुम्हारे मार्ग में कोई बाधा नहीं आ सकेगी।

अब माँ की आज्ञा है कि कुछ दिनों में मुझे कुछ और भी बताना है, ज्यादा नहीं, कुछ ही दिनों में। कुछ बातें बताकर फिर एक प्रकरण माँ स्वयं बतावेंगी और इसके बाद फिर शक्तिपात के साधन का कार्य समाप्त हो जायेगा और वह अपने आप बल सम्पन्न होता हुआ बढ़ता चलेगा, बढ़ता चलेगा। वह अवधू होने लगेगा। वह नाथ का चेला होने लगेगा। उसको किसी का डर नहीं, किसी की रोक टोक नहीं रहेगी। कोई रोग नहीं रहेगा। वह चलेगा, क्योंकि वह साधुओं का प्यारा है, सन्तों का प्यारा है। इसलिये उसको छोड़ दिया जायेगा। रूको मत। इस प्रकरण की समाप्ति करके दो बातें ओर बतानी हैं। बता करके खेल खतम कर दिया जायेगा।

२७-१२-६२ प्रातःकाल ।।९९।।

विकटां कटिभारमावहन्तीं विपुलां सिंहसटापटापटन्तीम् ।

सुदृढां छविजालमाभरन्तीं तनुमध्यां ननु भारतीं भजेऽहम् ।।

मध्य में पतली, सुदृढ़ शरीर वाली, कान्ति पुञ्ज को धारण करने वाली विपुल कटिभार का वहन करने वाली, शेर की सटाओं में जिनका परिधान फैला है, उस माँ भारती को नमस्कार है।

औषधं निर्मलं दिव्यं देहशोधन कारकम् ।

कथितं कथ्यते चापि यद् विघ्ननाशकं भवेत् ।।

देह का शोधन करने वाली निर्मल दिव्य औषधि तुम्हें बता दी है और जो भी विघ्नविनाश कारक अन्य औषधियाँ हैं, वे भी तुम्हें बता दी जायेंगी।

यदि वा स्खलनं तत्र जायते साधना विधौ।

व्यवधानं च वै तत्र चिन्ता तत्र न त्वं कुरू।।

कभी तुम साधना करते करते रूक जाओ और बीच में व्यवधान आ जावे तो इस बारे में भी तुम चिन्ता मत करना।

यदा वै साधनाकार्ये व्यवधानं पुनः पुनः।

मुचकन्दप्रसूनस्य भक्षणेनैक वारके।।

जब साधना-कर्म में बार-बार व्यवधान आ जावे तो मुचकुन्द फूल के एक बार भक्षण करने से ही-

बहुविघ्नविनाशाय जायते सत् फलं महत् ।

एकं पुष्पं समादाय कुर्याच्चर्वणमस्य च।।

बड़े-बड़े विघ्न विनष्ट हो जाते हैं और बड़ा अच्छा फल होता है। एक फूल लेकर उसे चबा जाओ।

उपरिष्ठात् पयश्चाल्पं पिबेत्तद्धि हिताय च।

एतत् यद् गदितं तुभ्यं अगदं गदनाशनम् ।।

और ऊपर से थोड़ा जल पी जाओ। यह बात जो तुम्हें बताई है वह रोग की निवृत्ति कर देता है। इस योग को अगद-योग कहते हैं।

तदैव ग्रहणीयं ते यदा वै स्खलनं भवेत् ।

व्यवधानं भवेच्चैव न भवेत्साधना यदि।।

इस औषध को तभी लेना चाहिये जब किसी साधना में विक्षेप या व्यवधान आ जावे और उसके कारण साधना न चल पा रही हो।

अत एवं प्रकारेण साधकः पूर्तिमाचरेत् ।

अपरं च परं लाभप्रदमेकं वदामि ते।।

इसलिये साधक को चाहिये कि उपर्युक्त प्रकार से क्षतिपूर्ति कर ले। एक दूसरा भी लाभप्रद योग तुम्हें बता रही हूं।

औषधं सुखदं ज्ञानं दिव्यं यत्ते भविष्यति।

शंखपुष्पी च या प्रोक्ता श्वेताक्षी श्वेतग्रन्थिका।।

एक लाभदायक और दिव्य ज्ञान देने वाली औषधि भी है जिसे शंखपुष्पी कहते हैं। सफेद उसके फूल होते हैं और ग्रन्थियाँ भी सफेद होती हैं।

श्वेतरोमान्विता सातु शरीरं निर्गदं तदा।

कुर्याद् भक्षणमात्रेण ग्रीष्मकाले विशेषतः।।

उसके रोंये भी श्वेत होते हैं, उसे यदि विशेषतया ग्रीष्मकाल में लिया जाय तो भक्षणमात्र से वह शरीर को निरोग बना देती है।

न शीतकाले तद्रूपमाचरेत् साधकः सुधीः।

ग्रीष्मे तद् भक्षणं कृत्वा साधकः साधकोत्तमः।।

समझदार साधन को चाहिये कि वह शंखपुष्पी का सेवन शीतकाल में न करे। ग्रीष्मकाल में ही उसका भक्षण करके साधक उत्तम साधक बन जाता है।

तस्य वै भक्षणं प्रोक्तंसफलः साधको भवेत् ।

एकादशदिनन्तं वै पिबेत्तां पेषितां पुनः।।

इसका भक्षण केवल ११ दिन तक होता है। इसे पीसकर घोट कर पीना चाहिये। इस प्रकार करने पर साधक को फलप्राप्ति होती है।

ऊष्माणं देहजं सर्वं वीर्यदोषांश्च नाशयेत् ।

अथवा साधनाकाले शीतकाले प्रकम्पिते।।

शरीर की सब प्रकार की गर्मी को और सब प्रकार के वीर्य दोषों को यह शंखपुष्पी नष्ट कर देती है। जब कंपा देने वाला शीतकाल हो, उस समय के सेवन के लिये-

एकमन्यत् प्रवक्षामि औषधं बलदायकम् ।

श्लेष्मस्य हरणं कुर्याद् श्वासकासविनाशनम् ।।

एक और भी प्रयोग है। बलदायक एक अन्य औषधि को भी बतलाती हूँ, जो श्लेष्मा का हरण कर देती है और श्वास-काश का विनाश कर देती है।

सर्वस्य कफयूथस्य पित्तदोषस्य मारकम् ।

सुलभमौषधं तच्च सर्वत्रैवोपलभ्यते।।

सब प्रकार के कफ दोषों को और पित्त-दोषों को मार देने वाली यह औषधि-सर्वत्र सुलभ तथा सरलता से मिल जाती है।

नागरं निपुणं पुष्टं तुष्टं कृष्णात्मकं च यत् ।

समादाय च तत्क्वाथं कुर्यात् साधक सत्तमः।।

काली गाठों वाला पुष्प और पक्का जो नागरमोथा होता है उसे लेकर साधक क्वाथ बना ले।

क्वाथं विधाय वै तस्य नागरस्य समाहितः।

कुडुपेन प्रमाणेन त्रिबारं भक्षयेच्च तत् ।।

क्वाथ बना कर एक एक चुल्लू भर तीन बार उसका उसे बड़े समाहित चित्त से पी जाना चाहिये।

एकस्मिन्नेकमेव स्यात् कालभेदं द्वितीयकम् ।

द्वितीये समये तस्य सेवनं सुखदं भवेत् ।।

एक बार में एक अंजली भर ही पीना चाहिये। दूसरी अंजली भर दूसरे समय पीना चाहिये। इस प्रकार काढ़ा अच्छी प्रकार पिया जा सकेगा।

एतत् प्रोक्तं शुभं सत्यं सुखदं पुष्टिकारकम् ।

रोगापहं महादिव्यमौषधं ज्ञायतां हि तत् ।।

यह प्रयोग बहुत सुखद और अवश्य पुष्टि कारक है। रोग निवारक है। इस महौषधि को दिव्य औषधि समझो।

काले काले यदा चेच्छा जायते क्रियते हि तत् ।

अनेन कायसम्पत्तिः भूयो भूयो विवर्धते।।

समय समय पर जब इच्छा हो और आवश्यकता हो तब ऐसे प्रयोग किये जाते हैं। इससे कायसम्पत्ति दिनोंदिन बढ़ती जाती है।

गोरखवाणी :- अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन।

अरे अवधू योग धुनी धुनले, योग अगनि की ज्वाला।
तामें भस्म करे तू सब को अरे काह रहे तन काला।
एक ज्योति में मुंह से खँसे सब अंधियारा भागे।
अघट घटन्ता गोरख जोगी जानत जोग हि जावे।।
जोगी खड़खड़ खड़खड़ जोगी जोग की राह।
निर्मल काया कौवत निर्मल होय नसाव।।
सब कछु सब कछु सब कछु ताको भसम रमाव।
तो जोगी काया करें निर्मल कंचन ना साव।।

पहले बतलाया गया था कि इस मल की शुद्धि चार प्रकार से होती है। शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आत्मा के भाव को स्वच्छ करने के ढंग भी बता दिये गये थे। कभी-कभी बाधा व्यवधान के निवारण के लिये औषधि का लघु प्रकरण बता दिया गया है। जब कभी ४, ६ दिन तक विघ्न आ जाय और साधन न किया जा सके तो एक मुचकन्द का

फूल चबा लेना चाहिये और ऊपर से पानी पी लेना चाहिये। इसमें एक गुण है कि उसमें जोड़ने की ताकत है। क्रिया के व्यवधान को पूरा कर देने की ताकत है और साधक के चित्त में विक्षेप नहीं आने पाता। जब तबियत में आये कि गड़बड़ हो रहा है, क्या करना है, तब फूल खा लो। ग्रीष्मकाल में शंखपुष्पी के पी लेने पर फिर चार महीने ग्रीष्मकाल की गर्मी का कोई भी दोष नहीं आने पावेगा, समस्त शुक्रदोष नष्ट होकर शरीर को पुष्ट कर देगी। जब शीतकाल आ जाय, कफ-प्रकोप होने लगे और श्वासकाश होने लगे, तब नागरमोथा ला कर पीस कर क्वाथ बना लेना। तीन मात्रा बना लेना। दो बार ले लो न हो तो सोते समय ले लेना। परमहितकारी होगा। शीतकाल के सभी विकार नष्ट हो जावेंगे। काया कंचन हो जावेगी। साधक का कल्याण हो जावेगा।

२७-१२-६२ सायंकाल ।।१००।।

भद्रां भद्रवतीं देवीं भद्राक्षीं भद्रभाविनीम् ।

भद्रां भद्रेश्वरीं दिव्यां बन्दे तां भद्रकारिणीम् ।।

भद्रा, भद्रवती, भद्राक्षी, भद्रभाविनी, भद्रेश्वरी, भद्रकारिणी दिव्यरूपादेवी को मैं प्रणाम करता हूँ।

भद्रभावैकभावाम् तां भद्ररूपां च भद्रदाम् ।

भद्रकालीं च तां वन्दे सदा भद्रं करोतु सा।।

केवल भद्र भाव में स्थित, भद्ररूपा, भद्र देने वाली भद्र काली देवी की मैं वन्दना करता हूँ। वह देव मेरा भद्र (कल्याण) करे।

इति औषधि समानाधिकरण प्रकरणं शरीरपुष्टिकरणं स्वयं सरस्वत्याभिभाषितं साधकानां हिताय जायताम् ।

यह औषधि समानाधिकरण नामक प्रकरण जो पुष्टि कारक है और स्वयं श्री सरस्वती माँ ने कहा है, साधकों का कल्याण करने वाला बने।

२८-१२-६२ प्रातःकाल ।।१०१।।

नमामि तां महादेवीं सर्वदेवकरीं शुभाम् ।

आनन्दनेत्रनेत्राङ्गीं नेत्रज्ञां नेत्रधारिणीम् ।।

समस्त देवों की स्वरूपिणी, आनन्द भरे नेत्रों वाली, आनन्द भरे अंगों वाली नेत्रों का ज्ञान रखने वाली, दिव्य दृष्टि वाली उस महादेवी को मैं प्रणाम करता हूँ।

नेत्रां भगवतीं गीतां नेत्रशास्त्रपरांगताम् ।

नित्यानन्दसमायुक्तां वन्दे तां वागधीश्वरीम् ।।

नेत्र शास्त्र में पारंगत, नेत्रा भगवती को नमस्कार है जो नित्यानन्द समायुक्त है और वाणियों की अधीश्वरी है।

या प्रोक्ता टंकविद्या वै यत् प्रोक्तमगदं तथा।

भृशं मयि कृपां कृत्वा सरलां तां नमाम्यहम् ।।

जिस माँ ने मेरे ऊपर भारी कृपा करके मुझे टंक विद्या बताई और अगद प्रयोग बताया उस सरला और निश्छल माँ को मैं नमस्कार करता हूँ।

सरलां सरलास्वभावां सरलां चित्तकृपाविमण्डिताम् ।

सर्वां सरलात्मिकां तां ताराभिधां नौमि तां देवीम् ।।

सरल स्वभाव वाली, सरल, चित्त में कृपा से सुशोभित, सर्वतः सरल रूपिणी उस तारा नामक भगवती को मैं प्रणाम करता हूँ।

बालां चापि तथैव सद्य सुभगां बालेश्वरीं बालजाम् ,

बालाबाल बलाबलेति बलदां बालाक्षरीं बालिकाम् ।

बालाभावविमण्डितां बलवतीं बालेश्वरीं बालजाम् ,

बालानां कृतपुण्य-पुण्यमपरं विस्मृत्य सानन्दजाम् ।।

उसी भाँति उस बाला भगवती को भी नमस्कार है जो बालेश्वरी है, बालजा है, बाल अबाल, बलहीन सबको बल देने वाली है, बालाक्षरी है, बालिका है, बाल भवन से विमण्डित है, अपने बालकों के किये गये समस्त पुण्य अथवा अपुण्यों की विस्मृति करके उन्हें आनन्द और सुख देने वाली है।

तां वन्दे भगवतीं देवीं वालां बालार्कभासिताम् ।

या देवी सर्वदास्माकं कल्याणं कुरूते स्वयम् ।।

बाल सूर्य की भांति कान्तिमती उस बाला देवी को मैं प्रणाम करता हूँ जो हमारा सर्वदा स्वयं कल्याण किया करती है।

गोरखवाणी :- ॐ । अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। ॐ साधक ! सावधान। जिस मार्ग पर तुम चले हो, वह सरल भी है, कठिन भी है। लेकिन ज्ञानी होने के साथ साथ क्रियाओं और मुद्राओं का अभ्यासी भी हो जाता है और जब सभी क्रियायें बताई जाती हैं तब सब सरल हो जाता है। जो टंक विद्या है उसका महा प्रचार होता है। यह सब साधकों के हित के लिये है। जितनी मुद्रायें सरल से सरल थीं सब बता दी गई, जितनी सरलता से अपना मार्ग पार करो। इस लुप्त विद्या को पुनः प्राप्त करके जगत् का पुनः कल्याण होने वाला है। समय आ गया था तो तुमको साधकों के हित के लिये यह रहस्य बता दिया गया है। यह किसी पोथी पत्रा में नहीं है। यह तो गोरख की अपनी बात है। गोरख ने गुरू-परम्परा से प्राप्त करके संजो रखा है। गुप्त लुप्त विद्याओं का फिर से प्रचार होगा। एक बार फिर से साधु सन्यासियों की ओर संसारी गृहस्थधर्मियों का ध्यान खिंचेगा। एक बात ध्यान रख लेना।

साधक ! सावधान ! तुम्हें मेरे वचन सुनाई देंगे। मेरे वचन सुनाई देंगे। ठीक है। जो, बना, कहूँगा, नमो गुरू को आदेश। यह योग का मार्ग है। पहिले तो इस पर सब लोग आते नहीं। बड़े भाग से आते हैं। तुमको तो ऐसी बात बता दी गई है कि कोई भय नहीं है। जो भी कमी तुम्हारे भीतर रह जायेगी वह भी पूर्ति हो जायेगी। जब तुम अपने अभ्यास में बैठोगे, ध्यानावस्था में आ कर समाधि में लीन हो के सब कुछ जानने की ताकत अपने भीतर लाओगे, सब कुछ भीतर ही पा लोगे, सब कुछ भीतर ही पा जाओगे, ऐसी सुन्दर बेला में ऐसे सुन्दर पुण्य-काल में बड़ा वाला एक रूद्राक्ष का दाना, अच्छा रूद्राक्ष हो, सुन्दर हो, एक दाना लेना, जिसके बीच में छेद होगा। वैसे तो दिन की कोई बात नहीं नाथ की वाणी में सदा सब दिन एक हैं, फिर भी लोकाचार के अनुरूप एकादशी के दिन उस रूद्राक्ष को दूध में और गंगा जल में धोकर साधना के समय या तो उसे नाभि भाग में या पीठ के पीछे रीढ़ में हड्डी में किसी तागे से बाँध लेना। उसकी रगड़ से शरीर से एक प्रकार की धमनियों में, नसों में एक लहर सी दौड़ती रहेगी जो सब क्रियाओं और मुद्राओं को कभी रूकने नहीं देगी। यह भी ज्यादे दिन का काम नहीं है। चाहे तो साधना के समय बाँध लेना अन्य समय आसन में ही रख लेना। इसके लगने से क्या होगा यह बताया नहीं जा सकता है। यह एक गुरू की बात है। गुरू का तत्त्व है। इसे भी ११ दिन या २१ दिन धारण कर लेना, फिर चाहो तो इसे किसी

अन्य अंग में धारण कर सकते हो। यह ११ या २१ दिन में अपना काम करके दिखा देगा। चाहो तो साधना के स्थान पर रखे रखोगे तो ठीक रहेगा। यह सरल सहज बात है। इसी को गाँठ खोलना कहते हैं। इन छोटी बातों को जानना कठिन हो जाता है बात छोटी है, पर बहुत बड़ी है। इसलिये इस रहस्य को समझना, जानना, देखना और अनुभव करना, विरोध के तत्त्वों को साफ कर अपने मार्ग को साफ कर देना है और जब माँ भगवती की दया हो जायगी और जब माँ चाहेगी और माँ की मुझे देशना हो जायेगी तो फिर तुम अपनी सिद्धि का अनुभव करते हुये अपनी साधना में लगे हुए जुटे हुए रहो। इस शास्त्र के प्रचार के लिये भी पुनः कहा जायेगा। एक बार फिर अलख निरञ्जन का नाद जगत में गूंज जायेगा। सब का कल्याण हो जायेगा। योग का प्रचार हो जायेगा। गुरू गोरख की इच्छा पूरी हो जायेगी। अलख निरञ्जन। ॐ ।

२९-१२-६२ प्रातः ।।१०२।।

हरि ॐ तत्सत् ।

हरिताभावलितां सुवर्णकणिकां वर्णात्मिकां वर्णदाम् ।

सर्वानन्दमयीं च तां प्रकटितां आधारकामाश्रमे।।

हरित आभा से पूर्ण, सुवर्ण कान्ति वाली, वर्णात्मिका, वर्णदायिनी, सर्वानन्दमयी प्रकट रूप से साक्षात्कार में आनेवाली आधारिका भगवती का मैं आश्रय लेता हूँ।

आधारा या च वै विद्या मन्त्रभागेन शोधिता।

तस्यां मन्त्रस्य योगस्य स्वरूपं तेऽभिधास्यते।।

मन्त्र भाग से शोधित जो आधार विद्या है उसके अन्तर्गत मन्त्रों के प्रयोगों का स्वरूप अब मैं बताऊँगी।

मन्त्रः कीदृक् कथं तस्य प्रयोगः क्रियते भुवि।

का शक्तिश्च किमर्थं च एतत् सर्वं विधीयते।।

मन्त्र कैसा होता है ? उसका प्रयोग लोक में किस प्रकार किया जाता है ? मन्त्र की क्या शक्ति है ? मन्त्रों का प्रयोग किस प्रयोजन के लिये किया जाता है ?

योगेन च कृतेनैव किं भवेदिति चिन्तया।

तत् सर्वं प्रोच्यते गूढं आधाराधारविद्यया।।

मन्त्र योग से क्या होता है ? इस प्रकार की जिज्ञासा पर सब गूढ़ रहस्य आधार विद्या के आधार को लेकर बताया जाता है।

भाष्यते अथ का सा वा विद्या नैव च चिन्त्यताम् ।

ज्ञाता सा स्वल्पकालेन भविष्यति न संशयः।।

इस बात की चिन्ता न करो कि वह कौन सी विद्या है। अभी स्वल्पकाल में ही वह तुम्हें ज्ञात हो जायेगी, कोई सन्देह न करो।

आधारविद्यात्मक हेतु मूलकं आधाररूपेण विराजितं पुनः।

आधारमित्येव समस्ततत्त्वमाधारहीनं नहि तद्धि किञ्चित् ।।

इस जगत् में सब कुछ आधार विद्या से ही विराजित है। और आधार विद्या ही सब का कारण है। समस्त तत्त्व आधार मूलक है। आधारहीन कुछ भी नहीं है।

आधारसर्वात्मकधारधारः सर्वाधिकारश्च विशेषधारः।

शेषाधिभारस्तु महाधिभारः आधार विद्या तु सदा सधारः।।

आधार ही सब कुछ धारण करने वाला आधार है। आधार ने ही सब पर अधिकार किया हुआ है। आधार ही विशेष सारवान् है। ब्रह्माण्ड का भार वहन करने वाले विष्णु भी शेष नाग के आधार पर आधारित हैं। इसी भाँति आधार विद्या ही भोगों की आधारभूता है।

आधारत्वेन समागतां सर्वाधारभूतां आश्रयन्ते। सर्वत्र मन्त्राधारभूता आधारविद्या मन्त्रयोगात्मकरूपा।

सर्वाधारभूता आधार विद्या जो स्वयं प्राप्त हुई हो, उसी का सब साधक आश्रय लेते हैं। आधार विद्या समस्त मन्त्रों की आधारभूता और मन्त्र योगात्मक रूपा है।

ॐ तद्ज्ञानेन समस्तं ज्ञानं भवति। ज्ञानं च श्रुतं च सर्वमनुभूतिविषयं व्रजति।

उस विद्या के ज्ञान से समस्त ज्ञान हो जाता है। और साधक अनुभव भी करता है। सब कुछ ज्ञात और सुना हुआ अनुभूति में आ जाया करता है।

कथमनुभूतिः स्यात्? अनुभूतौ च किं भवति ?कथं वा अनुभूत्यधिकारः समुपलभ्यते? एतत् सर्वं अनुभवबोधात्मकतां, यत्किञ्चिद् ज्ञातं तदाधारविद्यायां निहितम्।

अनुभूति किस प्रकार हो ? अनुभूति में क्या होता है ? अनुभूति में साधक का अधिकार कैसे होता है ? यह सब कुछ अनुभव प्रधान आधार विद्या के भीतर समाविष्ट है।

तत् सर्वं प्रस्फुटितं भविष्यति। एषा सा आधारविद्या। यस्यां विद्यायां अनुभवनीयं सर्वं अनुभूयते। ज्ञातमनुभूयते अनुभवविषयाख्या एषा रहस्यात्मिका विद्या। तस्याश्च प्रकाशनं क्रियते। साधकानां जनानां च हितकाम्यया तत्सर्वं प्रोच्यते।

वह सब कुछ प्रकाश में आ जायेगा। यह वह आधार विद्या है जिसमें अनुभव करने योग्य सभी बातों का अनुभव हो जाता है। ज्ञात विषय भी अनुभूति में आ जाते हैं। यह अनुभूति विषय वाली रहस्यमयी विद्या है, उसे ही खोला जाता है। यह सब साधकों के हित के लिये किया जाता है।

२९-१२-६२ सायम् ।।१०३।।

हरि ॐ तत् सत् ।

प्रणमामि सदाधारामाधारां मानवोदयाम् ।

तां विद्यां सुभगां शुभां मानवैकहिते स्थिताम् ।।

मानव का उदय करने वाली, सत् की आधार विद्या को मैं प्रणाम करता हूँ। केवल मानवों के हित के लिये विद्यमान शुभ्र सुभग विद्या को नमस्कार है।

निःसृता या महाविद्या आगता जगती तले।

बहुकाले प्रसिद्धिं च सागता बहुसाधकैः।।

बहुत कालों में यह विद्या जगती तल में प्रकट हो कर आई थी और चिरकाल के बाद तक विद्या अनेक साधकों में प्रसिद्धि प्राप्त करने वाली बनी थी।

एवं गते च काले तु साधकाः विरतिं गताः।

तथा साधारविद्यापि लुप्ता गुप्ता न दृश्यते।।

किन्तु समय बीतने पर साधक लोग इससे विरक्त हो गये और यह आधार विद्या भी फिर लुप्त और गुप्त हो गई थी।

बहुकाले गते भूयः ये केचिद् ज्ञानिनोऽपि ते।

समस्तां तत्त्वमूलां तां ज्ञात्वा चात्मनि संस्थिता।।

बहुत समय तक ज्ञानी लोग इसके ज्ञाता भी रहे। अपने ही भीतर इस सारभूत विद्या को जानबूझ कर वे लोग छिपाते चले गये।

आश्चर्यं च महद् एतद् यद् ज्ञातं श्रुतमेव च।

वक्तुं सर्वेऽपि बुद्धिज्ञाः आधारं प्राप्नुवन्ति नो।।

आश्चर्य तो इस बात का है कि वे लोग जानते भी थे, इस विद्या के बारे में उपदेश भी लेते थे, फिर भी इस विद्या को किसी पर प्रकट करने का आधार वे लोग प्राप्त नहीं कर सके। (उन्हें कोई साधक माध्यम रूप में मिल नहीं पाया।)

आधारेण विना किञ्चिद् सुदृढंनैव जायते।

दृढत्वाभावमात्रेण कथं तत्र स्थितिर्भवेत् ।।

सुदृढ़ आधार के बिना कुछ काम होता नहीं है। आधार के दृढ़ न होने से फिर वह विद्या टिकी कैसे रह सकती है।

निराधारस्तु एकैव साधाराः सर्वप्राणिनः।

प्राणवन्तस्तु ये केचिद् सर्वे साधारमाश्रिताः।।

निराधार तत्त्व तो केवल एक ही है। अन्य सभी प्राणी आधारवान् हैं। जो कुछ भी प्राण में पूर्ण हैं, प्राणि वर्ग हैं, वे सभी आधार पर ही अवलम्बित हैं।

अत आधारज्ञानं च अनुभूतौ समाचरेत् ।

नानुभूतिस्तु यावद् वै तावदन्धस्य संस्थितिः।।

अतः उस आधार के ज्ञान को अपनी अनुभूति में ले आना चाहिये। जब तक कोई बात अनुभूति में नहीं आती है तब तक अन्धे की जैसी स्थिति रहती है।

श्रृणोति सर्वं स च चक्षुषागतं द्रष्टुं न शक्नोति बहुज्ञकोऽपि।

तत्त्वात्मकं वेत्ति न पण्डितोऽपि तथैव सर्वं बहुज्ञानभूतम्।।

अन्धा व्यक्ति बहरा होने पर भी सब कुछ सुनता तो है किन्तु आँखों से देख नहीं सकता है; उसी प्रकार पुस्तक-पण्डित बहुत सी बातें जानता तो है किन्तु यथार्थ तत्त्व को वह समझ नहीं पाता है।

यो वेत्ति यस्यात्मकतत्त्वभूतं तस्यानुभूतौ च यदा समग्रम् ।

आयाति ज्ञानं अनुकूलमेतद् तदा च साधारकसाधकस्य ॐ।।

आधार विद्या का साधक जो कुछ जानता है, उसके तत्त्व को भी समग्र अनुभूति में ले आता है। वही ज्ञान उसके अनुकूल बनता है।

ज्ञानिनः सन्ति लोकेऽस्मिन् अज्ञातास्तत्त्ववेदिनः।

बहवो वक्तुमिच्छन्ति ज्ञातुमिच्छन्ति वै तथा।।

इस लोक में बहुत से ज्ञानी लोग भी हैं और बहुत से तत्त्वेत्ता भी हैं, जिन्हें कोई जानता ही नहीं। कुछ लोग बतलाना भी चाहते हैं और कुछ लोग और अधिक जानना चाहते हैं।

किन्तु यदनुभूतौ च तेषां तत्राभिजायते।

तस्माद् व्यर्थमिदं सर्वं कृतं वाकृतमेव वा।।

किन्तु सब कुछ जानने पर भी जो बात उनकी अनुभूति में जाती है उतनी बात ही उनके काम की रहती है। शेष सब कुछ जाना सुना, पढ़ा अनुभूति हीन ज्ञान सब व्यर्थ हो जाता है।

शास्त्रं ज्ञानं पुनश्चैव अभ्यस्तं च पुनः पुनः।

भाषणं साधुरूपेण वक्तुं शक्नोति पण्डितः।।

शास्त्र और ज्ञान जिसका बार-बार अभ्यास किया गया हो उसे पण्डित व्यक्ति बड़ी अच्छी तरह कह सकता है, उस पर भाषण भी दे सकता है।

यदि चेन्न समापन्नं आधारं तत्त्वमूलकम् ।

तदा तु सफलं तस्य जीवितं नान्यथा भवेत् ।।

तत्त्व मूलक आधार की यदि प्राप्ति न की गई तो सारा उसका जीवन ही निष्फल हो जाता है।

यदि वा केवलं प्रोक्तं अनुभूतिं विना हितत् ।

किं तेन भाषणेनैव अनुभूतिं विना हि यत् ।।

यदि केवल कोई कहना ही जाने और वह अनुभूति के बिना ही रहे तो उस भाषण से क्या लाभ है, जिसमें बोलने वाले की अपनी अनुभूति नहीं है।

अत एव सदा सद्यः समस्ततत्त्वप्रबोधकम् ।

इदं ज्ञानं प्रवक्ष्यामि कल्याणं जायते भृशम् ।।

इसलिये मैं उस ज्ञान को बता रहा हूँ जिससे साथ ही साथ तत्त्व का बोध भी होता चला जावे। इस ज्ञान से तुम्हारा बहुत कल्याण होगा।

आधार ज्ञानेन प्रयाति चक्षुराधारमूलं सकलं चराचरम् ।

आधारहीना न व्रजन्ति सिद्धिं आधारहीनैश्च विराजते किम् ।।

आधार के ज्ञान से चक्षु प्राप्त होता है। यह समस्त चराचर आधार मूलक है। आधारहीन लोग सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकते हैं। आधार-हीन व्यक्तियों से कुछ भी शोभा नहीं होती है।

तस्मात् सदाभ्यासपरेण भाव्यं आधारज्ञानं च सदा विधेयम् ।

इसलिये साधक को चाहिये कि नित्य निरन्तर अभ्यास में लगा रहे और आधार का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये।

३०-१२-६२ प्रातःकाल ।।१०४।।

हरि ॐ तत् सत् । आधारभूतायै दिव्यज्ञानसम्पन्नायै नमस्तस्यै कुण्डलिन्यै।

आधारभूता दिव्यज्ञान सम्पन्ना उस कुण्डलिनी भगवती को नमस्कार है।

आधाराधेयभावेन सर्वमेतज्जगत् परम् ।

दृश्यते सर्वसम्पन्नं सुस्थिरं प्रतिभास्थिरम् ।। ॐ ।।

यह समस्त जगत् जो कुछ है वह आधार और आधेय भाव से स्थित है। इसीलिये यह दीखता है, सर्व सम्पन्न है, सुस्थिर है और बुद्धि में स्फुरित होता है।

आधारं सकलं प्रोक्तं यन्मूले मूलमास्थितम् ।

मूलमेव समालम्ब्य तस्माद्वै तद् दृढं कुरू।।

जो आधार सब का मूल है और जिसके मूल समाविष्ट हैं उसी मूल का अवलम्बन लेकर तुम उसे सुदृढ़ बनाओ।

शुभं तु रोहणं तत्र मूलाधारे दृढ़े सति।

मूलाधारः पुनर्ज्ञातो नानुभूतः क्वचिदपि।।

मूलाधार के दृढ़ होने पर ऊपर चढ़ना सरल और आसान होता है। मूलाधार का ज्ञान तो हो गया, किन्तु उसका अभी अनुभव नहीं हो पाया तो-

किं तेन ज्ञानमात्रेण अनुभूतिर्न विद्यते।

तस्माच्छृणु समाख्येयं वर्तते यन्महत् परम् ।।

उस ज्ञान मात्र से क्या लाभ है जहाँ अनुभूति न हो। इसलिये सुनलो, बड़ी श्रेष्ठ बात जो बताने योग्य है, उसे बताना है।

आधारतत्त्वं तत् सर्वं मूले मूले व्यवस्थितम् ।

आधारः सर्वमूलानामाधारस्तत्त्वज्ञानकम् ।।

सबके मूल में आधार तत्त्व विद्यमान है। समस्त मूलों का आधार भूत जो आधार है उसके तत्त्व का ज्ञान करना आवश्यक है।

मूले एव समापन्ने अनुभूतिर्विशिष्यते।

यदा वै जागृता शक्तिः कार्यं कुर्यात् स्वयं महत् ।।

मूल की समापत्ति होने पर अनुभूति की विशिष्टता होती है। जब शक्ति जागृता हो जाती है, तब वह स्वयं ही सब कार्य कराती रहती है।

तदा मूलोदयं भित्वा मूलाधारं दृढं कुरू।

एकेनैव च तत्त्वेन मूलाधारेण निश्चिते।।

इसलिये मूलाधार का भेदन करके तुम मूलाधार दृढ़ बनाओ। बस, एक मूलाधार रूप तत्त्व के निश्चित ज्ञान हो जाने पर-

ज्ञाने वशीकृते चैव सर्वं शुभफलं बलम् ।

भवेद् वै मूलज्ञानेन मूलं वस्तु महत् महत् ।। ॐ ।।

उसे वशीभूत कर लेने पर, मंगलकारी बल प्राप्त हो जाता है। मूल के ज्ञान से ही बड़ी बड़ी मूलभूत बातें ज्ञात होती रहती हैं।

गुदस्य लिङ्गभागस्य मध्ये ज्योतिर्मयं स्फुरत् ।

आस्थितं मूलभूतं तत् लघुरूपेण राजितम् ।।

गुदा और लिंगभाग के बीच में स्फुरित होता हुआ छोटा सा एक मूलभूत तत्त्व विराजमान रहता है।

यदा शक्तिः समायाता यदा सा कार्यकारिणी।

तदा तत्र महद् दिव्यं स्फुरणं जायते भृशम् ।।

जब शक्ति जागृत हो जाती है और कार्यकारिणी होती है, क्रियाशीला होती है, तब वहाँ पर एक महान् दिव्य ज्योति का बारबार स्फुरण होता है।

तस्यानुभूतिः प्रथमा महासन्तोष दायिनी।

तत्रैव रमते चित्तं स्वल्पकालं निवारयेत् ।।

उसी की प्रथम अनुभूति साधक को बड़ी सन्तोषदायिनी होती है। उस समय वहीं पर चित्त रम जाता है और फिर हट भी जाता है।

आधारस्तत्र, चित्तस्य सर्वशक्तिसमन्वितः।

जागृता शक्तिस्तत्रैव अनुभूतिं प्रयच्छति।।

वही सर्वशक्तिसमन्वित, चित्त का आधार है, जागृता शक्ति वहीं पर सर्वप्रथम साधक को अनुभूति प्रदान करती है।

एकलिङ्गमयं ज्ञातं ज्ञातं ज्ञानमये परम् ।। ॐ ।।

उस ज्योतिर्मय एक लिङ्ग का ज्ञान जब साधक की अनुभूति में आ जाता है तब–

स्फुरणं जायते ऊर्ध्वं प्रकाशः येन दृश्यते।

तदा ज्ञेयं महत्कार्यं कर्तुं शक्तिः समुद्यता।।

ऊपर की ओर उस ज्योति का स्फुरण होता है और उससे ऊपर की ओर प्रकाश दीखता है। तब समझना चाहिये कि शक्ति बहुत बड़ा कार्य करने को उद्यत हो गई है।

एतच्च लक्षणं पूर्वं साधनायां भविष्यति।

तदा तु साधनाकाले कृताभ्यासे शनैः शनैः।।

साधनाकाल में साधक को ऐसा प्रथम लक्षण प्रकट होगा, फिर अभ्यास करते करते धीरे धीरे वही ज्योतिरूपा–

दीर्घरूपं समादाय तत्र शक्तिः समुद्भवेत् ।

सैव शक्तिः सदाकाले शुभ्रा नर्तनतत्परा।।

वहां विशालरूप में शक्ति जागृत होती है। फिर शक्ति सर्वदा शुभ्ररूप में साधक के भीतर नर्तन करने में तत्पर बनी रहेगी।

मूलं च चालयेत् पश्चात् चञ्चच्चारू चरात्मके।

चरात्मके चरे मूले मूले वै स्फुरितं यदा।।

साधक को चाहिये कि स्फुरित होने वाले मूलाधार को भलीभांति कम्पित करता रहे। स्वयं स्फुरित होने वाले मूलाधार के चालन करने पर फिर स्वतः स्फुरण की प्रतीति जब होने लगे–

तदा वै स्फुरणं ग्राह्यं स्वतः ग्राह्यं भविष्यति।

एवं संसाध्य तत् पूर्वं मूलाराधनतत्परः।।

तब वह स्फुरण स्वयं ही स्वेच्छया पकड़ में आ जायेगा। इस प्रकार मूलाधार की सिद्धि में तत्पर हुआ साधक उसकी सिद्धि कर ले।

अनुभूतिं विधायैव परमानन्दमोदितः।

जायते साधकः सद्यः मूलाधरे दृढ़े सति।।

मूलाधार के दृढ़ होने पर साधक परम आनन्द में निमग्न हो जाता है और अनुभूति को प्राप्त करता रहता है।

अपरं कमलाकारं कमलास्थाननिर्मलम् ।

दलैः कैश्चित् समायुक्तश्चक्रं तत्र प्रजायते।।

तदनन्तर वहीं पर कमल के आकार का, कमल की भाँति निर्मल कुछ पंखुड़ियों से सुशोभित एक चक्र का आकार भी साधक को दिखाई पड़ता है।

तत्रैव च समाधाय मनः साधकसत्त्वमः।

कोणं कोणं महत्कोणं जित्वा भवति सार्थकः।।

साधारण साधक वहीं पर मन को समाहित कर लेता है और नाना प्रकार के कोण–प्रकोणों को विजित करके, चक्रों पर विजय प्राप्त करके शक्तिसम्पन्न समर्थ बन जाता है।

३०-१२-६२ सायंकाल ।।१०५।।

हरि ॐ तत् सत् ।।

अथ आधारविद्याधिगम समानाधिकरणे प्रथमाधारे प्रथमग्रन्थ्यनुभूत्युपदेशः। प्रथमावस्था। प्रथमाधारे साधकस्ययानुभूतिः सा विभिन्नरूपा। प्रथमं साधकैः पृथक पृथक अनुभूतिः क्रियते सा प्रोच्यते। इदं अनुभूत्यात्मकं ज्ञानम् ।। ॐ ।।

हरि ऊँ तत् सत् । अब आधारविद्याधिगम समानाधिकरण के अन्तर्गत प्रथमाधार में प्रथम ग्रन्थि की अनुभूति का उपदेश आरम्भ होता है। प्रथम आधार में साधक को जो अनुभूति होती है, वह सब को अलग अलग होती है। उसी पृथक पृथक अनुभूति को बताया जाता है। यह अनुभूत्यात्मक ज्ञान है।

साधकाः साधनायुक्ताः योगमार्ग रतास्तथा।
यान्ति ते पूर्णसाफल्यं पूर्णत्वं यान्ति निश्चितम् ।।

योग मार्ग में लगे हुए और साधन में तत्पर हुए साधक लोग निश्चय रूप से ही पूर्णत्व को प्राप्त होकर पूर्ण सफलता प्राप्त कर लेते हैं।

साधनासमये यस्तु साधको जपतत्परः।
मन्त्राभीष्टं स्वकीयं च सदोच्चारणमाचरेत् ।।

साधनाकाल में जो साधक जप करने में तत्पर रहे, उसे चाहिये कि वह अपने इष्ट मन्त्र, गुरू प्रदत्त मन्त्र का विधिपूर्वक उच्चारण करता रहे।

एकमेकं परिज्ञातं स्फुरणाक्षरसंज्ञकम् ।
मन्त्रोच्चारणभावेन उपांशुभावमास्थितः।।

मन्त्र का एक-एक अक्षर जो भीतर के प्रकाश में स्फुरित होता हो उसको देखते समझते हुए मौन भाव से भीतर ही भीतर विचारभाव में मन्त्र का जप करते रहना चाहिये।

यथा च मन्त्रमेतद्धि ऐं ह्रीं क्लीं प्रोच्यते परम् ।
अनुलोम विलोमाभ्यां तस्य कार्या परिस्तुतिः।।
क्लीं क्लीं ऐं इति रूपेण क्लीं मूले ह्रीं हृदिस्थिते।
ऐं कण्ठे प्रोच्यते यावत् तावत्तत् ध्रुवतां व्रजेत् ।।

जैसे दृष्टान्तरूप में मन्त्र जप की विधि बताई जाती है। "ऐं ह्रीं क्लीं"यह मन्त्र है। इस मन्त्र की आवृत्ति अनुलोम और विलोम रूप में आवृत्त करनी चाहिये। "क्लीं" के उच्चारण के समय मूलाधार में मन्त्राक्षर का ध्यान करो। "ह्रीं" के उच्चारण के समय हृदय में ध्यान करो और ऐं के उच्चारण के समय उस मन्त्र का ध्यान कण्ठ चक्र में करो। पुनः इसी भाँति ऐं का ध्यान कण्ठ में, ह्रीं का ध्यान हृदय चक्र में और क्लीं का ध्यान मूलाधार चक्र में करो। इसी प्रक्रिया को तब तक करते चले जाओ जब तक यह प्रक्रिया स्थिर रूप में स्वाभाविक न हो जाय। अनुलोम विलोम भाव से इस भाँति जप करने पर फिर जप स्वतः चलने लग पड़ेगा।

क्लीं मूले कालिका देवी कालरूपेण संस्थिता।
कालरात्रिर्महारात्रिस्तां विजित्य सुखी भवेत् ।।

मूलाधार में "क्लीं" की अधिष्ठात्री शक्ति कालिका देवी हैं, जो काल रूप में संस्थित हैं। वे कालरात्रि महारात्रि हैं। उस पर विजय प्राप्त करके साधक सुखी बन जाता है।

मूले सा च जिता काले चण्डमुण्डविनाशिनी।
चण्डस्तु चण्डिका ग्रन्थिस्तां जित्वा शान्तिमाप्नुयात् ।।

मूलाधार में चण्डमुण्ड विनाशिनी शक्ति को यथासमय वशीभूत करके साधक चण्ड रूप में स्थित चण्डिका ग्रन्थि पर विजय प्राप्त करके शान्ति प्राप्त कर लेता है।

एतत्तु वै सदा ज्ञानं सर्वेषां जायते शुभम् ।
अनुभूतिस्तु या तत्र तां वदामि श्रृणुष्व त्वम् ।।

सभी साधकों को सदा जो ज्ञान मूलाधार चक्र में हुआ करता है और जो सामान्यरूप में सब को अनुभूति होती है उसे मैं कहता हूँ, तुम उसे सुनो।

क्रियां कृत्वा च मुद्रां च यदा ध्याने रतं मनः।
तदा तत्र महज्ज्योतिः भासते च क्वचित् क्वचित् ।।

क्रिया और मुद्रा करके जब तुम्हारा मन ध्यान में लगने लगेगा तब मूलाधार में कभी-कभी साधक को महा ज्योति दिखाई पड़ती है।

किन्तु तत्रैव यत् प्रोक्तंस्फुरणं स्फुरणात्मकम् ।
ज्ञातव्यमनुभूतेश्च विषयं कुरू त्वं हि तत् ।।

वहीं पर स्फुरणात्मक तेजः पुंज अथवा कम्प पूर्ण मूलाधार के स्थान का जो पहिले जिक्र किया था उसकी अनुभूति साधक को करनी चाहिये और उसी पर मन लगाना चाहिये।

स्वयमेव तदा तत्र किञ्चिद् ज्ञायते स्वयम् ।
साधकः शक्तिसम्पन्नः तदाप्नोति मुदान्वितः।।

वहीं पर ध्यान लगाते हुए साधक को स्वयं ही जो ज्ञान होता जावे उसी ज्ञान के द्वारा साधक शक्ति सम्पन्न बन जाता है और आनन्द से भर जाता है।

तत्र संस्फुरणं किञ्चित् किञ्चिज्ज्योतिः प्रकाशनम् ।

किञ्चित् श्वेतं च पीतं च रक्तवर्णं कदापि च।।

मूलाधार में थोड़ा-थोड़ा प्रकाश का दर्शन होता है और वहां कम्पन भी होता है। वह प्रकाश कभी श्वेत होता है, कभी पीला होता है और कभी रक्त वर्ण का होता है।

दृश्यते अनुभूतेश्च पथमायाति सत्वरम् ।

कदाचित् कोणरूपेण त्रिकोणं च त्रिकं त्रिकम् ।।

इस प्रकार वहाँ पर प्रकाश की अनुभूति होती है और कभी-कभी साधक को वहाँ पर प्रकाश का त्रिकोण, चतुष्कोण, षट्कोण आदि के दर्शन होते हैं।

तत्र एकं महल्लिङ्गः साधकः साधनारतः।

विलोकयति तल्लिङ्गं सुस्थिरं मूलभागके।।

मूलाधार में ही एक सुस्थिर ज्योति पुञ्ज से बना एक महालिंग के दर्शन साधक को हुआ करते हैं।

इति कृत्वानुभूतिं च प्रसन्नः सर्वदा महा।

साधकः सुस्थिरो भूत्वा आधारसहितोऽपि सः।।

ऐसी अनुभूति करके साधक सदा प्रसन्न रहता है, और साधक आधार में ध्यान लगा कर सुस्थिर बन जाता है।

यदि वा तादृशं ज्ञानमनुभूतिश्च जायते।

नैवं प्रकारं तत्स्वल्पं अन्यद् वै जायते महत् ।।

यदि उपर्युक्त बताई अनुभूति साधक को होती है तो बहुत सुन्दर है। कभी-कभी कई साधकों को थोड़ा बहुत अन्य प्रकार के भी अनुभव होते हैं।

केचित् पश्यन्ति वै तत्र केचित् पश्यन्ति नैव च।

शून्यमेवापरे तत्र केवलं शून्यकारकम् ।।

किसी को वहाँ पर प्रकाशपुंज दीखता है। किसी को नहीं भी दीखता है, कोई साधक वहाँ पर शून्य ही देखते हैं और वे भी स्वयं शून्याकार बन जाते हैं, विचारहीन बन जाते हैं।

शून्यं शून्यं महाशून्यं पश्चाज्ज्योतिः समन्वितम् ।

क्वचिद्रेखासमाकारं एकं वस्तुं समाहितः।।

इस भाँति शून्य, महाशून्य की अनुभूति के पश्चात् फिर वह शून्य ज्योति जाता है। वह ज्योति फिर कभी कभी एक रेखा का आकार ले लेती है। साधक में समाहित रहता है।

तत्र तत् सद्यः वै दृष्ट्वा अनुभूतिं प्रयाति वै।

सा रेखा शुभ्रवर्णाच शुद्धज्योतिः सुमण्डिता।।

उस रेखा को देख कर साधक यह अनुभूति करता है कि वह रेखा कभी ... की हो रही है और कभी ज्योति के आकार में सुशोभित है।

तदैव सात्मभावेन रेखां पश्यति पश्यति।

तदैव च चिरात्तत्र आनन्दं लभते भृशम् ।।

तभी उस रेखा को देखते देखते साधक का तादात्म्य भाव हो जाता है उसी में साधक अपार आनन्द प्राप्त कर लेता है।

एतद्वै सर्वसम्पन्नः साधको भूतिभूषितः।

अपरः साधको यस्तु गुदमूले क्वचित् क्वचित् ।।

इस प्रकार के उपर्युक्त अनुभव से साधक शक्तिसम्पन्न बनता है और अनुभूति से पूर्ण बनता है। कई साधक गुदामूल में कभी कभी-

केवलं स्फुरणं विद्यात् तदैव लिङ्गरूपकम् ।

केवलं जायते शुद्धं ज्योतिस्तत्त्वं परात्परम् ।।

केवल स्फुरण का अनुभव करते हैं और वहीं से परात्पर ज्योतिलिंग को देखते हैं और वह ज्योतिस्तत्त्व शुद्ध शुभ्रवर्ण वाली होती है।

ज्ञायतां दृढतारूप आधारः शक्तिमास्थितः।

एका शक्तिः समुद्भूता या च तत्त्वप्रकाशिनी।।

यदि उपुर्यक्त अनुभव साधक को होने लगे तो समझना चाहिए कि आधार में दृढ़ता आने लगी है और एक शक्ति जागृत होकर तत्त्व के प्रकाशन में तत्पर हो चली है।

शनैः शनैः सदा सैव अनुभूतिं परोचिताम् ।

कारयिष्यति तत्रैव न च शंकां कुरूष्व त्वम् ।। ॐ ।।

इसलिये तुम कोई शंका-सन्देह न करो। वह शक्ति स्वयं तुम्हें परात्पर की अनुभूति तक धीरे-धीरे अपने आप लेती चली जायेगी।

३१-१२-६२ प्रातःकाल ।।१०६।।

नमस्तेऽस्तु भगवत्यै जागृतस्वरूपायै कुण्डलिन्यै।

जागृत स्वरूपा कुण्डलिनी भगवती को नमस्कार है।

आधारः परमः प्रियस्तनुभृतां आधारलोकस्थितिः,

आधारेण जगत् सकलकं सम्यक् धृतं दृश्यते।

एतत् सर्वमिदं समासविहितं साधाररूपेण तत्,

सर्वं सुस्थिरमेव याति विपुलं दृष्टे पुरः सार्थकम् ।। ॐ ।।

देहधारियों के लिये आधार ही परमप्रिय होता है। आधार के कारण ही लोक की स्थिति है। यह सारा जगत् आधार के कारण ही भली भाँति टिका हुआ है। जब सभी कुछ दृश्यमान आधार रूप से ही सामान्यतया व्याप्त है तब, उसी आधार को सुदृढ़ बनाकर प्रत्यक्ष देख लिया जाय तो उस आधार की सार्थकता होगी।

पुरा प्रोक्तं अनुभूतिश्चिद्विशिष्टा शक्तिः, चिद्बोधिका शक्तिः, चिदानन्ददा शक्तिः। कथितं च यदा चिद्विशिष्टा शक्तिः प्रबुद्धा भवति, जागृता च भवति, तदा सा ज्ञानवती क्रियावती च भवति। ज्ञानवती क्रियावती सा उभयरुपेण युक्ता अनुभूतिः। प्रोक्तंच यथाः-

पहिले कहा गया है कि अनुभूति चिद्विशिष्टा शक्ति है, चिद्बोधिका शक्ति है और चिदानन्दरुपा शक्ति है। यह भी कहा गया है कि जब वह चिद्विशिष्टा शक्ति प्रबुद्ध होकर जागृता होती है तब वह ज्ञानवती और क्रियावती दोनों रुपों से युक्त होकर अनुभूति बनती है। जैसे कहा भी हैः-

प्रत्यग्भासा मंत्रबीजरुपा परमा शक्तिः इति पूर्वं वर्णितम् । तत्र यद् मंत्रीबीजरुपा चिद्विशिष्टा शक्तिः दृश्यते तस्याः वर्णनं क्रियते।

परमा शक्ति साधक के भीतर भासित होने वाली मंत्रबीज रुपा होती है यह पहिले कहा गया है। जो मन्त्रबीजरुपा चिद्विशिष्टा शक्ति है और जो साधक को दीखती है उसका यहां वर्णन किया जाता है।

मंत्रविषये सर्वे जानन्ति, न जानन्ति वा, एतत्तु सुनिश्चितं यत् मंत्रव्यूहः मंत्रकायसम्पत् स्वतः सिद्धं, अथवा प्रदत्तं अथवा अभ्यस्तं अथवा परम्परागतम् ।

मंत्रों के विषय में सभी जानते हैं या नहीं भी जानते हैं, किन्तु यह तो सुनिश्चित ही है कि मंत्रव्यूह, मंत्रकाय सम्पदा किन्हीं साधकों को स्वतः सिद्ध होती है अथवा गुरु प्रदत्त होती है या फिर अभ्यस्त होती है अथवा परम्परा से प्राप्त होती है।

मंत्ररुपं मंत्राक्षररुपं मंत्रबीजकं वा एतत् सर्वं कुलाकुलाकारात्मिकं ज्ञानं ज्ञात्वा साधकः सिद्धो भवति, सफलो भवति, तदपि बहुत्वेन व्याख्यातम् ।

मंत्ररुप को, मंत्राक्षररुप को, मंत्रबीज को जो कुलात्मक अकुलात्मक ज्ञान कराने वाला होता है उसे जानकर साधक सिद्ध हो जाता है, सफल हो जाता है। इस बात की भी व्याख्या पहिले बहुत स्थलों पर की जा चुकी है।

मंत्राक्षरं मंत्ररुपं मंत्रबीजरुपं क्रियात्मकं इत्यपि प्रोक्तम् ।।

मंत्राक्षर, मंत्रस्वरुप और मंत्र बीजरुप क्रियात्मक होता है यह भी बता ही दिया गया है।

यदा मंत्रव्यूहः सिद्धशक्तिसमन्वितो भवति तदैव चैतन्यत्वमायाति। यस्मात्तज्जापमात्रेण क्रियासिद्धिः कामदा भवति, इति व्याखयातम् ।

जब मंत्र व्यूह सिद्ध शक्तिसमन्वित होता है तभी उसमें चैतन्यता आती है। इसलिए उसके जपमात्र से क्रियासिद्धि होकर कामना पूर्ति होती है, यह भी बता दिया गया है।

अधुना एतदेव प्रोच्यते यत् पूर्वमेव निगदितमेका आधार-भूता, अपराऽपि आधारभूता एव। एके अनेके सर्वे समायान्ति संश्लिष्टाः भवन्ति, संयुक्तास्तदा चिद्विशिष्टा शक्तिः ज्ञानवती क्रियावती भवति।

यहां पर केवल इतना ही बताना है कि ज्ञानवती और क्रियावती दोनों ही शक्तियां आधार भूता होती हैं। एक से अनेकों प्रकार की शक्तियां मिलकर और वे चिद्विशिष्ट होती हुई ज्ञानवती तथा क्रियावती हो जाती हैं।

शक्तिः सदा ज्ञानवती क्रियावती भूत्वा सर्वबोधमयं ज्ञानं साधाकोऽपि यत्किञ्चिद् ज्ञातं श्रुतं अभ्यस्तं तत्सर्वं अनुभूति-विषयमानयति।।

वह एक ही शक्ति ज्ञानवती एवं क्रियावती होकर साधक को बोधमय ज्ञान देती है। साधक का भी जो कुछ सुना, जाना और अभ्यस्त होता है उसे वह अपनी अनुभूति में ले आता है।

ज्ञातं चैव श्रुतं चैव क्रियारुपेण यत् कृतम् ।

तत् सर्वं साधकेनैव अनुभूतिसमन्वितम् ।।

जो कुछ जाना हुआ हो, जो कुछ सुना हो और क्रियारुप में जो कुछ किया हो वह सब कुछ साधक की अनुभूति से समन्वित बनता है।

क्रियते मंत्रज्ञानं च स्वतः सिद्धं परस्य च।

समुद्दिष्टं च प्रोक्तंच भाषितं बोधितं तथा।।

साधक मंत्र का ज्ञान या तो स्वतः सिद्ध प्राप्त करता है, या दूसरे के द्वारा सिद्ध मंत्र का अभ्यास करके करता है या गुरुद्वारा प्रदत्त या कहा हुआ हो उसके जप से प्राप्त करता है।

एतत् सर्वमनुभूतिविषयमनुव्रजति। तस्मादनुभूतिं कुरु। या च चिद्विशिष्टा ज्ञानवती क्रियावती शक्तिः सा च स्वयं बोधं गमयति।

सभी प्रकार के वे मंत्र साधक की अनुभूति में आते हैं। इसलिए अनुभूति करो। जो शक्ति चिद्विशिष्टा होकर ज्ञानवती क्रियावती बनती है, वह स्वयं ही साधक को बोध करा देती है।

परामपरां च संचितां कृत्वा शक्तिं तत्रैव आधाररूपेण स्थापयति। तस्मादाधारभूता अनुभूतिस्वरूपा या विद्या आधाररूपेण ख्यातिं गता, गमयति च सा आधारविद्या सैव ध्येया सैव ज्ञेया सैव मननीया।

परा और अपरा सभी शक्तियों को समेट कर वह एक शक्ति आधार रुप में स्थापित कर देती है। अतः अनुभूतिस्वरूपा आधार भूता जो विद्या आधार नाम से प्रसिद्ध हुई है और होगी उसी विद्या में मन लगाना चाहिए वही जाननी चाहिए और उसी का मनन करना चाहिए।

तस्यामेव विद्यायां साफल्यं सुस्थिरं भवति। अत एव अस्या एव विद्यायाः अनुभूतिसमागमत्वेन प्रत्याभासः। यत् पूर्वं प्रोक्तम्-

उसी विद्या से सफलता सुस्थिर होती है इसलिये इसी विद्या की अनुभूति प्राप्त करके साधक को शक्ति का प्रत्याभास होता है।

प्रत्याभासः परब्रह्मणो भासः। परप्रत्ययान्वितिः परप्रत्ययस्यैव प्रतीतिः।

पर-ब्रह्म का प्रकाश होना प्रत्याभास कहलाता है। परब्रह्म की प्रतीति को ही परप्रत्ययान्विति कहा जाता है।

तदैव परमशक्तिसम्पन्नः साधकः महेश्वरं प्रति गत्वा तत्रैव प्रष्टुं शक्नोति च ज्ञ इत्येवाधारमूलेन स्वरुपेण।।

तभी परमशक्ति सम्पन्न साधक महेश्वर के समीप पहुंच कर वहीं पर ज्ञाता के आधारभूत स्वरूप द्वारा सब कुछ पूछ सकता है।

३१-१२-६२ सायम्।।१०७।।

आधारभूतायै परमोपकारकायै नमोनमः ।। ॐ ।।

परमोपकारिणी आधारभूता विद्या को बारम्बार नमस्कार है।

क्रियायां या सदाधारा महाधारस्तथैव व।
मुद्राणां च सदाधारा आधारा सा शुभा मता।।

क्रिया में जो सदा आधार रूप है, वही महाधार है। जो मुद्राओं की सदा आधार रूप है, वही आधारशक्ति शुभदायक मानी गई है।

कल्याणं कुरूतां लोके आधारज्ञानिना सदा।
आधारशक्तिसम्पन्ना आधारं वै तथा कुरू।।

आधार के ज्ञाता साधकों का वह शक्ति कल्याण करें। आधार शक्ति से सम्पन्न साधक को चाहिये कि वह अपना आधार ठीक बनाले।

आधारभूता च महामहत्त्वदा आधारमात्रेण परापरान्विता।
आधारयुक्ता चा सदा सरस्वती आधार हीना न भवन्ति सार्थकाः।।

बहुत महत्त्व प्रदान करने वाली आधार भूता शक्ति आधारमात्र से पर शिव से समन्वित कर देती है। सरस्वती मां भी आधार युक्ता है। आधारहीन साधक कभी सफल नहीं होते।

आधारज्ञानमनुभूतिजनकं जायते। अस्यां विद्यायां अनुभूतेः प्रधानता च। अनुभूतिः पराशक्तिः ज्ञानवती क्रियावती च आधारं पुष्णाति।।

आधार का ज्ञान अनुभूति जनक बनता है। इसी विद्या में अनुभूति की प्रधानता है। पराशक्ति रूपा अनुभूति ज्ञानवती और क्रियावती बन कर आधार का पोषण करती है।

आधार-संपोषणेन स्वमेवागतानां प्रोच्चरितानां वा मन्त्राणां देवता स्वरूपं तत् परस्परं प्रतीतं भवति।

आधार के परिपुष्ट हो जाने पर स्वयं आगत या उच्चरित मन्त्रों के देवतास्वरूपों की परस्पर प्रतीति होने लगती है।

ये केचिदाधार-विद्या-ज्ञातारः सन्ति ते साधकाः मन्त्रविद्या पारंगता- भवन्ति। मन्त्रस्वरूपं जानन्ति। तेषां विनियोगं जानन्ति। देवतां च जानन्ति। देवता-शक्तिं च जानन्ति। यस्य मन्त्रस्य यो देवता या शक्तिः, यच्च कार्यं, या सिद्धिः, येन प्रकारेण चानुभूयते, तत् सर्वमाधारविद्याधारत्वेन ज्ञायते।। ॐ ।।

जो साधक आधार विद्या के ज्ञाता होते हैं वे मन्त्र विद्या में पारंगत हो जाते हैं। वे मन्त्र के स्वरूप को जानते हैं। जिस मन्त्र की जो शक्ति और देवता होता है, जो मन्त्र का कार्य और सिद्धि होती है और जिस भांति अनुभूति होती है, वह सब आधार विद्या के आधार पर ही ज्ञान होता है।

मन्त्राणां च महाशक्तिः शक्त्या कार्यं महतत्पुनः।
देवताः शक्तिसम्पन्नाः स्वरूपं दर्शयन्ति च।।

मन्त्रों में महान् शक्ति होती है, शक्ति से बहुत बड़ा कार्य होता है। देवता शक्ति सम्पन्न होते हैं और वे अपना स्वरूप साधक को प्रकट कर देते हैं।

सर्वं तत्र महद्ज्ञानं अनुभूतिपरं भवेत् ।
कस्य देवस्य का शक्तिः पुरतः प्रस्फुटा भवेत् ।।

अनुभूति पूर्ण जो भी महत्त्वपूर्ण ज्ञान होता है, किस देवता की क्या शक्ति है, वह सब साधक के सम्मुख स्पष्ट हो जाता है।

यदा वै साधकः श्रेष्ठः मन्त्रजापं करोत्युत।
जापमात्रेण सा सद्यः पुर आयाति देवता।।

जब उत्तम साधक मन्त्र जाप करता है, तब जप मात्र से उस मन्त्र का देवता शीघ्र ही सामने उपस्थित हो जाता है।

देवता तु समागत्य स्वशक्ति स्वस्वरूपकम् ।
स्वकार्यं कार्यसिद्धिं च तस्मै सर्वं प्रभासते।।

देवता स्वयं सामने आकर अपनी शक्ति, अपना कार्य और अपनी सिद्धि सब कुछ साधक के सम्मुख प्रकट कर देता है।

एवं ज्ञात्वा महाधीरः साधकः शक्तिमाप्नुयात् ।
यदि नैव समायाति देवता मन्त्रसंस्थिता।।

इसप्रकार समझ कर महाधीर साधक शक्ति प्राप्त कर लेता है। जप करने पर भी यदि उस मन्त्र का देवता सामने प्रकट नहीं होता है तो–

तदा तु निष्फलं ज्ञेयं नाधारः दृढ़तां गतः।।

सब कुछ जप क्रिया निष्फल हो जाती है, तब जानना चाहिये कि आधार में दृढ़ता नहीं है।

आधारमूले च दृढे कृते सति मन्त्रस्य रूपं स्वयमेव संस्फुटम् ।
पुरः प्रयाति समुपस्थितंच तत् महत् परं सिद्धिप्रदं प्रजायते।।

मूलभूत आधार को दृढ़ बनाने पर मन्त्र का रूप स्वयं स्फुरित हो जाता है और वह सामने प्रकट होकर बड़ी बड़ी सिद्धियों को देनेवाला हो जाता है।

आधारविद्यायामेतत् सर्वमनुभूयते। एवं प्रकारेण बोधमयं सर्वं अनुभूतिमयं च जायते, या च समापन्ना समाधिता, समाराधिता, सुप्रसन्ना प्रसादमुखी चिद्विशिष्टा शक्तिः साधकेन समाराधिता समासादिता सा शक्तिस्तदैव साधकस्य मार्गे बलवती भवति।।

आधार विद्या में यह सभी अनुभव में आता है। इस प्रकार यह सब अनुभूतिमय और बोधमय होता है। यह चिद्विशिष्टा शक्ति साधक द्वारा समाराधित होकर, वशीभूत होकर, सुप्रसन्न होकर साधक के मार्ग में बलवती बनती है।

यत्र यत्र चक्राधारं विद्यते तत्र तत्र सुगमतया गतिं विधाय साधनामग्रे प्रसारयति। यथा च निदर्शनं, मूलेन स्वाधिष्ठानान्मणिपूरे यत्र तेजः स्वरूपं विराजते, अग्निस्वरूपं, अग्निदेवता, तत्रैव ज्योतिः स्वरूपेण तिष्ठति, कथं तद् ज्ञायते। कथं च अनुभूतिः क्रियते। इति सर्वं साधकः साधना काले एव जानाति।

जहाँ जहाँ चक्रों का आधार है वहाँ वहाँ सुगमता से गति करती हुई शक्ति साधना को आगे बढ़ाती रहती है, जैसे- मूलाधार से स्वाधिष्ठान पार करके मणिपूर में एक ज्योति विराजमान रहती है। अग्निका रूप, अग्निदेवता वहाँ पर ज्योति रूप में विराजित रहते हैं। यह कैसे जाना जाय ? कैसे उसकी अनुभूति हो ? यह सब साधनाकाल में साधक स्वय जान लेता है।

तदैव क्रिया आधारत्वेन सफला भवति। तल्लक्षणं तेनैव विज्ञेयम् । यदा च चक्रस्य चक्राणां च भेदनं भवति तदा यत्किञ्चित् प्राप्तं, यद्दर्शितं वा तत्सर्वं पुरतः प्रस्फुरति। दर्शनत्वे च जायते तत्राग्निकुण्डे प्रज्वलितं, बहु भासितं स्वरूपं दृश्यते।।

आधार रूप में तभी क्रिया सफल होती है। उसकी पहिचान यही है कि जब जिस चक्र का भेदन हो रहा हो तब जो कुछ साधक देखता है और नई बात मालूम होती है वह सब सामने आ जाती है। साधक देखता है कि मणिपूर में एक अग्नि कुण्ड प्रज्वलित हो कर बड़ा प्रकाश फैला कर अपना स्वरूप दिखा रहा है।

कदाचिदुष्णत्वेन अग्निरूपेण एवं ज्ञानं भवति। यत् सर्वत्र शरीरे प्रज्वलिता वह्नि, मामात्मसात् करोति। प्रज्वलिता सा ज्वाला ज्वालामालाकुला सर्वमदीयं विग्रहं मय्येव समाप्नोति।।

मन्त्राणां च महाशक्तिः शक्त्या कार्यं महतत्पुनः।

देवताः शक्तिसम्पन्नाः स्वरूपं दर्शयन्ति च।।

मन्त्रों में महान् शक्ति होती है, शक्ति से बहुत बड़ा कार्य होता है। देवता शक्ति सम्पन्न होते हैं और वे अपना स्वरूप साधक को प्रकट कर देते हैं।

सर्वं तत्र महद्ज्ञानं अनुभूतिपरं भवेत् ।

कस्य देवस्य का शक्तिः पुरतः प्रस्फुटा भवेत् ।।

अनुभूति पूर्ण जो भी महत्त्वपूर्ण ज्ञान होता है, किस देवता की क्या शक्ति है, वह सब साधक के सम्मुख स्पष्ट हो जाता है।

यदा वै साधकः श्रेष्ठः मन्त्रजापं करोत्युत।

जापमात्रेण सा सद्यः पुर आयाति देवता।।

जब उत्तम साधक मन्त्र जाप करता है, तब जप मात्र से उस मन्त्र का देवता शीघ्र ही सामने उपस्थित हो जाता है।

देवता तु समागत्य स्वशक्तिं स्वस्वरूपकम् ।

स्वकार्यं कार्यसिद्धिं च तस्मै सर्वं प्रभासते।।

देवता स्वयं सामने आकर अपनी शक्ति, अपना कार्य और अपनी सिद्धि सब कुछ साधक के सम्मुख प्रकट कर देता है।

एवं ज्ञात्वा महाधीरः साधकः शक्तिमाप्नुयात् ।

यदि नैव समायाति देवता मन्त्रसंस्थिता।।

इसप्रकार समझ कर महाधीर साधक शक्ति प्राप्त कर लेता है। जप करने पर भी यदि उस मन्त्र का देवता सामने प्रकट नहीं होता है तो-

तदा तु निष्फलं ज्ञेयं नाधारः दृढतां गतः।।

सब कुछ जप क्रिया निष्फल हो जाती है, तब जानना चाहिये कि आधार में दृढ़ता नहीं है।

आधारमूले च दृढे कृते सति मन्त्रस्य रूपं स्वयमेव संस्फुटम् ।

पुरः प्रयाति समुपस्थितंच तत् महत् परं सिद्धिप्रदं प्रजायते।।

मूलभूत आधार को दृढ़ बनाने पर मन्त्र का रूप स्वयं स्फुरित हो जाता है और वह सामने प्रकट होकर बड़ी बड़ी सिद्धियों को देनेवाला हो जाता है।

आधारविद्यायामेतत् सर्वमनुभूयते। एवं प्रकारेण बोधमयं सर्वं अनुभूतिमयं च जायते, या च समापन्ना समाधिता, समाराधिता, सुप्रसन्ना प्रसादमुखी चिद्विशिष्टा शक्तिः साधकेन समाराधिता समासादिता सा शक्तिस्तदैव साधकस्य मार्गे बलवती भवति।।

आधार विद्या में यह सभी अनुभव में आता है। इस प्रकार यह सब अनुभूतिमय और बोधमय होता है। वह चिद्विशिष्टा शक्ति साधक द्वारा समाराधित होकर, वशीभूत होकर, सुप्रसन्न होकर साधक के मार्ग में बलवती बनती है।

यत्र यत्र चक्राधारं विद्यते तत्र तत्र सुगमतया गतिं विधाय साधनामग्रे प्रसारयति। यथा च निदर्शनं, मूलेन स्वाधिष्ठानान्मणिपूरे यत्र तेजः स्वरूपं विराजते, अग्निस्वरूपं, अग्निदेवता, तत्रैव ज्योतिः स्वरूपेण तिष्ठति, कथं तद् ज्ञायते। कथं च अनुभूतिः क्रियते। इति सर्वं साधकः साधना काले एव जानाति।

जहाँ जहाँ चक्रों का आधार है वहाँ वहाँ सुगमता से गति करती हुई शक्ति साधना को आगे बढ़ाती रहती है, जैसे- मूलाधार से स्वाधिष्ठान पार करके मणिपूर में एक ज्योति विराजमान रहती है। अग्निका रूप, अग्निदेवता वहीं पर ज्योति रूप में विराजित रहते हैं। यह कैसे जाना जाय ? कैसे उसकी अनुभूति हो ? यह सब साधनाकाल में साधक स्वय जान लेता है।

तदैव क्रिया आधारत्वेन सफला भवति। तल्लक्षणं तेनैव विज्ञेयम् । यदा च चक्रस्य चक्राणां च भेदनं भवति तदा यत्किञ्चित् प्राप्तं, यद्दर्शितं वा तत्सर्वं पुरतः प्रस्फुरति। दर्शनत्वे च जायते तत्राग्निकुण्डे प्रज्वलितं, बहु भासितं स्वरूपं दृश्यते।।

आधार रूप में तभी क्रिया सफल होती है। उसकी पहिचान यही है कि जब जिस चक्र का भेदन हो रहा हो तब जो कुछ साधक देखता है और नई बात मालूम होती है वह सब सामने आ जाती है। साधक देखता है कि मणिपूर में एक अग्नि कुण्ड प्रज्वलित हो कर बड़ा प्रकाश फैला कर अपना स्वरूप दिखा रहा है।

कदाचिदुष्णत्वेन अग्निरूपेण एवं ज्ञानं भवति। यत् सर्वत्र शरीरे प्रज्वलिता वह्नि, मामात्मसात् करोति। प्रज्वलिता सा ज्वाला ज्वालामालाकुला सर्वमदीयं विग्रहं मय्येव समाप्नोति।।

किसी साधक को गर्मी के अनुभव से अग्नि का रूप दिखता है। उसे लगता है कि चारों ओर शरीर में जलती हुई अग्नि की ऊष्णता मुझे डुबोये डालती है और वह जलती हुई ज्वाला की माला मेरे सारे शरीर में व्याप्त होकर मेरे भीतर ही सिमट गई है।

एतदनुभूतिविषयकं साधकस्य समक्षं प्रादुर्भवति। यदित्थं प्रकारकं ज्ञानं नैवायाति, न च ज्योतिः स्वरूपमग्नि स्फुलिङ्ग ज्वालामयस्वरूपं न दृश्यते, नानुभूयते वा सर्वमुष्णत्वं, तदा सर्वं निष्फलं ज्ञेयम् । अपरं च अस्मिन् मणिपूरके अपरमपि अनुभूति विषयकं ज्ञानं प्रत्यक्षमनुभूयते, यथा वा।

इस प्रकार का अनुभव साधक के सम्मुख प्रकट होता है। यदि ऐसा अनुभव में नहीं आता है, न ही ज्योति के कण या अग्नि के कण या ज्वाला का स्वरूप दीखता है और न ही शरीर में उष्णता का अनुभव होता है, तो समझो कि सब निष्फलता है। मणिपूर में एक अन्य प्रकार का भी अनुभव प्रत्यक्ष में आता है। वह इस प्रकार है।

भेदनं मणिपूरस्य शक्त्या तच्च कृतं महत् ।

तदा ज्वालामयी ज्वाला एका ज्वाला समुद्गता।।

शक्ति मणिपूर का भेदन करके एक बहुत बड़ा कार्य कर देती है, तब एक ज्वालामयी अग्नि की ज्वाला उठती हुई दिखाई पड़ती है।

दृश्यते पुरत एवं कदाचिच्च क्वचित् क्वचित् ।

केवलमुष्णताज्ञानमुष्णत्वं जायते क्वचित् ।।

साधक को कभी-कभी ऐसा दीखता है और कभी-कभी केवल शरीर में गर्मी का भाव प्रतीत होता है। साधक का शरीर गरम हो जाता है।

कदाचिदेकं कणमात्रकं क्वचित् क्वचिद्बहुत्वं बहुलासकत्वम् ।

क्वचिच्च स्वल्पं परिकम्पनं क्वचित् क्वचिच्च नाभौ

स्फुरणं क्वचित् क्वचित् ।।

कभी अग्नि का एक कण दीखता है, कहीं-कहीं बहुत-सी चिनगारियाँ दीखती हैं। कभी-कभी कंपकंपी आती है और कभी-कभी नाभि में स्फुरण होने लगता है।

कदाचित् केवलं शून्यं श्वासप्रश्वासहीनकम् ।

प्राणसंरोधनं कृत्वा नाभिचक्रं विराजते।।

किसी साधक को केवल शून्यभाव रहता है और उसमें श्वासप्रश्वास भी नहीं चलती है, सारा प्राण नाभि चक्र में रूद्ध हुआ जान पड़ता है।

भिन्नं भिन्नं महद्भिन्नं दृष्टिभेदं पृथक् पृथक् ।

अनुभूतिपरं तत्र जायते साधकस्य वै।।

इस प्रकार प्रत्येक साधक को अलग अलग प्रकार के अपने अपने गुण, कर्म प्रकृति आदि के भेद से नाना प्रकार के अनुभव हुआ करते हैं।

एवं साधनाकाले एव आधारविद्याधिकृतसाधकः आधारस्य तत्रैवानुभूति करोति। तदा तस्य क्रिया सफला भवति। अतः आधारभूतामिमामतिमहत्त्वदायिनीं विद्यां अधिकारे कुर्यात् । जानीयात् च अस्या रहस्यम् । तदा नोद्विजते। प्रसीदति च। स्वमार्गं च शनैः शनैर्गच्छति। न च मार्गाद् विचलितो भवति, इति ज्ञानानुभवात् ।। ॐ ।।

इस भाँति साधना काल में ही आधार विद्या में अधिकृत साधक तभी आधार की अनुभूति कर लेता है। तब उसकी क्रिया सफल होती है, इसलिये अतिमहत्त्वदायिनी आधारभूता इस विद्या को अपने अधिकार में कर लेना चाहिये, इसका रहस्य भी जान लेना चाहिये। तब भय और संशय की कोई बात नहीं रहती है। साधक सन्तुष्ट रहता है। अपने मार्ग में धीरे-धीरे चलता रहता है। मार्ग से कभी विचलित नहीं होता है। क्योंकि उसे उसका ज्ञान और अनुभव है।

१-१-६३ प्रातकालः।।१०८।।

हरि ॐ तत् सत् । हरि ॐ तत् सत् । नमः आधार विद्यायै।

हरि ॐ तत् सत् । आधार विद्या को नमस्कार है।

आधारविद्या परमा परोत्तमा यस्यां हि सर्वं निकषोपलं बलम् ।

सर्वं च ज्ञानं भवतीति सद्यः आधार विद्यासममेव काले।।

आधार विद्या परमश्रेष्ठ है, जिसमें शक्ति के बल का परीक्षण कसौटी की भाँति होता है। आधार विद्या की अनुभूति के साथ साथ सभी प्रकार के ज्ञान तुरन्त होते रहते हैं।

परोऽपि यत्तत्त्वत्मपक्वभूतं सर्वं च पुष्टं परितत्त्वयुक्तम् ।
सत्साधको योगमयेन विज्ञः विद्यां परां वेत्ति निसंशयं सः ।। ॐ ।।

बड़े से बड़ा तत्त्व भले ही अपरिपक्व हो पूर्ण पुष्ट हो कर परिपक्व हो जाता है। आम साधक योग की प्रक्रियाओं से परिचित हो जाता है और आधार विद्या का भी ज्ञान निःसंशय हो जाता है।

आधारविद्या परमार्थकस्य सुवर्णस्य यथा वा अनेकेषां रत्नानां परीक्षणं भवति, सदोषं निर्दोषं निकषोपलेन क्रियते तथैव करोति।

परमार्थ रूपी सुवर्ण का परीक्षण अथवा अनेक प्रकार के सदोष निर्दोष रत्न मणियों का परीक्षण कसौटी पत्थर की भाँति यह आधार विद्या करती है।

आधारविद्यापि निकषोपलभूता सफलं विफलं वा सदोषं वा निर्दोषं वा, अनुभूतं नानुभूतं वा, सिद्धं वा असिद्धं वा सर्वानुभूतिं कारयति।

सोना अच्छा है या खोटा, रत्न खरा है खोटा यह परीक्षा जैसे की जाती है उसी भाँति क्रियायें ठीक हैं या गलत, अनुभूति ठीक है या नहीं, सफलता है या असफलता इस बात को आधार विद्या बता देती है।

अत एव सा विद्या परमोपयोगिनी साधकानां कृते। साधका जानन्तु तावत् किं कृतं, क्रियानुभूतं, सर्वं तत्रैवोपलभ्यते, यथा मन्त्राणां पश्चात् मन्त्रोच्चारणप्रक्रिया, सिद्धिसाधनप्रक्रिया केन प्रकारेण भवति। क्रियाणां मुद्राणामभ्यासः पुष्टिं गतो न वा, साधकस्तदैव जानाति यदा आधारः परिपुष्टं भवति।

इसलिये यह विद्या साधकों के लिये परमोपयोगिनी है। साधक स्वयं जान लें कि उन्होंने क्या किया, कैसे अनुभव किया। सब वहीं मालूम पड़ जाता है। जैसे मन्त्रों के अनन्तर मन्त्रोच्चारण प्रक्रिया है, सिद्धि साधन प्रक्रिया कैसे होती है, क्रिया और मुद्राओं का अभ्यास पुष्ट हुआ है या नहीं आदि बातें साधक वहीं जान लेता है जब आधार परिपुष्ट हो जाता है।

यथा सुवर्णं शुद्धं अशुद्धं वा घर्षणात् तापनात्तथा छेदनात् ताडनाच्च ज्ञायते निर्विकारं तथा मन्त्रः चाञ्चल्ययुक्तः निर्मलः निर्विकारको भूतो ज्ञातं वा। एतत् सर्वं निकषोपलं ज्ञानं करोति। अनुभूतिः।।

जैसे सुवर्ण शुद्ध है या अशुद्ध यह बात घर्षण से, तापन से, छेदन से और ताड़न से पूर्ण रूप से ज्ञात होती है उसी भांति मन्त्र चाञ्चल्ययुक्त है, निर्मल है, निर्विकार है, आदि बातों की कसौटी यही आधार विद्या की अनुभूति करती है।

आधारा सा परा विद्या, परापरविबोधिनी। सिद्धिकुरू। अनुभूतिं लभस्व। यथा वा निदर्शनेन ज्ञानं भवति। तदेवम् । ॐ ऐं सरस्वत्यै नमः। ॐ ह्रीं महालक्ष्म्यै नमः। ॐ क्लीं महाकालिकायै नमः। इतिव्याहृतिपूर्वकं मन्त्रव्यूहं समुच्चारितं भवति।।

आधार विद्या वह श्रेष्ठ विद्या है जो पर और अपर का बोध कराती है। सिद्धि करते रहो। अनुभूति प्राप्त करो। जैसे इस दृष्टान्त से ज्ञात हो जायेगा। ऊँ ऐं सरस्वत्यै नमः। ऊँ ह्रीं महालक्ष्म्यै नमः। ऊँ क्लीं महाकालिकायै नमः। इन मन्त्रों में व्याहृति पूर्वक मन्त्रव्यूह का उच्चारण होता है।

अत्र ऐं स्वरूपिण्याः सरस्वत्याः, ह्रीं स्वरूपिण्या महालक्ष्म्याः, क्लींस्वरूपिण्याः कालिकायाः या सम्पूर्णा शक्तिः सा साधके समायाति। साधकः शक्तिसम्पन्नतां पश्यति अनुभवति च। कथम् ? तदित्थम् ।

यहाँ पर ऐं स्वरूपिणी सरस्वती की, ह्रीं स्वरूपिणी महालक्ष्मी की और क्लीं स्वरूपिणी कालिका की सम्पूर्ण शक्ति जो कुछ है वह साधक में प्रविष्ट हो जाती है। साधक अपनी शक्तिसम्पन्नता को देखता और अनुभव करता है। कैसे ? वह इस प्रकारः-

यदा स मन्त्रोच्चारणाय प्रस्तुतो भवति, तदा जपकाले जपमात्रेणैव ध्यानावस्थितस्तत्रैव, ॐ ऐं ह्रीं क्लीं इत्येव केवलं चामुण्डायै विच्चे इति विहायापि पृथक पृथक कार्यसिद्धयर्थं पृथक पृथक देवतास्वरूपं पृथक पृथक मन्त्रस्वरूपं गृह्णाति, तदा पूर्वं बद्धासनः बद्धपरिकरः बद्धक्रियास्वरूपकः स्वशरीरे स्वासने स्वात्मनि वा एतां विशिष्टां शक्तिमनुभवति।।

जब वह मन्त्रोच्चारण के लिये उद्यत होता है तब जपकाल में जपमात्र से ही ध्यानावस्थित होकर वह वहीं ऐं ह्रीं क्लीं इतने भाग को ही "चामुण्डायै विच्चे" इस भाग को छोड़कर भी पृथक् पृथक् कार्य सिद्धि के लिये, देवताओं के पृथक् पृथक् स्वरूप को पृथक् पृथक् मन्त्रस्वरूप को ग्रहण करता है। तब वह आसन बांधकर विशिष्ट मुद्रा में बैठकर अपने शरीर में, अपने आसन में और अपने भीतर एक विशिष्ट शक्ति का अनुभव करता है।

यदा मन्त्रजपकाले शक्तिर्नानुभूयते तदा निष्फलं ज्ञेयम् । इत्याधारमूला तत्त्वज्ञापिका विद्यते। तस्माद् हि यत्र यत् क्रियते शक्तिः स्वयमेव तत् चालयति तच्च यन्नानुभूतं तत् किं कृतम् ।।

जब जपकाल में शक्ति का अनुभव न हो तो सब निष्फल समझना चाहिये। इस तरह आधारभूता विद्या तत्त्व ज्ञान दायिनी होती है। अतः साधना में जो कुछ किया जाता है उसे शक्ति स्वयं परिचालित करती है। यदि अनुभव न किया तो फिर सब व्यर्थ है।

अत एव प्रोक्तम् । अनुभूति विना न राजते परमोपयोगिनी तथापि सत्क्रिया अनुभूतिमंतः प्राधानिकाः निगदन्ति मनीषिणः, तदा ज्ञायतामनुभूतिश्च विधेया।।

इसलिये कहा गया है कि अनुभूति के बिना परमोपयोगिनी सत्क्रिया भी शोभा नहीं देती है। अनुभूतिमान् विद्वान् आचार्यों का यही कथन है। अतः जानो और अनुभूति करो।

यथा वा सिद्धिः। ऊँभैरवाय महारूद्राय महाभैरवाय महारूद्राय, महारूद्राय महाभैरवाय नमः कार्यं साधय सिद्धि कुरु कुरू ऊँफट् स्वाहा। तथा भैरवाय पुनः महारूद्राय, विलोमतः मन्त्रः उच्चारणीयः भवति। एतच्च भैरवाङ्कितं मन्त्रपरिकरम् । तद् ज्ञानमपि सद्यएव भवति।।

सिद्धि कैसे हो यह बताया जाता है। "ॐ भैरवाय महारूद्राय महारूद्राय महाभैरवाय नमः कार्य साधय साधय सिद्धि कुरू कुरू ॐ फट् स्वाहा।" इस भाँति भैरवाय कहकर फिर महारूद्राय बोलो। फिर विलोम से मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये। यह मन्त्र परिकर भैरव देवता से सम्बन्धित है। इससे शीघ्र ही ज्ञान हो जाता है।

एवं च कार्यसिद्धिसाधकं मन्त्रं जपति साधकः। तदैव स्वयं भैरवः भैरवाङ्कनिलया भैरवी वा महारूद्रो वा प्रत्यक्षेण स्वरूपेण तत्रागत्य साधकं पश्यति। साधकस्य ध्यानमुद्बोधयति, तदा सिद्धिं च ददाति। तदा एतादृशं ज्ञानं भवति, यद् यद्ज्ञानं तदनुभूति विषये समागतम् । ॐ ।

इस भाँति कार्यसिद्धि का इच्छुक साधक मन्त्र जप किया करता है। तब भैरव स्वयं और भैरव के भीतर बैठी भैरवी शक्ति या महारूद्र प्रत्यक्ष रूप में वहाँ उपस्थित होकर साधक को देखते हैं। साधक का ध्यान आकृष्ट करते हैं और सिद्धि प्रदान करते हैं। तब ऐसा ज्ञात होता है कि जो कुछ जाना था वह अनुभव में आ गया है। ॐ ।

अनेन प्रकारेण आधारविद्या सर्वत्रैव अनुभूतिं कारयति करोति च। साधकः बोधयति गमयति च एतदनुभूतिविषयकं चक्षुर्वर्तते।।

इस भाँति आधार विद्या सर्वत्र अनुभूति कराती रहती है। साधक भी जानता और समझ लेता है यह विद्या अनुभूति विषयक चक्षु है।

एतत्कार्यकरं च प्रोक्तं बहिरङ्गम् । अन्तरंङ्ग यद् अनुभूतेर्विषयकं अपरतत्त्वसम्बन्धिकत्वं तदपि प्रोच्यते।

यह जो प्रक्रिया बताई गई है वह बहिरंग है। अन्तरंग विषयक जो अनुभूति है, जो अपर तत्त्व सम्बन्धी होती है वह भी यहाँ बताई जाती है।

स्वात्मन्येव यदा योगी आत्मरूपं प्रपश्यति।

निर्विकल्पो निराकारः निराधारः स्वयं ततः।।

जब योगी अपने ही भीतर अपने रूप के दर्शन करता है, तब वह निर्विकार निर्विकल्प और निराधार स्थिति में स्वयं रहता है।

एकानुभूतिं कुरूते यानुभूतिर्विशेषिका।

संसारमूलां जनयेत् जनयेत्तत्त्ववेदिनी।।

वह एक विशिष्ट अनुभूति करता है। वह अनुभूति तत्त्व को जन्म देती है और संसार के मूल कारण का ज्ञान करा देती है।

तस्माद् घटं च संशोध्य आसनं दृढमाचरेद् ।

दृढासने कृते सद्यः आधारो दृढतां ब्रजेत् ।।

अतः घट का शोधन करके अपने आसन को दृढ़ बनाना चाहिये। आसन के दृढ़ हो जाने पर शीघ्र ही आधार भी दृढ़ बन जाता है।

एकैकमपि चादाय आसनं सिद्धिदायकम् ।

सुस्थिरं निश्चितं कृत्वा नियतायतमेवच।।

किसी भी एक सिद्धिदायक आसन को ग्रहण करके साधक को निश्चिन्त और सुस्थिर स्थिति में बैठ जाना चाहिये।

तदामन्त्रस्वरूपं च स्मृत्वा तन्मन्त्रदेवताम् । ॐ ।

महाव्याहृतिमुच्चार्य मन्त्ररूपं स्मरेत् पुनः।। ॐ ।।

तब मन्त्र का स्वरूप और देवता का स्मरण करके महाव्याहृति का उच्चारण करते हुए बार बार मन्त्र रूप का स्मरण करना चाहिये।

पूर्वमन्तर्गतं तत्त्वं वहिस्तत्त्वेन योजयेत् ।

उभयात्मकज्ञानेन तत्र सिद्धिः प्रजायते।। ॐ ।।

पहिले अन्तर्गत तत्त्व की योजना बहिर्गत तत्त्व से करनी चाहिये। उन दोनों के पारस्परिक ज्ञान से मन्त्र की सिद्धि होती है।

१-१-६३ सायंकाल ।।१०९।।

प्रणमामि सकलकृतकार्या तां भावितभाव्याम् ।

भाविकाधारभूतां आधारविद्याम् ।।

सकल कार्यों को सिद्ध करने वाली, भावमात्र आधार वाली और अभीष्ट को अपने भीतर धारण करने वाली आधार विद्या को मैं नमस्कार करता हूँ।

आधारं बोधयति या तां तारतम्योत्सुकाम् ।

तादात्म्य सम्बन्ध स्वरूपिकां तां नौमि विद्याम् ।।

तारतम्य भाव में उत्सुक होकर जो आधार का बोध कराती है, तादात्म्य सम्बन्ध ही जिसका स्वरूप है उस विद्या को मैं प्रणाम करता हूँ।

या विद्या मन्त्रयोगस्य क्रियायोगस्य व्यूहकम् ।

योगयुक्तं विद्यायैव अनुभूति प्रयच्छति।।

जो विद्या मन्त्ररूप और क्रियारूप के व्यूह को योग युक्त बनाती हुई अनुभूति प्रदान करती है,

सा वै आधारविद्या च सर्वाधार-विबोधिनी।

मोहात्मकं महामोहं विदूरीकुरूते सदा।।

वही आधार विद्या, समस्त आधारों का बोध कराती हुई साधक के महामोह और अज्ञान को दूर भगा देती है।

शुभ्रं शान्तानुभूत्याख्यं दर्शनं सद्यभासितम् ।

प्रयोगे नानुभूतं च अनुभूतिं प्रयच्छति।।

मन्त्र प्रयोग से अनुभव होने वाला एक शुभ्र, शान्त दर्शन साधक को भासित होता है, वही शुभ्र शान्त ज्योतिर्दर्शन मन्त्रप्रयोग द्वारा अनुभूति प्रदान करता है।

एकेन शुभमन्त्रेण शुभलाभकृतेन च।

योगेन योजयेद् या तु सा धारा धारणां ब्रजेत् ।।

एक ही कल्याणकारी मन्त्र से यदि मंगलमय लाभ कर लिया जाय और यदि उसका सम्बन्ध योग क्रिया से जोड़ दिया जाय वही आधार बन कर दृढ़ता धारण कर लेता है।

आधारविद्यायां यदुक्तमन्त्राणां जपे भावनया जपकरणेन जापेन च तत्रस्था समस्तापि विराजिता नर्तनपरा कार्यसाधिका महाशक्तिः शोभते, यस्याः अनुभूतिर्भवति।।

आधार विद्या में मन्त्रों के जप करने पर समस्त नर्तनशील कार्यसाधिका जो महाशक्ति विराजमान रहती है साधक उसकी अनुभूति करता है।

पुनश्च मन्त्रस्य मन्त्राणां वा योगेन यागो भवति। मन्त्रयागः, मन्त्रस्वरूपयाग इति। मन्त्रयागः यदा भवति तदा आधारानुभूतिः परिपुष्टिमधिगच्छति। तस्याः धारणमात्रेण मन्त्राणां यागः मन्त्रयागः सुफलं भवति।

फिर मन्त्र अथवा मन्त्रों के योग से सम्बन्ध स्थापित होता है। उसी को मन्त्रयाग कहते हैं। जब वह मन्त्रस्वरूप का याग होता है तब आधारानुभूति परिपुष्टि को प्राप्त होती है। उसके धारण मात्र से मन्त्रयाग सफल होता है।

मन्त्रयागसुफलत्वेन यत् किञ्चिदपि तद् हस्तामलकवत् स्फुटं जायते। मन्त्रमुच्चार्य देवता स्वरूपमाधाय, आसनं सुस्थिरं कृत्वा तत्र तदर्थभावनां, मन्त्रार्थभावनां कुर्यात् ।।

मन्त्रयाग की सफलता से जो कुछ प्राप्त होता है वह हस्तामलकवत् सुस्पष्ट हो जाता है। साधक को चाहिये कि आसन सुस्थिर करके मन्त्र का उच्चारण करते हुए, देवता के रूप का ध्यान करते हुए और उसके अर्थ की भावना करते हुए साधना में तत्पर रहे।

अनेन मन्त्रस्य यागः, यजनात्मकभावः स्वयमेव मन्त्रयागात्मकत्वस्वरूपं शक्तिसम्पन्नं भवति। यावत् जपार्थ सिद्धिर्न समागता तावत् मन्त्रमित्युच्चारणीयम् । यदा च तद् यागो भवति, तावत् मन्त्रयागः, मन्त्र इत्युच्चारणीयः।

इस प्रकार मन्त्रयाग स्वयं ही शक्ति सम्पन्न बन जाता है। जब तक जप के अर्थ की सिद्धि नहीं आती है तब तक मन्त्र को "मन्त्र" इस नपुंसक लिंग से निर्दिष्ट करते हैं। जब मन्त्र का यथार्थ प्रयोग सिद्धि के लिये होने लगे तब उसे "मन्त्रः" पुल्लिग कहा जाता है।

शक्ति सम्पन्नो मन्त्रो भवति। अशक्तः, अनुद्भूतशक्ति सम्पन्नः मन्त्रं भवति। मन्त्रमुभयात्मकम् । एवं प्रोच्चार्यमाणं केवलं मन्त्रम् । एकस्तु शक्तिसम्पन्नः चैतन्योपहितः, चैतन्यज्ञानमाविष्टः, चैतन्यानुभूतिसमायुक्तः मन्त्रः।।

"मन्त्र" शक्ति सम्पन्न होता है। "मन्त्रं" जो शक्ति सम्पन्न न हो और कार्यसिद्धिजनक न हो, उसे कहते हैं। केवल बोला जाने वाला मन्त्र नपुंसक लिंग होता है और जो चैतन्यशक्ति सम्पन्न, चैतन्यपूर्ण, कार्यसाधक और शक्ति सम्पन्न होता है उसे पुल्लिग रूप में "मन्त्रः" इस प्रकार कहते हैं।

अतएव प्राधानिकोऽयं भेदः। तस्मादेतद् ज्ञातं भवति यद् यदा मन्त्रशक्तिः समागच्छति तदा तस्याधारः दृढतमो भवति। यदा केवलं जपोच्चारितमेव तद् मननशक्तिहीनं इत्युच्चारणीयम् ।।

इसलिये यह प्रधान भेद है। इस प्रकार ज्ञात होता है कि जब मन्त्रशक्ति आ जाती है तब उसका आधार भी दृढ़तम हो जाता है। जब केवल उच्चारण मात्र होता रहे तब वह मननशक्ति विहीन होता है।

कस्मात् ? तदुच्यते। शीतं वा उष्णं वा जपभेदेन मन्त्रं मन्त्रः इत्यपि भेदः।।

ऐसा कैसे ? वह भी बताया जाता है। मन्त्र शीत है या उष्ण है, इस भेद से भी मन्त्रों के जप में भेद हुआ करता है और उनके लिंग में भेद होता है।

मननात् मन्त्रम्। क्रियात्मकरूपात् मन्त्रः। यदा मन्त्रे विचारशक्तिः, क्रियाशक्तिः प्रादुर्भवति तदैव कार्यकरणाय प्रभवति। तद् मन्त्रयागयुक्तो भवति। मन्त्रयागस्तदैव उच्यते। मन्त्राणां यागः मन्त्रेष्टिर्यागः वा।।

मनन होने के कारण "मन्त्र" कहलाता है। क्रियात्मक रूप से "मन्त्रः" कहा जाता है। जब मन्त्र में विचार शक्ति और क्रिया शक्ति प्रादुर्भूत होती है तभी वह कार्यकरण में समर्थ होता है। वह मन्त्र यागयुक्त होता है। तभी मन्त्रयाग कहा जाता है।

याग शब्दस्य कोऽर्थः ? इत्यपि विचारणीयम् । यत् किञ्चिदपि कृते मुद्रारूपेण क्रियारूपेण वा तद् शक्तिसम्पन्नं यदा भवति तदुपांशुजापभूतत्वेन तेन मन्त्रेण शक्तिपरिचायनाय या विधेयावस्था समायाति तदा यागो भवति। यावत् सर्वं तत्रैव जृम्भति इति यागः।।

याग शब्द का क्या अर्थ है ? यह भी विचारणीय है। मुद्रा तथा क्रिया रूप जो कुछ किया गया हो वह जब शक्ति सम्पन्न होता है, तब उपांशु जप रूप में उस मन्त्र से शक्तिपरिचय के लिये विधेयावस्था आती है, तब याग होता है, क्योंकि जो कुछ है सब उसी के भीतर समा जाता है।

यागः- यत् किञ्चित् सर्वं कृतं ज्ञातं वा अनुभूतं वा तत्रैव गच्छति। अनुभूति-विषयं व्रजति तदैव यागो भवति।।

याग का अर्थ है – जो कुछ भी किया गया, ज्ञात या अनुभूत होता है वह वहीं पहुंचता है और अनुभूति में आ जाता है। तब याग होता है।

विचारेषु मन्त्ररूपेषु मननीयेषु विषयेषु वा यदा सा ज्ञानात्मिका धारणा प्रच्छन्नाच्छन्नरूपेण क्रियासंगता भवति तदा यागो भवति।

मन्त्ररूप में जो मननीय विषयों के विचार हैं वे जब प्रच्छन्न या प्रकट रूप में क्रिया के साथ युक्त हो जाते हैं तब याग होता है।

अनेन ज्ञानेन अनेन कृतेन किं भवति इति ज्ञातव्यम् । इति तु साधकानां कृते समवधीयते। ज्ञायते च तद् अनेन ज्ञानेन, अनया अनुभूत्या साधकस्य मार्गे, साधकस्य साधनायां आधारदृढत्वभावना समागच्छति। अन्यथा यदि मन्त्रयाग-समायोगो न भवति,

इस ज्ञान से और ऐसा करने से क्या होता है यह भी ज्ञातव्य है। साधकों के लिये इसका समाधान किया जाता है। इस ज्ञान से प्रतीत होता है कि इस अनुभूति द्वारा साधक के मार्ग में उसकी साधना में आधार की दृढ़ भावना आती है। अन्यथा जब मन्त्रयाग से समायोग नहीं होता है-

तदा अर्धसाधनासम्पन्नो वा बहुसाधनासम्पन्नो वा स्वल्पसाधनासम्पन्नो वा साधकः, किं मया कृतं किं मया अनुभूतं किं मया प्राप्तम् एतत् सर्वं तु कृतं वा न कृतं वा सफलं वा विफलं वा व्यर्थफलं वा किं करणीयम् इत्यात्मकं अनर्गलं अर्गलारहितं सत्याख्यं प्रव्रजत् भावनाजनितं दुर्विचारमाधारयति।।

तो अर्धसाधना सम्पन्न, बहुसाधना सम्पन्न या स्वल्प साधना सम्पन्न साधक ऐसे दुर्विचारों की धारणा बना लेता है कि मैंने क्या किया, क्या नहीं किया, सफल हुआ या विफल हुआ। क्या जाना, क्या अनुभव किया, क्या प्राप्ति की। जो कुछ किया था, वह सफल हुआ है, विफल हुआ है या व्यर्थ हुआ है। मैं क्या करूं ? इन अनर्गल अयथार्थ बातों को ही सही समझता है, ये सब उसकी कल्पित बातें हैं।

तदाधारे दुर्बलता समायाति। अत एव आधारविद्या बोधयति, आधार विद्या प्रकटयति यत् सर्वं सुकरं सुविज्ञातं, तत् सर्वात्मना अनुभूतिर्भविष्यति। अतः नोद्विजनीयन्, न स्वमार्ग त्यागो विधेयः। सफला साधना आधारविषयत्वेन सुदृढा भवति। गोरक्ष !

तब आधार में दुर्बलता आ जाती है। इसलिये आधार विद्या बताती है कि सबकुछ भली प्रकार समझ में आकर सर्वात्मना अनुभूति हो जायगी। इसलिये घबड़ाना नहीं। अपना मार्ग कभी नहीं छोड़ना चाहिये। आधार विद्या से ही साधना सफल होती है और सुदृढ़ होती है। गोरक्ष !

गोरख वाणी :- अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। गुरू पीठ को आदेश। माँ का आदेश। माँ की आज्ञा।

माँ की आज्ञा गोरख भाषे।
जो कुछ आवे सो कुछ भाषे।।
गोरखनाथ रमन्ता जोगी।
क्या जाने क्या नाथण भोगी।।
गोरख योगी बात बतावे।
जा की धारा धार समावे।
और बतावे बात समावे।। ॐ ।।

माँ का आदेश। आधार विद्या का प्रकरण माँ ने चलाया। मुझे कहा गया है कि मैं थोड़ा थोड़ा जो जाना है, जो अभ्यास किया है, सीखा है और जिसके आधार पर आगे बढ़ना है, उसका थोड़ा ज्ञान अनुभूति के साथ मिलाकर बता दूँ। यह विद्या कुछ नहीं है। केवल जैसा कि माँ कहती हैं और अनुभूति अर्थात् अनुभव करके, पा लिया और देख भी लिया, जान लो जनालो। तो जानेगा ही जब नहीं, देखकर बतायेगा क्या ? कैसे ? और जब सब कुछ हो गया तो आखिर में जानकर क्या करोगे ? तो फिर क्यों ऐसा करते हो ? तो कुछ नहीं होगा। तो सुनो सबका सार, निचोड़ अब आया है। वह तुम्हारे हाथ में है। पकड़ के रख लेना। छोड़ना नहीं। इतनी ही आधार की बात है। और इसका नाथ को ज्ञान है। सो बतायेगा। और इतना जान लेना कि वृक्ष क्यों टिका है ? बड़ी हवा आती है, बड़ी आँधी आती है, फिर भी उसका कुछ नहीं बिगड़ता है, क्योंकि उसकी जड़ें मजबूत हैं। उसने जड़ों से सबकुछ खींचना सीखा है, वह है आधार विद्या। खींचो, सब तैयार है, हो गया है। हंडियों में सब अन्न पक गया है। इसको निचोड़ के ले लो। जब सब खींचना सीख जाओगे, तब तुम्हारा आधार दृढ़ हो गया जानो। पत्थर बन जाओ, जम जाओ। पत्थर में अनुभूति नहीं होती। तुम्हें अनुभूति करनी होगी। वह बताई जायेगी। ॐ । अलख निरञ्जन।

२-१-६३ प्रातः काल।।११०।।

हरि ॐ तत् सत् । आधारशक्तिभूतायै कार्य कारिण्यै नमः आधारविद्यायै।।

कार्य करने में समर्थ आधार शक्तिभूता आधार विद्या को नमस्कार है।

अखिलं च चराचरात्मकं विपुलस्पन्दन बोध मण्डितम् ।
परिपुष्ट परिपुष्टिबोधकं कुरूते तां च नमामि शक्तिकाम् ।।

इस अखिल चराचर जगत् को जो स्पन्दन करती हुई ज्ञान से भी भर देती है और जो समस्त चराचर को परिपुष्ट करती रहती है उस शक्ति को नमस्कार है।

नमस्ते महाशक्तिधाराधराय नमस्ते प्रबोधप्रबोधारकाय।
नमस्ते अनन्ताय सान्तात्मकाय नमस्ते स्वसत्ता स्वरूपप्रदाय।।

उस शिव भगवान् को भी बारम्बार नमस्कार है जो महाशक्ति की धारा के आधार हैं, ज्ञानविज्ञान के भण्डार हैं, अनन्त और सान्त भी हैं तथा अपनी सत्ता को जताने के लिये जगत् को रूपवान् बना देते हैं।

नमस्ते चैतन्यस्वरूपाय महाबोधकारकाय तस्मै चिदानन्दस्वरूपाय।।

चिदानन्दस्वरूप उस परमानन्द भगवान् को नमस्कार है जो महाबोध कारक चैतन्य स्वरूप है।

यत्प्राप्त्यै यतते जगत् सकलकं येनेदमाव्यापितम्,
आधारः खलु यः समस्त जगतां आधार येन कृतः।
येनैकेन अनन्तशक्तिपरिता यत् संभृतं शक्तिमत्,
एकेनैव अखण्ड खण्ड परिधं आधारभूतं कृतम् ।।

जिसकी प्राप्ति के लिये सारा जगत् यत्नवान् रहता है, जिससे सबकुछ परिव्याप्त है, जो समस्त जगत् के आधार का भी आधार है, अनन्त शक्ति से परिपूर्ण होकर जिसने शक्तिमान् और शक्ति को धारण कर रखा है, और जिस अकेले एक ने इस अखण्ड और खण्ड समस्त ब्रह्माण्ड को आधार भूत बना रखा है उस परम शिव भगवान् को सदा प्रणाम है।

तस्मै नमः। आधारभूतस्य दृढस्वरूपस्य लिंगात्मकलिङ्ग बोधक ज्ञानस्य यत् स्वरूपं तदाधारेण विना पूर्ण न भवति।।

उस शिव भगवान् को प्रणाम है, जिसके बिना आधार भूत, दृढ़ स्वरूप इस पिण्ड ब्रह्माण्ड और समष्टि ब्रह्माण्ड में बोध संचार नहीं हो सकता है और स्वरूप नहीं रहता है।

अतः तल्लिङ्गस्वरूपात् स्वयं यन्माया बोधितः तत् शक्तिमत् विरचितभुवनैक सारम्। प्राक् त्वया आधारविद्याधिकारः कर्तव्यः। आधारविद्याविदिते सर्वं यत्कृतं यद् वृत्तं चैव ब्रह्मण्येव विलीयते। ब्रह्मणि विलीनता आधारविद्याश्चरमा परमा शक्तिः सनातनी। साधारविद्या तथा भूतास्ति यया शरीरं स्वस्थं हृष्टं पुष्टं च किन्तु प्राणविहीनश्च निष्प्रयोजनश्च। तथैव अनुभूतिं विना निष्प्रयोजनं भवति।।

वह जो लिङ्गस्वरूप भगवान् शिव हैं, वह शक्तिमान् हैं, और वे ही अपनी शक्ति से समस्त भुवन को सर्जित करते हैं, वे ही सारभूत हैं, यह मैं पहिले समझा चुकी हूँ। प्रथमतः तुम्हें आधार विद्या में अधिकार करना चाहिये। आधार विद्या के जान लेने पर कुछ किया गया, घटित हुआ रहता है वह ब्रह्म में ही लीन हो जाता है। आधार विद्या की सनातनी वह शक्ति है जो हृष्ट पुष्ट शरीर में प्राण की भाँति है जिसके बिना वह निष्प्रयोजन हो जाता है। ऐसे ही अनुभूति के बिना सब व्यर्थ है।

यद् यत् करोषि त्वं कार्यं तस्य तस्य कृतस्य च।

अनुभूतिं समागम्य तदा ब्रह्मणि गच्छ त्वम् ।।

तुम जो कुछ कर्म करते हो, उस प्रत्येक की अनुभूति से लेकर अन्त में परम कारण परम ब्रह्म में चले जाओ।

नैवाधारः न वा युक्तः नानुभूतेः परस्परम् ।

अन्तरंगबहिश्चैव तेनेदं ज्ञायते ध्रुवम् ।।

अनुभूति के बिना आधार का ज्ञान व्यर्थ है और आधार के ज्ञान के बिना अनुभूति नहीं हो सकती है। स्पष्ट प्रतीत होता है कि इन दोनों का अन्तरंग बहिरंग सम्बन्ध है।

तस्मात् सर्वात्मभावेन आधारे कृतनिश्चयः।

कृताधिकारप्राप्तिश्च सततं मोदनिर्भरः।।

इसलिये सर्वात्मभाव से आधार को जानने के लिये तत्पर बनते हुए आधार पर अधिकार और उसकी प्राप्ति कर लो, तो आनन्द से भर जाओगे।

भव त्वं कार्यकालेन नैवं विघ्नः समाप्स्यसि।।

साधन के समय तुम आधार-ज्ञान में लगे रहो तो विघ्न नहीं आवेंगे।

२-१-६३ सायंकाल।।१११।।

हरि ॐ तत् सत् ।।

आधारः सर्वविद्यानां प्रसूतिः सर्वमुद्रिकाम् ।

मुद्राङ्किता क्रियाभूतां टंकधारां समर्थिताम् ।।

सब विद्याओं की आधारभूता और कारणभूता, टंक विद्या में वर्णित सभी क्रिया और मुद्राओं की आधार भूता भगवती को नमस्कार है।

अपरां परसम्पर्कां संसर्गोचित - संगताम् ।

संगतिं सक्रियायोगां आधारां तां नमाम्यहम् ।। ॐ ।।

जो अपरा होते हुए पर (शिव) से सम्पर्क किये हुए हैं। अपने अनुकूल और योग्य संसर्ग में आकर क्रियायोग से सम्पर्क रखती है उस आधार विद्या को नमस्कार है।

क्रियाणां शुभमुद्राणां या विद्या पुष्टिवर्धना।

सारल्येन सुसस्थानां तां विद्यां च भजाम्यहम् ।।

श्रेष्ठ मुद्रा और क्रियाओं को पुष्ट करने वाली, सरलता पूर्वक साधक को अपनी उचित स्थिति में ला देने वाली उस आधार विद्या की मैं उपासना करता हूँ।

सर्वं सर्वसमायुक्तं सर्वभावसदैवकम् ।

आधारे परिपुष्टं च करोतु साहिभाविनी।।

समस्त जगत् सभी चीजों से मिलाजुला होते हुए भी एक और ऐसा जिसकी शक्ति से बल रहता है वह सत्तात्मिका देवी मेरे आधार को परिपुष्ट करें।

प्रोक्ता या च महाविद्या आधाराख्या मया स्वयम् ।

तस्या विज्ञानमात्रेण मन्त्रयागान्वितो भवेत् ।।

जो आधार नाम की विद्या मैं स्वयं बता रहीं हूँ उस महाविद्या के केवल ज्ञानमात्र से साधक मन्त्र-मार्ग का अधिकारी बन जाता है।

मन्त्रयागान्वितो मर्त्यः साधकः सिद्धिप्रापकः।

आधारं पुष्टिमाधाय सर्वं पुष्टं करोति सः।।

मन्त्रयाग का अधिकारी साधक सिद्धि प्राप्त कर लेता है और आधार की पुष्टि करते हुए सभी कुछ पुष्ट कर लेता है।

सर्वानुभूतिपरकं सर्वभाव - विवर्धनम् ।

सर्वाक्रियाः क्रियाधाराः तां तां सर्वां समःसमाम् ।।

जो पुष्टि सर्वानुभूति परक होती है और समस्त भावों की वृद्धि कारक होती है। सभी क्रियायें आधार पर ही आधारित होती हैं और साधक समभाव में रहता हुआ साम्य अवस्था को प्राप्त कर लेता है।

सदा सर्वत्र संचारः संचारात्मिक-धारणा।।

धारणां पुष्टिमापन्नां कारणं कारणाङ्किताम् ।।

साधक का संचार सर्वत्र हो जाता है और उसकी संचारात्मिका धारणा बन जाती है। पुष्टि को प्राप्त हुई धारणा जो सब सिद्धियों की कारणभूता है।

एतां विद्यां महामन्त्रयोग-बोध-समन्विताम् ।

ज्ञात्वा स्वात्मनि स्वाधारं पुष्टिदं जायते ध्रुवम् ।।

अतएव महामन्त्र योग और बोध से समन्वित इस विद्या का ज्ञान प्राप्त करके साधक का निजी आधार अपने भीतर पुष्ट होता रहता है।

अतएव समाख्याता टंकविद्याविधौ हि सा।

टंकं कृत्वा ततः एवं आधारं आधृतं कुरू।।

इसलिये टंक विद्या के अन्तर्गत इस आधार विद्या को बता गया हूँ। अतएव तुम टंक कर लेने के बाद आधार को दृढ़ बना लो।

नीचैर्या रसता सा च टंकिता टंकविद्यया।

तस्याधारः सदा युक्तः बलवान् बलदायकः।।

टंक विद्या के द्वारा नीचे की ओर जाने वाली जो शक्तिधारा है उसको रोकने और उसे ऊर्ध्वगति देने वाली बलवान् और बलदायक पुष्ट आधार ही हुआ करता है।

साधकानां कृते भूयादेतत्तत्त्व विचारणम् ।

एषा विद्या परा प्रोक्ता यां ज्ञात्वा सुस्थिरो भवेत् ।।

इस तत्त्व पर विचार करने का स्वभाव साधकों का बना रहे। इस परम श्रेष्ठ विद्या को जानकर साधक सुस्थिर और पक्का बने।

सर्वथैव विपत्काले संकटापन्नको भवेत् ।

आधारं सर्वकालं च स्मृत्वा च निर्भयो भवेत् ।।

जब जब साधक पर विपत्ति आवे और वह संकटापन्न स्थिति में हो, तब तब सदा आधार का स्मरण करके निर्भर हो जावे।

निर्भयार्थमिदं प्रोक्तंतेषां वै जायते शुभम् ।

प्राप्नुवन्ति महासिद्धिं लोके आनन्दमण्डिताः।।

यह विद्या साधकों को निर्भय बनाने के लिये कही गई है, इस से साधकों का हित होता है। संसार में आनन्द मण्डित हो कर वे महासिद्धि प्राप्त कर लेते हैं।

जायन्ते यत्प्रसादेन सा विद्या फलदा भवेत् ।

केवलं ज्ञानमात्रेण न भवेत् कार्यसाधना।।

जिस विद्या के प्रसाद से साधक सिद्ध बनते हैं, वह विद्या फलवती है। केवल विद्या के ज्ञानमात्र से कार्य की सिद्धि नहीं हुआ करती है।

अनुभूतिरता प्रोक्ता आधाराख्या मया हि सा।

प्रोक्तंसर्वहितार्थं च तां ज्ञात्वा निर्भयो भवेत् ।। ॐ ।।

इसलिए आधार नाम की अनुभूति मैंने बताई है। सब के कल्याण के लिए यह विद्या कही गई है जिसे जान कर साधक को निर्भय हो जाना चाहिये।

इत्याधाराधिगम प्रकरणे प्रथमग्रन्थिग्रन्थानुग्रन्थि अनुकूलाननुकूलं सर्वं निर्भयात्मकत्वं सुस्थिरत्वं मनसः प्रकृष्टतमाधारभूत तत्त्वं निगदितं तत् ज्ञात्वा साधकाः निर्भयाः भवन्तु। कुर्वन्तु च स्वकीयं परकीयं च कल्याणम् । मुद्राः क्रियाः अनयाऽऽधारविद्या ज्ञातया टंकिताः भवन्तु।। ॐ ।।

इस भांति आधाराधिगम प्रकरण में प्रथम ग्रन्थि के अन्तर्गत अनुग्रन्थि में मनके सुस्थिर भाव के लिये और निर्भयता के लिये तत्त्व बताया गया है, जिसे समझ कर साधक निर्भय बनें और अपना तथा दूसरों का कल्याण करें। इस आधार विद्या के सहारे सभी मुद्रायें भली भांति टंकित हो जावें।

गोरखवाणी :- । ॐ । अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन।

नमो गुरू को आदेश। आज माँ ने आधार विद्या के विषय में जो बताया है वह इसलिये बताया है कि जिस प्रकार टंक विद्या का आगमन हुआ, टंक विद्या का ज्ञान हुआ और पर उपकार करने वाली, परमसिद्धि करने वाली, मन को परम रूप से स्थिर करने वाली जो टंक विद्या थी उसका ज्ञान और मुद्राओं से, उसके तत्त्व का ज्ञान हो जाने से उसका आधार भी पुष्ट होना चाहिये। उसके आधार के साथ साथ जो इष्ट मन्त्र है या जो अभीष्ट मन्त्र है उनका भाग संगति भी परस्पर गति शक्तिशीलता भी होना चाहिये। तो इस अन्तिम प्रकरण को भी बतलाया गया है। यह आधार विद्या ऐसी है जैसी कि - ऐसा समझना चाहिये - एक घड़े में रस भरा है। छिद्र भी बन्द हो गये हैं और टंक हो गया है। यह आधार विद्या का काम होता है। घड़ा जल से भरा हुआ है। उसके मुख में ढक्कन भी रख दिया तो कूड़ा करकट नहीं पड़ेगा। वह ढका रहेगा।

क्रिया और मुद्रायें भी घट की शुद्धि करके मन में आनन्द रस भरती हैं। उसमें इन्द्रिय विक्षेप न आ जाय, इधर उधर से कूड़ाकरकट न पड़ जाय, तो उसके आधार को पुष्ट कर

देगा। शिरोभाग से लेकर चरणान्त तक की पुष्टि कर देना है। और जब सारी अनुभूतियाँ बार बार स्मरण आती रहती हैं, तब उनमें विलीन होने की भावना आ जाती है और जब विलीन होने लगता है, तब इधर उधर का वातावरण सब भूल जाता है। तो इसलिये आधार विद्या को बताया गया है कि उसमें अनुभूति की प्रधानता है और मन्त्रार्थ की प्रधानता है। अनुभूतियों को देनेवाले मन्त्र याग कहे गये हैं। उनको ध्यान में रखते हुए साधक अपने मार्ग में चलता है। यह आधार विद्या प्रकरण इसलिये अन्तिम प्रकरण कहा गया है कि इसके बिना टंक विद्या अधूरी रह जाती है; इसलिये इसे बताना भी परमावश्यक था। इस प्रकार इस गुप्त लुप्त विद्या को शास्त्र का पूर्ण रूप देकर, सार सार, तत्त्व तत्त्व लेकर के, साधकों के हित के लिये, इसका ज्ञान परम आवश्यक है।

इसके ज्ञान और अनुभूति को संयुक्त करके इसको एक और दृष्टि से, एक रूप से प्रचार भी करना चाहिये। तभी इसकी सफलता होगी। तभी तो यह विद्या प्रकट होगी, नहीं तो फिर गुप्त की गुप्त रह जायेगी तो निर्जीव पड़ी रह जायेगी और उससे कल्याण नहीं होगा। इसलिये यह विद्या कही गई है।

इसका अब प्रचार भी होना चाहिये। समय भी कहता है और काल भी कहता है और नाथ भी कहता है और माँ भी कहती है। इसके आगे क्या होगा, कौन शास्त्र होगा, क्या कहा जायेगा, क्या आदेश होगा, तब सब बता दिया जायेगा। इसलिये इस आधार टंक को ध्यान से, निष्ठा से अपनी साधना का अंग बना लो और इस से फिर क्या होगा यह तुम्हें अनुभूति बतायेगी। और ऐसी दिव्य अनुभूतियों को देनेवाली, योग के मार्ग पर सरलता से चलाने वाली यह लुप्त गुप्त विद्या तुम्हें बता दी गई है। फिर और क्या चाहते हो। जो चाहोगे वह भी हो जायेगा। माँ के आदेश को देखते रहो।। ॐ ।।

गोरख की वाणी में आधार का प्रकरण बन्द ।। ॐ ।।

अथ चक्रविद्याधिगमः

२१-१-६३ प्रातः काल।।११२।।

ॐ । हरि ॐ तत् सत् ।

अनन्तशक्ति सम्पन्नायै अदिति स्वरूपायै नमश्चक्रस्वरूपिणी जागृतायै महाशक्त्यै नमो नमः ।। ॐ ।।

अनन्त शक्ति सम्पन्ना, अदिति स्वरूपा, चक्रस्वरूपिणी जागृता भगवती महाशक्ति को बारम्बार प्रणाम है।। ॐ ।।

सर्वाधारभूता या शक्तिः सर्वत्रैव विराजते।
सरला सा महाशक्तिः कल्याणाय प्रजायताम् ।।

सर्वाधारभूता जो शक्ति सर्वत्र विराजमान है, वह महाशक्ति सभी साधकों का आसानी से कल्याण करे।

अथ चक्रविद्या समानाधिकरणम् । अथ चक्रविद्याप्रादुर्भावाधिकरणम् ।

अब चक्र विद्यासमानाधिकरण आरम्भ होता है। चक्रविद्या के प्रादुर्भाव सम्बन्धी अधिकरण को कहा जाता है।

चक्रांकितां चक्रनिभां च चक्रिणीं चक्राधिगम्यां च सुचक्रधारिणीम् ।
चक्रारपंक्तिरिव या च समाधिकारा तां चक्रिणीं चक्र विद्यां भजेऽहम् ।। ॐ ।।

चक्रांकिता, चक्रनिभा, चक्रों में प्राप्त होनेवाली, सुन्दर चक्र धारिणी, चक्र के अरों की पंक्ति की भाँति साम्यभाव वाली उस चक्रिणी या चक्रविद्या की मैं उपासना करता हूँ।। ॐ ।।

चक्रंशरीरं सम्प्रोक्तंचक्रंकालमयं जगत् ।
चक्रंसंसारसंसारः सर्वं चक्रप्रचक्रकम् ।।

शरीर भी चक्र है, काल को भी चक्र कहते हैं, संसार भी चक्र है। संसार का चक्र भी नाना चक्रों की भाँति चलता रहता है।

यथा वै क्रमते कालः चक्रंभ्रमति वै ततः।

एवं सर्वं महामाया चक्राकारं करोति च।।

ज्यों ज्यों काल की गति होती है त्यों त्यों चक्र घूमता रहता है। इस प्रकार महामाया समस्त संसार को चक्रवत् बनाती रहती है।

चक्रज्ञानं महद् ज्ञानं ज्ञानाद् ज्ञानतमं परम्।

सर्वं ज्ञात्वा ततश्चक्रज्ञानं कुर्याद् महामतिः।।

चक्रज्ञान बड़ा उत्तम ज्ञान है। इसलिये बुद्धिमान् साधक को चाहिए कि वह ..ं का ज्ञान प्राप्त करले।

चक्रज्ञानात् यत् किञ्चिद् ज्ञानं वा कृतं वा अधीतं वा अनुभूतं वा तत् सर्वं चक्रवत् परिक्रमति। चक्रज्ञानात् पूर्वापर-बाह्याभ्यन्तरानुभूतिविषयकं ज्ञानाधारं भवति।

चक्र ज्ञान से जो कुछ जाना, सुना, कृत और अधीत तथा अनुभूत रहता है वह सब चक्रवत् घूमता रहता है। पूर्वापर, बाहरी व भीतरी अनुभूति से सम्बन्धित सभी कुछ चक्रज्ञान से होता है और वह ज्ञान का आधार होता है।

तस्माच्च किञ्चिदपि कदाचिदपि श्रुतं वा दृष्टं वा ज्ञातं वा अनुभूतं वा सर्वं तत् समष्टिरूपेण प्रतिभाति।

इस ज्ञान से जो कुछ कहीं सुना, देखा, ज्ञात व अनुभूत रहता है, वह सब समष्टिरूप में एकाकार होकर प्रतीत होता है।

तत् प्रतिभासेन, तस्माद्वा एका अभ्युदयिकाशक्तिः समायाति। सा च धारणाख्या वा चेतनाख्या वा।

उस प्रतीति से एक अभ्युदयिका शक्ति आ जाती है और वह धारणात्मिका अथवा चेतनात्मिका होती है।

यदा प्रादुर्भवति तदा समष्टि सम्पन्नं ज्ञानं आधारभूतं अनुभूत्यात्मकं वा भवति।

जब वह शक्ति प्रादुर्भूत होती है तब समष्टि सम्पन्न ज्ञान अनुभूति परक होता है जो आधारभूत होता है।

सर्वं चक्रवत् परिवर्तते परिभ्रमति, परिज्ञायते च। अथवा सर्वसम्भूतपिण्डात्मकं एतद्विषयकं योगात्मकं महाशक्तिप्राप्त्युद्बोधकं

यदनुभूतिपरकं ज्ञानं तत् समष्टिरूपेण चक्रवत् चक्रेषु वा संस्थितं संज्ञानं सम्यक् प्रकारेण अनुभूतं परिपुष्टं भवति।

सभी कुछ चक्र की भाँति परिवर्तित होता है और मालूम भी पड़ता है। अथवा महाशक्ति की प्राप्ति के उद्बोधन का अनुभूति परक समष्टि रूप में और पिण्डरूप में जो योगात्मक ज्ञान है वह चक्रवत् है। चक्रों में संस्थित और अनुभूत संज्ञान भली प्रकार परिपुष्ट बनता है।

परिपुष्टिमात्रेण सर्वत्रैव सा दृष्टिः समायाति यां दृष्टिं देवगणाः पितरश्च अन्ये महामेधाविनो वाञ्छन्तिस्म।

परिपुष्ट मात्र से साधक को वह दृष्टि प्राप्त होती है जिसकी कामना देवगण, पितृगण तथा अन्य मेधासम्पन्न पुरुष करते हैं।

सैव तत्त्वात्मिका दृष्टिः समायाति यदा नरे।

तदा चक्रपरिज्ञानं चक्रविद्यात्मकं महत्।।

वही तत्त्वात्मिका दृष्टि जब मनुष्य को प्राप्त होती है तभी चक्र विद्या सम्बन्धी चक्र का श्रेष्ठ परिज्ञान उसे हुआ करता है।

जायते योगविद्यायां महायोगे विशेषतः।

ये लोकाः शक्तिसम्पन्नाः महायोगेन मण्डिताः।।

महाबोध समापन्नाः चक्रज्ञानविवर्जिताः।।

योग विद्या में, विशेष कर महायोग में वह चक्र ज्ञान साधक को होता है। जो लोग महायोग के द्वारा शक्ति सम्पन्न बन कर महाबोध सम्पन्न तो बन जाते हैं, फिर भी चक्रज्ञान से विवर्जित ही रहते हैं।

शक्तिपातविधौ ज्ञात्वा टंकविद्यां विशेषतः।

चक्रविद्यां च वै ज्ञात्वा योगी भवति मानवः।।

ऐसे लोग शक्तिपात विद्या के अन्तर्गत विशेष रूप से टंक विद्या को जान कर और चक्र विद्या का ज्ञान प्राप्त करके योगी बन जाया करते हैं।

स योगी योगसम्पन्नः चक्रविद्या विशारदः।

सर्वत्र मोदते तस्य अनिष्टं नैव जायते।।

वही योगी योग सम्पन्न है जो चक्र विद्या में प्रवीण होता है। वही सर्वत्र प्रमुदित रहता है और उसका कभी अनिष्ट नहीं होता है।

अनिष्ट निवारणार्थं सर्वविद्यात्मबोध संप्रचारार्थं तद् ज्ञानार्थं च चक्रविद्याज्ञानं विशेषरूपेण अधिगमनीयम् । चक्र-विद्यायां समानाधिकरण त्रयम् । प्रथम समानाधिकरणे आत्मबोध प्रत्यभिज्ञानम् । द्वितीयाधिकरणे तत्त्वबोधकरणम् । तृतीये च व्याधात संहति विशेषकम् ।।

अनिष्ट निवारण के लिये और सब प्रकार के आत्मबोध के प्रचार के लिये तथा आत्मज्ञान के लिये विशेष रूप में चक्र विद्या की प्राप्ति करनी चाहिये। चक्रविद्या में तीन समानाधिकरण हैं। प्रथम में आत्मबोधप्रत्यभिज्ञा, दूसरे में तत्त्वबोध प्रज्ञान, और तीसरे में व्याघात संहृति है।

एतत् त्रयं चक्ररूपेण अभिधीयते। एतच्च चक्रविद्यात्मकं ज्ञानम् ।।ॐ।।

इन तीन बातों को चक्र रूप से कहा जाता है। यही चक्रविद्यात्मक ज्ञान है।

किं चक्रं का च सा विद्या किं ज्ञानं तेन किं भवेत् ।

सर्वमेतन्मया वत्स प्रकाशः क्रियतेऽधुना।।

चक्र क्या है ? चक्र विद्या कौन सी है ? उसका ज्ञान क्या है और उस ज्ञान से क्या होता है ? यह सब, हे वत्स ! अब तुम्हारे सम्मुख प्रकट करती हूँ।

शक्तिपात समायुक्ताः परमानन्दमोदिताः।

टंकविद्याधिकारास्ते चक्रज्ञानाय तत् पुनः।।

शक्तिपात प्राप्त करके जो साधक परमानन्द से पूर्ण हो जाते हैं और तदनन्तर टंकविद्या में अधिकार प्राप्त करते हैं और तत्पश्चात् चक्रज्ञान के वे अधिकारी-

तेषां च या समापत्तिः तस्यापि परिपुष्टिका।

भूयाद्भव्यसमाकारा सुखिनः सन्तुते सदा।।

बन जाते हैं, उनकी यह समापत्ति उनकी साधना की और भी पुष्टि कर देती है। वे साधन सम्पत्ति से चमक पड़ते हैं, वे साधक सदा सुखी रहें।

अत एव प्रवक्षामि चक्रविद्यां सुधारिणीम् ।

अनिष्टवारिकां विद्यां तां ज्ञात्वा निर्भयो भव।।

इसलिये मैं धारण करने योग्य चक्रविद्या को बता रहों हूँ, जो विद्या अनिष्टों का निवारण करने वाली है। इसे जानकर तुम निर्भय बन जाओ।

शक्तिपात समायुक्ताः कृत्वा टंकं सुनिश्चितम् ।

पश्चान्न भीतिरायाति चक्रं तद् वारयिष्यति।।

शक्तिपात का अनुग्रह प्राप्त करके और भलीभाँति टंक करके फिर साधक को कोई भय नहीं रहता है, क्योंकि चक्र-ज्ञान भय को दूर भगा देता है।

अग्रे सर्वं विधास्यामि कार्यं वा कारणं तथा।

उभयं व्यष्टिरूपेण समष्टिं प्रापयामि त्वाम् ।।

मैं कार्य को और उसके कारण को पहिले ही सम्पन्न कर दूंगी, कार्य और कारण को व्यष्टि रूप से सिद्ध करके फिर तुम्हें समष्टि तक पहुंचा देती हूँ।

ये सन्ति भूमौ ननु शक्तिपातकाः ते शक्तियुक्ताश्च समर्थ भावकाः।

ते ज्ञानिनो योगविच ते वै तस्माच्च तेभ्यश्च नमो नमस्ते।।

इस पृथ्वी में जो भी शक्तिपात करने वाले सिद्ध हैं, शक्तिपातयुक्त समर्थ गुरू हैं, ज्ञानी हैं, योग विद्या के ज्ञाता हैं, उन सब महात्माओं को मेरा बार-बार प्रणाम है।

समर्थभावकास्ते वै पुरूषाः गुरूसंज्ञकाः।

शक्तिपातेन तत्त्वार्थज्ञापकाः ज्ञानदायिनः।।

जो पुरूष शक्तिपात की क्षमता रखते हैं, वे ही गुरू नाम से कहे जाते हैं। क्योंकि वे शक्तिपात के द्वारा तत्त्वार्थ को बता देते हैं और ज्ञानदाता होते हैं।

तेभ्यः सर्वत्र सम्भूय सर्वकारक तत्सनत् ।

रूपं प्रत्यक्षरूपेण मननीयास्तु ते सदा।। ॐ ।।

उन सभी गुरूओं से सर्वत्र तादात्म्य रखकर साधक सब कुछ कर सकता है। वे तत् और सत् के प्रत्यक्ष रूप हैं, उन गुरूओं का सदा सम्मान करना चाहिये।

अतः परं महायोगी गोरक्षः त्वां वदिष्यति।

किं चक्रं किं च तद् ज्ञानं तेन ज्ञातेन किं भवेत् ।। ॐ ।।

अब इसके बाद गोरक्ष तुम्हें बतायेगा कि चक्र क्या है, उसका ज्ञान क्या है, और उस ज्ञान से क्या होता है।

गोरक्ष ! गोरक्ष !

गोरक्ष ! गोरक्ष ?

गोरखवाणी :- अलख निरञ्जन ! अलख निरञ्जन ! अलख निरञ्जन। माँ ॐ । आदेश, आदेश नमो गुरू को आदेश। नमो गुरू को आदेश। साधक ! आज उस चक्रविद्या का प्रकरण खोल रहे हैं, जो शक्तिपात के ज्ञाता, शक्तिपात के अभ्यासी, शक्तिपात के जिज्ञासु

और शक्तिपात के प्रति निष्ठा श्रद्धा रखने वालों, समस्त के कल्याण के लिये है, यह चक्र क्या है ? यह भी एक बड़ी बात है। चक्र शरीर को भी कहते हैं, शरीर के अन्दर भी चक्र है, काल के चक्र को भी चक्र कहते हैं और संसार के चक्र को भी चक्र कहते हैं। चक्र का अर्थ होता है चक्कर लगाना। यह चक्कर जब तक विशेष रूप से बन्द नहीं होगा, इसमें स्थिरता नहीं आयेगी, तब तक थोड़ा बहुत विघ्न बने ही रहेंगे। परम रूप से जिसका बोध होता है हो जायेगा। ऐसा बोध अनुभव में ही आयेगा। तो उस अनुभव को ऐसा चमकना चाहिये, ऐसा सामने आना चाहिये, ऐसा निर्मल हो जाना चाहिए कि यह प्रतीति पूर्ण रूप से हो जाय कि अब हमने जिस विद्या को, जिस ज्ञान को, जिस शक्ति को पाया है, उसे पाकर जो काम किया है और उस काम का जो फल है, उस फल की जो अनुभूति हुई है, उसकी जो पुष्टि है, अब वह तुष्टि में आ जाय और निर्विघ्न हो जाय। ऐसी स्थिति आ जाने पर फिर कभी भय नहीं रहता और इसलिये आज के मनुष्य में, मां का कहना है कि यही भाव जगा दो। उसके भावों को बदल दो, पलट दो, और ऐसा बताओ कि जग का कल्याण योग विद्या से ही हो सकता है। चक्कर में चलने से नहीं हो सकता। जगकल्याण महायोग से हो सकता है। जग का कल्याण अपने आप को पहिचानने से हो सकता है, स्थिर हो जाओ, बहुत दौड़ चुके, बहुत घूम चुके, धुरी कमजोर हो चुकी, टूट न जाय, विध्वंस हो जायेगा। धुरी को मजबूत करलो, ठीक हो जायेगा। चक्र को कुछ मन्द करो, उसकी गति को कुछ स्थिर कर लो। आ गया है समय, इसलिये इस चक्रविद्या को भी बताया जा रहा है कि साधना में बैठने वाले या साधन सम्पन्न या साधना को प्राप्त हुआ साधक इस विद्या का ज्ञान प्राप्त कर ले और वह जगत् के कल्याण के लिये तैयार हो कर कमजोर धुरी को टूटने से बचाले। चक्कर को अधिक दौड़ने से बन्द कर दे, धुरी टूट जायेगी, चक्कर इधर का उधर पड़ जायेगा। ध्वंस ही हो रहा है। ध्वंस नहीं निर्माण करो। आ रहा है, दौड़ गई है लहर, चारों ओर से समुद्र में उफान आ गया है। चलो, बढ़ो आ जाओ, मैं साथ हूँ, मां भी साथ है, सब साथ हैं, गुरू भी साथ है। चलो, चलो, उठो।

२१-१-६३ सायंकाल।।११३।।

हरि ॐ तत् सत् ।

नमामि चक्रविद्याधिगमकारिणीं महाशक्ति सरस्वतीरूपाम् ।
चक्राणामधिष्ठात्रीं भगवतीं जागृतां कुण्डलिनीस्वरूपां आत्मबोधार्थम् ।। ॐ ।।

हरि ॐ तत् सत् । चक्र विद्या की समझ देने वाली सरस्वती रूपा चक्रों की अधिष्ठात्री, आत्मबोध के लिये जागृत हो कर कुण्डलिनी का रूप धारण करने वाली महाशक्ति भगवती को मैं प्रणाम करता हूँ।

अथ आत्मबोधप्रत्यभिज्ञा।।

अब आत्मबोध प्रत्यभिज्ञा सम्बन्धी विद्या आरम्भ की जाती है।

आत्मानं संस्तुतं कृत्वा आत्मबोधं विधाय च।
आत्मनः रूपमाधाय साधकः पुष्टिमान् भवेत् ।।

अपने आप से परिचित होकर आत्मबोध प्राप्त करके साधक अपना ही रूप धारण करके पुष्टिमान् बनता जाय।

चक्रविद्यायां आत्मबोधस्य परिपुष्टिः, तस्माच्च सन्तुष्टिः। आत्मस्वरूपं यः परिचिनोति, तस्यबोधं विधाय अनुभूतिं परिपुष्टां करोति। स एव तुष्टिं लभते।

चक्र विद्या में आत्मबोध की परिपुष्टि होती है, जो अपने स्वरूप से परिचित होता है यह विद्या उसकी अनुभूति और बोध को पुष्ट करती है। वही साधक तुष्टि भी प्राप्त करता है।

यदा च आत्मनि प्रत्याभासस्य अभ्युदयो भवति, यदा च परप्रत्ययाभासः जायते, यदा च सा स्वयमेव भगवती महामाया सबला, सफला सशक्ता च भवति, तदा साधकः कश्चिदपि स्वात्मानं परिचिनोति। स्वात्मस्वरूपं जानाति। स्वात्मनं पश्यति। स्वात्मानं समर्थं च प्राप्नोति। समर्थो अर्थवान् स एव च। ॐ ।

जब अपने भीतर प्रत्याभास का उदय होता है, जब पर (शिव) की प्रतीति का आभास होता है, जब वह भगवती महामाया स्वयमेव सबला, सफला, सशक्त बनती है, तब कोई भी साधक अपने को पहिचान लेता है, अपना स्वरूप जान लेता है। अपनी आत्मा के दर्शन कर लेता है। उसे लगता है कि अब मैं समर्थ हूँ यह समर्थ ही अर्थवान् है।

साधकः पश्चात् सन्तुष्टः परिपुष्टः सबलो वा भवति। आत्मज्ञाने आत्मबोधे आत्मानं परिचिनोति। तत् कथम् ? चक्रविद्याधिगमेन। यत् किंचित पूर्वं शक्तिपातविद्यौ समासादितं यच्च तुष्टं यच्च विशिष्टं परिशिष्टं टंकाधिकरणे वा समागत्य अनुभूय च अनुभूतिपरिपुष्टः पुनः पूर्वापरं प्रत्यागमनागमनेन परमपरात्मकत्वेन सर्वं तत् चक्रवत् करोति।।

साधक फिर सन्तुष्ट, परिपुष्ट और बलवान हो जाता है। आत्मज्ञान और आत्मबोध में अपने को जान लेता है। वह किस प्रकार ? चक्र विद्या को समझ लेने के कारण। शक्तिपात विधि में पहिले साधक ने जो कुछ प्राप्त किया है, टंक विद्या द्वारा जो भी अनुभूतियाँ परिपुष्ट हुई और जो सन्तुष्टि हुई वह सब अन्तर्ज्ञान साधक की बुद्धि में चक्र की भाँति पुनरावर्तित हो कर और भी पुष्ट बनता है।

यथा च भ्रमते चक्रंभ्रमणे भ्रमसंज्ञकम् ।

पूर्वापरं समादाय तस्माद् बोधस्य सात्विकी।।

जिस भाँति चक्र घूमता है, उस भ्रमण में पूर्व पर सब क्रमशः सामने आता चला जाता है, इस प्रकार बोध मंजता चला जाता है और सात्विक व शुद्ध हो जाता है।

सर्वं पुष्टं विधायैव बोधाय परिकल्पते।

सब भावों को पुष्ट करते हुए चक्र विद्या साधक को आत्मबोध देती है।

यदा च बोधसम्पन्नः साधकः तत् स्वरूपकम् ।

भूयो भूयश्च वै तत्र द्रष्टुं शक्नोति वै स्वयम् ।।

जब साधक बोध सम्पन्न हो जाता है तो साधक अपने स्वरूप को बार-बार अपने भीतर ही दर्शन करने में समर्थ हो जाता है।

यदा जानाति तत्सर्वं ज्ञानाधिकरणात्मकम् ।

आत्मानमात्मभावं च आत्मबोधं पुनः पुनः।।

तब साधक यह समझता है कि मैं ज्ञान का अधिकरण आत्मा हूँ। अपने को अपनी सत्ता को और आत्मबोध को बार-बार मनन करता रहता है।

आत्मा आत्मस्वरूपः सः साधकः आत्मबोधकः।

तदा च प्रतिरूपेण अभिज्ञा जायते शुभा।।

जब साधक अपने स्वरूप अपनी आत्मा और उसके ज्ञान को समझने लगता है तब प्रतिरूप से उसके प्रति साधक की अभिज्ञा हो जाती है।

अभिज्ञा अभिरूपज्ञा रूपरूपात्मकामहा।

रूपारूपार्थ बोधार्था समर्था सबला सती।।

अभिज्ञा का अर्थ यह है कि सम्मुख के रूप का ज्ञान, एक जैसे दो रूपों की एक रूपता का ज्ञान, प्रत्येक रूप के तत्वज्ञान का अर्थ समझने वाली बुद्धि सबल को समर्थ होकर साधक के सम्मुख आती है।

उद्बुद्धं सुप्तमात्रं वा ज्ञानं गोचरतां व्रजेत् ।

सर्वं चक्रबलेनैव तस्माच्चक्रस्थितो भव।।

तब सुप्तज्ञान उद्भूत होकर स्वयं सामने आ जाता है। यह सब चक्रविद्या के बल से होता है। इसलिये तुम चक्र-ज्ञान में सुस्थिर बन जाओ।

चक्रंपूर्वानुभूतं च उद्बुद्धं ज्ञानसंज्ञकम् ।

आत्मनोऽधिकरणं च तत्रैव स्थितिमान् भवेत् ।।

पूर्व में अनुभूत और उद्भूत ज्ञान ही आत्मा का अधिकरण है और साधक को चाहिये कि उसी में वह स्थितिमान् बने।

तदा स चक्रचक्रज्ञः चक्राधारे स्थितः स्वयम् ।

चक्राणां चक्रभूतीनां विभूतीनां समर्थकः।।

जायते बलसम्पन्नः पुष्टस्तुष्टश्च जायते।।

तब साधक चक्र के चक्रों का जानने वाला बनकर चक्राधार में स्थिति प्राप्त कर लेता है और चक्रों की नाना प्रकार की विभूतियों का समर्थक बनता है। इस प्रकार बल सम्पन्न, तुष्ट और पुष्ट बन जाता है।

यो वै चक्रं न जानाति न च चक्रात्मभुतिकः।

तदा तु स्वल्पमेवास्य स्वल्पं ज्ञानं प्रवर्तते।।

जो चक्र को नहीं जानता है और जिसने अपने अन्दर चक्रों की अनुभूति नहीं की, उस साधक को अल्प-ज्ञान होता है और पूर्णज्ञान से वंचित रहता है।

विशिष्टं ज्ञानसम्पन्नं योगिनं योगधारकम् ।

चक्रात्मकं महद् ज्ञानं तत्रैव जायते ध्रुवम् ।।

विशिष्ट ज्ञान सम्पन्न योगाभ्यासी योगी का चक्रों का श्रेष्ठ ज्ञान स्वयं ही और निश्चय ही इसी शक्तिपात में हो जाता है।

कथं तत् श्रृणु त्वं वत्स तद् ज्ञानं जायते हि यत् ।

पूर्वं पश्चात् स्थितं चैव अनुभूतं विशेषतः।।

हे वत्स ! जिस प्रकार ऐसा ज्ञान होता है उसे सुनो। पहिले काल में सुना हुआ, ज्ञात हुआ और विशेष रूप में अनुभूत हुआ जो कुछ भी रहता है-

तत् सर्वं ज्ञानमागारं प्रत्यागारं सुसागरम् ।

सर्वं सर्वमयं तत्र आत्मन्येवाभिजायते।।

यह सभी कुछ आत्मा के आगार में और प्रत्यागार में ही रहता है, आत्मा ज्ञान का समुद्र है। सब भावों से परिपूर्ण सब कुछ आत्मा के भीतर ही रहता है और वहीं प्रकट होता है।

एषा भूतिः परा भूतिः अनुभूतिस्तु प्रोच्यते।

अनुभूतिं बिना नैव कर्तुं किञ्चिच्च शक्यते।।

साधक का यह एक श्रेष्ठ ऐश्वर्य है जिसे हम अनुभूति कहते हैं। अनुभूति के बिना साधक कुछ भी नहीं कर सकता है।

तस्मादात्मबलं लब्ध्वा ज्ञात्वा तदनुभूय च।

आत्मन्येव समाकारः पुष्टस्तुष्टो भवेन्नरः।।

इसलिये साधक को चाहिये कि आत्मबल प्राप्त कर के, उसे जान कर व अनुभव करके अपनी आत्मा के भीतर ही तद्वत् होकर तुष्ट और पुष्ट हो जाय।

यदा वै ईदृशी धारा भुवि सद्यः समाहिता।

तदा वै धारणं कृत्वा याति वै नात्र संशयः।।

जब ऐसी विचारधारा संसार में व्याप्त हो जायेगी, लोक का कल्याण इसी धारणा द्वारा निःसन्देह हो जायेगा।

कल्याणं निश्चितं तेषां सर्वेषां युगधर्मिणाम् ।

भविष्यति महाकाले महायोगस्थितो भवेत् ।।

युगधर्मी सभी लोगों का निश्चय ही कल्याण होगा। इस कलिकाल में मनुष्य को चाहिये कि महायोग की साधना में स्थिर होकर अपना हित करें।

गोरखवाणीः- ॐ ।। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। सब कुछ करने के बाद जो पूर्व में बताया गया था उसकी अनुभूति जब पुष्ट कराई थी, आधार विद्या के आधार पर तो केवल आधार मात्र की पुष्टि थी। और पुष्टि के बाद तुष्टि भी नहीं होनी चाहिये जिसे सन्तुष्टि भी कहते हैं। वह अपने आप में ही विराजमान रहती है। किन्तु उसकी प्राप्ति कैसे होती है ? उसका उद्गम कैसे होता है ? उसका जो अनुभव स्वल्प स्वल्प

किया था वह छिद्र होकर के स्थायी रूप में कैसे रह सकता है ? भावों में घोर परिवर्तन कैसे किया जा सकता है ? वह सत्ता इस चक्रविद्या में बताई जा रही है। चक्रविद्या का तात्पर्य भलीभांति समझ लेना चाहिये। यह चक्र विद्या है। चक्र शब्द का अर्थ होता है, कुम्हार का चक्का, वह घूमता है, उस पर मिट्टी का पिण्ड चढ़ाया जाता है। मिट्टी के एक पिण्ड द्वारा असंख्य मूर्तियों का निर्माण होता है, तत्त्व एक है, आकार भेद में विभिन्न है। चक्रपर चढ़कर तत्त्व पिण्डाकार होते हैं। पिण्डाकार होने पर कुम्हार की कल्पना, कुम्भकार की भावना और उसकी इच्छा से उस एक ही मृत्पिण्ड से अनेक रूपाकार हो जाते हैं। इसी तरह यह सारा चक्र है। इस पर तत्त्व उस महाविराट् शक्ति के हाथों से निर्मित हो रहे हैं। आकृतियां आ रही हैं। बीज बोया जा रहा है। और यदि उन सभी निर्मित मूर्तियों को ध्वंस कर दिया जाय तो सब मृत्पिण्ड में ही आ जाती हैं। जो है सो है, हो जाता है। इसीलिये योगियों के अपर मार्ग वाले इस चक्र को द्वैताद्वैत, विशिष्टाद्वैत, महाद्वैत, द्वैतद्वैत सब अर्थों में ले जाते हैं। किन्तु सब होने पर मूल बात तो तत्त्व के अनुभव की है। जब आत्मबोध होने लगता है, आत्मा क्या है ? अरे ज्ञान का एक आधार मात्र है, ज्ञान को प्राप्त करने की सत्ता है। आधारभूमि है, वही ज्ञान का आकर्षण केन्द्र है। उसी से बोध की अनुभूति होती है। तो उसका ज्ञान, उसका बोध उसका अनुभव जब होने लगता है, जब उसके पहिचानने की शक्ति मिलने लगती है तब अपने आप में जो इधर उधर का कूड़ा करकट आया है, इधर उधर के कचरे वचरे आये हुए हैं, वे तो स्वयं ही दूर होने लगते हैं। अरे अग्नि के जलने पर चाहे वह घास फूस हो, चाहे वह गीली लकड़ी हो, सब जल ही जाती है। तो अग्नि का एक अंगार बन जाता है जो धुंये से रहित होता है। इसी तरह वह चक्र पर चलते चलते विभिन्न आधारों को पार करते करते, जिस प्रकार धूम का आवरण छूटा तो अंगार बन गया, लकड़ी का आधार अग्नि ने अपने में समा लिया तो अंगार बन गया। इसी तरह से जब आत्मबोध का भान होता है, चक्कर चलता चलता अंगारवत् जलता है। जब उसमें बहुत तेजी आ जाती है और उसका अनुभव भी होने लगता है, तब उसको आत्मबोध कहते हैं। उसी को प्रत्यभिज्ञा कहा है। प्रत्यभिज्ञा का तात्पर्य, उसका अर्थ तो यही होता है ना कि जो है उसके प्रति अभि और ज्ञा कर देना। अभि का मतलब होता है सब तरफ से और ज्ञा का मतलब होता है जानना। तो पूर्वापर चारों तरफ जैसे चक्कर में इधर उधर के सारे वातावरणों को समेट कर तुम भी उसको, आत्मा भी जिसको कहते हैं, अपनी क्रियाओं के द्वारा, अपनी मुद्राओं के द्वारा, अपने साधनों के द्वारा जान लेते हो तो वहाँ पर वही अनुभूति करनी होती है। वह जो वही अनुभूति है, उसको जो उसके स्वरूप का ज्ञान होता है, उसको जो सब कुछ समझना है और उसके आगे की कड़ी के लिये द्वार खुलता है वही है प्रत्यभिज्ञा और आत्मबोध-प्रत्यभिज्ञा इस चक्र विद्या का पहिला प्रकरण है जिसमें कि परापरा पूर्णापूर्णा महामहा अनुभूति की पुष्टि और तुष्टि का कारण होगा। और वही विशेष आधार के रूप में स्वयं ही साधक के अन्तर्गत आभासित होने लगेगा, उसका अनुभव करो ।। ॐ ।।

२२-१-६३ प्रातःकाल ।।११४।।

शक्ति बन्दे महादिव्यां सर्वलोक हिताय च।

बलं च सर्वकल्याणं येन लोके भविष्यति।। ॐ ।।

मैं समस्त लोक का हित करने वाली महा दिव्य शक्ति की वन्दना करता हूं जिससे लोक में बल एवं समस्त कल्याण की प्राप्ति होगी। ॐ ।

शरीरं चक्रवद् ज्ञेयं चक्री आत्मा तथैव च।

चक्र चक्र विदारूपः तत्त्वविज्ञः भवेद् यदि।।

इस शरीर को चक्र समझना चाहिये और आत्मा को चक्री समझना चाहिये। तत्त्वज्ञानी यदि है तो वह चक्र और चक्रज्ञ सम्बन्ध कहेगा (जैसे क्षेत्र व क्षेत्रज्ञ)।

तदा सन्तुलनं नित्यं क्रिया ज्ञानात्मकं द्वयम् ।

संस्तुतं जायते तत्र चक्रंत्वं ज्ञातुमर्हसि।।

इस प्रकार क्रिया और ज्ञान दोनों का नित्य सन्तुलन बना रहता है। चक्र भली भांति परिचित हो जाता है और तुम चक्री ज्ञाता बनकर अपने चक्र को जान सकते हो।

चक्रमेकं शरीरं च द्वितीयं बुद्धि संज्ञकम् ।

तृतीयं चित्त रूपेण चतुर्थं मनसा सह।।

एक तो शरीर चक्र है, दूसरा बुद्धि नामक चक्र है, तीसरा चित्त का चक्र है और चौथा मन का चक्र है।

चक्रंतच्चक्ररूपेण नेमयस्तत्र संस्थिताः।

सर्वेषां घट्टिका रूपा तस्य विज्ञा प्रजायते।।

इस चक्र में ये सब चक्र नेमि की भांति जुड़े रहते हैं और साधक का विशिष्ट ज्ञान उन सभी नेमियों के परस्पर संघर्ष का बना ही रहता है।

घटनाद् घटिका घट्टा एषा संघात्मिका स्थितिः।।

नेमयः धुरिसंयुक्ता भावरूपा परापरा।।

ये परस्पर रगड़ खाते रहते हैं अतः इन्हें घटिका या घट्ट कहते हैं। इनकी स्थिति संघात्मिका है। छोटे बड़े भाव रूप में वे सब धुरी में नेमियों की भाँति जुड़े रहते हैं।

अत्रैव मध्यमा मध्ये भावे भावात्मसंज्ञके।

एकं भावमभिव्याप्य द्योतते तत्त्व ज्योतिषाम् ।।

इस पूरे संघात के बीच में, नाना भाँति के भावों के मध्य में एक प्रधान भाव सबको व्याप्त करके सदा प्रकाशित होता रहता है।

ज्योतिस्तद्भसिनी चा या या च प्राणनिबन्धिनी।

प्राणानां रोधिनी या च सा शक्तिः प्राणधारिणी।।

जो ज्योति उस प्रधान भाव को प्रकाशित करती है, वह प्राणों से बंधी है वही प्राणों का निरोध भी करती है, वही प्राणधारिणीशक्ति है।

प्रत्यभिज्ञास्वरूपेण साधकैर्ज्ञायते च सा।।

साधक लोग प्रत्यभिज्ञा के रूप में उसे जानते हैं।

अभ्यन्तरे या च विराजते शुभा या प्राणशक्तिश्च महाप्रबोधिनी।

या ज्ञानरूपा च क्रियावती च इच्छास्वरूपा च विराजते स्फुटम् ।।

महाप्रबोधशालिनी जो भीतर प्राणशक्ति विराजमान है, वही इच्छा रूप में, क्रिया रूप में और ज्ञान रूप में विराजमान रहती है।

सा एकरूपा च अनन्तरूपा सा प्रत्यभिज्ञा कथिता बुधैः पुरा।।

वह एकरूपा होते हुए भी अनन्त रूपा है और विद्वान लोगों ने पूर्वकाल में उसे प्रत्यभिज्ञा कहा है।

तस्मात् प्रत्यभिज्ञा ज्ञानं श्रेयस्करम् । प्रत्यभिज्ञासंचालिका या शक्तिः तामेव स्मरयति, तामेव बोधयति, या च महादिव्या शक्तिः समुद्भूता अदितिः आदित्यस्वरूपिणी चिद्रूपिणी सैव शक्तिः आनन्दस्वरूपिणी सैव शक्तिः समर्थिका। सा च शक्तिः पूर्वापर रूपेण अभ्युदयाय अभ्युद्गता अभिज्ञाता अभिपरिचिता, अभिहृदया अभिगेया मननीया च।।

अतः प्रत्यभिज्ञा का ज्ञान श्रेयस्कर है। प्रत्यभिज्ञा की जो संचालिका शक्ति है, उसी का बोध कराती है। शक्ति समद्भूता जो महादिव्य आदित्य स्वरूपिणी अदिति है, वही चिद्रूपिणी शक्ति आनन्दरूपा और समर्थ भी है। वही शक्ति जागृता होकर साधक के अभ्युदय के लिये भली-भाँति परिचित होकर हृदय में बनी रहती है, उसी का मनन करना चाहिये।

तामेव उद्बुद्धां परिचालिकां शक्तिं यां मेधां वा धारणां वा अभिज्ञां वा कारयति तां वदन्ति मनीषिणः प्रत्यभिज्ञा इति ।। ॐ ।।

उसी जागृता परिचालिका शक्ति को जिसे विद्वान् लोग मेधा धारणा व अभिज्ञा कहते हैं उसे ही प्रत्यभिज्ञा कहा जाता है। ॐ ।

प्रत्यभिज्ञा ज्ञानात् चक्रवद् दृढास्थितिः।। १।।

प्रत्यभिज्ञा के ज्ञान से चक्रवत् दृढ़स्थिति हो जाती है।

आत्मबोधे स्वरूपस्थितिः।। २।।

फिर आत्मबोध में स्वरूप की स्थिति हो जाती है।

स्वरुपस्थित्याभासः।। ३।।

स्वरूपस्थिति से प्रत्याभास हो जाता है।

स्वरूपस्थिति कारणात् स्वरूप संस्थानात् सर्व कृतमभ्यस्तं ज्ञातं अनुभूतं परिपुष्टं भवति।। ४।। परिपुष्टिकरणाय प्रत्यभिज्ञा विशेषरूपेण आधारभूता वर्तते।।५।। ॐ ।।

स्वरूप में स्थिति होने से सब कुछ अभ्यस्त, ज्ञात, अनुभूत बातें परिपुष्ट हो जाती हैं। उस परिपुष्टि के लिए ही विशेष रूप से प्रत्यभिज्ञा आधारभूता होती है और उसकी महत्ता है। ॐ ।

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। ॐ । यह प्रकरण आत्मबोध–प्रत्यभिज्ञा का है। इसमें तीन बातें हैं। एक आत्मा शब्द है, बोध शब्द है, प्रत्यभिज्ञा शब्द है। ऐसा माँ का कहना है कि सभी लोग आत्मा के परिचय को जानने की चेष्टा करते हैं और उसके आगे गये हुए आत्मा और परमात्मा को एकाकार रूप में देखते हैं, मानते हैं। जानते हैं और ऐसा ही कहना भी है कि एक से दो और दो से एक हो जाता है।

एक सत्ता से दो सत्ता होती हैं और फिर दो सत्ताओं का एक सत्ता में समावेश हो जाता है। तो यहाँ तो खेल एक और दो का और दो तथा एक का आरम्भ से चला आ रहा है। इस चक्कर में सब चक्रवत् घूम रहे हैं। और जब इस ज्ञान की अनुभूति हो जाती है और तब तो फिर ऐसी ही बात हो जाती है कि जैसे एक कमण्डलु में जल भर दिया जाय और उसमें नमक डाल दिया जाय तो वह मिल गया। एकाकार हो गया, पर उसने अपनी सत्ता उसमें बदल दी। जल का रूप बदल दिया। रूप तो क्या बदला, स्वाद बदला। रूप तो इतना हल्का बदला कि पहिचाना नहीं जाता। रूप भी बदलता है। स्वाद भी बदलता है। ऐसे ही समझो कि पिण्ड तत्त्व है, पिण्ड तत्त्व में जो प्रकाश ज्योति आती है वह रूप भी बदलती है और स्वाद भी बदलती है और जब ज्योति निकल जाती है तो फिर पिण्ड ही पिण्ड रह जाता है। तो इसी को एक और दो और दो को एक कहते हैं। पर हम इस झंझट और झगड़े में नहीं पड़ना चाहते हैं। होने दो जो हुआ, होता है, यहाँ तो सीधे चलना है। बस एक और दो इसी में मिल जायेगा। दो और एक भी उसी में आ जायेगा। यह तो संक्षेप में योग के मार्ग वाले साधकों को यह बताना था कि उन्होंने जो अपनी क्रियायें, मुद्रायें, साधना सबकुछ किया है, उससे उन्होंने जो कुछ अपना

टंकन करके, अपने आधार को अनुभूति रूप में किया है यह सब अनुभूति ऐसी होती है कि जो पुष्ट होती है और उससे तुष्टि भी होती है। तो यहां पर माँ की इच्छा। हमें ज्यादा ज्ञान के चक्कर में नहीं पड़ना है। हमें तो खाली चक्र विद्या क्या है, यह समझना है। और आत्मा का बोध परमात्मा का बोध और उसमें एक का दो, दो का एक हो जाने से हमारा तात्पर्य नहीं है। हमें तो सीधे पहुंचना है। जो कुछ एक है तो एक में ही। और दो है तो दो को ले जाकर फिर एक में ही पहुंचना है। धुरी पर ही पहुंचना है। और धुरी ही ठीक है। और उस धुरी से जो महाधुरी है, उस महाधुरी तक एक सूत्र जोड़ना है। तो दोनों का सम्बन्ध स्थापित रहेगा, और सूत्र हटा लो, पृथक् भी होगा। सूत्र जुड़ा लो एक भी होगा।

कहाँ एक कहाँ दो। यह तो सूत्र का सम्बन्ध है। यह तो सरल से समझने की बात है। ज्यादा चक्कर में पड़ने की बात नहीं। जैसे एक चक्र है, उसमें कई धुरे जुड़ जाते हैं। छोटे, छोटे, छोटे, छोटे, करके फिर एक गोलाकार चक्र बन जाता है। यह चक्र जब तक धुरी तक नहीं होता तो चलता नहीं। चल नहीं सकता। धुरी भी उस महाधुरी से सम्बन्धित होती है, जो उसे जोड़े रहती है। तो यह साधारण बात है। बहुत इसका झगड़ा नहीं बढ़ाता हूँ। सीधे सीधे बताता हूँ कि समझ लो। चक्र विद्या इसलिए बताई गयी है कि जैसे चक्र में कई चीजों का संयोग हो गया तो उस संयोग होने पर भी नहीं चलता। उसमें नहीं, अनेक हैं। लेकिन अनेक होकर जब वह धुरी से संयुक्त हो जाता है तो एक हो जाता है और महाधुरी से सम्बन्धित होकर परम अलख निरञ्जन हो जाता है। उसी को देखना, उसी को पहिचानना, उसी का अनुभव करना, सभी ने बताया है तो उसके पश्चात् जो अनुभव हुआ है उसका बोध देकर उसको फिर से कसौटी पर कसना होगा। यह चक्र विद्या का काम होगा। ॐ ।।

२२-१-६३ सायंकाल ।।११५।।

बोध बोध समा सत्तां आत्मबोधविमण्डिताम् ।
पण्डितां पिण्डज्ञानस्य संपिण्डात्मकभाविनीम् ।।
पिण्डां पिण्डैकबोधाय समर्थां आत्मबोधिनीम् ।।

बोध को उद्बोधन कर के सत्ता में आने वाली, आत्मबोध से विमण्डित, पिण्डदेह के ज्ञान में पण्डित, आत्मा और पिण्ड को एक पिण्डात्मक रूप देने वाली, उस सम्पूर्ण पिण्डब्रह्माण्ड का बोध कराने में समर्थ को मैं प्रणाम करता हूँ।

यत्प्रोक्तं आत्मबोधप्रत्यभिज्ञात्मकं ज्ञानं तत् सर्वं सफलं भवतु। आत्मबोध कथं भवति ? कथं च तस्य प्रत्यभिज्ञा जायते कथं वा तद् ज्ञानं प्रत्यभिज्ञासमुद्भूतं भवति। सर्वं तत् साध .वरैः स्वयमेवानुभूयते ज्ञायते च, आत्मसात् क्रियते च। आत्मबोधस्य किं लक्षणम् ? तदपि सर्वं परिपुष्टं पुरतः एव प्रतिभासते।

आत्मबोध प्रत्यभिज्ञात्मक जो ज्ञान कहा गया है वह सफल बने। आत्मबोध कैसे होता है ? उसकी प्रत्यभिज्ञा कैसे होती है ? और प्रत्यभिज्ञासम्भूत वह ज्ञान कैसे होता है ? वह सब उत्तम साधकों को स्वयं अनुभव और ज्ञात होता रहता है और उसे वे आत्मसात् करते हैं। आत्मबोध का क्या लक्षण है ? वह भी परिपुष्ट होकर सामने आ जाता है।

यदा प्रसन्ना परमार्थदायिनी सा वै सदा नित्यसरस्वती स्वयम् ।
विभिन्नरूपेण समागतायाः सा आत्मबोधं कथयिष्यति स्वयम् ।।

जब परमार्थदायिनी सरस्वती स्वयं प्राप्त हो जाती है, तो वह नाना प्रकार से प्रकट होकर और उपस्थित होकर स्वयं आत्मबोध करा देगी।

लक्षणं आत्मबोधस्य श्रूयतां हितकारकम् ।
अनुभूतं महद् ज्ञानं सद्य एव स्वयं विधौ।।

आत्मबोध का हितकारक लक्षण सुना। साधक को शक्तिपात-विधि में स्वयं ही महा ज्ञान शीघ्र ही अनुभव में आ जाता है।

स्फुरणं प्राप्यते तत्र आत्मबोधप्रिया च या।
यदा वै आत्मबोधस्य अनुभूतिस्तु सा भवेत् ।।

शक्तिपात में ज्ञान का स्फुरण प्राप्त हो जाता है और आत्मबोध की आनन्दायिनी अनुभूति साधक को जब होती है:-

तदा तु दिव्यरूपेण भावसत्ता स्फुटा भवेत् ।।

तब भावसत्ता दिव्यरूप से स्पष्ट हो जाती है।

भावानां परिवर्तनं विधियुक्तं बोधस्य तल्लक्षणम् ।
पूर्वं सात्विक रूप मेवमतुलं संयाति तत्त्वं पुरः।।

बोध का सर्वप्रथम यही लक्षण है कि नियमित रूप में साधक के भावों में परिवर्तन होता है। पहिले अतिशय रूप में सात्विक भाव साधक के सम्मुख प्रकट होते हैं।

अभ्युदयस्य सात्विकानां भावानां प्रथमं लक्षणम् । यदा च सर्वजनभावात्मिका भावना सर्वत्र समत्वभावना जायते तदा कृतक्रियाकार्यकाले अनुभूतिः जायते। किं चात्र एतादृशी अनुभूतिः तदा एतत् परिस्फुटं भवति यत्तेन कृतकार्येण पुण्यविधेन सर्वं प्रत्यक्षीकृतम् ।

सात्विक भावों का उदय होना ही सर्वप्रथम लक्षण है। जब समस्त जन की हित भावना सर्वत्र समता का भाव उदित होता है तब साधक को क्रियाकाल में उस भाव की अनुभूति होती है। ऐसी अनुभूति होती है कि साधक ने जो भी पुण्य कर्म किये हैं वे उसके प्रत्यक्ष में आ गये हैं।

यदि चैवं भवति यद् स्वल्परूपेण निर्विकारः निरहंकारः, निर्ममत्वभावना अथवा सर्वत्रैव समत्व ममत्व कर्तृत्व भोक्तृत्व भावना परिस्फुटा भवति तदा आत्मपरिबोधस्य लक्षणं ज्ञायते।

यदि ऐसा हो तो स्वल्परूप में साधक में निर्विकार, निरहंकार और ममत्वहीनता की भावना परिस्फुट होती है। अथवा कर्तृत्व भोक्तृत्व में ममत्व और समत्व भावना का उदय होना भी आत्मबोध का लक्षण है।

एषा भावना यथायथैव परिष्कृता भवति, यथायथैव परिपुष्टा भवति तथा तथैव साधके परिपुष्टिभावः समायाति। यदा च एतादृशस्तुष्टि भावः आगच्छति तदानुभूतिर्भवति ज्ञायते च यत् आत्मबोधाय समर्थोऽहमात्मानं ज्ञातुं शक्नोमि, आत्मानं परिचेतुं शक्नोमि, आत्मानं द्रष्टुं शक्नोमि, आत्मभावं च सर्वत्र आत्मगतं ज्ञातुं शक्नोमि।

यह भावना ज्यों ज्यों परिष्कृत होती रहती है त्यों त्यों परिपुष्ट भी होती जाती है और साधक में भी भाव परिपुष्टि आती जाती है। इस प्रकार के तुष्टिभाव के आने पर ऐसा प्रतीत होता है कि मैं आत्मबोध करने में समर्थ हो गया हूँ और आत्मा को जान और पहिचान सकता हूँ। आत्मा को देख सकता हूँ और सर्वत्र आत्मभाव रखकर आत्मा को जान सकता हूँ।

आत्मा न स्थूलरूपेण कुत्रापि दृश्यते। न च तत्र स्थूलदृष्टिः। न च तत्र विधेर्व्यापकता। न च तत्र कारणत्वभावना। न च तत्र प्राप्याप्राप्यक गम्यागमक बोधात्मकत्वसर्वभावना।।

आत्मा स्थूल रूप से कहीं भी नहीं दीखती है। आत्मज्ञान में स्थूलदृष्टि का काम नहीं है, और न ही वहाँ विशेष नियम की व्यापकता है। वहाँ कार्य कारण भाव भी नहीं है। वहाँ प्राप्य अप्राप्य भाव भी नहीं है और गम्य-गमक भाव भी नहीं रहता है।

अपि तु तत्र एका भावना ज्ञानाधिकरणात्मकत्वेन उपरिष्ठात् एकतत्त्वसमानाधिकरणभावना एकाधिकरणभावना विद्यते। य एवं जानाति स एव आत्मभावं परिचिनोति।। ॐ ।।

अपि तु वहाँ एकतत्त्व की समानाधिकरण भावना और ज्ञानाधिकरण भावना व एकाधिकरण भावना रहती है। जो ऐसा जानता है वही आत्मभाव से परिचित होता है ।। ॐ।।

एक एव स एकत्वमापन्नः द्वितीयभाव- समापन्नः, एकत्वे द्वितीयत्वे द्वितीयो वा तत्समापन्नः। प्रकाशशीलता शक्तिशीलता आत्मन्येव विराजते। तदेव तद् वदन्ति मनीषिणः "आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो निदिध्यासितव्यो मन्तव्यः"। आत्मबोधस्तु तदैव भवति, अनेन ज्ञानेन साधनाकाले वा

वाह्यपरिस्थितौ वा अभ्यन्तरे च सर्वमेतादृशं ज्ञानं भविष्यति यत् प्रकाशशीलता विराजते, स्फुरणा च मयि विद्यते। ज्योतिश्च मयि विद्यते, प्रकाशश्च मयि विद्यते।

एकत्व भावापन्न वह एक ही द्वितीय भाव को प्राप्त हुआ है। एकत्व और द्वितीयत्व में द्वितीय एक में ही समाविष्ट या समन्वित है। प्रकाशशीलता और शक्तिमान आत्मा के भीतर ही विराजमान है। इसीलिये मनीषी ऋषियों ने कहा है, कि "आत्मा के विषय में श्रवण करो, उसे जानो, उसका निदिध्यासन करो और उसे देखो", आत्मबोध तभी होता है जब जानता है कि स्फुरणा, प्रकाशशीलता, ज्योति सब मेरे ही भीतर है।

एतादृशं ज्ञानमात्मबोधस्य लक्षणम् । तदा ज्ञायतां सम्प्रति केनापि प्रकारेण आत्मबोधः समायाति। प्रस्फुटितो वा भवति, अंकुरितो वा भवति।।

ऐसा ज्ञान होना आत्मबोध का लक्षण है। अब यह समझना है कि किस तरह आत्मबोध आता है या अंकुरित होता है।

कथयन्ति च सर्वे आत्मानं ते जानन्ति आत्मानं ते पश्यन्ति, एतत्तु सर्वं कथनमात्रम् । यावच्च साधनास्थितौ तद्ज्ञानं नाधिगतं, न सा परिचिता।।

यह तो सभी बोलते हैं कि वे आत्मा के बारे में जानते हैं और देखते हैं, किन्तु उनका यह कथन मात्र है। साधना काल में आज तक वह ज्ञान प्राप्त नहीं होता तब तक उस स्थिति से परिचय नहीं होता है।

प्रकाशशीलता लब्धात्मिकाशक्तिः हृदि सन्निविष्टा भवति। यदा च एतादृशी शक्तिः हृदि सन्निविष्टा भवति तदा हृदये अथवा तद्विषये सर्वनिर्मलं निर्विकल्पकं ज्ञानं अनुभवस्वरूपकं बोधमण्डितं भावात्मकं लिंगात्मकं अलिंगात्मकं, अप्रत्यायितात्मकं सर्वं सुस्पष्टं भवति ।। ॐ ।।

जब तक प्रकाशशीलता और लब्धात्मिका शक्ति हृदय में सन्निविष्ट नहीं होती तब तक कथन मात्र ही है। जब ऐसी शक्ति हृदय में सन्निविष्ट होती है अथवा तद्विषय में सर्वनिर्मल, निर्विकल्पात्मक ज्ञान अनुभव में आकर बोधमण्डित भावात्मक लिंगात्मक होता है तब अप्रतीत्यात्मक अलिंगात्मक भाव भी सुस्पष्ट हो जाता है।

एतावदेव ज्ञानं आत्मबोधपरकम् । एतत् सर्वं ज्ञानं या धारणा अधिगमयति सा धारणा प्रत्यभिज्ञा इति ज्ञेया। अनया प्रत्यभिज्ञया शनैः शनैः सर्वं स्वाधीनम् ।। ॐ ।। गोरक्ष !

आत्मबोधपरक इतना ही ज्ञान है। उपर्युक्त सब ज्ञान को जो धारणा अधिगत कराती है उस धारणा को प्रत्यभिज्ञा कहा जाता है। प्रत्यभिज्ञा के द्वारा सभी कुछ स्वाधीन हो जाता है । ॐ ।। गोरक्ष !

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। ॐ । जो बात बताई जा रही है वह आत्मबोध की है और उस आत्मबोध को बताया कि प्रत्यभिज्ञा बताती है तो सार सार निचोड़ की बात यही है कि आत्मा का बोध कैसे होगा ? और उसके लक्षण क्या होंगे ? यह जानना चाहिये कि आत्मा को जानने के लिये स्थूल दृष्टि काम नहीं देती है। ये चमड़ी की आँख काम नहीं देती हैं। वहां तो फिर वही सूक्ष्म से सूक्ष्म दृष्टि ही चाहिये और वह सूक्ष्म दृष्टि शक्तिसम्पन्न को मिलती है और शक्ति सम्पन्नता अपने साधन में रत होने वाले को ही मिलती है और शीघ्र से शीघ्र उस साधक को मिलती है जो टंक विद्या का अधिकारी हो जाता है जो आधार विद्या को जान लेता है, जो चक्रविद्या को भी समझ लेता है। ऐसा साधक जिसकी शक्ति पुष्ट हो गई हो, जिसमें शक्ति आने लगी हो, जिसमें शक्ति जागने लगी हो, ज्ञान का अनुभव करने लगा हो, तब आत्मबोध की स्थिति आती है और आत्मबोध का लक्षण यही है कि साधक अपने आप में धीरे धीरे आनन्द में मग्न होने लगता है। यह समझने लगता है, मैं भी कुछ हूं, मुझमें भी कुछ है। यह "मुझ" ही आत्म-बोध का एक चरण है और जो "मुझ" है वह एक एक चरण ही नहीं है, वह सब कुछ का वरण भी करता है। संवरण भी करता है और फिर उसके बाद जब वह कुछ बलवान् हो जाता तो संचरण और स्पन्दन भी करने लगता है, पर वह आगे की बात है। पहिले की बात तो इतनी है कि जिसे कहते हैं कि वह अपने आपको पहिचानने लगा है। बस अपने आप से पहिली पहिचान ही आत्मबोध है और उसको ऐसी भावना ऐसी धारणा करती है जिसमें समता ममता होती है, कल्याण होता है और रागद्वेष की भावना स्वयं ही धीरे-धीरे नष्ट होती हुई ऐसे स्थल पर आ जाती है, ऐसी जगह बनाने लगती है, जहां पर उसे हल्का हल्का अच्छा प्रकाश, प्रकाश की शक्ति का अनुभव होने लगता है और फिर वह अपने में रमने लगता है। यह अपने में रमना ही अपने आप को पहचानना है, और आत्मा के बोध का अनुभव करना है। यह साधक की साधना का फल है, और ऐसा हो जाता है तो आगे पीछे जितना बताया जाता है तब चलता है चक्र। तब चक्र ऐसा चलता है कि इस शरीर चक्र में ही कई चक्र घूम जाते हैं और उन कई चक्रों में घूमते घूमते कई शक्तियां आ जाती हैं, और वे कई शक्तियां अपना काम करती हुई एक महाशक्ति में मिल जाती हैं और वह महाशक्ति जो विराट्रूपा है, जो विश्वव्यापिका है, जिससे इस आत्मा का भी सम्बन्ध, है जो आत्मा उस विराट्शक्ति को पाने की चेष्टा करता है फिर तो सब एकाकार हो जाता है। नदी की धार बह रही है। कूड़ाकरकट गन्दा मैला सब बह गया, बहते बहते जाकर समुद्र में मिल गया। समुद्र में कहां जा के गया ? न उस नदी का पता है, न उस मैल का पता है। समझ लो इतने से समझ में नहीं आता है, तो भाई, कोई

बात है पूतां ! इतनी सी ही है कि तुमको यह जानना है कि तुम्हें कुछ हो रहा है। तुम्हारी
आत्मा क्या है ? तुम आत्मा को कैसे पहिचानोगे ? कैसे देखोगे ? उससे जाण पहिचाण कैसे
करोगे ? तो सीधी बात बता दी गई है कि जब तुम्हारे हृदय में ऐसी पवित्र भावना आने लगे,
क्योंकि आत्मा का स्वरूप शुद्ध बुद्ध पवित्र स्वरूप है, तो जब तुम्हारे विचारों में, हृदय में
और बुद्धि में और अनुभव में पवित्र पवित्र, पुण्य पुण्य कल्याण के भाव आने लगेंगे तो
समझ लेना कुछ हो रहा है। यही तो आत्मा का परिचय होता है, और उसका कोई ऐसा बना
हुआ, गढ़ा हुआ स्वरूप थोड़ा है। अरे जैसे एक कांच की, कांसे की, ताँबे की, लोहे की
मूर्ति खड़ी कर दी, वह आत्मा तुम्हारे लिए मूर्ति है ? अरे वह तो ज्ञान का भण्डार, शुद्ध
बुद्ध चेतना-सम्पन्न है, और उसके लक्षण यही हैं कि जब ऐसे भाव आ जाँय तो आत्म बोध
समझ लेना, और ऐसे भावों को देनेवाली, लानेवाली जो अनुभूति होती है तो ऐसी अनुभूति
को समझना यही प्रत्यभिज्ञा है, तो इतने से सम्पूर्ण ज्ञान आत्मबोध का कर लेना है और आगे
कैसे होगा ? आत्मबोध और उसके क्या लक्षण हैं ? अरे ! भाँति भाँति के लक्षण होंगे,
थोड़े सुनाये जायेंगे। हरि ॐ तत् सत् ।।

२३-१-६३ प्रातःकाल ।।११६।।

।। ॐ ।। हरि ॐ तत् सत् ।।

नमोऽस्तु स्वात्मबोध - परिचायिकायै - जागृतायै - सरस्वती स्वरूपायै।। ॐ ।।

आत्मबोध का परिचय देने वाली सरस्वती स्वरूपा जागृता शक्ति को प्रणाम है।

नमामि चक्रविद्यां तां प्रज्ञां प्रज्ञाविबोधिकाम् ।

प्रत्यभिज्ञा समायुक्तां वाणीं बोधप्रदायिकाम् ।। ॐ ।।

प्रज्ञा का बोध देने वाली प्रज्ञास्वरूपा उस चक्र विद्या को नमन करता हूँ जो वाणी रूप में आकर प्रत्यभिज्ञा समन्विता होकर बोधप्रदायिनी बन जाती है।

प्रत्याभिज्ञाविषयविधौ सर्वात्मस्वरूपं, तस्य बोधं, तत्कर्तृका भावमयी या च धारणा वा विचारणा वा तस्याः अपि समुद्दिष्ट विषय परिचयः करणीयः। आत्मबोधः परमश्रेयस्करः, आत्मबोधज्ञानेन परबोधज्ञानमपि जायते। आत्महीनेन न किञ्चिदपि कर्तुं शक्यते।

प्रत्यभिज्ञा विषय के प्रतिपादन में सर्वात्मस्वरूप, उसका बोध, उसे करने वाली जो धारणा और विचारणा है उसका भी कुछ परिचय ले लेना चाहिये। आत्मबोध परमश्रेयस्कर है। आत्मबोध ज्ञान से परबोध ज्ञान भी हो जाता है। आत्मबोध से विहीन व्यक्ति कुछ भी नहीं कर सकता है।

बलवान् बलसम्पन्नः आत्मवानात्मकल्पकः।

आत्मानं प्रथमं वेत्ति पुनर्वेत्ति परात्परम् ।।

आत्मवान्, आत्मस्वरूप साधक बलवान् और बलसम्पन्न होकर पहिले अपनी आत्मा को समझता है, तदनन्तर वह दूसरे की आत्मा को जानता है।

आत्मानं प्रथमं ज्ञायेत् तत्सर्वत्र परात्परम् ।

ज्ञानं परिसमायाति तस्मादात्मविदो भव।। ॐ ।।

प्रथमतः सर्वत्र परात्पर अपनी आत्मा के ज्ञान को जानो। उससे ही सब ज्ञान प्राप्त होगा। इसलिए, आत्मज्ञाता बनो। ॐ ।

विशिष्ट ज्ञान सम्पन्नतया संस्कार शुद्धिभावेन च परिनिष्ठतया बोधेन च आत्मबोधो जायते अनुभूयते च।

विशिष्ट ज्ञान की सम्पन्नता से संस्कारों की शुद्धि होती है। परिनिष्ठ बोध से आत्मबोध होता है उसका अनुभव भी होता है।

आत्मबोध वृत्तिसम्पन्नः विचारेषु विशिष्टतां समादाय परिचयाय प्रस्तुतो भवति। आत्मपरमात्मबोधं एतादृशं संकल्पविकल्पकं प्रादुर्भावे समायाति। तदा आत्मबोध भावना विद्यते।

आत्मबोध वृत्ति से समापन्न साधक विचारों में विशिष्टता प्राप्त करता हुआ आत्म-परिचय के लिए प्रस्तुत होता है। आत्मा-परमात्मा का ऐसा बोध पहिले संकल्प विकल्पात्मक रूप में प्रादुर्भूत होता है, उसमें भी आत्मभाव निहित है।

गूढं रहस्यकं भेदं आत्मज्ञान परिप्लुतम् ।
किन्तु सर्वं महामायाप्रसादेन सुखं भवेत् ।।

आत्मज्ञान से परिप्लुप्त गुह्य गूढ़ ज्ञान रहस्यमय है। किन्तु महामाया के प्रसाद से वह सब बहुत आसान और सरल हो जाता है।

ज्ञात्वा आत्मपरिज्ञानं अनुभूय पुनः पुनः।
मानवः स्वात्मकल्याणं करोति च न संशयः।।

आत्मा का परिज्ञान जान कर और उसका पुनः पुनः अनुभव करके मनुष्य निःसंशय ही आत्मकल्याण करता है।

अपरस्तस्मादप्यपरः कश्चित् । ॐ, अंगारकाद् यथा अंगाराणां पृथक् सत्तापि जायते। तद्वदेव आनन्द परिवाहितः सिद्धार्थ समायुक्तः पृथग्भूतः अंशरूपेण यः भिन्ने भिन्ने शरीरे विराजते सः आत्मा ज्ञेयः। तस्य बोध, कर्तव्यः। एतादृशी धारणा प्रत्यभिज्ञा प्रोच्यते, एतादृशी विचारणा प्रत्यभिज्ञा प्रोच्यते।

आत्मा अपर (सर्वश्रेष्ठ) है और उससे भी कोई अन्य अपर है। एक अंगारे से उद्भूत अंगारों की भी अपनी पृथक् पृथक् सत्ता है। उसी भाँति आनन्द परिपूर्ण अस्तित्वपूर्ण, चैतन्यरूप अंशरूप में पृथक् पृथक् भूत आत्मा को भी समझना चाहिये जो प्रति शरीर में भिन्न भिन्न होकर विराजित है। उसे जानना चाहिये, ऐसी भावना प्रत्यभिज्ञा कही जाती है। ऐसी विचारणा प्रत्यभिज्ञा कही जाती है।

प्रतिशरीरभिन्नाधारत्वात् भिन्नानन्दोद्भूतिः। न च एक कालावछिन्ना एककालाभिव्यापिकानुभूतिः आधारभेदात् अनुभूतिभेदः, किन्तु सर्वं चैतन्यत्वेन उपगृह्यते।

प्रति शरीर का भिन्न आधार होने के कारण आनन्दानुभूति भी भिन्न भिन्न होती है। सभी अनुभूतियाँ एक काल में ही नहीं होती हैं। आधार भेद से अनुभूति भी होती है। किन्तु सभी अनुभूतियों को चेतन आत्मा ही ग्रहण करता है।

चैतन्योपगृहीते सर्वं तदेव ज्ञानाधिकरणात्मकं भवति। एतदेव एतावदेव ज्ञातव्यम् । अन्यत् सर्वं तु एकः एकस्मिन्नथवा एकस्मादेक एकः एकेन सर्वं व्याप्तम् । एक एव व्याप्तः एक एव ज्ञेयः इत्यात्मिकानुभूतिस्तु पश्चाद् जायते।

सर्वप्रकार के ज्ञान में चैतन्य के व्याप्त होने के कारण वह आत्मा ज्ञान का अधिकरण कहा गया है। यही और इतना ही संक्षेप में जान लेना है। इसके अतिरिक्त एक ही सर्वत्र सब में, व्याप्त है। एक को ही जानना है यह भी बाद मे प्रतीत होता है।

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। इस प्रकरण में माँ का कहना है कि आत्मा का ज्ञान कर लो। आत्मा को पहिचान लो। उसका बोध कर लो। तो यह ठीक है। करना भी चाहिये। पर अब ऐसी भी बात आ गई है। हाँ, ठीक ही है। सुनते सुनाते रहने से भी कुछ न कुछ होता ही है। धुरी में परिचालन तो आता ही है। भाव तो बदलते ही हैं। पर ऐसा भी होना चाहिये कि जब पण्डितों की बात हो तो फिर शास्त्र विद्या का विशेष प्रचलन किया जाता है और उसको विस्तार भी दिया जाता है कि उसके विस्तार के श्रोता भी होंगे, तो उसके भी भाव बदल करके बोध का जागरण होगा। किन्तु अब तो सरपट से निकलना है, चलना है। और अब ऐसा भी होता है, सब आत्म ज्ञानी होना चाहते हैं। जानना भी चाहते हैं, तो उसके लिए थोड़े में, सार सार में बताया जा रहा है। कि जब जब हृदय में ऊँचे ऊँचे कल्याण के भाव आ जाँय तो ऐसा समझो कुछ कुछ अंकुर जमने लगा है और फिर उसको योग विद्या के द्वारा, उसको चक्रों के ज्ञान के द्वारा, उसको ध्यान और अभ्यास के द्वारा अगर सींचा जायेगा, पनपाया जायेगा तो फिर उसमें पुष्टि तुष्टि दोनों आ जायेंगी। और जब तैयार गाड़ी हो जायेगी तो उसमें बैल जोत दिया जायेगा। घोड़ा लगा दिया जायेगा जो खींचता हुआ चला जायेगा। तो गाड़ी तैयार करने का मतलब है कि पहिले आप को पहिचानने का उपाय कर लो। और फिर पहिचान हो जाने पर तो चलना ही है, चढ़ना ही है, पर जब तक पहिचान नहीं होगी, वहाँ पर भी तो फिर कुछ नहीं होगा। इसलिये यह विद्या बताई जा रही है कि जो दो प्रकार की बात है। एक तो कृत अभ्यास है। शक्ति साथ है, समर्थ गुरू का हाथ है, और सब कुछ उसके साथ है। तो वह इधर से चलता है तो उसको भी ज्ञात होता है और उसके बाद अनुभव भी करता है तो पहुंचता है। और दूसरा ऐसा कि जिसको अभी राह ही नहीं मिली, चलता रहा है। पर इधर में है, उधर में है और चाहता भी है कि जल्दी चले। कोई अच्छी सी राह मिल जाये तो उसको राह पर लाने के

लिए साधक स्वानुभूति करने के पश्चात् इस शास्त्र का आधार ले करके उससे खेत को तैयार कर सकता है जिसमें बीज बोया जायेगा और तब तक अपनी साधना अपना अपना अभ्यास से, अपनी अपनी अनुग्रह दृष्टि से, फिर वह आगे बढ़ता रहेगा, तो ऐसा आत्मबोध करना है। और खेत तैयार करने के बाद जब बिलकुल तैयारी हो जायेगी तो बीज लगाना है। तो बीज की बात फिर मनुष्य की बात में आ जायेगी। तो पहिले रास्ता साफ हो जाय। खेत तैयार हो जाय। बीज आ जाय। फिर बोया जाय। इसलिये इसका परिचय कराया जा रहा है कि भाई तुम्हारा खेत कहाँ है ? उसको तैयार करोगे कैसे ? तुम्हारी राह कैसी है ? उस पर चलोगे कैसे ? अरे ! तुम कौन हो ? कहाँ जाना चाहते हो ? क्यों आते हो ? कहाँ जाओगे ? सबका तो एक चक्कर है। तो इस चक्कर में इस चक्र विद्या का ज्ञान करलो। तो फिर तुम्हारे लिए बहुत कल्याण कारक होगा। इसलिये यह शास्त्र कहा जा रहा है और यह वाणी कही जा रही है। इस वाणी में और इस शास्त्र में थोड़ा ही थोड़ा निचोड़ ही रखा जायेगा, जिससे जल्दी में शीघ्रता में, तेजी में भाव की धुरी बदलता हुई चलने लगे। इस धुरी में चाल को तेजी के साथ चलाने के लिये, भावों को बदलने के लिये ही यह खेत तैयार किया जा रहा है। यह चक्र चलाया जा रहा है चक्र विद्या बताई जा रही है। जो चक्र की तरह घूमती हुई, अपना प्रभाव दिखाती हुई सीधी राह पर पहुंचा ही देगी। जहाँ जाना चाहते हो। ॐ ।।

२३-१-६३ सायंकाल ।।११७।।

हरि ॐ तत् सत् । ॐ नमस्तेऽस्तुभगवत्यै विशिष्टज्ञानस्वरूपायै आनन्दप्रदायै नित्यानन्दस्वरूपिण्यै महाशक्त्यै नमो नमः। ॐ ।।

हरि ॐ तत् सत् । विशिष्ट ज्ञानरूपा, आनन्दप्रदा, नित्यानन्दस्वरूपा भगवती महाशक्ति को बारम्बार नमस्कार है। ॐ ।

नित्या च या नित्य नवीन रूपा या सृष्टिरूपा च महास्वरूपा।

अद्वैतद्वैता न च नैकरूपा सा मे सदा देवि प्रसीदतां सदा।।

जो नित्या है, जो नित्य नवीन रूपा है, जो सृष्टिरूपा है और महारूपा है, जो अद्वैत रूपा भी है और द्वैतरूपा भी है, अनेक रूपा है वह देवी मेरे प्रति सदा प्रसन्न हों।

नित्यानन्दस्वरूपिणी या महामाया महाबोधवती आत्मबोध भावाय समर्था भवति सैव सर्वदा सर्वकालज्ञा सर्वेषामात्मबोध स्थितिं परिपुष्टां करोति।

नित्यानन्द स्वरूपिणी, महाबोधवती, आत्मबोधभाव के लिये जब समर्थ होती है तब वही सर्वकालज्ञा होकर सब साधकों की आत्मबोध की स्थिति को परिपुष्ट करती है।

यथा बिना नैव गुणा गुणात्मिका भावात्मिका वा न नवार्थयोग्या।

या भावबोधाय सदा प्रचेष्टते सा सात्मभावं प्रकटं करोतु।।

जिसके बिना तीन गुणों की स्थिति नहीं रहती है, वह गुणात्मिका भावात्मिका है और नवीन अर्थों को रखती है, जो सदा भावबोध के लिये उद्यत रहती है, वह भगवती मुझे आत्मबोध की अभिव्यक्ति प्रदान करें।

आत्मबोधभावस्य समाधिगमः तदैव भवति यदा सर्वतः सानुकूलत्वं समायाति। प्रकारत्रयेण भावबोधसमापत्तिः भावानां निष्पत्तिः, उत्पत्तिः, उद्गमः, अनुभूतिः अभिव्यक्तिश्च सर्वत्रैव आत्मबोधस्य अनुभूतिर्वा भवतिअभिव्यक्तिर्वा भवति। तच्च संसर्गजा, प्रवचन-स्वाध्यायभवा, अथवा स्वयंसिद्धा वा। प्रथमा द्वितीया साधारणा।

आत्मबोधभाव की प्राप्ति तभी होती है जब सर्वतः सानुकूलता प्राप्त होती है। भावबोध की समापत्ति तीन प्रकार से होती है। भावों की जो निष्पत्ति अथवा उत्पत्ति, उद्गम अनुभूति और अभिव्यक्ति या अनुभूति होती है वह संसर्गजा, प्रवचन द्वारा, अथवा स्वयं सिद्धा होती है। प्रथम और द्वितीय साधारण रूपा होती है।

किन्तु यदा अभ्यासो जायते, अभ्यासश्च शक्त्यधीनम् । शक्त्यधीनत्वेन च यत्किञ्चिदपि श्रुतं वा कृतं वा सर्वमपि अनुभूति विषयं समायाति।

किन्तु जब अभ्यास हो जाता है, अभ्यास शक्ति के आधीन होता है। शक्ति के आधीन होने के कारण जो कुछ श्रुत या कृत है सब कुछ अनुभूति का विषय बन जाता है।

अथवा शक्तिपातविधौ अस्मिन् महायोगे यत् किञ्चित् कार्यते वा तत्सर्वमपि अनुभवगम्यं अभिव्यक्तं वा भवति। तदपि प्रकारान्तयान्तर्गतम् । क्वचित् क्वचित् कदाचित् कदाचित सैव विराट्सत्ता सैव .चित्स्वरूपिणी महाशक्तिः आत्मबोधाय प्रेरयति।

अथवा शक्तिपात - विधान के इस महायोग में जो कुछ शक्ति द्वारा करवाया जाता है वह सब कुछ अनुभवगम्य होकर अभिव्यक्त होता है। वह भी तीन प्रकारों के अन्तर्गत आता है। कभी कभी कहीं कहीं किसी साधक को वही विराट् शक्ति आत्मबोध के लिऐ प्रेरित करती है।

प्रेरणा समागमात् कदाचित् सत्सङ्गभावना, संसर्गभावः वा प्रादुर्भूता भवति। कदापि बहुश्रुतेन उपासनेन आत्मबोधस्य प्रादुर्भावः। कदाचिच्च क्वचिच्च तद्भावे प्रवचन स्वाध्याय समावलम्बनात् बुद्धेः सानुकूलत्वम् । तस्मादनुकूलभावानां अभ्युदयः। तस्माच्च आत्मबोधस्य प्रतिपत्तिः।

आत्मबोध की प्रेरणा से कभी साधक को सत्सङ्ग की भावना आती है। कभी-कभी बहुत अध्ययन और उसमें बताई गई उपासना से आत्मबोध का प्रादुर्भाव होता है। कभी-कभी स्वाध्याय-प्रवचन से बुद्धि की सानुकूलता होती है। उससे अनुकूल भावना का प्रादुर्भाव होता है और उससे आत्मबोध की प्रतिपत्ति हो जाती है।

प्रकारत्रयेण तृतीयकोट्यां अभ्यासजनकत्वं व्यूहरूपकं तच्छक्तिसमापन्नं, ततः समागतं वा बोधकुलकं जायते। तत्तु श्रेष्ठात् श्रेष्ठतरं श्रेष्ठतमं वा। इति प्रकारत्रयेणात्मबोधः कर्तुं शक्यते जायते च। अनुभवगम्यश्च भवति।

उक्त तीनों प्रकारों द्वारा तृतीय कोटि में अभ्यासजनकता है, जो शक्ति से प्राप्त होकर फिर साधक बोध के लिये प्रेरित होता है, उक्त तीनों में से उत्तरोत्तर श्रेष्ठ कहा गया है। इन्हीं तीन उपायों से आत्मबोध किया जा सकता है और होता है और वह अनुभवगम्य होता है।

सत्ता सत्वात्मिका शुद्धा बुद्धा तदा नवा।

एषा चित्संवलिता धारा प्रत्यभिज्ञा तदा स्मृता।।

सत्वगुण की शुद्ध बुद्ध नवीन सत्ता जब चैतन्य से संवलित होती है उसे प्रत्यभिज्ञा कहा जाता है।

आत्मबोधस्य प्रत्यभिज्ञा भवति। आत्मबोधं प्रति वा अभिज्ञा भवति, इति उभयसाध्यम् ।

आत्मबोध से प्रत्यभिज्ञा होती है। आत्मबोध के प्रति चारों ओर से ज्ञा अर्थात् अनुभूति होती है। दोनों अर्थ एक समान हैं।

एतत् सर्वं कैश्चित् प्रत्यक्षमनुभूयते, कैश्चित् पश्चादनुभूयते, कैश्चित् कार्यच्छिन्न धर्मेण अवधीयते अनुभूयते च। सर्वत्र सानुकूलत्वम् ।

ऐसा कई तो प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं और कई बाद में अनुभव करते हैं और कई कार्य के द्वारा निश्चय करते हैं और अनुभव करते हैं। सर्वत्र सानुकूलता बनी रहती है।

सानुकूलभावनायाः अभ्युदये सति भावसाम्य समधिगमः। समधिगमात् समाकार ! समाकारादुभयत्रयोजनाधारा योजयति, योजनाद् योगः।

सानुकूलता के अभ्युदय होने पर भावसाम्य की प्राप्ति होती है। साम्य प्राप्ति से सर्वत्र समभाव प्राप्त होता है। समाकार होने से योजना की धारा दोनों में मेल करा देती है, योजना के कारण ही योग कहा जाता है।

महाशक्तिः आधारत्वेन दृढकृताभ्यासेन च तदैव महायोगः। अतएव चक्रविद्या चक्रवत् सर्वमाप्लावयति, व्याप्नोति च। तदैव क्वचित् कुत्रचित् यदि नास्ति शक्तिपातः तत्रापि आत्मबोधः भवितुं शक्नोति। इति प्रोक्तम् तच्च प्रकारत्रयेणेति व्याख्यातम् ।

जागृता महाशक्ति जब आधार बन कर तीव्र अभ्यास कराती है तब उसी को महायोग कहा जाता है। अतः चक्रविद्या चक्र की भांति सब कुछ में व्याप्त होकर सब को आधारित कर देती है। तभी तो कहीं पर जब शक्तिपात नहीं भी होता है वहां भी आत्मबोध कराने में समर्थ होती है। यह कहा गया है और वह प्रकारत्रय से बताया है।

तस्मादेवं ज्ञात्वा अनुभूय च स्वात्मन्येव स्वक्षेत्रे एव बीजाङ्कुरवत् इति आत्मबोधसमर्थानां भावानां प्रतिपत्तिः अभ्युदयश्च भवति। तस्माच्च कल्याण-भावना दृढतरा भवति।

इसलिये ऐसा जानकर अनुभव करके अपने भीतर अपने शरीर में बीजांकुर की भांति आत्मबोध के समर्थ भावों की प्राप्ति और उदय होता है और उससे साधक की कल्याण भावना दृढ़तर होती रहती है।

दृढतरा या कल्याणभावना यदा विस्तारमायाति तदा समस्तभावेषु समस्तभावानां वा परिवर्तनं भवति। तत्परिवर्तनं चक्रवत् भ्रमति। तदा चक्रविद्या परमोपयोगिनी ज्ञेया।

जब कल्याण भावना दृढ़तरा होकर विस्तार प्राप्त करती है तब समस्त भावों में समस्त भावों का परिवर्तन करती है। वह परिवर्तन चक्र की भाँति होता है। उस समय चक्रविद्या परमोपयोगिनी बनती है।

या विद्या आत्मबोधं प्रति अभिज्ञां कारयति, आत्मबोधस्य प्रत्यभिज्ञां वा कारयति, सर्वत्र परिवर्तनसूत्रं विस्थापयति, सर्वत्र भावपरिवर्तनसूत्रं विस्थापयति, सर्वत्र भावपरिवर्तनं कारयति, भावबोधं वा कारयति, सा विद्या चक्रविद्या। सा च ज्ञेया। सा च अनुभवे स्थापनीया।

जो विद्या आत्मबोध के प्रति अभिज्ञा कराती है, वह सर्वत्र भावपरिवर्तन के सूत्र की स्थापना करती है। सर्वत्र भाव परिवर्तन करा देती है, भावबोध करा देती है। यह विद्या है और इसे ही अनुभव में स्थापित करना चाहिये।

अनुभवज्ञानात् सर्वं सुलभं सुकरं सुफलं सुविदितं च जायते। यदा साधिकारः साधना काले विविध ज्योति स्वरूपाणां परमार्थानामभ्युदयो जायते तदा धाराश्चक्रवत् पूर्वापरमभिव्याप्यं संक्रमन्ते। तेषां भावानां संक्रमात् सर्वत्रैव विशुद्धभावानां प्रतीतिः प्रस्फुटिता भवति।

अनुभव ज्ञान से सबकुछ सुलभ, सुकर, सुफल और सुविदित हो जाता है। जब साधनाकाल में विविध ज्योतिः स्वरूप परमार्थों का अभ्युदय होता है तब वह अनुभव धारायें चक्र की भाँति पूर्वापर को व्याप्त करते हुए घूमती रहती है। उन भावों के संक्रमण से सर्वदा विशुद्ध भावों की प्रतीति परिस्फुट होती रहती है।

तस्माच्च दूराद्दूरतरं दूरतमं वा सर्वत्रैव प्रभावसत्ता विस्तारमायाति। एतादृशभावविस्ताररूपात्मकं समस्तमेव सत्तात्मकं चक्रंजायते, तदैव चक्रविद्या फलीभूता भवति। भावशुद्धिः चक्रवत् परिगच्छति। ॐ ॥

गोरक्ष ! गोरक्ष !

इस प्रकार दूरदूर से समावर्ती सर्वत्र प्रभाव सत्ता विस्तार पाती रहती है। इस प्रकार के भाव-विस्तार के रूप में समस्त सत्तात्मक चक्र चलता है, तभी चक्रविद्या फलीभूत होती है। चक्रवत् भाव-शुद्धि होती रहती है। ॐ । गोरक्ष ! गोरक्ष !

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। ॐ ! मां ने बताया है कि चक्रविद्या किसे कहते हैं। और उसका जो पहला प्रकरण बताया है, आत्मबोधप्रत्यभिज्ञा, तो इसका तात्पर्य इतना ही होता है कि आत्मबोध होना चाहिये।

आत्मबोध के बिना भावों का परिवर्तन नहीं हो सकता है। और जबतक भावों में परिवर्तन की धुरी नहीं चलती, तबतक कुछ नहीं हो सकता। अरे एक हीरा खान से निकाल लिया, रखा है। शक्ति भी उसमें वही है, गुण भी वही वही है पर जब वह शाण पर कस दिया जाता है, चमक पड़ता है। बहुमूल्य हो जाता है। खराद दिया जाता है, तरास दिया जाता है और फिर उसकी चमक दूर तक फैल जाती है। तो जब तक भावों का परिवर्तन नहीं होगा, अपने आप को पहिचानने के भाव नहीं आयेंगे, तब तक सब कुछ शिथिल ही रहेगा। ऐसा मां ने कहा कि यह बोध तीन प्रकार से होता है। भाव जागते हैं। कभी कभी तो महापुरूषों के सत्संग करने से ऐसा होता है और कभी कभी जो है, सो इधर उधर के पोथी पत्रा के ज्ञान से भी हो लेता है। और उसके बाद कभी ऐसा भी होता है सहज, जिसको सहज योग कहते हैं। अरे जिसपर शक्ति की कृपा हो जाती है उसको तो ऐसा बोध हो ही जाता है, पर सब को तो ऐसा अवसर नहीं मिलता है। तो इसलिये तीनों प्रकार में से किसी प्रकार से पहिले जरा जरा जो खेत में बीज बोया है, उगने दो, फिर सींचने की बात बाद में आ जायेगी। बीज भी नहीं बोया अंकुर भी नहीं आया, सींचने को चल दिये। तो सब बेकार व्यर्थ हो गया। सो भाई पूर्तो ! अरे ऐसा है कि समय कह रहा है, मां भी कह रही है, मैं भी कर रहा हूं। सब चाह रहे हैं कि चलो कुछ न कुछ आत्मा को पवित्र कर लो जान लो। समझ लो। इसी को लोग पूजा भी कहते हैं, पाठ भी कहते हैं, योग भी कहते हैं, ध्यान भी कहते हैं, ज्ञान भी कहते हैं। सब कुछ कहते हैं तो ऐसा है कि अपना अपना ढंग कैसा भी हो, होना चाहिये। तो किसी प्रकार से भी हो, बीज में अंकुर तो आय। जब बीज में अंकुर आ जाय तो समझ लेना पानी से बहुत दूर होगा तो बहुत सींचना पड़ेगा। और पानी के नज़दीक होगा और पानी उसकी जड़ों में जा रहा होगा तो ऐसा होगा कि जल्दी ही जल्दी वह पनपने लगेगा, बढ़ने लगेगा। तो जब बीज हो जाय, अंकुर में आ जाय तब ऐसा करना कि यह जो चक्रविद्या बताई गई है, इसमें आत्मा का बोध इसलिये बताया गया है कि उसको पहिले अंकुर में आने दो। इसलिये पहिले सब कुछ बता के यह प्रकरण बाद में बताया जा रहा है कि जो इधर के चलने वाले हैं वे तो सब कुछ करते हैं और उन्हें तो क्या है, उन्हें तो कृपा मिली है। तो फिर क्या बात है। पर भाव औरों के कैसे तैयार करोगे ? तैयार करो। बनाओ। पैदा होगा, पौधे से पेड़ होगा, फल और फूल लगेंगे। धरती पर उसके पके फलों की सुगन्ध फैल जायेगी, और उसकी सुगन्ध जब तीव्र हो जायेगी तो फिर जाने कितने पशु, पक्षी, कीट, पतंग उधर झुकते हैं, उस वृक्ष के नीचे झूमते हैं, मस्त होते हैं, कुछ उसको पाते हैं, कुछ उसको खाते हैं, कुछ उसको सूंघते हैं, कुछ उसको देखते ही रह जाते हैं। पर भाई ! सुगन्ध तो सब की ही नासिका में जायेगी। तो अब समय आ गया है कि लोक की ऐसी रूचि है, ऐसे ही भाव हैं, उन भावों को जगाओ। तो उनको सत्संग से भी जगाया जा सकता है। ज्ञान से भी जगाया जा सकता है। ज्ञान की बात तो छोड़ दो, वह तो

गुरू से सुनते आये हैं, जानते आये हैं। कहते सभी हैं, करता कोई नहीं, एक दूसरे को सब सुना देते हैं। लेकिन अनुभव करने को जी किसी का चाहता नहीं। पर जो चाहता है उसको मिल जाता है, तो करना भी है। तो अब समय के अनुकूल जो कुछ तुमको दिया जा रहा है और जो कुछ महामाया ने तुमको दिया है, और मैं तुमको दे रहा हूं और जो तुम्हारी गुरू परम्परा ने तुमको दिया है और जो तुम पर कृपा हुई है उसका स्वाद लो। रसास्वाद लो, और उसे फिर दूसरों को बताओ।

यही तो करना है। अरे सही खज़ाने को छिपाकर रखने वाले बहुत देखे। मैं भी कुछ ऐसा ही था। कुछ छिपाया, कुछ टकराया कुछ इधर किया, कुछ उधर किया लेकिन मैंने हमेशा जिज्ञासु लोगों का साथ दिया। समझाया, बुझाया समर्थ बनाया और अब भी बनाता हूं। तो ऐसी बात नहीं है। जो जिज्ञासु आयेगा, बता दो, बता दो जिज्ञासु भावना को आत्मबोध में बदल दो, और इस तरह वायुमण्डल को तैयार कर लो। और फिर वायुमण्डल के तैयार हो जाने पर पके फलवाले वृक्ष की तरह रूप, रस, गन्ध सब मिल जायेगा, और फिर फलप्राप्ति भी हो जायेगी। साधना का फल यही है।। ॐ ।।

२४-१-६३ प्रातःकाल ।।११८।।

ॐ । हरि ॐ तत् सत् । नमामि तां दिव्यभावविभूषितां भगवतीं आत्मतत्त्ववोधाय समर्था, जागृता या भगवती महामाया कुण्डलिनी सरस्वती रूपेण सर्वभावेन; नमामि तां दिव्या देवीं सरस्वतीम् ।।

आत्मतत्त्व बोध के लिये समर्थ; दिव्य भाव विभूषित भगवती को मैं प्रणाम करता हूं। जो महामाया भगवती कुण्डलिनी सर्वतो भावेन जागृता होकर सरस्वती का रूप धारण करती है उस दिव्य शक्ति को मैं प्रणाम करता हूं।

नानाभाव समाकुला कृतधियां या नित्यनित्योदया,
या वै सद्य परात् परात्मकपरं बोधं सदा गच्छति।
या देवी परमेश्वरी भगवती कल्याणमात्रान्विता,
कल्याणं वितनोति दिक्षु सततं सा पातु मां भारती।।

नाना भावों से परिपूर्ण साधकों की बुद्धि में बैठ कर जो नित्य नवीन ज्ञान का उदय करती है, और शीघ्र परात्पर बोध को प्रकट कर देती है, जो भगवती परमेश्वरी देवी कल्याण मात्र के लिये साधक में स्थित है, वह समस्त दिशा विदिशाओं में चारों ओर से कल्याण करती हुई भारती मेरी रक्षा करें।

ॐ ।। आत्मबोधाय प्रकारत्रयं यदुक्तं तत्सामान्येन ज्ञातव्यम्, मननीयं च। पुनश्च यदि आत्मबोधबीजाङकुररूपेण प्रस्फुटितं प्रस्फुरितं वा भवति तदा तत्र स्थिरत्वं भवेत् इति उपायोऽपि तत्र विधेयः।

ॐ । आत्मबोध के लिये जो प्रकारत्रय बताये गये हैं उसका सामान्य रूप से ज्ञान और मनन करना चाहिये। फिर बीजाङकुर रूप में जब आत्मबोध प्रस्फुरित और परिस्फुट हो जाय तब वहाँ स्थिरता रखने का उपाय करना चाहिये।

आत्मबोधं यदा मर्त्यः जानाति यदि वागतम् ।
तदा तत्स्थिरभावार्थं क्रियाज्ञानं वदामि ते।।

जब मनुष्य को कभी ऐसा मालूम दे कि आत्मबोध आ रहा है तब उसे करने के लिये तुम्हें मैं क्रियाज्ञान का उपाय बताती हूं।

यो जानाति महबोधः आत्मबोधः समागतः।
तस्य तु स्थिरतां कर्तुं क्रियां मुद्रां समाचरेत् ।।

जिसे मालूम हो जाय कि आत्मबोध आ गया है उसे स्थिर करने के लिए विशिष्ट प्रकार की क्रियाओं और मुद्राओं का उपयोग कर लेना चाहिये।

आगतः स्फुरितो वापि बोधाङ्कुर विशेषतः।

तदा तद् धारणार्थं वै मुद्रामेकां समाचरेत् ।।

आत्मबोध का अंकुर जब स्फुरित होने लगे या आ जाय तो साधक उस बोधभाव के स्थिरीकरणार्थ एक आगे बताये जाने वाली मुद्रा लगा ले।

सा मुद्रा भावबोधं च सर्वमादाय तत्त्वतः।

शनै शनैःस्तदाकारं स्थिरतां नेष्यति ध्रुवम् ।।

वह मुद्रा सब तरफ से भावबोध को तत्त्वतः समेटकर धीरे धीरे साधक को तदाकार निश्चित रूप में बना देगी।

तत्र एवं भवेन्मुद्रा या प्रोक्ता पूर्वमेव च।

आलम्बिनी च साख्याता तां मुद्रां दृढतां नयेत् ।।

वह ऐसी मुद्रा है, जैसा कि पहिले मैं आलम्बिनी मुद्रा बता चुकी हूँ, वही आलम्बिनी मुद्रा आत्मबोध सम्बन्धी भाव को दृढ़ बनाती जायेगी।

आत्मबोधाय सा मुद्रा अपरं च विशेषतः।

स्थिरत्वकरणार्थं च समर्था प्रोच्यते बुधैः।।

आत्मबोध के लिये विशेष रूप में यह मुद्रा बहुत श्रेष्ठ है। योगी बुधजन उसे भाव स्थिरीकरण के लिये समर्थ बताते हैं।

किन्तु तत्र इदं ज्ञानं कर्तव्यं साधकैर्बुधैः।

हस्तौ तत्र च संयोज्य केवलं मुष्टिकाकृतिम् ।।

किन्तु यह जान लेना चाहिये कि साधक इस मुद्रा में दोनों हाथ मिला कर केवल मुट्ठियाँ बाँध ले। (आलम्बिनी में और इस मुद्रा में यह भेद है।)

एकस्य हस्तमात्रस्य अपरस्य तु सास्थितिः।

अधस्तादुपरिष्ठाद् वा समभावं समाचरेत् ।।

मुट्ठी बाँधे एक हाथ को दूसरे हाथ से कलई में पकड़ के उस पर बैठ जाय और नीचे ऊपर तक शरीर को सीधा कर के तोल ले।

विशिष्टालम्बिनी सा च तदा वै जायते क्रिया।

कार्यरूपा स्थिरं भावं स्थिरतां च नयेत् शनैः।।

इस क्रिया को विशिष्टालम्बिनी मुद्रा कहते हैं। यह विशिष्टलम्बिनी मुद्रा भावों को धीरे धीरे अवश्य ही स्थिर कर देती है।

प्रारम्भके च यदि वा अपरे च काले बोधस्थितिं तां च विचारयेद् बुधः।

यदा स्थितिः सा च समागता शुभा आलम्बिनी सा करणीयतां व्रजेत् ।। ॐ ।।

शक्तिपात साधना के प्रारम्भ काल में अथवा बाद में या जब कभी भी बोध की ओर जाने की ऐसी वृत्ति आने लगे तो साधक देखता रहे और ज्यों ही आ जाये त्यों ही इस आलम्बिनी मुद्रा का तुरन्त उपयोग कर लेना चाहिये।

एवं कृत्वा पुरः पश्चात् स्वल्पमान्दोलितं क्वचित् ।

विग्रहं स्वल्परूपेण भावनां स्थिरतां नयेत् ।।

इस मुद्रा में बैठ कर झूला झूलने की भाँति बीच बीच में आगे पीछे हिलना चाहिये। शरीर का भार बँधी मुट्ठियों में देकर धीरे धीरे झूले, तो भाव स्थिर हो जायेंगे।

स्वल्पं स्वल्पं क्वचिदग्रे पश्चाच्चैव क्वचित् क्वचित् ।

दोलारूपेण तत्सर्वं विग्रहं चालयेद् बुधः।।

धीरे धीरे कभी कभी आगे की ओर कभी पीछे की ओर झूले में झूलने की भाँति शरीर को मुट्ठयों में तोलता हुआ हिलाना चाहिये।

तदा सर्वास्थिरं सद्यः भावबोधं च सुस्थिरम् ।

जायते तत्र वै नित्यं मुद्राज्ञानेन निश्चितम् ।।

इस प्रकार शीघ्र ही साधक का भावबोध सुस्थिर हो जायेगा। नित्य ही जो नवीन सात्विक भाव आवें तो उन्हें स्थिर करने के लिये यह मुद्रा बड़ी लाभ-दायक है इसे लगा लेना चाहिये, अवश्य काम सिद्ध होगा।

गोरख वाणी :- अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। ॐ सब का कल्याण हो। जगत् का कल्याण हो। विश्व का कल्याण हो। सब की सद्भावना बढ़े। माँ का विचार है कि आत्मबोध होने पर जो कुछ बताया गया था कि ऐसा कर दिया जाता है कि जब वायुमण्डल तैयार हो जाता है, बीज अंकुरित हो जाता है और वह पनपने लगता है तो उसको सींचने की बात भी आ जाती है जिसे वह पनपता हुआ, पुष्ट होता हुआ, बलिष्ठ होता हुआ फल दे सके। तो यह ऐसी स्थिति है कि जिस स्थिति में ऐसा भी होता है कि कभी कभी सत्संग करने से या कभी स्वाध्याय प्रवचन से कोई बोध का अंकुर हो गया, होता भी है, तो वह कैसे स्थिर रह सके। कैसे उसमें जीवन की भावना आ सके। इसलिये ऐसा कहा गया है कि साधकों को यह जानना चाहिये, बताना चाहिये, सिखाना चाहिये, दिखाना चाहिये कि भाई जब कभी ऊँचे विचार, अच्छे विचार, कल्याण के विचार और आत्मा परमात्मा के जानने

के विचार और उनको देखने के विचार और अनुभव करने के विचार पनप जाँय तो कहीं नष्ट न हो जाय। तो ऐसा करो कि उनको स्थिर करने के लिये, उनको पुष्ट करने के लिये, उनको पुष्ट करने को बताओ और जानो और दिखाओ कि ऐसा करना है कि जैसा पहिले बताया गया है कि आलम्बिनी जो मुद्रा बताई गई है, तो जब ऐसे सुन्दर भाव आवें वायुमण्डल सुन्दर हो जाय, तो जो लोग अपने अभ्यास में बैठे हैं या पूजा पाठ में बैठे हैं या ज्ञान ध्यान में बैठे हैं या बैठने की इच्छा करना चाहते हों, उनको बोलो कि भाई ऐसा ही आसन लगा के जरा आलम्बिनी कर लेना। थोड़ी देर पल विपल ऐसा जितनी देर भी कर सको, तो करें। आलम्बिनी में तो हाथों का मोड़ इधर से उधर बताया था। हाथ के ऊपर हाथ की अंगुलियों का मोड़ बताया था और इसमें कुछ ऐसा नहीं करना, चाहो तो एक हाथ का मणिबन्ध दूसरे हाथ से पकड़ लेना। और चाहो तो किसी एक हाथ का मणिबन्ध पकड़के दूसरे की मुट्ठी बन्द कर लेना। चाहे अधखुली रख लेना। और जो ऐसा हो जाय तो भार, जो वृषण का भार है, कोष का भार है, उसको पहिले तो थोड़ा भार डाला जाता था अब उसको आगे ही थोड़ा भार डाल करके और पहिले जो आलम्बिनी बताई थी, उस आलम्बिनी में झूलते नहीं हो। इसमें ऐसा करना कि जब हाथ से हाथ पकड़ना तो भार धर लो। तो कहना कि भाई ऐसा चलो। आगे, पीछे धीरे धीरे चलना। थोड़ी देर करना। तो उस थोड़ी देर करने में ऐसा करना जब ऐसे बैठना और जब आगे पीछे झूले की तरह हिलने लगना तो उसमें कोई भी मन्त्र हो तो जाप कर लेना। बस भाव में स्थिरता आ जायेगी, पक्का होने लगेगा। आगे बढ़ने लगेगा। पनपने लगेगा। फल देने लगेगा। ऐसा करो तो धीरे धीरे एक दो बहुत्व की भावना का उदय होकर के जग में कल्याण का वायुमण्डल तैयार हो जायेगा। ऐसा करने से जब सब में भावों की स्थिरता आने लगेगी, और भी कई प्रकार हैं, मुद्रा हैं, बतायेंगे। तो धीरे धीरे सब ठीक हो जायेगा और वायुमण्डल भी बदल जायेगा। ॐ।

२४-१-६३ सायंकाल ।।११९।।

हरि ॐतत् सत् । प्रणमामि तां भगवतीं परमेश्वरीं परमार्थ स्वरूप बोधिकां जागृतस्वरूपां महामायां भगवतीं कुण्डलिनीम् । ॐ ।

परमार्थ स्वरूप की बोधिका परमेश्वरी भगवती जागृता महामाया कुण्डलिनी शक्ति को मैं प्रणाम करता हूँ।

अनन्तभाव- सम्पन्नां आत्मबोधसमन्विताम् ।
या देवी चक्रसम्पन्ना चक्रदेवीं नमाम्यहम् ।।

अनन्त भाव सम्पन्ना, आत्मबोध का शोधन करने वाली जो देवी चक्रवती है उस चक्रदेवी को मैं प्रणाम करता हूँ।

चक्रिणीं चक्रसम्भूतां चक्रार्थं चक्रव्यूहिकाम् ।
चक्रात्चक्रंसमायान्तीं तां नमामि महेश्वरीम् ।। ॐ ।।

चक्रिणी, चक्रों में सम्भूत, चक्रों के लिये चक्रव्यूह बनानेवाली, चक्र से चक्र पर आनेवाली उस महेश्वरी देवी को मैं प्रणाम करता हूँ।

आत्मबोध प्रत्यभिज्ञा ज्ञानाधिकरणमेतत् बोधस्य स्थिरकरणार्थं च प्रतिभासितं प्रख्यापितं च। यदा बोधस्य प्रादुर्भावो भवति तदास्वयमनुभूतिं ददाति सा भगवती महामाया। यदि च न सा जागृता, विसुप्ता प्रसुप्ता, सुप्ता च वर्तते तत्रापि यदि बोधावस्था समागता, अनुभूतिश्चागता, तदा तत्र स्थिरत्व मापादनीयम् ।।

आत्मबोध प्रत्यभिज्ञा अधिकरण बोध के स्थिरी करणार्थ प्रख्यापित और प्रकट किया गया है। जब बोध का प्रादुर्भाव होता है, तब महामाया भगवती स्वयं अनुभव प्रदान कर देती है। यदि शक्ति जागी नहीं है, सुप्ता है, पूरी तरह सोई है, फिर भी यदि कभी कहीं बोधावस्था आ गई हो या कोई अनुभूति हुई हो तो उसे भी उक्त मुद्रा द्वारा स्थिर कर लेना चाहिये।

यदा तत्रानेन प्रकारेण भवति।

वह इस प्रकार से किया जाता है और ऐसे होता है।

यथा प्रोक्तंपुरावत्स प्राणायामपरायणः।
मनश्च निश्चलं कृत्वा विवशं स्थापयत्यसौ।।

हे वत्स ! जैसा कि पहिले भी बताया गया है कि प्राणायाम परायण होकर साधक अपने मन को जिस प्रकार निश्चल बना लेता है।

तद्वत् प्रारम्भकालेऽपि बोधस्तत्रस्थिरो भवेत् ।

तदा तं मनसा सार्थं क्रियामेकां सुसाधयेत् ।।

उसी प्रकार प्रारम्भ काल में साधक का बोध भी स्थिर हो जाता है। उस काल में स्थिर मन के साथ एक क्रिया को भी सिद्ध कर लेना चाहिए।

मुद्रामिमां क्रियां तां च कृत्वा स्ववशमागतः।

बोध इत्थं तथा शक्तिः तं बोधं प्रतिपादयेत् ।। ॐ ।।

इस क्रिया मुद्रा को करके बोध अपने वश में आ जाता है और इस प्रकार जागृता शक्ति उस स्थिर बोध को और भी पुष्ट बना देती है।

सा च मुद्रा सदा नित्यनित्यत्वप्रतिपादिका।

अनन्ता व्यक्त मायाति तस्मात्तां साधयेत् स्वयम् ।।

यह मुद्रा नित्य करने की है और नित्यत्व की प्रतिपादिका है। इस मुद्रा से अनन्ता शक्ति अभिव्यक्ति में आ जाती है। इसलिये इसे सिद्ध कर लेना चाहिये।

सा मुद्रा कूर्चिका मुद्रा[१२] अथवा हनुसंज्ञिका।

अथवा सर्वरूद्राणी मुद्रा सा सुस्थिरा च या।।

यह कूर्चिका मुद्रा है। इसे हनुमुद्रा भी कहते हैं। अथवा इसका दूसरा नाम सर्वरूद्राणी भी है। साधक को स्थिर करने वाली यह मुद्रा है।

सैव मुद्रा विधातव्या क्रियां तत्र वदामि ते।

यही मुद्रा करनी चाहिये। अब मैं उसे बताती हूँ।

स्वयं शरीरं सुदृढं विधाय कृत्वा च तन्मेरू विभागकं स्थिरम् ।

पुनश्च नीचैर्गलमग्रभागम् कृत्वा नरस्तत्र निवेशयेद् हनुम् ।।

अपने शरीर को सीधा दृढ़ रखलो, मेरूदण्ड भाग को सीधा और स्थिर कर लो, फिर गले को इधर उधर नीचे रगड़ कर के ठुड्डी को गले के गड्डे में जमा दो।

विशेषरूपेण विशिष्टतायुतां हनुं च तां कण्ठगतां विधाय।

इतस्ततः कम्पनमात्रकेण बोधस्थितिं तां स्थिरतां नयेच्च।।

विशिष्ट प्रकार से ठुड्डी को गले के गड्डे में जमा कर और गले में इधर उधर रगड़ कर यह मुद्रा बोध स्थिति को स्थिर बना देती है।

कृत्वा यदा च सा मुद्रा कूर्चिका हनुसंज्ञिका।

रूद्राणी च महामुद्रा रूद्रवत् निश्चलो भवेत् ।।

जब साधक इस हनु संज्ञक रूद्राणी नामक कूर्चिका मुद्रा को लगा लेता है, तब वह रूद्र के समान निश्चल हो जाता है।

इत्थं पुनः पुनः कृत्वा गलभागे निवेशयेत् ।

हनुभाग बुधस्तत्र पूर्णतामधिगच्छति।।

इस प्रकार बार बार गलभाग में हनुभाग को निविष्ट करके साधक सफलता प्राप्त कर लेता है।

एषावस्था च या प्रोक्ता प्रथमे करणीयका।

तदैव बोधसम्पन्नः स्थिरभावविराजितः।।

साधना के प्रारम्भिक काल में यदि यह मुद्रा साधक कर लेता है तो तभी से वह बोध सम्पन्न होता हुआ स्थिर भाव में विराजित हो जाता है।

मानवः आत्मबोधं च स्वात्मन्येवावतिष्ठति।।ॐ ।।

और साधक आत्मबोध को अपने भीतर ही निरूद्ध रखे रहता है। उसका आत्मबोध क्षरित नहीं होता है।

गोरख वाणी :- अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। चन्द्रविद्या के इस प्रकरण में धीरे धीरे सार सार में यह बताया जा रहा है कि जब खेत में बीज अंकुर के रूप में हो गया और पनपने लग जाय तो पनपने के बाद उसे सींचना है। अब यहाँ पर जो बात बताई जा रही है वह ऐसी ही समझनी चाहिये जैसे किसी वृक्ष को जलदान देकर पाला पोसा जाता है और जब वह और कुछ पनपने लगता है तब उसकी प्रत्यभिज्ञा हो जाती है। ऐसी धारणा पुष्ट और बलवती होने लगती है। तब उसे सुस्थिर करने के लिये, उसे परिपुष्ट करने के लिये, उसे फलवान बनाने के लिए अर्थात् प्रत्यक्ष की अनुभूति में लाने के लिए, उसे अनुभवगम्य, अनुभवयुक्त, अनुभव के योग्य बनाने के लिए जो सब मुद्रायें और क्रियायें बताई जा रही हैं, यों तो इसकी कोई आवश्यकता नहीं थी, पर थी भी। इसलिये कि यह भी गुप्त लुप्त विद्या है। और जब प्रारम्भ में साधक को, अरे ! उस अश्व की तरह जो विचलित हो जाता है और उसे वश में लाने के लिये उपाय किये जाते हैं वैसे ही प्रारम्भ के साधक के उस चंचल मन को बोधयुक्त करके उसमें बोध की भावना का जागरण करके, उपाय करके तब उसे स्थिर करना है। तो यह उस वक्त की स्थिति है जब या तो ऐसा हो रहा हो जब साधक जिज्ञासु हो और उसके अन्दर ऐसे जो आत्मबोध के अंकुर प्रस्फुरित हो रहे हो तब उसे ऐसी मुद्रा और प्रक्रिया बताना कि जो सिद्ध है, अथवा जानते हैं, औरों को बताना चाहते हैं, वैसे सब कुछ कर लेंगे पर स्थिरता को कैसे प्राप्त कर पायेंगे। वहाँ तो टंक विद्या बताई गई थी। ऐसी टंक विद्या तो तब होती है जब शक्तिपात का सहारा मिल जाता है। परन्तु जहाँ ऐसा नहीं होगा तो पहिले पहिले भाव को पुष्ट करने के लिये ऐसा करना होगा। और कुछ ऐसी कोटि के साधक भी आ जाते हैं

कि जिनको शक्तिपात भी कर देते हैं तो उनमें स्थिरता रह जाय, शक्ति भाग न जाय, वहाँ जम जाय जड़ पकड़ जाय, जड़ जम जाय, तो इसका भी प्रयोग कर लेना चाहिये, और यदि ऐसा समझें कि यों ही आत्मबोध को परिपक्व किया जायेगा तो शक्ति का सहारा लेकर ऐसा भी कर सकता है। और आरम्भ में इनका प्रयोग करना अच्छा ही रहता है। जैसा कि अभी कूर्चिका मुद्रा बताई जिस मुद्रा को हनुमुद्रा या रूद्राणी भी कहते हैं। बात साधारण सी है, सीधी सी है। पर ऐसी बात है कि तत्त्व की है। प्रारम्भ के साधकों को यदि यह मुद्रा बता दी गई और उसमें जरा थोड़ा सा अभ्यास कर लिया। शक्तिपात वाले को बता देना रास्ता दिखा देना। चल पड़ेगा। दूसरे को तो जरा अभ्यास करा देना चल पड़ेगा। पर कौन करायेगा। जो उसको थोड़ा बहुत स्वयं भी जान लेगा। जानते तो सभी हैं, पर कैसे जानते हैं। अनाम से जानते हैं। भेद से भी जानते हैं। अकाम से जानते हैं। तो उसे फिर से जगत् में प्रचलित करने का ज्ञान दिया जा रहा है। क्योंकि यह चक्रविद्या है, चक्र को स्थिर करना है। धुरी को दृढ़ करना है। और फिर उस धुरी को घुमाना भी है, तो यह मुद्रा बताई गई है इसकी क्रिया ऐसे करनी चाहिये, ऐसी दिखानी चाहिये, ऐसी बतानी चाहिये। पहिले चाहे जैसे भी आसन में बैठो, सीधे हो जाओ। जैसे योगपट्टिका लगाते हैं वैसे योगपट्टिका में तो नितान्त काष्ठवत् होते हैं, परन्तु इसमें थोड़ा ढीला भी रहे तो कोई हानि नहीं, पर रहे जरा तना ही हुआ। इसके पश्चात् दोनों हाथों को जिसे हम करतल भाग भी कहते हैं, हथेली भी कहते हैं, दोनों घुटनों पर जमा दो और उसके पश्चात् जो गले का भाग है, जहाँ पर एक छोटा सा गड्ढा है, गर्दन की और वो जो हड्डियों की हंसलियाँ वहाँ पर दो हंसलियाँ जुड़ती हैं, वहीं पर धीरे से नीचे करता हुआ जो हनु है, ठुड्डी है, उसे वहाँ परर लगा दे, और लगा दे तो उसे ऐसा लगा दे कि जरा जमा दे। यह जालन्धर बन्ध नहीं है। यह कूर्चिका मुद्रा है। इसमें लगा दे और क्या करें। जब यों लग जाय तब गर्दन को, जैसे स्कन्दिनी करते हैं, तो स्कन्दिनी में पीछे करते हैं। इस में आगे करके ठुड्डी को जमा करके और तब अपने इष्ट मन्त्र का जाप करता तब तक गर्दन को चलाता रहे जब तक अपने आप बन्द न हो जाय। बस समझ लो स्थिर हो गया। इससे स्थिरता का प्रारम्भ में साधक के लिये कोई सार्थ भावना वाला उपाय नहीं है। तो ये मुद्रायें और क्रियायें स्वल्प-स्वल्प रूप में अपना प्रभाव दिखायेंगी, और ऐसे समय में महायोग अभ्यासी, यदि उसको बता दिया जायेगा, और अभ्यास काल में ऐसा भी बता दिया जायेगा तो फिर वह दौड़ पड़ेगा। रूकेगा नहीं। चलेगा, चलेगा बढ़ेगा और कल्याण के वायुमण्डल में आ जायेगा। और इसके पश्चात् इसी प्रकार से थोड़ी थोड़ी क्रियायें और मुद्रायें जैसे टंक विद्या में बताई थी, यहाँ भी थोड़ा बता करके, यह प्रकरण समाप्त करके फिर तत्त्व के प्रकरण को उसके प्रज्ञान को भी बता दिया जायेगा।। ॐ ।।

२५-१-६३ प्रातः काल ।।१२०।।

हरि ॐ तत सत् । हरि ॐ तत् सत् । हरि ॐ तत् सत् । अपरापर ज्ञानबोधिनी चिदुद्बोधिनीं सत्यपरमार्थ स्वरूपिणीं नमामि तां भगवतीं परमेश्वरीम् ।।

अपरा और अपर का ज्ञानबोध कराने वाली, चैतन्यबोध करानेवाली सत्यपरमार्थ स्वरूपिणी परमेश्वरी भगवती को प्रणाम है।

बोधभावपरिज्ञानसन्ततिं सर्वतश्च परिपुष्टिकारिकाम् ।।

बोधभाव के परिज्ञानों को सर्वतः परिपुष्ट करने वाली भगवती को प्रणाम है।

भव्यां भव्यानुकूलां च सर्वां सर्वेश्वरीं सदा।

नौमि तां सर्वरूपां च आत्मबोधसमर्थिकाम् ।।

भव्य और भव्यभाव के अनुकूल सर्वरूपा सर्वेश्वरी और आत्मबोध देने में समर्थ भगवती को मैं प्रणाम करता हूं।

अथ आत्मबोधविषये किञ्चित् किञ्चित् पुनश्च अभ्यासकाले नवैर्वा प्राचीनैर्वा साधकैः सदैव भावस्थिरता प्रतिपादनीया।।

अब आत्मबोध के विषय में थोड़ा थोड़ा पुनः अभ्यास काल में नये अथवा पुराने साधकों को भावस्थिरता करने के उपाय बताये जाते हैं।

भावनां स्थिरता लोके सर्वकार्यप्रसाधिका।

यावच्च चलिता भावास्तावत् सिद्धिर्न जायते।।

संसार में भावों की स्थिरता सर्वकार्यप्रसाधिका होती है। जबतक भावों में चंचलता बनी रहती है तब तक सिद्धि नहीं होती है।

भावचाञ्चल्यमासाद्य कश्चिदपि सुसाधकः।

स्वयं वै साधना काले नाप्नोति परमां श्रियम् ।।

अच्छा साधक भी भाव-चंचलता प्राप्त करके साधना काल में कभी उन्नति नहीं कर सकता है।

खण्डात् खण्डात्मिकां सत्तां भावसत्तां विकारिणीम् ।

अस्तव्यस्तसमाकुलां न वृणोति स अस्थिरः।।

अस्थिर साधक खण्ड खण्ड सत्ताओं को और इधर उधर बिखरी हुई भावसत्ताओं को एकत्र समेटने में कभी समर्थ नहीं हो पाता है।

तस्माच्च साधनाकाले आत्मबोधयुतो नरः।

आत्मभावं दृढं कृत्वा सफलश्च भवेत् सदा।। ॐ ।।

इसलिये आत्मबोध के इच्छुक व्यक्ति को चाहिये कि साधनाकाल में आत्मभाव को दृढ़ कर वह सफलता प्राप्त करें।

तदर्थअर्थबोधाय भावबोधाय तात्त्विका।

एका मुद्रा परा या च क्रियामण्डितरूपिणी।। ॐ ।।

उस प्रयोजन के लिये अर्थबोध और भावबोध की तात्विक प्राप्ति के निमित्त एक श्रेष्ठ मुद्रा है, जिसमें एक प्रकार की क्रिया करनी पड़ती है।

सा मुद्रा सारिका मुद्रा सारं सारं ददाति या।

सारिका सारसम्पन्ना शारदायाः कृपान्विता।।

उसका नाम सारिका मुद्रा है, जो सार सार को प्रदान करती है। सार सम्पन्ना सारिका मुद्रा में शारदा भगवती की कृपा भरी हुई है।

सा मुद्रा सरला प्रोक्ता भावानां मूलधारिणी।

मूले दृढे कृते चैव पुनः सिद्धिः प्रजायते।।

यह बड़ी सरल मुद्रा है। भावों की जड़ पकड़ लेने वाली है। मूल को दृढ़ बनाती है। मूल के दृढ़ बना लेने पर फिर सिद्धि हो जाती है।

आत्मानं यो न वा वेत्ति न वेत्ति परतत्त्वकम् ।

तस्मात् पूर्वं स्थिरत्वेन आत्मनः परिचयं व्रजेत् ।।

जो साधक आत्मा को नहीं जानता है और परतत्त्व को भी नहीं जान पाता है, वह पहिले स्थिर भाव से आत्मा का परिचय प्राप्त कर ले।

तदर्थं सारिका मुद्रा समर्था जायते महा।

महाबोधपरा सैव महासुस्थिर कारिणी।।

उसके लिए सारिका मुद्रा बड़ी समर्थ सिद्ध होती है। यह महाबोध से पूर्ण मुद्रा है और बोधभाव को सुस्थिर कर देने वाली है।

या मुद्रा सारिका प्रोक्ता या च वै कार्यकारिणी।

एवं विशेषरूपेण सा मुद्रा क्रियतां बुधैः।।

जो सारिका मुद्रा बताई गई है यह बहुत काम बना देती है। अतः बुद्धिमान साधक को विशेष रूप से यह मुद्रा करनी चाहिये।

क्रियां तत्र इमां पश्य पुरतो दर्शयामि ते।

वदामि च तदर्थाय तस्मात्त्वं सफलो भव।।

इस क्रिया को तुम देखलो। इसे मैं तुम्हारे सम्मुख दिखाता हूं। इसे लगा कर तुम सफल बनो।

आसनं सुदृढं कृत्वा पश्चाद् ध्यानस्थितो यदा।

हस्तौ तौ च समुत्थाय पृष्ठभागे स्थापयेत् ।।

आसन को दृढ़ करके फिर ध्यानावस्थित हो जाय। तदनन्तर दोनों हाथों को उठाकर पीठ की ओर ले जावें।

एकेन एकमादाय पृष्ठभागे निधापयेत् ।

पश्चाच्च स्वल्परूपेण आननश्च भवेत् तदा।।

एक हाथ को दूसरे हाथ की ओर पीठ की तरफ रख लें। तब थोड़ा झुक जाय।

शीघ्रं शीघ्रं महाशीघ्रं मन्त्रस्योच्चारणं भवेत् ।

पुनश्च स्कन्धयोः कृत्वा हस्तौ एवं च स्थापयेत् ।।

फिर शीघ्र-शीघ्र बहुत शीघ्र मन्त्र का उच्चारण करता चला जाय। फिर कन्धों में दोनों हाथों की अंगुली मिलाकर इस प्रकार हाथ स्थापित कर लेना चाहिये।

एवं कृते च या मुद्रा सारिका सारदायिनी।

निश्चितं भावबोधं च सुस्थिरं हि करिष्यति।।

इस तरह क्रिया करने पर सारदायिनी सारिका मुद्रा सम्पन्न होती है। यह मुद्रा अवश्य ही भाव बोध को सुस्थिर कर देगी।

क्रियास्तस्याश्च मुद्रायाः गोरक्षो दर्शयिष्यति।।

गोरक्ष ! गोरक्ष ! गोरक्ष !

इस मुद्रा की क्रिया और करने का तरीका गोरक्ष तुम्हें बतायेगा।

गोरक्ष ! गोरक्ष ! गोरक्ष !

गोरख वाणी :- अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। आदेश। आदेश। आदेश। मां की आज्ञा है कि साधक के भावों की जड़ों को मजबूत कर देने के लिये सार सार निचोड़ दो। और जो उसे पुष्ट करने वाली सारिका मुद्रा है, उसे बता दो। क्रिया करा दो। तो यह सारिका मुद्रा क्या है ? कुछ नहीं है। हंसी की बात पक्की सी है। जो वस्तु देखने में कभी कभी छोटी सी मालूम होती है और उसे हम यों ही समझते हैं, पर यह बड़ी

लाभ की होती है। अरे भाई ! मन्त्र कितना बड़ा होता है ? पर उसमें कितनी शक्ति समाई हुई है एक छोटे से मन्त्र में ब्रह्माण्ड को कंपा देने की, साध देने की सब कुछ शक्ति भरी हुई है। एक बीज में सारा महावृक्ष समाया हुआ है। तुमने उसे बीज समझ लिया। छोटा सा है, फैंक भी देते हो। पर उसके अन्दर जानते हो, वृक्ष है। मन्त्र भी छोटा सा है। यह सारिका मुद्रा बहुत छोटी सी है, पर इसमें नये साधक और पुराने साधक के लिए इतना सार है कि जिसमें बोधस्थिर होता है। चाहे वह प्रारम्भिक बोध हो, चाहे वह परिपुष्ट बोध हो, चाहे उदित हो रहा हो, चाहे उदित हो गया हो, कोई भी बोध को स्थिर करने के लिए इस क्रिया का, इस मुद्रा को प्रयोग कर दिया जाता है। और ऐसा कर लेने पर उस सारिका मुद्रा की बड़ी भारी शक्ति अपना काम करने लगती है। और उसी से फिर रोधिका मुद्रा उत्पन्न हो जाती है। तो सारिका का और रोधिका का परस्पर सम्बन्ध है। मैं दोनों को बताता हूं। दिखाता हूं। जितना जानता हूं, मां कहती है तो करता हूं। और इसलिये भी करता हूं कि करना है। करने का समय है। और समझ भी है। समझने का समय है। तो साधक ! सावधान ! सारिका मुद्रा की क्रिया को ध्यान में रख लो। आओ। जम जाओ। बैठ जाओ। देखो। दोनों हाथ, बात कुछ नहीं है, जरा सी समझने की है, कुछ नहीं है। समझ लो, पर बहुत बड़ी चीज है। ध्यान से उतर न जाय। ऐसा कर लो। दोनों मुट्ठियों को बन्द करलो और एक को यों रख लो, उसके अन्दर दूसरी दोनों को जो है, जहां पर तुम्हारे पहुंचे का भाग खत्म होता है। कोहनी आता है। उसे जिसे कर्पूरिका भी कहते हैं, जिसके नाम से कर्पूरिका मुद्रा चलती है, तो दोनों मुट्ठियों को इस तरह बांध दो और ऐसा करके चाहो तो धीरे धीरे हिल सकते हो, किधर भी। किन्तु ध्यान रखना, हाथों से हाथ को जोड़ते हुए जितनी सरलता से हो सके, ले जाना। जहां तक जा सके वहां तक ले जाना। नहीं तो बोध में स्थिरता होने की अपेक्षा बोध में विक्षेप न हो जाय। जबरदस्ती नहीं, देखो फिर समझ लो। हाथों को मुट्ठी जैसे आगे भी करते हो, स्थान परिचायिका की भांति बाहर। ऐसे पीछे कर दो। कौन सी बात है ? आगे लगालो। थोड़ा देर ऐसे ही बैठ जाओ। नहीं बैठ सकते तो फिर यों कर लो। और इसके बाद जब थोड़ी देर यों लेटे रहो। इष्ट मन्त्र का शीघ्रातिशीघ्र जप करते रहो, विलम्ब नहीं। जितना जल्दी जल्दी बोल सको बोलते रहो। बोलते रहो और यों करके या फिर ऐसा कर लो, यों कर लो। या फिर जो कन्धे हैं, इनसे जिधर से जैसे सहूलियत हो सके जैसा जी चाहे वैसा हिला लो। ऐसा करने से फिर देखो, कैसा आनन्द आता है, और फिर तुम्हारा भावबोध कैसे स्थिर होने लगता है, तो इसी से तुम्हारे भावों का रोध भी होने लगेगा। और बोध और शोध तो हो ही जायेगा। तो कभी कभी गर्दन यों नीचे कर सकते हो। गर्दन को दायें कन्धे में भी रख सकते हो, बायें कन्धे में भी रख सकते हो। और जब अपने आप झुक जाय तो आगे भी कर सकते हो। जिधर जाय, जाने दो, उसमें ऐसी भावना आ जायेगी, तुमको प्रयत्न नहीं करना पड़ेगा। जहां तुमने प्रारम्भ में स्वयं जरा सा प्रयत्न करके रखा और फिर स्वयं सिद्धि और वह चल पड़ी और फिर उससे रोधिका मुद्रा भी सिद्ध होने लगेगी। अरे ! रोधिका। यह तो बताई सारिका। और फिर ऐसा

कर लेना। कई क्रिया, कई मुद्रा बता रहा हूं। इसका मतलब यह नहीं कि तुम शुरू से आखिर तक सब को कर जाओ। अरे भाई ! जब जिसकी जरूरत समझो। जब ऐसा भाव आ जाय कि ऐसा करलें, तो चित्त को स्थिर करना है। मन्त्र को जागृत करना है। यही तो है। तो दो बात मैंने बताई थी। उन लोगों के लिये जिनको प्रारम्भ का काम करना है और शक्ति का संचार होने पर जिनको और आगे बढ़ना है। किन्तु ध्यान रखो, सारिका सब के लिये है। इसमें नवीन भावों की प्राचीन भावों की, वर्तमान अभ्युदय होने वाले भावों की, परिपुष्टि और संरोध होता है। यों तो सारिका मुद्रा का आभास भी दे दिया गया है। और जब चाहो तो रोधिका के बारे में भी थोड़ा समझ लो, रोधिका भी केवल ऐसी मुद्रा है जिसकी क्रिया भी सरल है, रोध कर लो, अर्थात् जो भाव इधर उधर छिटक रहे हैं उनको पकड़ के रोक लो। रोकना तुम्हारे काम की चीज है। पर वश की चीज तो नहीं, तो वह मुद्रा क्रिया उसे अपने आप ठीक कर देगी। इसलिये बताया जा रहा है। तो देखो भाई ! जब कभी साधना में बैठो, मन उचाट हो जाय, उच्चाटन में चले, क्या करें, किसलिये करें तो ऐसी स्थिति में या कहीं बैठे बैठे मन दूर उड़ जाय तो, थोड़ी देर उड़ जाने देना, पर जब देखना कि अब विलम्ब होता है और अब ध्यान नहीं जमने देता, अब यह बोध के अंकुर को मुरझा देगा तो फिर यही मुट्ठी बन्द कर लेना। अंगुठा बाहर रहे। यह विचार को बनाने वाला है। किसको यों, (बन्द) नहीं कर देना। फिर यों करके और क्या करना, जैसा कि आसन लगाया है, यों और यों, दोनों मुट्ठियों को चाहे दोनों जंघाओं के नीचे रख लेना और नीचे झुक जाना या आलम्बिनी की तरह जो बात की बताई थी ना। वहां कुछ और था, लेकिन इसे ऐसे कर लेना। दोनों मुट्ठियों को नितम्ब भाग के नीचे दोनों पुट्ठों के नीचे दोनों मुट्ठियां जोड़के बैठना और इष्ट मन्त्र का जाप करना। देखना उसमें भी कहीं ऐसा न हो, कि मुट्ठी ठीक न हो, अंगुलियों के ऊपर भार पड़े और उचाट खा जाओ। भाई ! यों। इस रोधिका में मन स्वयं खिंच जायेगा। यह भी सब के लिये कही गई है। समय समय पर अभ्यास कर लेना, कल्याण होगा। ॐ अलख निरञ्जन।

२५-१-६३ सायंकाल।।१२१।।

हरि ॐ तत् सत् । नमस्ते रूपरूपायै सकलायै कलाविमण्डितायै शक्त्यै महाशक्त्यै नमः। नमोऽस्तु महाशक्त्यै आत्मबोधपरिज्ञानदानसमर्थायै। परिज्ञानदानसंरक्षिकायै भगवत्यै नमः।। ॐ ।।

विचित्र रूपोंवाली, कलाओंवाली, कलामण्डिता महाशक्ति को नमस्कार है। आत्मबोध प्रदान में समर्थ और प्रदत्त ज्ञान को संरक्षित करने वाली भगवती देवी को प्रणाम है।। ॐ ।।

प्रोक्तंच यत्पूर्वमिदं शुभं शुभं तदात्मबोधार्थक संशुभात्मकम् ।

तद् रक्षणार्थं च विबोधनार्थं सर्वं हि तद् ध्यान परेण गम्यम् ।।

कल्याणप्रद मंगलकारी आत्मबोध परक जो बातें पहिले बताई गयी हैं उसके संरक्षण के लिये और समझते रहने के लिये साधक को सदा ही ध्यानपरायण होना चाहिये।

यद् ज्ञानं गदितं पूर्वं आत्मबोधविधायकम् ।

तत् सर्वं पूर्णरूपेण रक्षणीयं भवेत् सदा।।

आत्मबोध देनेवाला जो ज्ञान पहिले बताया गया है उसे पहिले बताये उपाय से सदा सुरक्षित रखना चाहिये।

आत्मा आत्मार्थतत्त्वस्य तत्त्वबोधस्य बुद्धिकः।

बुद्धयास्तु केवलं तत्र ज्ञानाधारेण प्रोच्यते।।

अपने स्वरूप का यथार्थ ज्ञानवान और तत्त्वबोध की बुद्धिवाली अपनी आत्मा ही रहती है। बुद्धि तो उसके साथ केवल ज्ञान का आधार बनकर लगी है।

अस्ति तत्र सदाधारः आधारः दृढकारकः।

तस्मात् चक्रसमायुक्ता चक्रविद्या विधीयते।।

उस बुद्धि का जो सुन्दर आधार है उसे दृढ़ करने के भी उपाय हैं। इसलिये चक्रज्ञान से भरी हुई चक्रविद्या कही जा रही है।

तत्र चैवं यदा भावं भावना शुभ्रसंज्ञकम् ।

कल्याणजनकं चैव आत्मबोधस्य कारकम् ।।

सात्विक भावना से परिपूर्ण आत्मबोध कारक कल्याणजनक भावना जब उदित हो जाती है-

तद् रक्षणं च कर्तव्यं साधकेन समाहितम् ।

रूपेण रूपरूपेण तस्मात्तत्र क्रियान्वितः।।

समाहित और सावधान होकर उसकी रक्षा करे। उसकी रक्षा के लिये जो जो क्रिया-मुद्रा के स्वरूप बताये हैं उनका सहारा ले लेना चाहिये।

भूयात् दत्तावधानेन बोधेन च विमण्डितः।

तदर्थं सर्वभावेन मुद्रामेतां वदामि ते।।

सावधान पूर्वक साधक को बोध से विमण्डित बने रहना चाहिये। इसके लिये एक महत्त्वपूर्ण मुद्रा बता रहो हूँ।

एषा वै प्लाविनी मुद्रा[१४] भावप्लावन मात्रिका।

मूलाधारा महत्मूला मूलरूपा च कथ्यते।।

सभी भावों को साधक के भीतर आप्लावन कर देने वाली इस मुद्रा को प्लाविनी मुद्रा कहते हैं। यह मुद्रा बड़े महत्त्व की है और महामूल रूपवाली है।

एषा मुद्रा परा ज्ञाता कृता चैव भृशं भृशम् ।

तदा तु आत्मबोधस्य परिपुष्टिः प्रजायते।।

इस मुद्रा के जान लेने पर और बार-बार करते रहने से साधक में आत्मबोध की परिपुष्टि होती रहती है।

एवं प्रोक्तंपुनस्तुभ्यं मूलं मूलं स्वयं मया।

तस्माच्च मूलमादाय वृक्षं च सुदृढं कुरू।।

इस भांति मैंने सार सार में, मूलरूप में क्रिया मुद्रायें बताई हैं। मूलरूप में बताई गई इन मुद्राओं द्वारा तुम मूल को दृढ़ बनाते हुए वृक्ष को भी सुदृढ बनाओ।

मुद्रारूपं क्रियारूपं क्रियारूपेण सत्वरम् ।

अचिरेण च वै सद्यः गोरक्षः कथयिष्यति।।

इस मुद्रा का स्वरूप क्रिया के रूप में शीघ्र ही अभी गोरक्ष तुम्हें बतायेगा।

गोरक्षश्च क्रियाज्ञाता मुद्राज्ञाता विशेषतः।

तेनैव सर्वमेतद्धि काले काले प्रदर्शितम् ।। ॐ ।।

गोरक्ष तो सभी क्रियाओं का ज्ञाता है और मुद्राओं का विशेष ज्ञान रखता है। उसी ने ये सब मुद्रा क्रियायें समय समय पर लोक में बताई थी।

इदानीं चैव गोरक्षः बोधरक्षणतत्परः।

शोधाय अनुरोधाय सर्वमेतत् करिष्यति।। ॐ ।।

अब भी यही गोरक्ष साधकों के बोध की रक्षा करने में तत्पर बना है। अतः साधकों के शोधन के लिये और उनकी प्रेरणा के लिये ये सब क्रिया मुद्रायें स्वयं करके तुम्हें बतायेगा।। ॐ ।।

एवमेवं कृते काले कालेनैव क्वचित् क्वचित् ।

सर्व बोधमयं पूर्ण जगद् बोधयुतं भवेत् ।।

इसी भाँति समय समय पर कभी कभी इन मुद्रा क्रियाओं के ज्ञान, प्रचार और अभ्यास से समस्त जगत् बोधशाली बन जायेगा।

गोरक्ष ! गोरक्ष ! गोरक्ष !

गोरक्ष ! गोरक्ष ! गोरक्ष !

गोरख वाणी :- अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। ॐ । माँ का आदेश पाकर कुछ कहना ही पड़ता है और कहने के लिये आना ही पड़ता है। और आने की आवश्यकता भी हो गई है। क्योंकि अब सार सार में, तत्त्व तत्त्व में बोध का ज्ञान पनपाना है। उसकी मजबूती करनी है। उसकी दृढ़ता करनी है। जब विशेष रूप में करनी है तब विशेष रूप से सार सार तत्त्व तत्त्व भी बताना ही पड़ जाता है। ऐसा होता है कि जिसको करने से, जिसके जानने से, जिसके अनुभव से ऐसा होता है कि सबका वह पनपा हुआ अंकुर पुष्ट हो जाता है, और जब भावना पुष्ट हो जाती है तो उस पुष्टि में धुरी का चक्र चलना सहज हो जाता है। तो इसलिये इस चक्रविद्या का फिर से एकबार चक्र घूम जाना चाहिये। तो फिर मैं माँ के सामने तो छोटा सा अज्ञानी बालक हूँ। फिर भी माँ की कृपा है। मां की कृपा है। मां कहती है तो कह देता हूँ। समझा देता हूँ। बात सरल है। समझो। आत्मा और परमात्मा का ज्ञान ज्ञानियों के गूढ़ गोचर का ज्ञान है। ध्यानियों के गूढ़ ध्यान का काम है। और मैं तो यह कहता हूँ कि जो कुछ करना है उसे तो पहिले जान लो। और ऐसे भाव जब आ जावेंगे तो पा लो और पाकर के खाले, खिलाले, देख ले, दिखा ले, जान ले, जना ले। तो इसलिये शास्त्रविद्या का प्रचलन किया जा रहा है कि शास्त्र तो बनते ही हैं, बने ही रहेंगे; और उनमें जो भाव आते हैं, वे इसलिये आते हैं कि उनका प्रचार होना है। उनकी विस्मृति न हो, उनकी एक परम्परा बनी रहे। तो शास्त्रज्ञान ऐसा होता है। तो जब शास्त्र लुप्त गुप्त हो जाते हैं तो फिर उन्हें इस प्रकार बताया जाता है कि जैसे कि मैं आज फिर से प्लाविनी मुद्रा का क्रिया-रूप सामने रख रहा हूँ, दिखा रहा हूँ। मां ने तो यूं ही कह दिया कि गोरख बतायेगा। तो यह प्लाविनी मुद्रा क्या है ? इस मुद्रा में भावों को अपने आप में समेटने का गुण है। इधर उधर के सारे भावों को आकर्षण करने का गुण है। और यह प्लाविनी मुद्रा ऐसी मुद्रा है कि जिससे, जिसको करने से सब भाव सिमटने लगते हैं, स्थिर होने लगते हैं। करना क्या है ? गोरख तो ऐसी राह बताता है।

सीधी राह चलावे अवधू गोरख बाबा।

अरे ! कौन राह पर चले रे गोरख ऐसे बाबा।

सीधी राह बतावे गोरख सीधे ही पहुंचावे।

करे जो कोई राह चले रे गोरख रहण न नीचे पावे।।

यह है। फिर कैसे हो। देखो ऐसा करो। भाई, जब आसन लगाया हो तोड़ना पड़ेगा। तोड़ दो। ऐसा करो, देखो। आसन लगा है। तोड़ दो तो यों हो जाओ। पैर जरा आगे कर लो। फिर पैरों को धीरे धीरे समेट लो, फिर जो पीछे जो पृष्ठ भाग है, उसको भी जो तुम्हारा गुल्फ भाग है जिसे एड़ी का भाग भी कहते हैं, उसको भी दोनों को मिला दो और जो तुम्हारे वक्षःस्थल का, जिसे छाती कहते हैं, हिस्सा है, उसे भी घुटनों पर रखा दो। ऐसा करके और थोड़ी देर को यों ही हाथ आगे कर लेना। यों नीचे जमीन पर लग जाँय, आसन पर लगे हुए हों और कैसा भी क्यों न हो थोड़ा देर ऐसे ही रहना। ऐसे रहने में जब जरा आनन्द मिलने लगे, तब फिर जरा सा यों पीछे को झुकना और देखो भाई ! दोनों हाथों को घुटनों के पास लाकर एक हाथ को ऊपर, एक हाथ को हाथ के ऊपर रहे। और दूसरा बाँया हाथ खुला ही खुला नीचे के घुटने के जरा सा नीचे के भाग में आ जाय और यों करके जरा सा जोर पड़ जाय और जो दोनों घुटने खुले हुए थे, उनके नीचे में जो खड्डी है उस खड्डी पर लगी जो ठुड्डी है, उस ठुड्डी को, यानी भूल नही करना; लो ऐसा करो। दोनों गालों को दोनों घुटनों के बीच में रख लो। बैठ जाओ।

इष्ट मंत्र का जाप करो। बस, चारों ओर से भाव सिमट आयेंगे। जब कभी कोई विशेष भावों को नष्ट करने के लिये आ जाय, लगाओ प्लाविनी मुद्रा, समेट लो। आकर्षण हो जायेगा, आनन्द आ जायेगा। और तुम्हारा बोध पक्का हो जायेगा, और उसके पक्के होने पर तुम्हारा रास्ता साफ होता चला जायेगा। ॐ ।

२६-१-६३ प्रातःकाल ।।१२२।।

ॐ । हरि ॐ तत् सत् । ॐ ।। नमामि तां भगवतीं महामायां जागृतां कुण्डलिनीं सरस्वती-स्वरूपां, सद्यः प्रत्यक्षरूपिणीं प्रत्यक्षात्मबोधात्मज्ञानदायिनीं नमामि तां सरस्वतीम् ।। ॐ ।।

सरस्वती स्वरूपा जागृता महामाया भगवती कुण्डलिनी शक्ति को प्रणाम करता हूं। तुरन्त प्रत्यक्षरूप में प्रत्यक्ष आत्मज्ञान और बोध देने वाली भगवती सरस्वती को नमस्कार करता हूं।

आत्मबोध परिज्ञानं अनुभूतौ निवेश्य च।

बीजाङ्कुरं दृढं कृत्वा ततः निश्चलतां व्रजेत् ।।

आत्मबोध के परिज्ञान को अनुभूति में लाकर बीज और अंकुर को दृढ़ करता हुआ साधक निश्चलता को प्राप्त करता है।

मनसश्चञ्चलावृत्तिर्या च बोधविनाशिनी।

सपत्नी ध्यानयोगस्य तस्मात् तां च निरोधयेत् ।।

मनकी जो चञ्चलता वृत्ति है वह साधक के बोध का विनाश कर देती है। वह चंचला वृत्ति ध्यान योग की सपत्नी है। अतः उसका निरोध करना चाहिये।

बोधस्तु जायते किञ्चित् किञ्चित् ज्ञानं च जायते।

किन्तु तत् सर्वमादाय मनसस्तु निवारयेत् ।।

साधक को जो थोड़ा बहुत ज्ञान होता रहता है, उसे मनकी चंचल वृत्ति मन से दूर हटा देती है।

तस्माच्चक्राभिधा विद्या या च नित्या नवोदया।

नवभावविबोधा च ज्ञानाय बलवती च या।।

इसलिये नित्य नवीन नवीन अभ्युदय देने वाली यह चक्र विद्या है। यह विद्या नये नये भावों का उदय करती रहती है और ज्ञान प्रदानार्थ बलवती है।

बोधरक्षण कार्यार्थं या च प्रोक्ता पुरा मया।

अधुनापि च तां विद्यां वदामि कार्यसाधिकाम् ।।

बोध के संरक्षण के लिये पहिले भी मैंने बताया है और अब भी उस कार्यसाधिका विद्या को मैं बता रही हूँ।

आत्मबोधस्य भावनया परमात्मबोधस्याभ्युदयो भवति। आत्मानं वा परमात्मानं वा यः परिचिनोति, स एव परमानन्दमोदितो भवति। यच्च लक्ष्यभूतं परमार्थकं तस्य प्राप्तिस्तु विधेया।

आत्मबोध की भावना से परमात्मबोध की भावना का उदय होता है, आत्मा और परमात्मा को जो पहिचानता है, वही परमानन्द मोदित रहता है। जो परमार्थ की प्राप्ति का लक्ष्य है, उसकी प्राप्ति अवश्य कर लेनी चाहिये।

सा च पूर्वमात्मबोध परिज्ञानेन आत्मबोधेन वा भविष्यति। आत्मबोधस्य संरक्षणार्थं आत्मबोधस्य पुष्टिकरणार्थं मनसः आत्मनश्च तुष्टिकरणार्थं अत्रास्मिन् प्रकरणे अस्यां विद्यायां वा क्वचित् क्वचित् मुद्राणां ज्ञानं क्वचित् क्वचित् क्रियाणां च ज्ञानं तासां च अनुभूतिः।।

और वह परमार्थ प्राप्ति पहिले आत्मबोध के परिज्ञान और आत्मबोध से होगी। आत्मबोध के संरक्षण के लिये और उसकी परिपुष्टि के लिये, आत्मा तथा मन की तुष्टि के लिये अब इस प्रकरण में कहीं कहीं मुद्रा तथा कहीं क्रियाओं का ज्ञान होना आवश्यक है और उनकी अनुभूति होना भी आवश्यक है।

तासां च फलप्राप्तिः तासां च फलसम्पत् विधीयते। यद् ज्ञातं यत् कृतं अनुभूतं च तदेव सफलीभूतं भवति। अन्यथा तस्मात् क्रियाणां मुद्राणां केवलं न ज्ञानमात्रं, कृताभ्यासकत्वेन अनुभूति विषयकम् । अनुभूतिविषयकत्वेन आत्मबोधस्य स्थिरीकरणम् । तदर्थमपरा एका मुद्रा विधीयते।।

उन मुद्राओं और क्रियाओं की फलप्राप्ति और फलसम्पत्ति यही है कि, जो कुछ कृत, ज्ञान और अनुभूत होता है वही सफल होता है। अन्यथा केवल मुद्रा और क्रियाओं के ज्ञानमात्र से कुछ बनता नहीं है। अभ्यास करने पर ही वे अनुभूति का विषय बनती हैं। अनुभूति के विषयीभूत होने पर आत्मबोध की स्थिरता आती है। उसके लिये एक और मुद्रा भी बताई जाती है।

सा च विस्थापिका मुद्रा[१५] प्रोक्ता सा विश्वभाविनी।

विश्वात्मिका सदाधारा मुद्रा सा च शुभा मता।।

वह मुद्रा विस्थापिका मुद्रा है। यह मुद्रा सर्व प्रकार से आत्मबोध की भावना पैदा करती है, विश्वात्मिका है सुन्दर आधार वाली और मंगलकारिणी है।

विस्थापिका या च समानमुद्रा मुद्राङ्किता सा परमार्थबोधिनी।

स्थिरत्वमायाति तया च बोधः मनश्च सद्यो वशमात्मभावे।।

समभाव वाली जो परमार्थबोधिनी विस्थापिका मुद्रा है, उससे बोध स्थिरता को प्राप्त होता है और मन भी शीघ्र वशीभूत हो जाता है।

आयाति शीघ्रं शुभशंसितं स्वयं एषा च मुद्रा शुभदा सुखावहा।।

मंगलकारक जो बताई गई बातें हैं वे स्वयं अतिशीघ्र इस सुखद और कल्याणदायक मुद्रा द्वारा स्वयं ही स्थिर हो जाते हैं और आसानी से आत्मबोध हो जाता है।

विस्थापिका मुद्रा मुद्राणां मुद्रकारिणी वर्तते। मुद्राशब्दस्यः अर्थः स अर्थः विस्थापिकया सार्थकः क्रियते।।

यह विस्थापिका मुद्रा समस्त मुद्राओं में उत्तम और श्रेष्ठ मुद्रा है। मुद्रा शब्द का जो अर्थ है, वह इस मुद्रा के द्वारा सार्थक बनता है।

मुद्रा, मुदंराति भावं सर्वतः या सा मुद्रा। अथवा मुकुलिता भावाः यत्र मुद्रिता भवन्ति सा मुद्रा। मुद्रा भावानां बोधिकापि भवति, भावानां संरक्षिकापि भवति। भावांश्च सुस्थिरान् करोति, सा मुद्रा भवति।।

मुद्रा का यह अर्थ हैः- सब ओर से भावों को प्रभावित कर दे अथवा जो मुकुलित भाव हैं उन्हें विकसित कर दे। मुद्रा भावों की उद्बोधिका भी होती है, भावों का संरक्षण भी करती है। भावों को सुस्थिर भी करती है। अतः उसका नाम विस्थापिका मुद्रा है।

विस्थापिका मुद्रा उत्तमा परमोत्तमा मुद्रा वर्तते। तस्य क्रियाज्ञानं कर्तव्यम् । एतच्च क्रियाज्ञानं सर्वभावेन प्रोच्यते।। ॐ ।।

विस्थापिका मुद्रा उत्तम व परमोत्तम मुद्रा है, उसकी क्रिया का ज्ञान करना चाहिये। इस क्रिया के करने की विधि भलीभाँति बताई जा रही है।

कृत्वा जानुगतौ हस्तौ अधस्तात् स्थापयेद् बुधः।

तत्र संयोज्य तौ भूयः कुक्षिभागं निधापयेत् ।।

हाथों को घुटनों के ऊपर रख लो, उन्हें परस्पर मिलाकर कुक्षिभाग को भी घुटनों पर रख लो।

किञ्चित् किञ्चित् क्वचिच्चैव अङ्गुल्या योजनं मतम् ।

क्वचिच्च नैव तत् प्रोक्तं स्वातन्त्रेण क्रिया भवेत् ।।

कभी कभी हाथों की अंगुलियों को भी आपस में मिलाया जाता है और कभी नहीं। इस क्रिया को स्वतन्त्र रूप से करने को कहा गया है।

पश्चाच्च पृष्ठभागं हि निम्नं कृत्वा पुरोगतम् ।

एवं कृते च भावानां विस्थापस्तु भवेद् दृढः।।

फिर पृष्ठ भाग को आगे की ओर झुका लो। इस प्रकार कर लेने से भावों का विस्थापन दृढ़ हो जाता है। आगे को झुक जाओ।

स्थितिर्या प्रोच्यते अत्र विस्थापाख्या मयाऽधुना।

तां ज्ञात्वा च क्रियारूपां क्रियासिद्धिं ब्रजेन्नरः।।

विस्थापिका मुद्रा की जो स्थिति होती है उसे मैं अब बताती हूँ जिसे क्रियारूप में जानकर मनुष्य क्रिया सिद्धि को प्राप्त हो जाता है।

विस्थापिकायामेवं करणीयं भवति, तत् सर्वं पुरतः एव आगमिष्यति। ॐ ।। गोरक्ष ! गोरक्ष !

विस्थापिका में जैसा करना होता है वह सब प्रत्यक्ष सामने आ जायगा। गोरक्ष ! गोरक्ष !!

गोरख वाणी :- ॐ अलख निरञ्जन ! अलख निरञ्जन ! अलख निरञ्जन !

आत्मा और परमात्मा इनका ज्ञान करना सब चाहते हैं और चाहते क्यों हैं, उसका भी कारण परमार्थ सिद्धि है, और वह है भी जीवन का लक्ष्य, ऐसा बताया गया है। तो जब ऐसी बात है, वहां तक पहुंचना है, जान पहिचान करनी है, स्थान पर पहुंचना है तो उसके लिये जैसा बताया गया था तो अब सब भावों को पुष्ट भी कर लेना चाहिये। जब भावों की पुष्टि पर ही सब कुछ निर्भर है तो फिर उसकी पुष्टि भी होनी चाहिये, और खः खः पर दौड़ने वाली, "ख" का मतलब शून्य है। शून्य की ओर दौड़ने वाली जो इस चित्त की वृत्ति है, तो आत्मबोध के मार्ग में बाधक होती है और "ख ब्रह्म" वहाँ तक पहुंचने भी नहीं देती है। इसलिय साधन में लगने वाले साधकों के लिये इस वृत्ति का निरोध होने के लिये, और आत्मबोध के बीजाङ्कुर वृक्ष को पुष्ट होने के लिये ही ये सारी बातें बताई जा रही हैं। जैसा कि आधार विद्या में बताया गया था कि आधार को पुष्ट कर लो, तो वहाँ आधार पुष्टि का तात्पर्य था कि पूर्ण अनुभव कर लो और उन अनुभवों को देख लो कि ठीक ठीक उतर गये हैं कि नहीं। यहां इस विद्या में भी उसी तरह ऐसा ठीक ठीक देख लेना चाहिये कि जो भाव हमारे हृदय में आये थे वे पुष्ट हो रहे हैं कि नहीं। वे आते हैं कि चले जाते हैं, कि समाप्त हो जाते हैं, और फिर उनका कभी उदय ही नहीं होता है, क्षणिक है ऐसा नहीं। भावों की स्थिरता ही कल्याणकारिणी होती है। इसलिये उस भावस्थिरता को लाने के लिये प्रारम्भिक अवस्था में या अन्य भावों की पुष्टि करने की अवस्था में ये क्रियायें और मुद्रायें बताई गई हैं। मुद्रा का तात्पर्य होता है- चारों ओर से सब वस्तुओं को लाकर समेट करके एक केन्द्र में रख देना। अथवा मुद्रा का अर्थ होता है कि जो विचार धारायें अंग प्रत्यङ्गों के संचालन के द्वारा क्रिया का रूप लेती हैं और वह क्रिया का रूप भी विशिष्ट होता है उसको मुद्रा कहते हैं। मुद्रा के भावों को विकास में लाने की, उनको सुरक्षा में रखने की, उनको बलवान् करने की और उनको

पुष्ट करते हुए उनको एक कार्य में सहयोग देने की भावना होती है। मुद्रा शब्द के विशेष अर्थ को फिर बताया जायेगा। तो यहाँ पर विस्थापिका मुद्रा का जो उल्लेख किया गया है तो मां का कहना है कि यह विस्थापिका मुद्रा इन मुद्राओं में से अन्तिम मुद्रा है जो कि आत्मबोध के लिए पर्याप्त है, तो इसीलिये विस्थापिका का अर्थ भी विशेष रूप से स्थापन करने वाली होता है। इसमें एक विशेष आकर्षण होता है। उसको लगाने से भाव अगर उदित हुए और फिर उनमें क्षणिकता आने लगी, और मन की वृत्तियों ने उन्हें खींचकर इधर उधर फेंकना चाहा तो यह दृढ़ता रखो कि यह मुद्रा और इसकी क्रिया किसी भी रूप से उन भावों की क्षति नहीं होने देगी, और इसी मुद्रा के आधार पर आगे का रास्ता साफ हो जायेगा।

इस मुद्रा को इस प्रकार करना चाहिये। जब आसन लगा हुआ हो तो उस आसन को ऐसा कर लेना चाहिये कि दोनों हाथ जानुगत कर लें। फिर दोनों को चाहे यों एक दूसरे से पकड़ लें। फिर दोनों को चाहें यों कर लें कि, अंगुलि नियोजन करके और दोनों अङ्गुष्ठभाग, अग्रभाग अङ्गुष्ठों के, उनको दोनों नेत्रों के कोणभाग पर रख लो। कोणभाग पर रख करके सर को थोड़ा हल्के रूप में, भार कुछ अङ्गुष्ठों पर दे दो, और पैरों की स्थिति अपने अपने अनुकूल लम्बे आगे पीछे कर सकते हो, और जब समझो कि ऐसे में कुछ थोड़ी सी असुविधा सी भी हो रही है, पहिले तो होनी नहीं चाहिये, इससे कोणभाग दबने से सब कुछ ठीक हो जायेगा और जब कुछ ऐसा मालूम भी पड़े तो अङ्गुलि संयोग छोड़ देना और एक पैर को भी नीचे कर लेना और उसे गुदा भाग में दबा लेना, एड़ी को और दूसरे पैर को यों करके जानुभाग में सिर रख लेना। ऐसी मुद्रा, यह विस्थापिका मुद्रा है। तो इसको कर लेने पर विचारों की चञ्चलता और चंचलाहट दूर हो जायेगी और तब फिर उस विस्थापिका में सर को यों भी रख सकते हैं। अर्थात् यदि उन अंगुलियों के भाग के ऊपर हनुभाग को रखकर और सिर झुक भी जाय, चाहे आगे को चाहे पीछे को, चाहे सीधे ही रहे तो भी सुन्दर ही है। इस प्रकार आत्मबोध प्रत्यभिज्ञान में ये कुछ मुद्रायें अत्यावश्यक होती हैं। इनका अभ्यास कर लेना चाहिये, और जब कभी आवश्यकता हो तब विस्थापिका को भी लगा लेना चाहिये और सारिका को भी लगा लेना चाहिये और जो प्रारम्भिक काल में बताई हैं उन्हें भी प्रारम्भ में कर लेना चाहिये।। ॐ ।।

२७-१-६३ प्रातःकाल ।।१२३।।

हरि ॐ तत् सत् । नमस्तेऽस्तु भगवत्यै शारदायै अनन्तशक्तिसम्पन्नायै तत्त्वार्थबोध विशेष-भावना-भावितायै परिच्छिन्नावच्छिन्नावच्छेदावच्छेदकज्ञान परिज्ञान परिपुष्टायै तुष्टायै नमः।। ॐ। सम्पन्नायै सर्वशक्ति सम्पन्नायै शारदायै नमः।।

अनन्त शक्ति सम्पन्ना, तत्त्वार्थ की विशेष भावना से भावित, परिच्छिन्न अपरिच्छिन्न व्याप्य व्यापक के परिज्ञान की पुष्टि देने वाली सृष्टिरूपा भगवती शारदा देवी को मेरा नमस्कार है। सर्वशक्तिसम्पन्ना और सम्पन्ना शारदा को नमस्कार है।

आत्मबोध ज्ञान परिपुष्टिवन्तः साधकाः सफला भवन्तु, सफला भवन्तु, सबला भवन्तु। आत्मबोध परिपुष्टिवान् नरः समाप्नोति परमां श्रियम् । तदर्थभावरक्षणं परमं परमपरं समीक्षणीयम् । भावानां बोधो यदैव परिपुष्टिं गच्छति तदैव चित्तस्य स्थिरता।।

आत्मबोध ज्ञान से परिपुष्ट बने साधक लोग सफल हों, सफल हों, सफल हों। आत्मबोध से परिपुष्ट मनुष्य श्री की विभूति प्राप्त करता है। उसके लिये आगे पीछे, पर अपर बोध का संरक्षण करना चाहिये। भावों का बोध ज्यों ही परिपुष्टि को प्राप्त होता है तभी चित्त की स्थिरता होती है।

दृढत्वेन दृढसङ्कल्पभावना। दृढसंस्कारत्वात् संस्कारभूमिविशेषपरिष्करणम्। परिष्करणाच्च विशेषानुभूतिः। विशेषानुभूति मधिगम्य-

दृढता होने से दृढ़सङ्कल्प की भावना होती है। दृढ़ संस्कारों के कारण संस्कारों की विशेष भूमि का परिष्कार होता है। परिष्कार से विशिष्ट अनुभूति होती है।

चित्स्वरूपिण्यै भगवत्यै किमपि ज्ञानाय दानाय मानाय प्रतिभासाय प्रतिभासे स्थित्यात्मिका स्थितिः। तदा च बोधे दृढे सति संरक्षिते च सति सर्वं सुकरं सुलभं सुज्ञातं स्वानुभूतं च भवति।। ॐ ।।

विशेषानुभूति प्राप्त करके, चित्स्वरूपा भगवती के प्रति कुछ ज्ञान-दान का आभास और प्रतिभास होते हुए यथार्थ रूप में स्थिति होती है। तब बोध के दृढ़ हो जाने पर सब कुछ सुकर, सुलभ, सुज्ञात, और भलीभाँति अनुभूत हो जाता है।

पुनरपि एतद् ज्ञेयम् । बोधबाधका वा परिचालिका वा संस्कारदृढभूमिः। तस्मात् चक्रविद्यावलेन संस्कारनिःसरणमपि भवति। संस्कारनिःसरणाय

संस्कारप्रतिरोध विमोचनाय चक्रविद्याधिगमः। यथा वा दृढसेवितोऽपि कृताभ्यासोऽपि परिपुष्ट बोधकोऽपि वा कश्चिन्नरः पुनरपि तत्रैव वा स्थिरो भवति कूटस्थो भवति। तत्र किञ्चिदप्यग्रे परिसरणं नैव कर्तुं शक्नोति। तत्तु संस्कार-दृढभूमिः। तत्परिष्करणं वाञ्छनीयम् । तच्च चक्रविद्याधिगमेन सुलभं भवति।।

फिर भी यह समझ लो। बोध में बाधा डालने वाली उससे विचलित कर देने वाली संस्कारों की दृढ़ भूमि होती है। अतः चक्रविद्या के बल से ऐसे विरोधी संस्कारों का निःसारण भी होता है। संस्कारों के निःसारण और संस्कारों के प्रतिरोध को हटाने के लिये यह चक्रविद्याधिगम है। योगाभ्यास के दृढ़ सेवन करने पर भी, अभ्यास करने पर भी, बोध के परिपुष्ट होने पर भी कई लोग वहीं पर रूक जाते हैं और योग के प्रति उदासीन हो जाते हैं। आगे थोड़ा भी नहीं बढ़ पाते हैं। क्योंकि-

पश्चाच्च ज्ञानवान्, अनुभववान्, निष्ठावान् वा नैष्ठिको जायते।।

संस्कारों की दृढ़भूमि रोक देती है। उसका ही परिष्कार करना अभीष्ट है। वह चक्रविद्या द्वारा सुलभ हो जाता है।

निष्ठा प्रोक्ता महामात्रा ज्ञानबोधानुभाविका।

सद्यः सैव महानिष्ठा नैष्ठिकं कुरूते नरम् ।।

ज्ञान बोध का अनुभव कराने वाली निष्ठा (श्रद्धा) का ही बड़ा महत्त्व है। वही महानिष्ठा मनुष्य को निष्ठावान् बनाती है।

निष्ठावान् श्रद्धासमन्वितो भवति।।

निष्ठावान् व्यक्ति श्रद्धा से भरपूर होता है।

निष्ठावान् लभते ज्ञानं निष्ठावान् परमां श्रियम् ।

निष्ठावानात्मतत्त्वं च जानाति परमं परम् ।।

निष्ठावान् ही ज्ञान प्राप्त करता है और निष्ठावान् को ही सम्पदा प्राप्त होती है। निष्ठावान् परम से परम आत्मतत्त्व को जान सकता है।

एतत् सर्वं चक्रविद्याधिगमने। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन चक्रविद्याधिगमनीया। सा च ज्ञानपरिपुष्टं बोधं दृढं करिष्यति। करणीयतां वा नेष्यति, कारयिष्यति।

यह सब चक्रविद्याधिगम में है। इसलिए सभी प्रयत्न से चक्रविद्या का अधिगम करना चाहिये। वही ज्ञान से परिपुष्ट बोध को दृढ़ करेगी, अथवा करने का उपाय बतायेगी या करवायेगी।

एतत् सर्वमशक्तिप्रातैः सह संचरणीया क्रिया भवति, येतु सन्ति सशक्ताः शक्तिसम्पन्ना लब्धशक्त्यधिकारास्तान् प्रतिकाचित् क्रिया मुद्रा प्रोक्ता, तासां बलमालम्ब्य अग्रे गमनीयम् । यथा वा सर्वं प्राप्तं, सर्वं कृतं सर्वमभ्यस्तं सर्वमनुभूतं च, तदापि गतिविच्छेदः। तदापि अनुभूतिविच्छेदः। तदापि तत्र सखण्डता विराजते।।

यह बात तो हुई उनके लिये जिन्हें शक्तिपात नहीं हुआ है। किन्तु शक्ति सम्पन्न हैं और जिन्होंने शक्ति में अधिकार प्राप्त कर लिया है, उनके लिये कतिपय मुद्रा व क्रिया बताई गई है। उनका सहारा लेकर आगे बढ़ना चाहिये। क्योंकि सब प्राप्त करके, सब करके, सब अभ्यस्त करके, सब अनुभव करके भी विच्छेद कभी हो जाता है, फिर भी अनुभूति में विच्छेद हो जाता है। वहाँ भी योग का खण्डित होना विराजमान रहता है।

तावन्न पूर्णतामधिगच्छति। पूर्णताधिगमनाय अध्येतव्या चक्रविद्या अपरसाधकैः। तस्माच्च यथा बीजेऽङ्कुरे सति, अङ्कुरेच वृक्षरूपे परिणते सति वृक्षे च किञ्चिद्बलवतिसतिपुनरपि वात्याचक्रभीतिः प्रवर्तते।।

जब तक पूर्णता की प्राप्ति नहीं हो जाती तब तक पूर्णता की प्राप्ति के लिये चक्रविद्या अध्ययन करना चाहिये। जैसे बीज में अंकुर होता है। अंकुर के वृक्ष रूप में परिणत होने पर वृक्ष, के कुछ बलवान् हो जाने पर फिर भी आँधी के झोकों का भय बना ही रहता है।

यावन्न दृढ संस्कारसेवितो वृक्षो बद्धमूलो भवति, तद्वत् प्राप्तशक्तिकः अभ्यस्तशक्तिकः साभ्यासो वा चक्रविद्याबलेन बोधपरिपुष्टो बोधसंरक्षितो वा जायते। पुनरपि मनसश्चाञ्चल्यं वातभीतिर्वर्तते। तन्निवारणाय पुनः पुनः अभ्यसनीया चक्रविद्या। तस्माच्च सर्वं सुकरं भविष्यति।। ॐ ।।

दृढ़ संस्कारों से सेवित शरीर रूपी वृक्ष जब तक पक्की जड़ वाला नहीं हो जाता तब तक भ्रष्ट होने का भय है ही। उसी तरह शक्ति प्राप्त होने पर भी, शक्ति का अभ्यास करने पर भी, जब तक चक्रविद्या का बल प्राप्त नहीं हो जाता है और बोध परिपुष्ट होकर बोध का संरक्षण नहीं होता फिर भी तब तक मन के चांचल्य की भीति रहती है। उसके निवारण के लिये चक्रविद्या का बारम्बार अभ्यास करते रहना चाहिये। इससे सब सरल हो जायेगा।

गोरख वाणी :- अलख निरञ्जन ! अलख निरञ्जन ! अलख निरञ्जन! चक्रविद्या के आत्मबोध प्रकरण में माँ ने यह बताया है कि चक्रविद्या का अधिगम क्यों करना चाहिये। चक्रविद्या के अधिगम से क्या होता है। तात्पर्य इतना ही है कि चक्रविद्या केवल आत्मबोध को ही परिपुष्ट और संरक्षित नहीं करती है, चक्रविद्या का यह आत्मबोध प्रकरण केवल कुछ क्रियाओं के अभ्यास का आदेश नहीं देता है, अपितु यह भी करता है कि आत्मबोध जब तक समूल बद्धमूल न हो जाय तब तक उसकी पुष्टि का साधन बताता रहता है।

निदर्शन के रूप में साधक ने कुछ पा लिया, अभ्यास करना है, चलना है, और आगे आगे बढ़ना है। जैसे एक बीज अंकुर के रूप में आया, पेड़ बन गया पर वह बड़ा पेड़ नहीं हुआ, उसकी जड़ें अभी इतनी मजबूत नहीं जमी तो एक बार अगर वात्याचक्र आ जायेगा, झंझावात आ जायेगा, आंधी आजायेगी तो इतनी मजबूत नहीं जमी। तो उखड़ने का डर रह सकता है। इसलिये जब तक उस वृक्ष की जड़ें परिपुष्ट हो जाय, उसकी रक्षा का उपाय किया जाता है। इसी भाँति सब कुछ प्राप्त होते हुए, अभ्यास करते हुए, इसमन की दृढ़ चंचलता वात्याचक्र का रूप धारण कर, आँधी का रूप धारण कर, सबको उड़ा कर ले जा सकती है। इसलिये ठीक ठीक रूप से चक्रविद्या की जो क्रियायें बताई गई हैं, उनका अभ्यास करने वाले को फिर मन की चञ्चलता का भय नहीं रह जाता है। उसकी जड़ों को मजबूत करने के लिये ही इस चक्रविद्या को बताया गया है और जब तक बोध की स्थिरता न आ जाय प्रारम्भिक साधक उसको समस्त रूप से अभ्यस्त करता चला जाय। इसके अ यास से पुष्टि और तुष्टि दोनों ही मिलेंगी। इस प्रकार यह चक्रविद्या पूर्वापर आत्मबोध ती आत्मभिज्ञा करा देगी, और जब आत्मबोध की प्रत्यभिज्ञा हो जायेगी उसका अनुभव भी हो जायेगा, ज्ञान भी हो जायेगा, दर्शन की स्थिति भी आजायेगी, तो फिर कम्पायमान होने की आवश्यकता नहीं रहेगी, वहां फिर मन की चञ्चलता पर अपना अधिकार जमा लेंगी, और उसे दबा देंगी। आत्मबोध के अङ्कुर को दृढ़ करने में सहायक होगी, और जो साधक के संस्कार होते हैं जिन्हें कुसंस्कार भी कहते हैं, सुसंस्कार भी कह सकते हैं, वे भी तो उपस्थित हो जाते हैं। तो अगर कभी ऐसे संस्कारों का भी अभ्युदय हो गया तो बाधा हो सकती है। सुसंस्कार बढ़ा सकते हैं, कुसंस्कार रोक सकते हैं। किन्तु साधक को इससे भी भीत नहीं होना है। चक्रविद्या का यह प्रकरण किस लिये बताया गया है ? इसका यही कारण है कि सबको उखाड़ के फैंक दे। अभ्यास करो और निर्भीक होकर बढ़ो। चक्रविद्या का यह अधिगम बड़ा उपयोगी है और इस परमोपयोगी प्रकरण में आत्मबोध प्रत्यभिज्ञा के सम्बन्ध में तीन बातें और बताई जायेंगी जिनसे अवशिष्ट बचा हुआ थोड़ा बहुत कार्य का कूड़ा करकट भी दूर फैंक दिया जायेगा। ऐसा साधन, ऐसी बात बताई जायेगी जिससे फिर मजबूती लाने में असुविधा नहीं होगी। साधक प्रसन्न चित्त से चक्रविद्या का अधिगम कर लेगा ।। ॐ ।।

२७-१-६३ सायंकाल ।।१२४।।

हरि ॐ तत् सत् । सद्भावसृजनात्मिकायै सद्भावोदयकारिकायै सर्वोदयायै कल्याणपरायणायै विमण्डितविग्रहायै नमोनमः।।ॐ ।।

सात्विक भावों का सृजन करने वाली सद्भावों की वृद्धि करने वाली सब प्रकार का उदय करने वाली कल्याण परायण सुसज्जित शरीर वाली भगवती को प्रणाम है।

आत्मबोधपरिज्ञानदायकं सत्वभाव परिबोधनात्मकम् ।
चक्रज्ञानगमनाधिकारकं तारकं च खलु विघ्नव्यूहकम् ।।

यह चक्रज्ञान गमनाधिकरण आत्मबोध परिज्ञान का दायक है, सात्विक भावों का परिबोध करने वाला है। विघ्नव्यूहों से साधक का तारण करने वाला है।

समधिगमविशेषपूरितं अनुभूतिमयं च विभूषितम् ।
अधिगमनीय गमनाधिकारिणं चक्रविद्याधिगमधारिणं सदा।।

अनुभूति से भरा, नाना उपायों से विभूषित, प्राप्तव्य की प्राप्ति का अधिकार देने वाला यह चक्रविद्याधिगम नाम का सुन्दर एवं महत्त्वपूर्ण प्रकरण है।

उद्बोधयति या शक्तिः प्रत्यक्षा साक्षिरूपिणी।
सा वै बोधमयं भावं पुष्णाति च पुनः पुनः।।

जो शक्ति प्रत्यक्षरूप में साक्षी बनकर उद्बोध करती है, वह निरन्तर पुनः पुनः बोधमय भाव का पोषण करती रहती है।

एतस्मिन् प्रकरणे आत्मबोध प्रत्यभिज्ञाधिगमने यत्किञ्चिदपि प्रोक्तं तत् सर्वं स्थिरकरणार्थम् अनुभूति परकं च विद्यते। कथं बोधः स्थिरतां नीयते। कथं वा बोधस्य प्रतिपत्तिः प्रत्यभिज्ञा च भवति सर्वमेतद् दर्शितम् ।

इस प्रकरण में, इस आत्मबोध प्रत्यभिज्ञाधिगम में जो कुछ भी कहा गया है वह सब स्थिरीकरणार्थ और अनुभूतिपरक है। बोध की स्थिरता कैसे की जाय ? बोध की प्रतिपत्ति और प्रत्यभिज्ञा कैसे हो ? यह सब बताया गया है।

अपरं च यदा साधकः स्वसाधनाकाले स्थितो भवति यदा च साधनासम्पन्नेच्छा समायाति, बोधश्च प्रत्यङ्कुरितो भवति, तदा वा यदा बोधस्य न्यूनता जायते, मन्दस्तु बोधः नाग्रेसरति तत्प्रोक्तं संस्काराणां दृढभूमित्वात् तस्यापि निःसारणं चक्रविद्या करोति, तत्र च इदं ध्येयं ज्ञेयं च।

जब साधना काल में साधक स्थित होता है, जब साधन सम्पन्नता की इच्छा जागती है, बोध भी अंकुरित होता है, फिर जब बोध की न्यूनता रहती है, मन्दबोध आगे नहीं बढ़ पाता है, इन सभी बातों का कारण संस्कारों की दृढ़भूमि बताई गई है। उसका निःसारण भी चक्रविद्या करती है। अतः इसका अध्ययन और ज्ञान करना चाहिये।

यदा च साधनाकाले साधकः बोधकामुकः।

बोधस्थितिं समालभ्य तामेव दृढतां नयेत् ।।

साधना काल में जब साधक को बोध प्राप्ति की इच्छा पैदा हो, तब उस बोध की स्थिति का अवलम्बन करके उसी को दृढ़ बनाते रहना चाहिये।

तत्र एतच्च कर्तव्यं साधकेन विशेषतः।

सरलः सुगमश्चैव उपायः प्रोच्यतेऽधुना।।

उस स्थिति में साधक को विशेष रूप में जो कुछ करना चाहिये उस सरल और सुगम उपाय को सम्प्रति बताया जाता है।

कूष्माण्डमूल मादायफलं वा बीजसंयुतम् ।

समादाय पृथग् एव रूपेण च पृथक् पृथक् ।।

कूष्माण्ड (कुम्हड़ा) की जड़ लेकर या उसका फल जो बीजों से भरा हो ले आवे। जड़ और फल को अलग-अलग रूप में सेवन करना है।

मूलं शुष्कं विधायैव कृत्वा चूर्णमनुत्तमम् ।

दुग्धेन सह सम्पन्नं दिनसप्तम् च भक्षयेत् ।।

जड़ को धूप में सुखाकर उसका चूर्ण कर ले और सात दिन तक दूध के साथ उसका सेवन कर लेवे। चूर्ण की फंकी लेकर दूध पी लेना चाहिये।

तस्य भक्षण मात्रेण नाडि शोधो भविष्यति।

बोधश्च स्थिरतां याति कूष्माण्डमूलकं भजेत् ।।

उसके भक्षण मात्र से नाड़ी शोधन हो जायेगा, बोध भी स्थिरता को प्राप्त हो जायेगा। इसलिये कूष्माण्ड की जड़ का सेवन करना चाहिये।

पश्चात् फलं समादाय स्वादुस्वादु विभूषितम् ।

शाकं कृत्वा च भक्षेत् दिनेभ्यः पञ्च इत्यपि।।

फिर उन्हीं दिनों पाँच दिन तक कूष्माण्ड फल की सुन्दर स्वादिष्ट सब्जी बना कर उस शाक का सेवन करना चाहिये।

एवं कृते च यः बोधः नाडिशोधस्तथैव च।

भावशोधो महाबोधस्त्वरया च भविष्यति।।

इस प्रकार नाड़ीशोधन होकर जो बोध उत्पन्न होगा वह शीघ्र हो जायेगा। इससे भाव शोध और महाबोध भी शीघ्र हो जायेगा।

एवं कृत्वा पुनःकाले काले चैव यदा कदा।

बीजानां क्वाथरूपं च कृत्वा चैव पिबेत् सुधीः।।

इस प्रकार का उपाय समय समय पर कभी कभी जब आवश्यकता हो करता रहे। नहीं हो कूष्माण्ड के बीजों का क्वाथ बना कर कुछ दिन तक पी जाना चाहिये।

स्वल्पमात्रायुतं तच्च एकादश दिनान्तरे।

यद्यावश्यकता तत्र विद्यते क्रियतां ततः।।

ग्यारह दिन की अवधि तक थोड़ी थोड़ी मात्रा में इस क्वाथ का सेवन आवश्यकता पड़ने पर करना चाहिये, (जब देखे कि शाक और जड़ के चूर्ण का सेवन भी कुछ काम नहीं कर रहा है, तब इस प्रयोग का करे)।

एवं सर्वं च वै कृत्वा निर्भयः साधकः सुधीः।

साधनामार्गसंलग्नः समायाति स्वलक्ष्यकम् ।। ॐ ।।

इस भाँति के सभी उपायों को करके साधक निर्भय हो जाता है। साधनामार्ग में लगे रहना है और अपने लक्ष्य तक पहुंच जाना है।

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन।

चक्रविद्या के आत्मबोध प्रत्यभिज्ञा प्रकरण में जो कुछ भी बताया गया है, उसके सम्बन्ध में विशेष बताने की आवश्यकता नहीं है, और यों तो बताते ही चले जाओ। कोई अन्त भी नहीं। पर मेरा तो यही तात्पर्य है कि मार्ग लम्बा न हो और ऐसा भी मार्ग न हो कि बहुत कठिनाई कर दे, तो जिस सिद्धि के प्रयोजन से सब हो रहा है, साधक फिर भटक जायेगा, उसमें आत्मबोध की भावना का जागरण ही नहीं होगा, उसकी धारणा ऐसे कठिन से कठिन मार्गों को देखकर विचलित हो जायेगी। इसलिये युग के अनुकूल, साधन भी सरल हो, उसकी प्रक्रिया भी सरल, सब कुछ जो है, सो सरल, सुगम ही सुगम हो और विशेष लाभप्रद भी हो। यह मैंने पहिले भी कहा था और फिर भी कहता हूं और चाहता भी हूँ। इसीलिये यह सब हो रहा है और इसके लिये साधकों को शक्ति का सहारा लेना चाहिये। शक्ति से हीन साधक के पैर मार्ग में लड़खड़ाते जाते हैं, गिर पड़ते हैं, शक्ति तो है ही नहीं और कोई यों भी कह सकता है कि सारी शक्ति क्या गोरख ही दे सकता है। अरे भाई, बात ऐसी नहीं है। शक्ति तो स्वयं है। अरे, मैं तो इसलिये कह रहा है कि शक्ति सोई हुई है, उसे जगाओ, जगाओ, जगाओ। वायुमण्डल

तैयार करो। तो ऐसा तो साधकों को बताओ। चलो भाई, साधना पर चलो, सरल है। सुबोध है, सुगम है और अकष्टकारक है। ऐसा जब है तब चलो। जब साधक चलने लगता है तब उसमें आत्मबोध की प्रत्यभिज्ञा आ जाती है तो जितनी चक्रविद्या में क्रियायें मुद्रायें बताई गई है उनका उसको अभ्यास करा दो। बोध में पुष्टि आ जायेगी। अनुभूति में तुष्टि आ जायेगी और उसके संरक्षण के लिये जैसा कि और उपाय बताया गया है तो सभी नहीं कर सकते तो ऐसा बता तो दो कि सीधी सी बात है। अरे ! कूष्माण्ड की जड़ को लाकर के और कूष्माण्ड फल को ले आओ और उस कूष्माण्ड को कहीं कुछ कहते हैं, कहीं कुछ कहते हैं। लेकिन उसके सही मायने जो होते हैं, अरे कूष्माण्ड की बलि भी चढ़ाई जाती है, बलि के काम आती है, तान्त्रिकों के काम आता है और फिर शाक्तों के काम आता है और फिर शक्ति का उपासक भी उसे साथ में बड़ी सावधानी से रखता है तो ऐसा करो, मूल भी ले आओ और फल भी ले आओ। तो मूल चाहे थोड़ा ही हो तो उसका रस जब सूर्य की गर्मी से शोषित हो जाय तो उसका चूर्ण कर दो और चूर्ण करके जरा, जरा, जरा करके उसका सेवन करो। कर सकते हो। पांच दिन कर सकते हो। सात दिन कर सकते हो। पाँच दिन तो निश्चित है, तो ऐसा करो। यह सब नाड़ियों में जबकि मिल रहता है और वह शुद्ध नहीं होता है तो शुद्ध हो जायेगा और उस मध्य में जो फल बताया गया है और उसका थोड़ा थोड़ा हिस्सा लेकर और सुस्वादु रूप से शाक निर्माण कर लो और उसमें साथ में थोड़ा थोड़ा स्वाद लेते हुए एक बार दिन में, सायं प्रातः, मध्याह्न किसी भी समय एक बार थोड़ा सा अरे, दो तोला, तीन तोला, चार पाँच तोला भी कर सकते हो। अरे थोड़ा सा लेना है, ले लेना। इसको सात दिन पर्यन्त कर लेना या ग्यारह दिन पर्यन्त कर लेना। उसके पश्चात् तुम्हारी नाड़ियों की शुद्धि होने लगेगी और उस शुद्धि के कारण शरीर में स्फूर्ति आयेगी, स्फूर्ति के कारण शक्ति दौड़ेगी। शीघ्र कार्य करेगी और जो बोध विचलित होता है, जो संस्कार आकर बाधा डालेंगे विनष्ट हो जायेंगे। स्थिरता आ जायेगी। और जब कोई इससे भी अधिक कुसंस्कारी मिल जाय तो छोड़ता नहीं। उसके कूष्माण्ड के बीज का काढ़ा पिला देना चाहिये। एक बार सायंकाल सोते समय ऐसा कर लेने पर सब शुद्ध हो जायेगा। शक्ति का उपासक रूक नहीं सकता, रह नहीं सकता, चलेगा, शक्ति जागेगी और शक्ति ही नहीं तो कुछ नहीं। सारे विश्व में विराट् शक्ति ही काम कर रही है, सबमें शक्ति है। बीज में वृक्ष को उत्पन्न करने की शक्ति है। सूर्य में आतप को फैला देने की शक्ति है। चन्द्र में शीतलता प्रदान करने की शक्ति है। आधार के भिन्न भेद होने से नाम भेद आये हैं। शक्ति एक है, विराट् विश्वव्यापिका है, चित्स्वरूपिणी है और यही चित्स्वरूपिणी शक्ति अपना वास्तविक रूप धारण करके अनन्त स्वरूपा हो जाती है।।ॐ ।।

शक्ति की उपासना के लिये और प्रारम्भिक बोध के लिये या संस्कारों की दृढ़भित्ति को तोड़ने के लिये उनको सुसंस्कृत कर देने के लिये इस प्रयोग को कर लेना, ध्यान में रखना। कल्याण होगा।। ॐ ।।

२८-१-६३ प्रातःकाल ।।२५।।

ॐ । हरि ॐ तत् सत् । विशिष्ट बोध सम्पन्नायै विशिष्टशक्ति संचारिकायै स्वयमेव शक्तिरूपायै नमस्ते सुशक्ति स्वरूपायै अलभ्यालभ्यज्ञानात्मिकायै सरस्वत्यै नमः।।

विशिष्ट बोध सम्पन्ना, विशिष्ट शक्ति संचारिका, स्वयमेव शक्तिरूपा, दुर्लभ अलभ्य ज्ञान देने वाली जागृता भगवती सरस्वती को नमस्कार है।

ॐ आत्मबोध प्रत्यभिज्ञाप्रकरणे साधकानां हितबुद्ध्या कल्याण भावनया च सर्वं सुलभरूपेण च प्रोक्तं पश्चाच्च विशुद्धि करणार्थं विशुद्धभाव स्थिरकरणार्थं औषधं प्रोक्तम् । पुनरपि च निगद्यते।।

आत्मबोध प्रत्यभिज्ञा प्रकरण में साधकों की हितबुद्धि और कल्याण भावना से सरल और सुलभ रूप में सब कुछ कह दिया है, फिर विशुद्धिकरण और विशुद्धभाव के स्थिरीकरण के लिये औषध भी कह दी है, फिर भी कही जा रही है।

श्रूयतां औषधं दिव्यं श्रुत्वा कार्ये समाचरेत् ।

एवं स तत्त्वबोधस्य स्थिरभावो भविष्यति।।

दिव्य औषधियों को सुनलो और सुनकर उन्हें कार्य में लाओ। इसी प्रकार तत्त्वबोध का वह भाव स्थिर हो जायेगा।

साधके शक्तिपातं च संचारं च विबोधनम् ।

कृत्वा परीक्षयेत् तत्र कीदृक् शक्तिः समागता।।

साधक में शक्तिपात किस कोटि का हुआ, शक्ति का संचार करके उसके उद्बोधन की मात्रा आदि की परीक्षा करके देखना चाहिये कि शक्ति कैसी आई है।

गता या आगता वापि निश्चला सुस्थिरापि वा।

भूता वा नैव भूता वा कथं तद् ज्ञायते तदा।।

शक्ति गई है, आई है, निश्चित रूप में सुस्थिर हो गई है अथवा नहीं इस बात का परीक्षण किस प्रकार से होगा।

एतच्चज्ञानबोधार्थं कृत्वा चैव परीक्षणम् ।

दिनत्रयेण वै तत्र औषधं कार्यकालके।।

इस प्रकार की जाँच और परीक्षण करके उस कार्यकाल में तीन दिन तक एक औषधि साधक को सेवनार्थ देनी चाहिये।

दातव्यं तच्च वक्षामि दिव्यं तत् परमोत्तमम् ।।

उसी दिव्य और परमोत्तम औषधि को यहाँ पर मैं बताती हूँ।

यदा साधकस्य विग्रहे शक्ति संचरणं क्रियते तदा तस्मिन्नेव काले शक्तिसंरक्षणाय पोषणाय तदुद्बोधनाय तद्विशिष्टसंचाराय तत्स्थिरीकरणाय बोधवृत्युदात्तभावनार्थं च तदा जपापुष्पाणां प्रयोगः विधेयः।।

जब साधक के शरीर में शक्ति का संचार किया जाता है तब उस समय शक्ति संरक्षण के लिये, उसके पोषण और उद्बोधन के लिये तथा उसके विशिष्ट संचार के लिये, उसके स्थिरीकरण के लिये, जपा कुसुमों को प्रयोग करना चाहिये। (गुड़हल)

पुष्पद्वयं चैव समागमे शुभं तच्चर्वणं कारयते च बुद्धिमान् ।

तदैव तच्चर्वणकार्यकाले ज्ञातं भवेद् बोधकमस्तियद् वा।।

बुद्धिमान् गुरू जपापुष्प के दो फूल शिष्य को चबाने के लिये दे देवे। तब शक्तिपात के समय उस फूल के चबाने से जो भी ज्ञानोदय होगा वह उद्बोधक होगा।

समागता या च महेश्वरी स्वयं सुशक्तिरूपेण विराजंते स्वयम् ।

सा वा च तत्रैव समागता न वा तद् ज्ञानमात्रं च ध्रुवं भवेत् ततः।।

शक्तिपात द्वारा शिष्य में जो शक्ति स्वयं गुरूद्वारा प्रविष्ट होकर विराजती है। वह शिष्य में आई है या नहीं यह बात भी अवश्य तभी ज्ञात हो जाती है।

एतद् ज्ञातव्यम् । तदा कुसुमद्वयं जपाख्यं चर्वणाय दातव्यम् । चर्वणान्ते जलं ग्रहणीयम् । पश्चाच्च न किमपि करणीयं भवति। तेन सर्वं ज्ञातं भवति। परिपुष्टं वा भवति। सुरक्षितं वा भवति। एतत् करणीयं विशेषरूपेण लाभप्रदं भविष्यति।। ॐ ।।

ऐसा समझना चाहिये कि दो फूल चबाने के लिये दे दो। चबाने के बाद जल ग्रहण कर लेना चाहिये। फिर कुछ करना शेष नहीं रहता है। इसी से सब मालूम पड़ जाता है, या पक्का हो जाता है, और प्राप्त बोध या शक्ति सुरक्षित हो जाती है। इस का प्रयोग करना विशेष रूप से लाभदायक होता है।

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। साधक। सावधान। इस आत्मबोध प्रत्यभिज्ञा प्रकरण में पूर्व में एक औषधि है, दिव्यौषधि है और जिसके फल के सम्बन्ध में भी यह बताया गया है उसके फल के सेवन करने से, करा देने से सब प्रकार की बाधायें समाप्त हो जाती हैं। और उसके पश्चात् यदि ऐसा भी समय आ जाय और सामर्थशक्ति-संचालक, समर्थशक्ति सम्पन्न, विशिष्ट शक्ति का प्रयोग कर रहा हो तो उस समय यह भी ज्ञात कर लेना चाहिये कि शक्ति का प्रयोग किया है जो संचार किया गया है, उद्बोध किया गया है वह सुस्थिर होता चला जाय। कितना हो रहा है, कितना नहीं हो रहा है, यंह ऐसी स्थिति वालों के लिये बताया जा रहा है, जब कि प्रारम्भ में ऐसी कोई बात आ जाय कि देखा जाय शक्ति का संचार किया जा रहा है, परन्तु मलविक्षेप ऐसे हैं कि जैसे मलसम्बन्ध लौह को चुम्बक आकर्षण में नहीं ला सकता है। अरे भाई ! शक्ति सम्पन्न में वह आकर्षण तो है, चुम्बक की वह कर्शिका शक्ति तो उसमें है, लेकिन लोहा तो वैसा नहीं है। मल का आवरण है और फिर मल आवरण के कारण कार्य कैसे हो सकेगा। मध्य में तो व्यवधान आ जायेगा। तो जब तक व्यवधान को दूर नहीं किया जाता कैसे कार्य बने। पूर्व में शक्तिपात के समय बताया गया था कि भस्त्रा प्राणायाम के द्वारा मल की विशुद्धि कर लेनी चाहिये। किन्तु सभी तो प्रारम्भ में कपाल भाँति और भस्त्रा नहीं जानते और उनको यह बार बार करना भी पड़ता है तो ठीक ही है। इसलिये एक बात बता रहा हूँ कि जब उसका मलावरोध हो रहा हो, व्यवधान कर रहा हो, और चाहे कर रहा हो, चाहे न कर हो, तो उस समय ऐसा कर लेना कि जपा-कुसुम है जो रक्त कुसुम है उसे वृन्त सहित लो। डण्ठल सहित लो। फिर जिज्ञासु साधक को, साधना में संलग्न होने वाले को कहो कि भाई दो पुष्प प्रातः सायं लेकर उनका चर्वण कर लो। चर्वण करने के पश्चात् स्वल्प मात्रा में जल ग्रहण कर लो और कुछ करने की आवश्यकता नहीं। इसी से सब ठीक हो जायेगा इसका प्रयोग केवल तीन दिन ही करो। जब तक कि वह अपने रास्ते में हो किन्तु यह प्रयोग सार्वकालिक और सार्वभौमिक है। इसकी परमावश्यकता है। उससे ज्ञान भी हो जाता है और बोध भी हो जाता है और संचार भी अच्छा हो जाता है। तो ऐसी स्थिति में किसी भी प्रकार कोई छूटने न पाय। सब का कल्याण को। मां का यही कहना है।

२८-१-६३ सायंकाल ।।१२६।।

वदनविभूषित कान्ति कान्तं कान्तवपुर्विभूषाम् ।

पूषासमाकृति च विभूषां भारतीभूषां वन्दे।।

सरस्वती की उस सुन्दर वेशभूषा को मैं प्रणाम करता हूँ, जिस पर उनके मुख की छटा पड़ रही है। उज्ज्वल शरीर की कान्ति से जिनके वेष अधिक उज्ज्वल हैं और जो सूर्य सदृश हैं।

अकलित कलित कलेवरां विकसितारविन्द भास्वराम् ।

सुरभितमरन्दमन्दिकां आनन्दकन्दिकां देवीं च तां वन्दे।।

अशरीरी होकर भी जो देह धारण करती है, खिले कमल की भाँति भास्वर है। सुगन्धित कमल गन्ध से पूर्ण, आनन्द की कन्द रूपा भगवती देवी को मैं प्रणाम करता हूँ।

परमबोध प्रस्फुटित मुकुलित हृदयां धृतसन्निहित बोधैक
सुरक्षितैक भावाम् ।

अखण्ड खण्ड भावमण्डितां तां विचित्रशक्ति वन्दे।।

परम बोध से प्रस्फुटित और मुकुलित हृदय वाली, प्राप्त हुए बोध को सुरक्षित करने वाली, अखण्ड और खण्ड भावों से मण्डित विचित्र परम अद्भुत शक्ति को मैं प्रणाम करता हूँ।

अपरां परमितामपरिमितां परापरात्मकामपरात्मिकाम् ।

सकलामकलामखण्डितखण्डितां मण्डितां विमण्डिताम् वन्दे।।

परिमित तथा अपरिमित, अपरा तथा परा, कलापूर्ण तथा कलाहीन, अखण्डित तथा खण्डित, खण्डन तथा मण्डन से विहीन शक्ति को मैं प्रणाम करता हूँ।

साधकानां परमार्थ तत्त्वदायिनीं दायिनीं-परमार्थ-बोध-साधिनीम् ।

राधिनीं सर्वयोगिजनैकवन्द्यां वन्दे च तां महाशक्तिम् ।।

साधकों को परमार्थ तत्त्व देनेवाली, परमार्थ बोध को सिद्ध करने वाली, सर्वयोगिजनों द्वारा वन्दनीय उस महाशक्ति को मैं प्रणाम करता हूँ।

महाशक्तिं परमोज्वलां परमपरमिकां आत्मिकां सुभाषिकां कंकात्मिकां काक्षरां कादिविद्यागमकारयित्रीं च वन्दे।।

परमोज्वल, परमपरमा, सुभाषिणी कंकात्मिका, काक्षरा, कादिविद्या की प्राप्ति करा देने वाली महाशक्ति को मैं प्रणाम करता हूँ।

साधकानां हिताय आत्मबोधप्रत्यभिज्ञाप्रकरणे सर्वं तदभिहितं यद् ज्ञात्वा सदैव मुदान्वितः आत्मबोध समन्वितश्च भवति। साधकानां मार्गबाधापसारणाय बोधस्य स्थिरकरणाय, भावभरणाय, सेतुतरणाय, सर्वत्र सर्वतो भावेन भावसंवरणाय नित्यक्रियारूपेण करणाय च सर्वमत्रैव कथितम् । दिव्यौषधं शीघ्रातिशीघ्र बहुफलदायकं निर्भीतिकं भीतिरहितं सर्वं तथापि ख्यातं अधुना प्रकरणस्य परिसमाप्ति पूर्वकं महत् सुलभं सुकरं औषधं च कथयामि।।

साधकों के हित के लिये आत्मबोध प्रत्यभिज्ञा प्रकरण में वह सब कह दिया गया है जिसे जानकर सदा प्रसन्नचित्त होकर साधक आत्मबोध समन्वित हो जाता है। साधकों के मार्ग की बाधा हटाने के लिये, बोध के स्थिरीकरण के लिये, भाव-भरण के लिये, सेतुतरण के लिये, सर्वत्र सर्वतोभावेन भावसंवरणार्थ नित्य क्रियारूप में करने के लिये सब कुछ बता दिया गया है। शीघ्रातिशीघ्र बहुफलदायक भीति दूर करके निर्भय करने की बात भी कह दी है, फिर भी प्रकरण समाप्ति पर एक सुकर, सुलभ भी बात बता देती हूँ।

बला अतिबला या च या च प्रोक्ता महाबला।

सा सद्यः साधकेनैव शुभकाले क्वचिद् अपि।।

बला, अतिबला, महाबला ये तीन प्रकार की औषधियाँ होती हैं, जिन्हें साधक के उचित समय पर कभी कभी उपयोग में लेने के लायक होती है।

सा प्रोक्ता हि महाशक्तिः मण्डिता च महाबला।

कायस्य शोधनार्थाय रोधनाय च तत्परा।।

उक्त तीनों में से जो महाबला है, वह महाशक्ति-मण्डिता है। यह औषधि कायशोधन और शक्तिबल के स्थिरीकरण की क्षमता रखती है।

तदौषधं महत्प्रोक्तंआदातव्यं ध्रुवं ध्रुवम् ।

तस्यास्तु रसमासाद्य आस्वादं कुरू सुस्थिरम् ।।

वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण औषधि है उसका सेवन साधक को अवश्यमेव करना चाहिये। महाबला का रस लेकर समाहित चित्त से उस रस का सेवन किया करो।

त्रिविधा सा बला प्रोक्ता हित्वा सर्वं महाबला।

एका सा ग्रहणीया च या चैव कार्यसाधिका।।

वह बला तीन प्रकार की होती है। बला, अतिबला, महाबला। सबको छोड़कर तुम महाबला ही लेना। वही कार्यसाधिका बनेगी।

तस्यास्तु सेवनं प्रोक्तं सर्वत्र साधनाविधौ।

किन्तु मात्रा परिज्ञानं क्रियतां सारसंहतिः।।

सर्वत्र साधना विधि में उसका सेवन सभी काल में बताया गया है। बस, सार की बात यह है कि उसकी मात्रा का परिज्ञान कर लेना चाहिये।

तस्या रसं समादाय संरूद्धय साधकैः स्वयम् ।

तस्माद् ज्ञाते च काले च प्रयोगस्तु विधीयताम् ।।

साधक स्वयं निचोड़ कर उसका रस निकाल लें और जब आवश्यकता हो उसका प्रयोग कर लें।

एवं महाबलाभक्षणाद् रसास्वादनात् सर्वमवशिष्टं अगतिकं अवरूद्धं गतिमान् भविष्यति।।

इस भाँति महाबला के भक्षण से, उसके आस्वादन से बचा खुचा जो भी गत्यवरोध होगा वह दूर होकर गतिमत्ता आ जायेगी।

इति शक्तिपात विद्यायां आत्मबोध-प्रज्ञाप्रकरणे साधकानां हिताय क्रियामुद्रौषधिपरिज्ञानं सर्वं जितेन्द्र भारतीयस्य-मुखात् भाषितं तत्सर्वं सफलं भवतु साधकानां कृते।।

इस प्रकार शक्तिपात विद्या में आत्मबोध प्रत्यभिज्ञा प्रकरण जो क्रिया मुद्रा और औषधि परिज्ञान से पूर्ण है, साधकों के हितार्थ है, जितेन्द्र भारतीय के मुख से निकला है, वह सब साधकों के कल्याणार्थ सफल बने।

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। गोरख जोग जगावे। गोरख जोग जगावे। आत्मबोध के साधकों को, महाशक्ति के उपनामों को, योग के जिज्ञासुओं को और योग के मार्ग पर चलने वालों को अब तक जो कुछ भी बताया गया है, वह उनके परम हित के लिये बताया गया है, क्योंकि इतने में ताकत भी आ जायेगी। संचार तो होगा ही, चलेगा दौड़ेगा रहेगा नहीं और दूसरी बात यह है कि ऐसा भी समय आ सकता है कि साधना के अन्तर्गत जबकि चलता चलता, चलता चलता पथिक वहाँ बैठ जाय, अब न आगे जाता है और न पीछे हटता है, वहीं पर स्थिर हो गया। अरे भाई ! कैसे बैठ गया है ? चल भाई ! आगे चल, कहीं तो चल। आगे चल, पीछे चल, अच्छा तो फिर महाबला का बल मिला दो। चम्मचभर, थोड़ा सा चुल्लूभर पिला दो रस महाबला का। तो फिर संस्कार हट जायेंगे। बाधा हट जायेगी, चल पड़ेगा। इस भाँति सब तरफ से सब भाँति से आत्मबोध

प्रत्यभिज्ञा प्रकरण में कही गई मुद्राओं का, क्रियाओं का और सुविधाओं का ज्ञान कर लेना। अभ्यास भी करवा देना, और स्वयं भी आवश्यकतायें जो महाशक्ति अपने अपने समय से सब ठीक ही कर देगी, पर जन-साधारण जो होते हैं वे घबरा जाते हैं, डर जाते हैं, इसलिये ऐसी भी बाधा न आने पावे, ऐसा करना कि ऐसी स्थिति में, बला, अतिबला, महाबला नाम की औषधियाँ हैं और जिनको हिन्दी में खरैटी भी कहते हैं, खरहटी बोलते हैं उसमें से भी महाबला को ही लेना और ले करके कूट करके पानी मिलाकर थोड़ा रस निकाल लेना और तीन चार तोले पाँच तोले तक ऐसी स्थिति वाले साधक को पिला देना तो थोड़ी देर में सब उपद्रव शान्त हो करके शक्ति चालन का कार्य करने लगेगी और उसे द्विगुणित आनन्द का अनुभव होने लगेगा। शक्ति स्थिर हो जायेगी और बोध भी स्थिर हो जायेगा। मार्ग में चलने का अभ्यास हो जायेगा, और चलने भी लग जायेगा। तो ऐसा कर लेना, सब साधकों का कल्याण होगा और उस कल्याण से कल्याण का वायुमण्डल तैयार होगा और जो चाहता हूँ उसमें सफलता होगी और शीघ्र होगी। आदेश। चक्रविद्या में आत्मबोध प्रत्यभिज्ञा प्रकरण जितेन्द्र भारती के मुख से कहा सो बन्द।।

२९-१-६३ प्रातःकाल।।१२७।।

हरि ॐ तत् सत् । नमस्तेऽस्तुभगवत्यै जागृतस्वरूपायै ॐ ज्ञानैक मूलायै नमः| । एकं तत्त्वं च प्रणमामि यः सर्वभूतेषु विराजते।।

जागृतस्वरूपा ज्ञानैकमूला भगवती को नमस्कार है। जो सर्वभूतों में विराजमान एकतत्त्व है उसे भी प्रणाम करता हूँ।

तत्त्वानामेकानेका या शक्तिः या एकैव व्यापिका सुव्याप्ता तेषां सन्नियोजिका तां परमां महाशक्तिं सततं नमामि। अथ तत्त्वबोध प्रज्ञानप्रकरणाधिगमः।।

तत्त्व की एक व अनेक रूपा जो शक्ति है उन सबमें ओतप्रोत होकर उन का सन्नियोजन करके वाली उस परमा महाशक्ति को नमस्कार करता हूँ, अब तत्त्वबोध प्रज्ञान का अधिकरण आरम्भ किया जाता है।

अस्मिन् प्रकरणे तत्त्वज्ञानं शोधनं वा तत्त्वपरिशोधनं अन्यत् च सर्वमेव यत् किञ्चिदपि तत्त्वात्मकं समभिधास्यते तत्त्वानां विशेषोत्पत्तिः तत्त्वानां विभिन्न भेदिका च या शास्त्रकाराणां बुद्धिः तत्त्वशब्दस्य अर्थार्थं तमाराध्य तमादाय तत्त्वानामपरिमिता भेदा भवन्ति। तेषु तत्त्वार्थबोधस्तु वर्तते एव, किन्तु तत्त्वस्य यस्त्वेकोऽर्थःविधीयते इति।। ॐ ।।

इस प्रकरण में तत्त्वज्ञान तत्त्वशोधन के अतिरिक्त और भी जो कुछ तत्त्वामक बात बताई जायेगी वह है तत्त्वों की विशेषोत्पत्ति, तत्त्वों का परस्पर भेद करने वाली शास्त्रकारों की मान्यता, तत्त्व शब्द के अर्थ को लेकर तत्त्वों के अपरिमित भेद होते हैं। उनमें तत्त्वार्थ बोध तो रहता ही है, किन्तु तत्त्व को जो एक अर्थ है उसे भी इस प्रकरण में कहा जायेगा।

केचिद्वदन्ति पंचविंशतितत्त्वानि, अपरे वदन्ति पञ्चभूतात्मकानि तत्त्वानि, अपरे च नदेकमेव इति वदन्ति। केचिच्च वदन्ति तत्त्वं त्रिविधं चतुर्विधं, पञ्चविधं, नवविध, पञ्चविंशत् प्रकारकं तत् सर्वम् । अपरिहरणीयं परिहरणीयं किम् ? किं करणीयम् तावत् ?

कोई पच्चीस तत्त्व मानते हैं। दूसरे लोग पञ्चभूतों को ही तत्त्व मानते हैं। कोई तत्त्व को एक ही मानते हैं। कोई तत्त्वों के तीन भेद मानते हैं। कोई चतुर्विध, कोई पञ्चविध और कोई नौ प्रकार के और कई पच्चीस प्रकार के अब इन सब में किसे ग्रहण किया जाय, और किसे छोड़ा जाय। तो किया क्या जाय !

अत्र तु चक्रविद्यायां द्वितीयतत्त्वार्थप्रज्ञानविषये तत्त्वं पञ्चात्मकं ग्रहणीयम् । पञ्चानां समष्टिसमुद्भूता तत्रैव किंचिद् व्याख्येयम् ।।

इस चक्रविद्या में, द्वितीयतत्त्वार्थ प्रज्ञान विषय में पञ्चात्मक तत्त्वों का ग्रहण करना चाहिये। सभी तत्त्व इन्हीं पांच तत्त्वों की समष्टि से समुद्भूत हैं इस बात की यहाँ व्याख्या की जायेगी।

तत्त्वानां ज्ञानमात्रेण कामदाश्च मनीषिणः।

तत्त्वज्ञातारकास्तस्मात् अनुभूतिपरो भव।।

तत्त्वों के ज्ञानमात्र से कई विद्वान कृतकृत्य समझ लेते हैं, किन्तु वे केवल तत्त्व ज्ञाता ही रह जाते हैं। इसलिये तुम अनुभूति करो और अनुभवी बनो।

ज्ञानानि सर्वतत्त्वानि नानुभूतानि वै यदा।

किं तेन ज्ञानमात्रेण अनुभूतिं विना हि यत् ।।

सब तत्त्वों को जान तो लिया, किन्तु अनुभव नहीं किया तो बिना अनुभूति के उस ज्ञान-मात्र से क्या लाभ है।

अथवा तत्त्वोधस्य तत्त्वानन्दनिबन्धता।

सापि ज्ञाता ततः किं च यावन्नानुभवं कृतम् ।।

अथवा तत्त्वबोध बताते हुए उसमें ही सन्तोष कर लिया तो फिर उसके जानने से क्या लाभ है, यदि अनुभव न किया।

अत एव च एतस्मिन् प्रकरणे प्रोच्यतेमया।

ज्ञानानुभूतिशोधश्च शोधः सर्वं भविष्यति।।

इस प्रकरण में मैं ज्ञान का शोधन और अनुभूति का शोधन बता ही हूँ। इसी शोध में सब कुछ समाविष्ट होगा।

यावन्न शुद्धिमायान्ति तत्त्वानि यानि कान्यपि।

तावत् कथं फलप्राप्तिर्भविष्यति कदाचन।।

तत्त्व जितने भी हों और जो कोई भी हों जब तक शोधित नहीं किये जाते है, तब तक फलप्राप्ति कैसे होगी, कभी नहीं होगी।

अत एव प्रवक्ष्यामि तत्त्वशुद्धिप्रदायकम् ।

यस्यानुभूतिमात्रेण योगसिद्धिः प्रजायते।।

इसलिये तत्त्वबुद्धि प्रदायक ज्ञान मैं कहूँगी जिसकी अनुभूति मात्र से योगसिद्धि हो जाती है।

अत्रास्मिन् प्रकरणे तदेवाभिधास्यते ।।ॐ ।। गोरक्ष ! गोरक्ष !

इस प्रकरण में वही तत्त्वशोधन बताया जायेगा। गोरक्ष ! गोरक्ष !!

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। ॐ । अब चक्रविद्या का द्वितीय समानाधिकरण खुल रहा है। जिसका प्रारम्भ हो रहा है वह है तत्वशुद्धि-प्रज्ञान। इस तत्त्वशुद्धि प्रज्ञान में बहुत कुछ सार सार में कहा जायेगा, पर सब होगा तत्त्व ही तत्त्व। यह तत्त्व क्या है ? तत्त्व भी तो एक चक्कर की बात है। यह तत्त्व क्या है। स्वतत्त्व है कि आत्मबल है कि आत्मतत्त्व है, कि मूलतत्त्व है, क्या तत्त्व है। पर सब तत्त्व ही तत्त्व है। इस लिये इस तत्त्व की विशषता को जानते हुए इसका विशेष अर्थ ग्रहण करते हुए उनकी शुद्धि का प्रज्ञान होना चाहिये। प्रज्ञान शब्द का अर्थ केवल कोरा ज्ञान नहीं होता है। प्रज्ञान का तात्पर्यार्थ होता है, प्रकृष्ट ज्ञान जो अनुभूति के साथ संयुक्त हो। ज्ञानानुभूत्यात्मक ज्ञान को प्रज्ञान कहते हैं, तो यहाँ पर तत्त्व से हमारा तात्पर्य न उन पच्चीस तत्त्वों से है जो शास्त्रकारों ने कहा है, न दो तत्त्वों से न तीन तत्त्वों से, न नौ से। तत्त्व तो अलग अलग की बात है। वास्तव में तत्त्व तो ध्यान से देखो, तीन हैं। तीन में दो हैं और दो में एक है। तो तीन त्रैतवाद में आ जायेंगे। दो द्वैतवाद में आ जायेंगे और अन्त में एक तो अद्वैतवाद में ही आयेगा। तो ऐसी बात है कि जो अनेक तत्त्वों से मिलकर फिर एक ही तत्त्व की समष्टि में आ रहा है हमें उस तत्त्व में तात्पर्य ग्रहण करना है। तत्त्व का हम इस योग मार्ग में प्रारम्भ के लिये पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश आदि का आधार लेंगे, और हमें यह बताना है कि इन तत्त्वों में जो तत्त्व है वह अपने अपने स्थान पर किस प्रकार शुद्धि को प्राप्त होता है। किस प्रकार अंश और अंशी भाव से उस शुद्धि का कार्य होगा, शोधन का तात्पर्य होगा और पश्चात् उस तत्त्व का ही जो बोध होगा वह आत्मबोध से ही सम्बन्धित होकर के परमात्मबोध तक पहुंचता चला जायेगा, और इस प्रकार त्रैत का द्वैत और द्वैत का अद्वैत हो जायेगा। सब एक में समा जायगा। कुछ स्थिति ऐसी होती है जैसे जब प्रकाश हो गया तो सब वस्तुएं पृथक् पृथक् दिखाई देने लगेंगी। अन्धकार हो गया तो एकाकार हो गई। तो इसी प्रकार से जब तक तत्त्व शुद्धि नहीं होती है तब तक इस घट से तत्त्व सब ऐसे गुप्त सुप्त पड़े हैं जिनमें चेतना नहीं, इसलिये उन में जो प्रकाश ज्योति भर दी गई है, अब यह देखना है कि वे तत्त्व कहाँ कहाँ कैसे कैसे क्या क्या काम करते हैं। कहाँ रूकते हैं। कहाँ जाते हैं ? उनका अनुभव जब हो जाय, तब योग का यह मार्ग परम ही सुलभ हो जायेगा। एक एक तत्त्व का ज्ञान, एक एक नाड़ी का ज्ञान और उसके शोधन की प्रक्रिया और उससे उत्पन्न होने वाला अनुभव जब साधक को हो जायेगा तब सम्पत्त्रय की प्राप्ति सुलभ हो जायेगी।

कायसम्पत्, भूतिसम्पत् और ऐश्वर्यमण्डितसम्पत् ये उसे प्राप्त हो जायेंगी और फिर वह अपने मार्ग पर समुचित रूप से बढ़ता ही चला जायेगा।

तो इस प्रकरण मात्र की भूमिका प्रस्तुत कर दी है। अब तत्त्व और शोध और प्रभाव की अनुभूति ज्ञान के सहित करा दी जायेगी।। ॐ ।।

२९-१-६३ सायंकालः ।।१२८।।

हरि ॐ तत् सत् ।

या शक्तिस्तत्त्वरूपेण सर्वत्रैव विराजते।
तां नित्यां नौमि शुद्धां च शुद्धिकारणकार्यकाम् ।।

तत्त्वरूप में जो शक्ति सर्वत्र विराजमान है उस नित्याशुद्धा तथा साधक की सभी प्रकार के कार्यकरण की शुद्धि करने वाली भगवती को प्रणाम है।

स्वयं या कारणं चैव कार्यं चैव स्वयं क्वचित् ।
तत्त्वेषु तत्त्वभूता सा तां नमामि सदाकुलाम् ।। ॐ ।।

जो भगवती कहीं पर स्वयं कारणरूप बनती है और कहीं पर कार्यरूपा बनती है और जो तत्त्वों के भीतर भी तत्त्व के रूप में व्याप्त है और सदा कुछ करते रहने में आकुल है, उसे मैं प्रणाम करता हूँ।

अत्र तत्त्वबोधक ज्ञानमित्यस्य विशिष्टार्थः करणीयः। तत्त्वं तदेव वर्तते यद् मूर्तिमत् शक्तिसमन्वितं कार्याकुलं जायते। तत्त्व चातत्त्वं च द्विविधं पदार्थव्यूहकं विद्योतने। शक्तिसमन्वितं शक्तिसंचारेण संचारितं संचालितं च यद् मूर्तिमद् विशिष्टरूपेण वर्तते दृश्यादृश्यस्वरूपं शक्तिसंवलितं तदपि तत्त्वम् । अपि च अशक्तिसंयुक्तं विगतशक्तिकं शक्तिरहितं अथवा अभ्यन्तर निहितशक्तिकं, न च प्रकटरूपेण बहिः समागतं पदार्थभूतमपि तत्त्वरूपेण प्रख्यायते।।

यहाँ पर "तत्त्वबोधक ज्ञान" इस शब्द का विशिष्ट अर्थ करना चाहिये। तत्त्व वही है जो मूर्तिमान् शक्तिसमन्वित होकर कार्य करते में आकुल बनता है। तत्त्व अतत्त्व ये दो प्रकार के सृष्टि में पदार्थ व्यूह है। शक्ति संचरण से हरकत में आनेवाला गतिशील होने वाला जो विशिष्ट रूप में मूर्तिमान होकर अदृश्य रूप में शक्ति से संयुक्त होता है वही तत्त्व है। अथवा जो पदार्थ शक्तिविहीन सा तो लगे किन्तु भीतर अप्रकट रूप में शक्ति छिपी हो, अभिव्यक्त न हो, उसे भी तत्त्व कहा जाता है।

पदार्थेषु अथवा द्रव्येषु द्रव्यस्वरूपेषु यत् तत्त्वात्मकं चैतन्योपहितं तत्त्वम् । अतएव सर्वत्रैव तत्त्वशब्दस्य संश्लिष्टता दृश्यते। पदार्थत्वमिति, आत्मतत्त्वमिति परमात्मतत्त्वमिति च एतद्विशेषण विशेष्यभावजन्यं केवलं शक्तिस्फुरणामात्रमेव।।

पदार्थों, द्रव्यों अथवा द्रव्यस्वरूपों में जो चैतन्य से संयुक्त तत्त्वात्मकता है, वही तत्त्व है। इसलिये तत्त्व शब्द की सर्वत्र संश्लिष्टता दीखती है। पदार्थ, आत्मा अथवा परामात्मा ये तीनों जब विशेष्य विशेषण बनकर कोई रूप प्रकट करते हैं तो वह और कुछ नहीं है, केवल शक्ति स्फुरण मात्र ही है।

यदा च कार्यसंचालिका शक्तिः नानारूपवती स्वरूपिणी स्वात्मन्येव निवेशयति तदा तु तत्त्वभूतमेकमेव वर्तते, अनुभूयते तत्त्वविद्भिः।।

जब कार्यसंचालिका शक्ति नाना रूपवती होकर अपने स्वरूप को अपने ही भीतर समाये रहती है तब तत्त्व एक ही है और यही तत्त्ववेत्ताओं का अनुभव है।

तत्त्वं सारं च सारं च तत्त्वं चेतनपद्धतिः।

तत्त्वं पदार्थ–व्यूहं च चैतन्योपहितं च यत् ।।

सार–सार वस्तु को तत्त्व कहते हैं। चेतन–पद्धति को भी तत्त्व कहते हैं। उस पदार्थ व्यूह को भी तत्त्व कहते हैं जो चैतन्य से उपहित रहता है।

अथवा तत्त्वमेतद्धि तत् त्वं येन च ज्ञायते।

सर्वत्र तच्च त्वं चैव तस्मात्तत्त्व विधीयते।।

अथवा तत्त्व इतना ही और वही है जिसके जरिये "तत् और त्वं" का ज्ञान होता हो। सृष्टि में सर्वत्र तत् और त्वं ये दो ही वस्तु हैं। इन दो से ही तत्त्व बनता है।

तच्चैव त्वं च इत्येव एकं द्वैत–विबोधकम् ।

सम्भूय तत्त्वमित्येत तत्त्वं तत्त्वं विराजते।।

तत् पदार्थ और त्वं पदार्थ ये दोनों द्वैत और अद्वैत बनाते हैं। इन दोनों के पारस्परिक संयोग से ही तत्त्व, तत्त्व शब्द से कहा जाता है।

एकमेव शुभाकारं सर्वतः शक्तिवर्धकम् ।

तत्त्वं विशेषरूपेण ज्ञेयं तत् तत्त्वज्ञानिभिः।।

तत्त्वज्ञानियों का कथन है कि एक ही वस्तु परमप्रिय लगने वाली और शक्ति की वृद्धि करने वाली है, जो विशेष रूप में सर्वत्र व्याप्त है उसे ही तत्त्व कहते हैं।

पंचभूतं च यत् सर्वं व्यष्टिरूपेण विद्यते।

तत्त्वं तदपि ख्यातं च पंचतत्त्व विशेषतः।।

यह जो पंचतत्त्व व्यष्टिरूप में सर्वत्र व्याप्त है, उसे भी तत्त्व संज्ञा दी गई है। पञ्चपदार्थों के कार्याकुल संघात को भी तत्त्व कहा जाता है।

अत्र तत्त्वशब्दस्य विशेषार्थः ग्रहणीयः, तत्त्वं इत्यत्र च तस्य संगतिः, सा संगतिस्तु विशुद्धा भवति। शुद्ध्यभावे संगतिर्भवितुं न शक्यते। यावच्च तदित्यस्य त्वमित्यस्मिन् नास्ति संगतिः न तावत् तत्त्वं भवितुं शक्नोति। अत एव च तत्त्वशोधनप्रज्ञानं कथ्यते।।

यहाँ तत्त्व शब्द का विशिष्ट अर्थ ग्रहण करना चाहिए। जब तत्त्व शब्द कहा जाता है तो उसमें भी उस विशिष्टार्थ की संगति है। वह संगति विशुद्ध है। शुद्धि के अभाव में संगति नहीं हो सकती है। शुद्धि के अभाव में तत्त्व सत्ता में नहीं आ सकता है। इसीलिए तत्त्वशोधन–प्रज्ञान कहा जा रहा है।

शुद्धिस्तु शोधनं शोधः क्षालनं धावनं तथा।

पावनं पूतकरणंतु शुद्धिस्तस्माच्च कथ्यते।। ॐ ।।

शुद्धि का अर्थ है– शोधन करना, शोध करना, क्षालन करना, धोना, पावन करना, पवित्र करना, इसीलिए इसका नाम शुद्धि होता है।

या च मार्गयते रूपं स्वरूपे च कृतार्थकम् ।

निर्मलं निष्कलं कृत्वा तदा शुद्धिः प्रजायते।।

जो अपना असली रूप ढूंढती है और अपना रूप पाकर कृतार्थ हो जाती है, वस्तु को निर्मल और निष्फल बनाकर, तब उसे शुद्धि कहा जाता है।

अत एव च योगेऽस्मिन् तत्त्वबोधो विशेषतः।

तस्मात्तत्त्वं च यश्चेच्छेत् शुद्धिभावं समाचरेत् ।।

तत्त्वार्थबोध बिना शुद्धि के कभी प्राप्त नहीं हो सकता है, इसलिए जो तत्त्व ज्ञान का इच्छुक हो उसे सर्वप्रथम शुद्धि करनी चाहिए।

सा च शुद्धिः तत्त्वानामेव भवति। पंचतत्त्वानां च विशेषरूपेण अस्मिन योगे सा शुद्धिः प्रक्रियान्विता भवति। अत एव च शुद्धिकरणाय तत्त्वशोधनाय इदं सर्वं निगद्यते। येन च तत्त्वशोधप्रज्ञानं भवेत्, तत्त्वशोधन–प्रज्ञानाच्च त्वरया कार्यसिद्धिः। कार्यान्तरं योगमार्गाणां योगविधीनां वा परिशोधनम् ।।

यह शुद्धि भी केवल तत्त्वों की ही हुआ करती है। विशेषतया इस योग में पंचतत्त्वों की शुद्धि की प्रक्रियायें बताई गई हैं। इसलिए शुद्धिकरण और तत्त्वशोधन के लिए यह प्रकरण कहा जा रहा है जिससे तत्त्वशोधन–प्रज्ञान साधक को हो सके। तत्त्वशोधन प्रज्ञान से शीघ्र कार्य सिद्धि हो जाती है।

तत्परिशोधनात् सर्वं प्रतिभासते, निर्मलं चन्द्रवदित्यासमन्तात् तत्त्वशुद्धिः करणीया। अथवा तत्त्वानां शुद्धिः शक्तिसंचारणं स्वयमेव भवति। तदपि ज्ञेयम् । अनुभूतिपरकं च विधेयम् ।। ॐ ।।

उसके परिशोधन से सब कुछ प्रतिभासित हो जाता है जैसे निर्मल चन्द्रमा होता है इसलिए बाहर भीतर सब ओर से तत्त्व शुद्धि कर देता है। उसे भी जान लेना चाहिए और शक्तिपात की शुद्धि प्रक्रिया की अनुभूति भी कर लेनी चाहिए।

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। तत्त्वशोध, तत्त्वशुद्धि, तत्त्वशोधन, तत्त्वप्रकाशन, तत्त्वज्ञान जो कुछ भी कहा जाय उसमें केवल मात्र यही है कि तत्त्व का परिष्कार हो जाना चाहिए, उसके परिष्कार और परिमार्जन से जो एक प्रकार की मध्य व्यवधान की स्थिति होती है वह दूर हो जाती . जैसे कि समझने की बात है, एक ओर चुम्बक रख दिया जाता है एक ओर लौह रख दि जाता है, चुम्बक में लौह आकर्षण की शक्ति विद्यमान है, आकर्षण होगा ही। किन्तु यदि बीच में काष्ठ खण्ड का व्यवधान रख दिया जायेगा तो आकर्षण की शक्ति रूक जाती है। इसी प्रकार चेतन शक्ति द्रव्यों में अथवा पदार्थों में प्रवेश करती है, तब ये तत्त्व का रूप धारण कर लेते हैं, अन्यथा अतत्त्व ही रहते हैं। क्योंकि उनमें शक्ति संचार का विशेष बल नहीं होता है, जो यों समझना चाहिए कि तत्त्व की तो कैसी कैसी परिभाषायें दी गई हैं, तत्त्व के तत्त्व ज्ञानियों ने तरह तरह के अर्थ किये हैं। पर इस योगमार्ग में तो केवल जानने की बात इतनी ही है कि जो तत्त्व है अर्थात् पदार्थ है अर्थात द्रव्य है उनमें जो चैतन्य शक्ति निहित होकर के अपना कार्य कर रही है, तब वह तत्त्व कहलायेगी। जैसे पंचतत्त्व पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश को कहा गया है, तो ये तत्त्व का रूप तभी धारण करते हैं जब इनकी तन्मात्रायें चैतन्य से युक्त होकर कार्यवती हो जाती हैं और इस प्रकार हमारे इस शरीर के अन्दर ही, इन भूतों का, जिन्हें हम तत्त्व कहते हैं, समावेश है। और जब इनके इस समूह में इस व्यूह में, इस आकार में, इस प्रकार में, एक प्रकार की सुप्त शक्ति की जागृति होकर संचार होने लगती है तो उसके लिये मार्ग की सफाई भी तो होनी चाहिये। उस मार्ग की शुद्धि को वह चैतन्य शक्ति महामाया स्वयं करती है और उसके विशेष परिष्कार के लिए थोड़ा बहुत अनुभूतिजन्य ज्ञान की आवश्यकता होती है, क्योंकि यह भी अनुभव होता रहे कि कहां पर कौन तत्त्व है, उसकी कैसी शुद्धि हुई है, वह कैसा था और अब कैसा काम करने लगा है। जैसे कि थोड़ी देर के लिए समझा जाय कि इस शरीर में पृथ्वी तत्त्व विद्यमान है, तो पृथ्वी चैतन्य से युक्त होकर के इस शरीर के बाह्याकार को धारण किये हुए है और अपने साथ अन्य तत्त्वों को भी समेटकर रखे हुए है क्योंकि इनकी संहति है। संहति का तात्पर्य होता है परस्पर आकर्षण की शक्ति, तो अब जागृता शक्ति संचालन करने लगेगी, तब कहीं ऐसा न हो कि इन तत्त्वों

की, इन भूतों की संहति में विकृति आ जाय, तो उस विकृति का भी शोधन करना है, यह विशिष्ट अर्थ होता है। सामान्य और विशेष दोनों प्रकार का शोधन करते हुए इस मार्ग में आगे बढ़ता है तो वह क्रिया मुद्रा और औषधियों से भी होती है और शक्ति के विशेष संचार से कहाँ कहाँ पर कैसा हो रहा है, इसके विशेष अनुभव से भी होता है, पर जैसे लौह और चुम्बक के मध्य में काष्ठ व्यवधान था, तो कोई भी मल विक्षेप व्यवधान रूप में चित्त विक्षेप अथवा अन्य विक्षेप कोई भी कभी आजाय, आ सकता है, आना तो नहीं चाहिए, तो उसका भी निःसारण, परिष्करण, परिमार्जन हो जाय। इसलिए इस प्रकरण को विशेष रूप से बताया जा रहा है। इस प्रकरण में इस ज्ञान की बात नहीं करते हैं कि तत्त्वों के पीछे दौड़े, तत्त्व कैसे हैं, किस किस को लेकर बने हैं, कौन कौन धर्म उनमें आये हैं। धर्म है कि धर्मी है। इसको जान करके करना भी क्या है। इससे योग तो सिद्ध होने का नहीं, जानना है कि तत्त्व का सामान्य और विशेष अर्थ क्या है और हमें कहां पर उसका शोधन करने को, अपने आपको आगे से जाकर शक्ति को संचारित करते हुए, शक्ति की तह पाते हुए, उसको बढ़ाते हुए एक विशिष्टानुभूति की दशा में आ जाना है। जहाँ जाकर जहाँ पहुंचकर जीवन चरम ध्येय आनन्दानुभूति है और विशिष्टानन्द अनुभूति ही सब कुछ है, उसे चाहे जिस नाम से घोषित किया जाय।। ॐ ।।

३०-१-६३ प्रातःकाल ।।१.२९।।

हरि ॐ तन् सत् ॐ ।। अचिन्त्याचिन्त्यरूपायै ज्ञानपरायै महाशक्त्यै भगवत्यै कुण्डलिन्यै जागृतस्वरूपायै धृतसरस्वतीरूपायैनमः। महाशक्ति नमामि यां विना तृणमपि अग्रे प्रसारितुं न समर्थो जायते। अतएव तामावाहयामि, स्थापयामि, धारयामि च महाशक्ति या अनुभूत्यैकाधारा।। ॐ।।

अचिन्त्याचिन्त्यरूपा ज्ञानपरा जागृतस्वरूपा महाशक्ति भगवती महाशक्ति को प्रणाम है जो सरस्वती रूप धारण करके अनुभूति परायणा बनती है। और उस महाशक्ति को प्रणाम है जिसके बिना एक तिनका भी आगे बढ़ने में समर्थ नहीं होता है। इसलिए अनुभूति की एक मात्र आधाररूपा महाशक्ति का आवाहन करता हूँ और स्थापित करता हूँ।

तत्त्वबोधप्रकरणं यत्प्रोक्तं तत्यत्सर्वं तत्त्वसिद्धिप्रदमेव विद्यते। तत्त्वानां भौतिकानां संशोधनम्, तस्य परिशोधनात् मार्गावरोधस्य क्षतिः। तस्माच्च अनुपलब्धा संस्थापिता सा अनुभूतिमयी एका शक्तिः संचारणाय बलवती भवति, अनुभूति च गमयति। यदा च साधनाकाले प्राप्यशक्तिकः अथवा शक्ति समिच्छुकः अग्रे गन्तुमिच्छति, किंचिद्वा कर्तुमिच्छति, कृत्वा च प्राप्तुमिच्छति, तदर्थं तत्त्वशोधनं परमावश्यकम् ।।

तत्त्वबोध प्रकरण जो कहा गया है वह पूरा तत्त्वसिद्धि देने वाला है। सर्व-प्रथम भौतिक तत्वों का शोधन होता है। तत्त्व-शोधन से मार्गावरोध की क्षति होती है। उससे एक अनुभूतिमयी अनुपलब्ध शक्ति साधक के भीतर स्थापित होकर संचरण करने के लिये बलवती बनती है और अनुभूति प्रदान करती है। जब साधनाकाल में शक्ति का इच्छुक अथवा शक्ति प्राप्त किया हुआ साधक आगे बढ़ने की कामना करता है, कुछ कर लेना चाहता है या उसे प्राप्त करना चाहता है तब उसके लिए तत्त्वशोधन करना परम आवश्यक होता है।

अस्तु। पूर्वं तावत् आधारशोधविषया वाह्यप्रक्रिया प्रोच्यते। वाह्यप्रक्रियानुभवात् अभ्यन्तर प्रक्रियायाः स्थिरीकरणत्वम् ।। ॐ ।।

अच्छा, आधार-शोधन के लिये वाह्यप्रक्रिया बताई जा रही है। वाह्यप्रक्रिया के अनुभव से अभ्यन्तर प्रक्रिया का स्थिरीकरण हो जाता है। उस समय ऐसा करना होगा।

आधारः सर्वभूतानां स्तम्भरूपेण प्रोच्यते।

आधारे शुद्ध संशुद्धे सर्वशुद्धिश्च दृश्यते।।

समस्त प्राणियों का स्तंभरूप एकमात्र आधार को ही बताया गया है। आधार के पूर्णतया शुद्ध हो जाने पर सब की शुद्धि दीख पड़ती है।

मूलाधारस्य वै शुद्धिरेका सा तु महामता।

वाह्याभ्यन्तर रूपेण आधारपूतिमाचरेत्।।

मूलाधार की शुद्धि ही एक मात्र बहुत महत्व रखती है। इसीलिये बाहर से और भीतर से साधक को मूलाधार की शुद्धि कर लेनी चाहिये।

यदा वै साधनाकाले साधकः साधनापरः।

प्रारम्भे साधनाकाले धातकीं शुभधातकीम् ।।

जब प्रारम्भिक साधनाकाल में साधक साधना के लिये तैयार होता है, तब उन दिनों मंगल दायिनी सुन्दर धातकी फल को-(आंवला)

गृहणीयात् स्वल्परूपेण दिनपञ्चात्मकं परम् ।

सरसं नीरसं वापि फलयामलकं च यत् ।।

पांच दिन तक अल्पमात्रा में साधक को सेवन कर लेना चाहिये, वह आँवला फल चाहे सरस ताज़ा जो अथवा सूखा हो।

आमलमाम्लभावं च करोति तद्धि सेवनात् ।

स्वल्पं मात्रायुतं तच्च एकमामलसंख्यकम् ।।

सेवन किये जाने पर वह आमलक फल साधक में अपने ही जैसा आमलभाव पैदा करता है। वह फल छोटी जाति का हो और उसे एक या दो ले सकते हो।

यदिवा नीरसं तच्च चूर्णकं क्रियतां ततः।

सरसं प्राप्यते वापि तस्य भक्षणमाचरेत् ।।

यदि सूखा हो तो उसे पूर्ण कर लो और फंकी लेकर थोड़ा पानी पी जाओ। यदि ताजा सरस हो तो उसे चवर्ण भक्षण करलो।

येन मूलस्य या शुद्धिर्मलसंशोधनात्मिका।

तदा च आमला-शक्तिः शीघ्रं कार्यं करिष्यति।।

मूलाधार में जमे हुए मल की इससे पूर्ण शुद्धि हो जायेगी और आंवले की शक्ति शीघ्र कार्य करने लग पड़ेगी।

शीघ्रं च सा शक्ति समागता यदा संचारशीला चा स्वयं भविष्यति।

तदा वयस्काच्च तदैव काले धीमान् तदा आमलकं भजेत् ।।

साधक को प्राप्त हुई वह शक्ति शीघ्र ही संचारशीला बन जायेगी। इसलिये प्रारम्भ काल से ही बुद्धिमान साधक को आमलक फल का सेवन कर लेना चाहिए।

कृते च एवं शुभ कार्यकालके मूले च शुद्धे परितोषसम्पत् ।

आयाति काये च समानरूपा चित्ते च वै सा प्रकरोति स्थानम् ।।

इस भाँति साधना के प्रारम्भिक शुभमुहूर्त में आँवले का सेवन करने पर मूलाधार की शुद्धि होकर साधक परितोष-सम्पदा प्राप्त कर लेता है। वह शुद्धि समान रूप से चित्त में भी शुद्धि का प्रभाव डालती है और सन्तोष की स्थापना करती है।

अतएव एतत् करणीयम् । एतेन भूतशुद्धिः प्रजायते। भूतशुद्धिकरणेन जागृता भगवती महामाया कुण्डलिनी बलवती भवति। स्वयमपि च मलापसारणाय प्रस्तुता जायते।। ॐ ।।

अतः यह प्रयोग कर लेना चाहिये। इससे भूत शुद्धि भी हो जाती है। भूतशुद्धि से जागृता महामाया भगवती कुण्डलिनी महाशक्ति बलवती बनती है और स्वयं ही मल का अपसारण करने का प्रस्तुत हो जाती है।

गोरखवाणी :- अलख निरञ्जन ! अलख निरञ्जन ! अलख निरञ्जन। तत्त्वबोध-प्रकरण में यह बताया जा रहा है कि तत्त्वों की शुद्धि वायु व आभ्यन्तर रूप से कैसे होगी। तो बाह्य रूप से समस्त पृथ्वी जल आदि तत्त्वों की शुद्धि का विषय औषधि और क्रियाओं से होगा, और भीतरी शुद्धि उनके अन्दर शुद्धि होने पर स्वयं ही भीतर ही भीतर प्राप्त शक्ति जो शक्ति दी गई है, उपलब्ध हुई है, संचारित हुई है, समर्थ गुरू के पास से आई है, वह वहाँ तब शीघ्रातिशीघ्र बलवती होती हुई आगे बढ़ती चली जायेगी, आधार की पुष्टि हो जायेगी। आधार की शुद्धि हो जायेगी। आधार ही तो सब में बड़ी वस्तु है। आधार शुद्धि हो जाने पर बहुत कुछ हो सकता है। इसलिये बहुत लम्बी क्रिया प्रक्रिया और औषधि आदि के चक्कर में योगाभ्यासी को नहीं जाना है। अरे । वह अपना योगाभ्यास करेगा, महामाया शक्ति की आराधना करेगा, उसकी कृपा की अनुभूति का फल प्राप्त करेगा कि चक्कर में पड़ा रहेगा। अब ऐसा समय नहीं है। स्वल्प समय में स्वल्प सिद्धि, स्वल्प शुद्धि, स्वल्पबोध, स्वल्प अनुभव, ज्ञान सब कुछ आ जाना चाहिये। फिर तो सब कुछ चलता रहेगा। इसलिये भाई ! पूताँ ! ऐसा करो कि मूल के शोधन के लिये जो धातकी है, जिसे आँवला भी कहते हैं, आँवले के फल एक, दो, तीन पर्यन्त ले लो। चाहे वे सूखे मिलें, चाहे सरस मिल जाँय, दोनों तरह से इसका प्रयोग इस तरह करना। यदि शुष्क मिलें तो उसका चूर्ण कर लेना और यदि सरल मिले, एक ले लेना, दो ले लेना, तीन ले लेना, स्वल्पमात्रा वाले और लघुमात्रा वाले और जब साधना काल चल रहा हो, जब प्रारम्भिक काल हो तो उसमें केवल शयन के समय उनका सेवन कर लेना, अधिक जल पीने की जरूरत नहीं है। तीन या पाँच दिन। इतना तो सरलता से हो ही सकता है। तो इससे क्या होगा, इससे

बहुत बड़ी बात होगी। जो मूलाधार का आधार पृथ्वी तत्त्व है उस पृथ्वी तत्त्व का मल शोधन होकर उसमें दृढ़ता आ जायेगी। और उसी तरह निर्मलता आने लग जायेगी जिस प्रकार आमले के फल में निर्मलता होती है। और उसके स्वाद को देखो, आमलक भक्षण करने पर यदि ऊपर से जल ग्रहण कर लिया जाता है तो बहुत मधुर हो जाता है। तो ऐसे ही जब आमलक भक्षण करके उसकी सत्ता उसका प्रभाव मूलाधार पर पड़ेगा तो जल प्रदान करने से उसमें मधुरता आ जायेगी। तो स्वच्छन्दता आयेगी, स्वच्छता आ जायेगी, इसीलिये और साधक आधार का बल लेकर के जो शक्ति उसे दी गई है, उसको पकड़ के बढ़ता हुआ चला जायेगा। इसलिये तत्त्व शोध की बात बताई जा रही है और इसके बताने का एक कारण यह भी है कि ठीक-ठीक तत्त्व की शुद्धि का ज्ञान और उसका अनुभव हो जाने पर निर्विघ्न मार्ग हो जाता है। इसीलिये मार्ग की निर्विघ्नता के लिये तत्त्वों का शोधन भी जान लेना है।। ॐ ।।

३०-१-६३ सायंकाल ।।१३०।।

हरि ॐ तत् सत् ।। ॐ ।। निर्मलां निर्मलकारिणीं निर्लिप्तां निःशेषशेषितां तां वन्दे क्रियावतीं क्रियारूपां स्वयं सिद्धां सरस्वतीम् ।।

निर्मलकारिणी निर्मला निर्लिप्ता निःशेष रूप में शेष रहने वाली उस क्रियावती क्रियारूपा स्वयंसिद्धा सरस्वती भगवती को प्रणाम करता हूँ।

या च स्वयं वै निर्मला निर्मलं च करोति सर्वं ताम् ।
नमामि निर्मलाधारां तां भूतहितैषिणीम् ।। ॐ ।।

जो स्वयं निर्मल है और सब को निर्मल बना देती है उस सर्वभूत हितैषिणी निर्मल आधार वाली भगवती को मैं प्रणाम करता हूँ।

तत्त्वानां च विशोधनं विधियुतं कुर्याच्च सत्साधकः
तेषां निर्मलरूपरूपकरणात् मार्गे न बाधा भवेत् ।
तस्मान्नित्यमबोधबोधपरकं तत्त्वं च संशोधयेत्
एवं यश्च करोति शोधनविधिं कल्याणभाक् सः भवेत् ।।

उत्तम साधक को चाहिये कि वह विधिपूर्वक तत्त्वों का विशोधन करले, उनका रूप निर्मल कर देने से मार्ग में बाधा नहीं होती है। इसलिये अबोध की प्रतीति देने वाले मलिन तत्त्वों का सदा शोधन कर लेना चाहिये। इस भाँति जो साधक शोधनविधि करता है वह कल्याण का भाजन बनता है।

आधारं पुष्टिसम्पन्नं निर्मलं पीठसंज्ञकम् ।
धरापीठं च संशुद्धं जायते न भयं ततः।।

मूलाधार जो पृथ्वीपीठ कहा गया है, वह पुष्टि सम्पन्न हो जाता है, निर्मल हो जाता है और पूर्णतया शुद्ध हो जाता है और तब साधक को कोई भय नहीं रहता है।

यदा च शक्तिरायाति तदा वै तत्र पीठके।
यदि वै सारहीनत्त्वं कुतः शक्तिः स्थिरा भवेत् ।।

उस मूलाधार के पृथ्वी पीठ में शुद्धि के अनन्तर ही शक्ति आती है। यदि मूलाधार अशुद्ध और निर्बल होगा तो वहाँ शक्ति स्थिर नहीं रह पायेगी।

तस्मान्मूलं दृढं कृत्वा आधारं निर्मलं तथा।
पृष्टाधारे च मूले च शक्तिः कार्यवती भवेत् ।।

इसलिये मूल को दृढ़ करके आधार को निर्मल बना लो। मूलाधार के पुष्ट होने पर शक्ति स्वयं क्रियाशील बनती है।

यदि वा नैव संशुद्धिः बलयुक्तं न पीठकम् ।
पतनोत्पतनं कृत्वा शक्तिस्तु चलिता भवेत् ।।

यदि मूलाधार की शुद्धि नहीं होगी और धरापीठ बलवान् नहीं बनेगा तो शक्तिपतन व उत्पतन करके क्षरित हो जायेगी और चली जायेगी।

तस्माद् दत्तावधानेन साधकेन पुनः पुनः।
मूलसंशोधनं कृत्वा प्रारम्भे शक्तिमाप्नुयात् ।।

अतः सावधान होकर साधक को निरन्तर प्रारम्भ काल में मूल-संशोधन करके शक्ति प्राप्त कर लेनी चाहिये।

तदर्थं यच्च वै प्रोक्तं आमलं धातकीफलम् ।
आसमन्तान्मलं तत्वं दूरं तद्वै करोति यत् ।।

उसके लिये जो धातकीफल आँवला जो बताया गया है, आमल अर्थात् आ माने चारों ओर से अमल अर्थात् मल को दूर कर दे, इस अर्थ वाला वह मलशोधन कर देता है।

तस्मात्तदामलं प्रोक्तं आमलं आमलाभिधम् ।
आमं अपक्वतां लाति दूरं यच्च करोति वै।।

आमल यह नाम इसीलिये उसका है कि वह अमल कर देता है। अथवा अपक्व वस्तु को जो दूर करदे। आम अर्थात् अपक्व

तस्मात्तत् प्रोच्यते लोके आमलं आमलं फलम् ।
तस्य सेवनमात्रेण धरापीठं दृढं भवेत् ।।

इसीलिये लोक में इस फलको आमलफल की संज्ञा प्राप्त हुई है, उसके सेवन मात्र से ही धरापीठ दृढ़ हो जाता है।

अथवा निर्मला मुद्रा[१६] कर्तव्या च बुधैः सदा।
निर्मला मलहानिश्च भूयों भूयः करोति सा।।

अथवा समझदार साधक को चाहिये कि निर्मला मुद्रा करे। निर्मला मुद्रा बराबर करते रहने से मल दूर होता चला जाता है।

पूर्वं तु रेचकं कृत्वा हस्तौ च निम्नभागके।
उदरे पीडयेत् तत्र बारं बारं तथा पुनः।।

पहिले रेचक कर लो। फिर दोनों हाथों की अंगुलियों से नाभि के नीचे के भाग को बार-बार दबाओ। कई बार ऐसा करो।

तत्र या नाडिका दीर्घा सा च वै मलयूथिका।
मलावरण सम्पन्ना मलं विस्तारयत्यसौ।।

मलकी गठरी जमा करने वाली एक लम्बी नाड़ी है। उसके भीतर सारा मल जमा रहता है, और वही नाड़ी मल का विस्तार किये रहती है।

तदा तां निर्मलां मुद्रां कृत्वा मलव्यपोहनम् ।
कुर्याच्च साधकस्तस्मिन् काले वै ध्यानयोगके।।

इसलिये निर्मला मुद्रा करके मल को नष्ट कर दो। इस ध्यानयोग में शक्तिपत में साधक को निर्मला मुद्रा भी करनी चाहिये।

अथवा वटवृक्षस्य त्वगादाय च स्वल्पकम् ।
जलेन सह संपिष्टां कृत्वा तस्य निपेषणम् ।।

अथवा बड़ के पेड़ की सूखी छाल लाकर उसे जल के साथ चन्दन की भाँति घिस कर उसको नाभि में और उसके चारों ओर लेप कर लो।

कुर्यान्नाभिगते भागे साधनायां यदा भवेत् ।
एकैनौषधमात्रेण सर्वं तन्निर्मलं भवेत् ।।

जब साधना में बैठों तब एक ही इस औषधि से सब निर्मल हो जायेगा। इस औषधि का प्रयोग साधना मे बैठने से पहिले करना चाहिये।

मूलं मूलात्मकं नित्यं मूलाधारं दृढं भवेत् ।
एतत् सर्वं यदा चेच्छेत् कुर्याच्चैव सुसाधकः।।

जैसे वृक्ष के लिये उसकी जड़ का दृढ़ होना महत्त्वपूर्ण है उसी प्रकार शरीर के लिये मूलाधार का स्थान है। उसे दृढ़ बनाना चाहिये, आवश्यकतानुसार यह सब कर लेना चाहिये।

अनेन मलसंशुद्धिः तत्त्वशोधश्च जायते।। ॐ गोरक्ष ! गोरक्ष !

इस प्रयोग से मलशुद्धि और तत्त्व शोधन दोनों हो जाते हैं।

गोरक्षवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन ! अलख निरञ्जन ! अलख निरञ्जन। तत्त्वशुद्धि के इस प्रकरण में सब विषयों का परित्याग करके केवल साधक की हितबुद्धि से यह बताया जा रहा है कि जिस समय साधक के शरीर में शक्ति का संचार होने लगे, तो जहां संचरित हुई, वहाँ पर जो मूलाधार है, जो मूल में आधार है, जो पृथ्वी पीठ है, या धरापीठ है, या धरातत्त्व है, उसको निर्मल होना चाहिये, और पुष्ट भी, जब उसमें पुष्टि आ जायेगी, तो आई हुई, प्राप्त हुई शक्ति वहाँ पर स्थिर होकर आगे बढ़ने लगेगी। नहीं तो मलयुक्त होने के कारण

अथवा दृढ़ न होने के कारण वहीं पर नीचे, नीचे, ऊपर घेर में बंधी रहेगी और बड़ा विलम्ब हो जायेगा। तो जिससे विलम्ब न हो शनैः शनैः आगे प्रसार होता रहे उसका मलशोधन और पुष्टि भी कर लेनी चाहिये। ये केवल ज्ञान की ही बातें हैं, अनुभूति की बातें हैं। इन अनुभूति की बातों में महातत्त्व का शोधन है, तो इसलिये इनको बताया जा रहा है। सब तरफ से कहीं से भी शक्ति का क्षरण न होने पाय, आगई है शक्ति, प्राप्त हुई शक्ति, हो गया है अनुग्रह, तो फिर उसकी व्यर्थता नहीं होनी चाहिये, वह काम तो करेगी ही, पर हो सकता है कि कभी उसका जागरण स्वप्न और सुषुप्ति हो जाय। वहीं गोते चक्कर में लग जाय, तो बाधायें न आयें, तो बताया गया है कि आंवले का सेवन कर लो। उसका नाम ही आमल है। आ मल, सब तरफ से जो मल को दूर कर देता है। स्वयं जैसी उसकी आकृति है उसी भाँति निर्मल करता है, चमका देता है, तो उसका सेवन कर लेना। उसको अमल कहते हैं। आम माने कच्चा, जो पका न हो। और ला माने दूर कर देता है। तो कचरा पचरा है उसे दूर कर देता है। उसकी ऐसी शक्ति है, इसलिये उसका सेवन कर लेना। वह ऐसा काम करेगा। एक तो मल को दूर करेगा और दूसरे मूलाधार को पुष्ट करेगा। जिसमें शक्ति आ जायेगी। तो फिर दृढ़ हो के आगे बढ़ जायेगी। दूसरी बात बताई गई है कि सब के हित की न हो तो निर्मला मुद्रा लगा लो। इस का नाम ही निर्मला है। जोखिम को दूर कर देती है। उदर भाग का जो निम्न भाग है उसमें रेचक कर देखो। नीचे श्वास छोड़कर देखो, वहाँ पर एक मोटी नाड़ी होगी जो मल की पूरी शक्ति को अपने में समेटे रहती है। तो दोनों हाथों को दोनों ओर ले जाकर कटिभाग को दबाओ; तो नाभि और उपस्थभाग के बीचों बीच जो मोटी नाड़ी है तो खड़ी हो जायेगी। न हो तो उसे अंगुलियों से भी दबा सकते हैं। आंशिक भी दबाओ तो थोड़ी देर करने में चार दिन में मल दब जायेगा और वह निर्मल मुद्रा पूर्ण हो जायेगी। भाई ! ऐसा भी न कर सको तो एक उपाय और बताया जाता है। मूलाधार के शोधन के लिये और उसको पुष्ट करने के लिये वट वृक्ष, जिसे बरगद भी कहते हैं, बहुत होता है, सब जानते हैं, बहुत लाभदायक है। उसके कार्यों का वर्णन करना बहुत कठिन है। उसकी त्वक् है, छाल भी कहते हैं, तो ऊपर से नीरस हो, सूखा हुआ हो, उसे लाओ और पानी में, चन्दन घिसते हैं, घिसो। तब जब साधना में बैठते हो, तो दो या चार दिन या पांच दिन तक उसे नाभि में लगाओ। लेप कर दो, तो नाभि में लगाओ। लेप कर दो, नाभि पर असर करेगा, और मूलाधार पर भी।

ऐसी इसकी शक्ति है जैसी इसकी जड़े नीचे ही जाती हैं, चली जाती हैं, जमती जाती हैं तो नाभि पर लगाने पर भी वह मूलाधार तक चला जायेगा, उसका असर होगा, उससे मल दूर होगा। इस प्रकार जो मूलाधार है, पृथ्वी तत्त्व है उसका शोधन कर लो और निर्मल होकर अपने मार्ग पर बढ़ते चले जाओ, जो तुमको कृपा से उपलब्ध शक्ति है उसको बढ़ाते चले जाओ।। ॐ ।।

३१-१-६३ प्रातःकाल ।।१३१।।

हरि ॐ तत् सत् । भगवती परमात्मिका परमस्वरूपा च या तां नमामि अधीश्वरीम् । अवधूतकल्मषां अपरिमितां धौतविग्रहामूलां मूलात्मिकां मूलांकितां मूलिकां वन्दे।। ॐ ।।

परम स्वरूपा परमात्मिका भगवती को मैं प्रणाम करता हूँ। कल्मष को दूर करने वाली, मूल से लेकर पूर्ण शरीर को धो देने वाली मूलात्मिका मूलाङ्किता मूलिका भगवती को मैं प्रणाम करता हूँ।

सर्वं सर्वहिताय वै प्रकटितं शास्त्रं इदं लाभदम्
यद् ज्ञात्वा अनुभूय यच्च सरलं मूलस्य संशोधनम् ।
कुर्यात् साधकसत्तमः सुनितरां मूलं च तं क्षालयेत्
एवं मूलविधौ च शोधनविधौ कल्याणमाप्राप्यते।।

इस सम्पूर्ण लाभप्रद शास्त्र को सर्वजन के कल्याण के लिये प्रकट किया गया है, जिसे जानकर और अनुभव में लाकर सरलता से साधक मूलाधार का शोधन कर लेगा। उत्तम साधक और अच्छी लगनवाला साधक भलीभाँति मूल का पालन करता रहे। इस प्रकार मूलाधार की शुद्धविधि में साधकों के लिये कल्याण निहित है।

तस्मान्मूलस्य शोधाय रोधाय शक्तितत्त्वके।
वटस्य फलमादाय चूर्णं कृत्वा मसृणणकम् ।।

अतः मूलशोधन के लिये और शक्ति को अपने भीतर रोकने के लिये एक उपाय यह भी है कि बड़ के फल लाकर उनका बारीक चिकना चूर्ण बना लो।

लघुमात्रासमाकारं निशीथे पयसा सह।
दिनत्रयेण तच्चूर्णं सेवितव्यं च साधकैः।।

रात्रि को अल्पमात्रा में दूध के साथ फंकी लेकर सोने के पूर्व इसका सेवन तीन दिन तक कर लो।

चूर्णेन तेन मूलस्य मूले मूलं दृढं भवेत् ।
विशुद्धं मलहीनं च शुक्रस्य रक्षणं भवेत् ।।

इस चूर्ण के सेवन से, वट वृक्ष की मजबूत जड़ों की भाँति साधक के मूल में भी मजबूती आयेगी, मूल विशुद्ध और दृढ़ होकर शुक्र की रक्षा भी होती रहेगी।

कदाचित् मलशुद्धौ हि वीर्यस्य क्षरणं भवेत् ।
तस्य संरक्षणार्थं च चूर्णमितत्तु सेवयेत् ।।

मलशुद्धि की प्रक्रिया की अवधि में कभी कभी वीर्य का क्षरण भी हो सकता है। उसके संरक्षण के लिये इस चूर्ण का सेवन कर लेना चाहिये।

सेविते चूर्णके पुष्टे क्षतिस्तस्य न जायते।
शुक्रस्य पूर्णिका पुष्टिर्मात्रा एषा करिष्यति।।

इस चूर्ण के सेवन से मूलाधार की पुष्टि भी हो जायेगी और किसी प्रकार की वीर्य सम्बन्धी हानि नहीं होगी। इस चूर्ण की यह मात्रा वीर्य की पुष्टि कर देगी।

एतत्तेनैव कर्तव्यं येन आमलकं धृतम् ।
भक्षितं चूर्णकं तस्य तदर्थं प्रोच्यते हितत् ।।

यह प्रयोग उसी को करना चाहिये जो साधक आँवले का सेवन कर रहा हो और जो आँवले का चूर्ण खा रहा हो। उसी के हित के लिये यह है।

यदा वा निर्बलं तत्त्वं मूलशोधन कालके।
प्रतीतं च भवेत् तत्र तदा चूर्णं शुभं भवेत् ।।

जब यह मालूम पड़े कि मूलशोधन में कुछ कमी है या निर्बलता है तभी यह चूर्ण शुभ कारक होता है।

एतत् पुष्टिकरं प्रोक्तं शुक्रसंरक्षणात्मकम् ।
शुक्रे च रक्षिते जाते मले संशोधिते सति।।

यह चूर्ण पौष्टिक है और इससे वीर्य का संरक्षण भी होता है। शुक्र रक्षा हो जाने पर और मल शोधन हो जाने पर यह होगा कि -

तदैव शक्तिसंबोधः प्रगतिं याति सत्वरम् ।
अतः परं तदा ध्येयं मूलस्य शोधनं कृतम् ।।

तभी शक्ति का संबोध होकर शीघ्र ही शक्ति ऊपर की ओर प्रगति करने लगेगी। तदनन्तर समझना चाहिये कि मूल का शोधन सम्पन्न हो गया है।

तत्र च धरिणी तत्त्वं पुष्टं पुष्टं भविष्यति।
मूलस्य शोधनात् पश्चात् स्वाधिष्ठानस्य शोधनम् ।।

उस काल में पृथ्वी तत्त्व लगातार पुष्ट होता चला जायेगा। मूल के शोधन के अनन्तर स्वाधिष्ठान का शोधन आता है-

प्रोच्यते सर्वमेतद्धि साधकैः क्रियतां ध्रुवम् ।।

उसे भी कहा जा रहा है। साधक लोग इसे भी अवश्य कर ल।

गोरक्ष ! गोरक्ष ! गोरक्ष !

गोरक्ष ! गोरक्ष ! गोरक्ष !

गोरखवाणी :- ॐ । अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अब इस तत्त्व शोध प्रकरण में मूलाधार की शुद्धि बताई जा रही है, क्योंकि मूलाधार ही पृथ्वी तत्त्व है और पृथ्वी तत्त्व के शोधन हो जाने से पीठ और पीठ का आधार दोनों शुद्ध हो जाते हैं। आधार में पुष्टि आ जाती है, तो इसके लिये तत्त्वशोध प्रज्ञान बताया जा रहा है। इस शोध प्रकरण में सबकी शुद्धि का, पुष्टि का ही विषय होगा। हमने जैसा बताया है कि मूलाधार की शुद्धि, पृथ्वीतल की पुष्टि बताई है, उसको कर लेना, दो बात और बताई है कि साधक जब अपने साधनाकाल में आमलक भक्षण करता है, अरे आमले का चूर्ण खाता है, फल खायेगा तब नहीं, चूर्ण खायेगा, तब उस समय उस चूर्ण के सेवन से ऐसा हो सकता है कि वह विशेष मल को इधर उधर से निकाले। गुदा भाग को संचित करे, मल की उन पंखुड़ियों को भी निकाल दे जो अपना घर जमा करके इधर उधर बैठ गई हैं, अथवा जो शुक्रदोष की दशा में इधर उधर घेरे हुए हैं, उनको भी वह ठीक करेगा। तो ऐसे समय में, जब आंवले के चूर्ण का सेवन कर रहा हो तो ऐसा भी कर ले कि आंवले के चूर्ण के सेवन करने के थोड़ा पश्चात् जो वट के फल हैं, लाल लाल होते हैं, कच्चे कच्चे होते हैं। पके भी होते हैं, कच्चे भी होते हैं उनको लाकर के पीस करके उनका भी चूर्ण बना लो और स्वल्प मात्रा में कुल्लू दो कुल्लू, चुल्लू दो चुल्लू दूध के साथ उसको भी सेवन कर ले। उसके सेवन करने से दो बातें होंगी। मलशोधन तो वह आमलक के साथ मिलकर पूर्ण रूप से करेगा ही, पर जहाँ जहाँ शुक्र के दोष होंगे उन शुक्र के दोषों को भी ठीक करता हुआ शुक्र की पुष्टि करेगा। क्षरण नहीं होने देगा तो शुक्र क्षरण का भय नहीं रहता है और फिर इस प्रकार इस आधार तत्त्व की शुद्धि हो जाती है। इसकी शुद्धि हो जाने के पश्चात् सब सुलभ हो जाता है और इसके पश्चात् जब आगे चल के अधिष्ठान चक्र जिसको स्वाधिष्ठान चक्र भी कहते हैं जो नाभि और गुदा भाग के ऊपर का जो भाग है, नाभि के नीचे गुदा भाग के ऊपर, नाभि के ऊपर से एक छोटी सी नाड़ी चली गई है। वह नाड़ी गुदभाग के मूलभाग के ऊपर ही आकर के रूक जाती है, जहाँ जलतत्त्व की प्रधानता है तो उसका भी प्रकरण पुनः प्रारम्भ किया जायेगा। इस प्रकार मूलाधार तत्त्व शोधन प्रकार को समझ करके उसका प्रज्ञान समझ लेना चाहिये। अर्थात् ज्ञान के साथ अनुभूति भी कर लेनी चाहिये। उससे जो लाभ हो उसको अच्छी तरह देख लेना चाहिये। समझ लेना चाहिये। इस प्रकार साधक के मार्ग में बाधा दूर होती चली जायेगी। और साधना में चित्त लगता चला जायेगा। शक्ति बढ़ती चली जायेगी। ॐ ।

३१-१-६३ सायकाल ।।१३२।।

हरि ॐ तत् सत् । परिपूरिताङ्गीं सकलबलभूषितां लिङ्गात्मिकां प्रकटितविभासभासमानां नमामि ताम् । अत्र तत्त्वशोध प्रज्ञान प्रकरणे स्वाधिष्ठानस्य तद्विषयेणात्र किञ्चिदित्यभिधीयते सर्वं प्रज्ञानं स्वानुभूतं च भविष्यति।।

परिपूर्ण भरे हुए अंगों वाली, समस्त बलों से भूषित, लिङ्गात्मिका, अपनी ही प्रकटित कान्ति से भासमान देवी को मैं प्रणाम करता हूँ। यहां तत्त्वशोधन-प्रज्ञानप्रकरण में स्वाधिष्ठान के विषय में जो कहा जा रहा है, उसे समझकर स्वयं अनुभव कर लोगे।

स्वाधिष्ठानं मध्यस्थितं उभयात्मकं केचिद्वदन्ति, अपरे च न स्वीकुर्वन्ति। तत्रैव कुलाधारपरायणाः समुदारधाराधारायणा वा स्वाधिष्ठानविषये एवं वदन्ति।।

कुछ लोगों का कहना है कि स्वाधिष्ठान मध्यस्थित होने के कारण उभयात्मक है। दूसरे ऐसा नहीं मानते हैं। इसी पर कुलाधार परायण समुदार सम्प्रदाय वाले ऐसा कहते हैं कि -

कुलाचारसमुदायप्रतिपादकाः स्वाधिष्ठानस्य विशिष्टां सत्तां न अधिगणयन्ति। मध्यस्थितत्त्वेन आधारमणिपूराभ्यामुभयत्र संयोजकम् । आधारे च अथवा मणिपूरे च विशिष्टरूपेण संशोधिते च जलतत्त्वं साम्येन गच्छति। जलं विना न धरातत्त्वस्य पूर्तिः न वा तेजस्तत्त्वस्य पूर्तिः अतएव मध्यस्थं जलं तत्रैव सन्निविष्टं मन्यन्ते मनीषिणः।।

वे लोग स्वाधिष्ठान की विशिष्ट सत्ता को नहीं मानते हैं। आधार और मणिपूर के बीच स्थित होने के कारण यह दोनों का संयोजक होता है। मूलाधार और मणिपूर के विशिष्ट शोधन के साथ ही जलतत्त्व साम्यावस्था में आ जाता है। जल के बिना न तो पृथ्वी तत्त्व की पूर्णता है और न ही तेजस्तत्त्व की पूर्णता होती है, इसलिए मध्यस्थ जल को दोनों का अनुपूरक वे लोग कहते हैं।

इतश्च समुदाचारसम्पन्नाः समुदितसमाचाराः स्वीकुर्वन्ति यत् स्वतन्त्रसत्ता वर्तते स्वाधिष्ठानस्यापि ।। ॐ ।।

और इधर समुदाचार सम्प्रदाय वाले स्वाधिष्ठान की स्वतन्त्र पृथक् सत्ता होती है ऐसा मानते हैं।

किमनेन उभयत्रसाम्येन भवतुतावत् तत्सत्ता स्वीक्रियते। स्वीकरणात् पश्चात् एवं वक्तुंशक्यते यत् -

उभय साम्य से क्या लाभ है, अच्छा वह भी रहे। किन्तु इसकी पृथक् सत्ता स्वीकृत की जा रही है और स्वीकार करने पर ऐसा कहा जा रहा है कि –

स्वाधिष्ठानं तु यत् चक्रं मणिपूरे समन्वितम् ।
आधारेण समायुक्तं मध्यचक्रस्य सा स्थितिः।।

जो स्वाधिष्ठान चक्र है, वह मणिपूर से भी मिला हुआ है और आधार से भी समन्वित है और उसकी स्थिति मध्यवर्ती है।

तत्रैव जलतत्त्वस्य प्राधान्यं च प्रतीयते।
जल प्राधान्यभावेन स्वाधिष्ठानं विशेषतः।।

यहीं पर जल तत्त्व का प्राधान्य प्रतीत होता है। विशेषरूप में जलतत्त्व की प्रधानता के कारण –

कदाचित् तज्जलं तच्च अधो गच्छति वैक्वचित् ।
ऊर्ध्वं वा तेन तच्चक्रं स्व अधिष्ठानसंज्ञकम् ।।

कभी यह जल नीचे को जाता है और कभी ऊपर को जाता है, इसलिये इस चक्र को स्व अपना अधिष्ठान स्थिर स्थान इस नाम से कहा गया है।

तस्मिन्नेव स्थितं तस्य जलमुभयरूपकम् ।
कदाचिद् वृद्धिमायाति कदाचित् शोषितं च तत् ।।

इसी चक्र में ऊपर नीचे का जल विद्यमान है। जब वह नीचे जाता है तो जल तत्त्व में वृद्धि होती है और जब वह ऊपर जाता है तो वह सूख जाता है।

अतस्तस्यस्थितिर्गूढा स्थिरायै सुस्थिरा भवेत् ।
तस्मात् तत्र स्वयं सद्यः साधको यत्नवान् भवेत् ।।

अतः जल तत्त्व की गूढ़स्थिति को एक दम स्थिर करने का काम पृथ्वी करती है। इसलिए साधक को सदा यही प्रयत्न करना चाहिए कि जल की स्थिति सदा साम्यावस्था में बनी रहे।

स्वाधिष्ठानं स्थितं तत्र समभाव जलात्मकम् ।
परिपूतं परिपूर्णं पूर्णं पूर्णं जलात्मकम् ।।

स्वाधिष्ठान चक्र समभावस्थित जल से समन्वित है और विशुद्ध रूप में केवल जल ही जल से भरा पड़ा है।

तत्र नैव प्रभूतं च मलबद्धं मलात्मकम् ।
कलितं सारसम्पनं तच्च स्वल्पमलान्वितम् ।।

जल की परिपूर्णता के कारण ही वहाँ मल बंधा नहीं रहता है और मल अधिक भी नहीं रहता है। उसमें कम मल रहता है और वह सारसम्पन्न है।

तस्मात् स्वल्पेन कालेन उपायेन च तत्त्वतः।
स्वाधिष्ठानविशुद्धिः स्यात् सुकरा स्वानुभूतिका।।

इसलिए स्वल्पकाल में ही बड़ी आसानी से अनुभूतिपूर्वक स्वाधिष्ठान चक्र की विशुद्धि हो जाती है।

तदर्थं साधकैः सर्वैः साधनाभ्यास तत्परैः। ॐ
घूर्णिका चैव कर्तव्या नित्यं यत्नेन पूर्णतः।।

साधनाभ्यास में तत्पर सभी साधकों को चाहिये कि वे नित्य नियम से पूरी तरह घूर्णिका मुद्रा किया करें।

तया च एकया तस्य स्वाधिष्ठानस्य सर्वतः।
जलस्य मध्यमारूपा स्थितिः सा सुस्थिरा भवेत् ।।

इस अकेली एक मुद्रा से ही स्वाधिष्ठान में स्थित जल की सब प्रकार से समभाव की मध्यमा स्थिति बनी रहती है।

न तत्र किंचित् करणीयं न च मुद्रा न चौषधम् ।
केवलं घूर्णिका तत्र कर्तव्या मलशोधिका।।

स्वाधिष्ठान शोधन में और अन्य कुछ मुद्रा तथा औषधियों का प्रयोग नहीं है। केवल घूर्णिका मुद्रा ही अकेले मलशोधन के लिए पर्याप्त है।

या च मुद्रा मया प्रोक्ता स्वाधिष्ठानस्य सर्वतः।
मलस्य शोधनं कृत्वा जलस्य रक्षणं तथा।।

स्वाधिष्ठान शोधन के लिये जो मुद्रा मैंने बताई है वह मल का शोधन करके जल का संरक्षण करती है।

करोति पूर्णरूपेण तस्माद् वै तत्परो भवेत् ।
अनया मुद्रया तत्र जलस्य मध्यमा स्थितिः।।

इसलिये पूर्ण रूप से घूर्णिका मुद्रा में सदा तत्पर रहना चाहिये। इस मुद्रा में जल की स्थिति समभाव में आ जाती है।

विकृतिं नैव संयाति न च तत्र मलं स्थिरम् ।

या च प्रोक्ता मया नाडी लघु नाडी सुयोजिका।।

जलतत्त्व विकृति को प्राप्त नहीं होता है और उसमें मल स्थिर नहीं रहता है। जो छोटी नाड़ी सुनियोजित बताई गई है वह विशुद्धा नाड़ी -

सा च नाडी विशुद्धाख्या विशुद्धिं च करोति या।

अवधूतिं विधूतिं च विशुद्धां च धुनोति सा।।

सब विशुद्धि कर देती है। वह नाड़ी अवधूतों का विधूनन करके उसे भी विशुद्ध कर देती है।

सा नाडी शुद्धिमायाति घूर्णिकाया प्रभावतः।। ॐ ।।

वह नाड़ी घूर्णिका के प्रभाव से विशुद्ध हो जाती है।

गोरखवाणी :- इस प्रकरण में बताया जा रहा है कि मलशोधन करते चले जाओ। मार्ग साफ होता चला जायेगा। शक्ति संचार रूकेगा नहीं। इसलिये बताया जा रहा है कि यह जो अधिष्ठान चक्र है, जिसे स्वाधिष्ठान चक्र भी कहते हैं, इसे कुछ लोग स्वीकार भी करते हैं स्वतन्त्र रूप से, और कुछ नहीं भी मानते हैं। समुदाचार वाले स्वतन्त्र मानते हैं तो ठीक ही है। वह भी स्वतन्त्र रूप से एक चक्र तो है ही, यद्यपि उसकी जो एक शुद्धा नाड़ी है, वह मणिपूर और मूलाधार को संयोजन करती है और जलतत्त्व का संतुलन दोनों ओर ठीक रखती है, जब कभी उसमें जलतत्त्व की विकृति आ जाती है, पृथ्वी तत्त्व में मिलने से उसकी अधिकता होती है और अग्नितत्त्व में मिलने से उसका शोषण होता है, तो वही विकृति है, वही उसका मल है। तो उसका सन्तुलन ठीक बनाये रखने के लिए और कोई क्रिया मुद्रा औषधि के उपाय की आवश्यकता नहीं होगी। अरे ! जो घूर्णिका मुद्रा बताई गई है उसे नित्य लगाते रहो। स्वाधिष्ठान अपनी स्थिति में रहेगा, उसमें कभी कम और कभी ज्यादा जो जल की मात्रा हो जाती है, वह नहीं होगी। जल की मात्रा कभी कम और कभी ज्यादा होने से बड़े बड़े अनर्थ हो जाते हैं। पृथ्वी तत्त्व में, अरे, जब जल की मात्रा अधिक हो जाती है तो उसमें ज्यादा शीतलता आ जाती है और शीत का प्रभाव काम करने लगता है। तरह तरह के रोग आ जाते हैं। और जब अग्नितत्त्व में जाकर उसका शोषण होने लगता है तो उस समय ऐसी ऊष्मा, ऐसी गर्मी शरीर में हो जाती है जो रक्त शोधिका भी हो सकती है और ऐसे समय में चर्म रोगों के होने की सम्भावना हो जाती है। इसलिए न शीत प्रधान रोग हों और न गर्म प्रधान रोग हों, तो जल तत्त्व को स्थिर करने के लिए घूर्णिका मुद्रा को लगाते रहो। यह जल तत्त्व का सन्तुलन, करेगी और शुद्ध, विशुद्धा, अवधूतिका तीन नाड़ियाँ हैं। शुद्धा नाड़ी

नाभि और उपस्थ के बीच की है। बीच में दोनों का संयोजन करती है और विशुद्धा मणिपूर में विराजमान रहती है और अवधूती वही है जो मूलाधार में है, जिसे कुण्डलिनी शक्ति भी कहते हैं, वही तो जागृता हुई है, वही तो मूलाधार के ऊपर आके स्व माने अपने स्थान पर उसने अधिष्ठान कर लिया है, अपना पैर जमा लिया है। तो जैसे मूल में वृक्ष मूल रूप से आया, फिर स्कन्ध हुआ और स्कन्ध से शाखा-प्रशाखायें हुईं, तो इसी भाँति समझ लो, शक्ति मूल से चली, अधिष्ठान में स्कन्ध रूप में पुष्ट हुई और वहाँ से शाखा प्रशाखा के रूप में आगे के चक्रों को चीरती हुई, फाड़ती हुई, छेदती हुई, भेदती हुई अपने गन्तव्य स्थल में पहुंच जाती है। तो सभी का सन्तुलन रखने वाली यह घूर्णिका मुद्रा है, जिसका पहले प्रभाव बताया गया था। सब प्रकार की क्रांति को दूर करके मन को घुमा करके स्थिर कर देना। इसी भाँति इसका स्वयं पर भी वही प्रभाव होता जल को मथ दे, लहरों को इधर उधर फैला करके फिर सन्तुलन में ले आये। इसलिए शक्ति के साधक को घूर्णिका के प्रभाव से परिचित होकर के स्वाधिष्ठान रक्षा कर लेना चाहिए। इतना ही स्वाधिष्ठान का अर्थ है और इतने से ही इसका निर्मलत्व हो जाता है। इसलिए इसके लिए घूर्णिका ही पर्याप्त है।। ॐ ।।

१-२-६३ प्रातःकाल ।।१३३।।

ॐ । हरि ॐ तत् सत् ।

विधिनिखलज्ञानां विविधबोध कारिणीम् ।

विशुद्धमतिधारिणीं सर्वदैव विशुद्धिकारिणीम् ।।

योगविधियों का पूर्ण ज्ञान रखने वाली नानाप्रकार के बोध करने वाली विशुद्ध मतिधारण करने वाली सदा साधक को विशुद्ध करने वाली –

पावनीं पावनकारिणीं नमामि तां शारदाम् ।

शुभ्रवर्णेन राजितां विसतन्तुसमाकाराम् ।।

नानाकार्याकुलां भगवतीं कुण्डलिनीं वन्दे।।

स्वयं पवित्र और पवित्र करने वाली शारदा भगवती को मैं नमस्कार करता हूँ। शुभ्रवर्ण से सुशोभित कमलनाल के तन्तु जैसी म्हान, नानाकार्य करने में आकुल उस भगवती कुण्डलिनी को मैं प्रणाम करता हूँ।

या जागृता महामाया कुण्डली भगवती स्वयम् ।

तत्त्वानां शोधनं कृत्वा बोधं गूढं ददाति या।।

जो महामाया भगवती कुण्डलिनी स्वयं जागृता होकर तत्त्वों का शोधन स्वयं कर देती है और गूढ़ बोध को प्रदान करती है।

या च प्रज्ञान प्रज्ञाना सा च नाति रहस्यका।

नमामि तां च देवीं वै कुण्डलीं कुण्डलात्मिकाम् ।।

जो प्रज्ञान की भी प्रज्ञान हैं साधक के लिये अति रहस्यमयी नहीं रह जाती है उसी भगवती कुण्डलात्मिका कुण्डलिनी देवी को मैं प्रणाम करता हूँ।

मूलाधारे स्थितां देवीं जागृतां गूढरूपिणीम् ।।

मूलाधार में गूढ़रूप में स्थित जागृता देवी को नमस्कार है।

अथ मणिपूर भेदन प्रकरण प्रस्तुतिविधौ मणिपूरस्य भेदनात् पूर्वं तत्रैव कथितं यत् गूढात् गूढतमं मणिपूरविभेदनम् । तदेव किञ्चित् दुष्करं वर्तते। अग्नितत्त्वस्य शोधनम् । मणिपूरे भेदतत्त्वस्य शोधनम् ।।

अब मणिपूर भेदन प्रकरण के प्रस्ताव विधि में मणिपूर भेदन के पूर्व वहीं बता दिया गया है कि मणिपूर-भेदन गूढ़ातिगूढ़ है। वही कुछ कठिन है। मणिपूर में अग्नितत्त्व का शोधन है और उसमें रहस्यमय तत्त्व का शोधन है।

मणिपूरे भेदतत्त्वस्य विशेषतः वक्तुं न शक्यते। तेजस्तु प्रकाशशीलेन स्वयमेव स्वशुद्धिं करोति। शुद्धं च भवति। कुत्र तत्र मलिनता। मलाभावे शुद्ध्यभावः। शुद्ध्यभावे प्रकरणस्य व्यर्थता इति न शङ्कनीयम् । तत्र मणिपूरमलशोधनविधौ गूढागूढतरं रहस्यं वर्तते।। ॐ ।।

मणिपूर में भेदतत्त्व के बारे में विशेषतः नहीं बताया जा सकता है। तेज तो अपनी प्रकाशशीलता के कारण स्वयं ही अपनी शुद्धि कर लेता है, स्वभावतः शुद्ध रहता है, उसमें मलिनता कहाँ है ? मल नहीं है तो उसकी शुद्धि कैसी ? शुद्धि के अभाव में इस प्रकरण की व्यर्थता है ऐसी शङ्का न करो। इसमें गूढ़ातिगूढ़ रहस्य है।

को वा नरो यो मणिपूरकस्य संशोधनं कर्तुमलं समर्थः।

यतश्च तत्रैव विराजते स्वयं मुद्रा विशुद्धा प्रतिरूपकारिणी।।

कौन मनुष्य ऐसा है, जो मणिपूर का संशोधन करने में समर्थ है ? क्योंकि विशुद्धिभाव को विपरीत करने वाली साक्षात् मुद्रा वहीं पर विराजमान् हो रही है।

गुहाशया शक्तिरिहैव या मता तां निर्मलां कर्तुमना समर्थः।

कः कश्च तां कर्तुमसौ न शक्तः तस्माच्च तत्रैव विधिः प्रयोज्या।।

गुहा के भीतर छिपी बैठी वह शक्ति है, जिसे निर्मल करने में सभी असमर्थ रहते हैं। कोई बिरले ही उसे विशुद्ध कर सकते हैं। इसलिये उसी के लिये शोधन विधि का प्रयोग बताया जा रहा है।

सूक्ष्मा सा परमा गूढा मणिपूरस्य संस्थितिः।

तत्रैव चाग्नितत्त्वस्य प्राधान्यं प्रोच्यते बुधैः।।

मणिपूर की स्थिति बड़ी सूक्ष्म और परम गूढ़ है। वहीं पर योगज्ञाता लोग अग्नि तत्त्व की प्रधानता बतलाते हैं।

अग्निवर्णं स्वतः शुद्धं कस्तं शुद्धं समाचरेत् ।

इदं न शंकनीयं च नैवं नैवं कदाचन।।

अग्नि स्वतः शुद्ध है, उसकी शुद्धि कौन किस भाँति कर सकता है। इस प्रकार की शंका कभी नहीं करनी चाहिये।

तत्रापि शुद्धिभावस्य वर्तते भावना शुभा।

धूमावृता यथावह्निः क्लिन्नकाष्ठसमावृतः।।

अग्नि-तत्त्व में शुद्धि भाव की शुभ भावना बनी रहती है। जैसे अग्नि में गीली लकड़ी डाल देने से वह धुंए से ढक जाती है और मैली दीखती है।

अथवा शीतसम्पन्नाः पदार्थास्तत्र पातिताः।

ज्वलितोऽस्ति यदा वह्निर्मन्दमायाति स्वल्पकम् ।।

अथवा अग्नि में जैसे शीतप्रधान वस्तुएँ डाल दी जाँय तो जलती हुई आग भी थोड़ा मन्द पड़ जाती है।

तद्वद्वै मणिपूरेऽस्मिन् सर्वभावेन ज्ञायताम् ।

अत एव च पूरस्य शोधनं क्रियते सदा।।

उसी प्रकार इस मणिपूर चक्र के बारे में भी वही बात है। अतः मणिपूर का शोधन किया जाता है।

तस्य शोधनमात्रेण दशा कष्टतरा नहि।

अन्यथा मार्गरोधस्य बोधस्य स्फुरिताङ्कुरम् ।।

लीयते तत्र संसुप्तं रूद्धं मार्गं च जायते।।

उसके शोधन मात्र से फिर योगमार्ग में साधक की स्थिति कष्टदायक नहीं होती है। अन्यथा मार्ग में अवरोध पड़ जायेगा और बोध का अंकुर जो फूटा है वह भी लीन हो कर सुप्त हो जायेगा और मार्ग रूक जोयगा।

अतः मणिपूरस्य शोधनावश्यकता विशेषरूपेण भवति।।

इसलिये मणिपूर के शोधन की विशेष रूप से आवश्यकता पड़ती है।

गोरखवाणी :- ॐ ।। मणिपूर की शुद्धि का प्रश्न ही बड़ा गूढ़ प्रश्न है। क्योंकि इसमें ज्ञानियों ने और तत्त्ववेत्ताओं ने और कई प्रकार के लोगों ने जो योग के मार्ग पर चलते हैं, चक्कर डाल रखे हैं और उसे बहुत ही जटिल बना दिया है, यद्यपि उसमें थोड़ी बहुत जटिलता है। क्योंकि वह प्रधान रूप से चक्रों की मध्यस्थिति का चक्र है और भावों की धुरी व स्थिति को मजबूत करने वाला है, अधः और ऊर्ध्व। ऊपर नीचे सब प्रकार प्रकाश को खींचने वाला है। अतः विशिष्ट रूप से महत्त्वपूर्ण है, किन्तु उसे भी जटिल करके काम नहीं चलता है। तो यहां पर थोड़ा बहुत उसके शोधन के प्रकार में विशेषता है, और वह इसलिये कि जब मणिपूर में अग्नि तत्त्व की प्रधानता है, तो तेज स्वयं प्रकाशशील होता है, उसमें मलावरणता कैसे आई ? वह तो निर्मल है। अग्नि तो निर्मल होती है। बात कुछ ऐसी है। सीधी सी है। साधारण रूप से सोचा जाय तो ठीक भी है। किन्तु मणिपूर के सम्बन्ध में ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये। मणिपूर के विषय में ऐसी बात है कि जैसा कि अग्नि तत्त्व की उसमें प्रधानता है, किन्तु ऐसा होता है कि अग्नि जब प्रज्वलित हो जाती है, तो कई कारणों से मन्द भी पड़ जाती है। सूखी लकड़ियां अग्नि को धधका देती हैं, गीली लकड़ियां, घास फूस, भीगे पदार्थ जब उसमें पड़े हुए होते हैं तो वह मन्द पड़ जाती है और कभी ऐसा भी होता है कि काष्ठ प्रज्वलित हो जाता है और फिर राख की ढेर बन जाती है जैसा धुनी में देखा जाता है। चिनगारियां नीचे दब जाती हैं, उनको प्रज्वलित करना है। काष्ठ को सुलगा देना है। धुनी को तीव्र कर देना है, तो मुख की श्वास से उस ऊपर की राख को हटा कर नीचे की चिनगारी को प्रकट कर दिया जाता है और फिर उसमें काष्ठ आदि पदार्थों से अग्नि प्रज्वलित कर दी जाती है। ठीक यही बात मणिपूर के सम्बन्ध में कही जाती है। यहां पर भी कुछ ऐसा मलावरण आ जाता है, जिससे अग्नितत्त्व नीचे दबा रह जाता है। उस दबे हुए अग्नितत्त्व के कारण शरीर में उद्दीप्ति, कान्ति, प्रकाशशीलता नहीं आने पाती है। और जिसे नाभिचक्र कहते हैं, वह एक बड़ा महत्त्वपूर्ण है, इसलिये उसकी शोधन-विधि भी भली भांति जान लेनी चाहिये और उसको इस प्रकार से अनुभव में लाना चाहिए कि वहीं पर से राह की कोई कठिनाइयां न रहें। वहीं से चलना है, दृढ़ होकर के। इसके पश्चात् केवल दो ही चक्रों की शुद्धि है जिसे हृदय चक्र और कण्ठ चक्र भी कहते हैं। और अनाहत और विशुद्धचक्र भी कहते हैं। तत्त्व तो पांच ही हैं, तो पांच ही तत्त्वों की पांच ही चक्रों तक सम्बन्धित शुद्धि होती है। तो उसका प्रकरण फिर से आरम्भ किया जायेगा।। ॐ ।।

१-२-६३ सायंकाल ।।१३४।।

ॐ । हरि ॐ तत् सत् । या आत्मबोधपरिचायिका अद्वितीया अनन्त-शक्तिसम्पन्नां तां महाशक्तिमाराधयामि पूजयामि, सा मे महाशक्तिः समायातु । ॐ वाक्सिद्धिर्मे भवतु।।

जो अनन्तबोध परिचायिका अद्वितीया अनन्तशक्तिसम्पन्ना है, उस महाशक्ति की आराधना करता हूँ, उसे पूजता हूँ, वह महाशक्ति मुझ में आवे। मुझे वाक्सिद्धि हो।

अहो मातर्मातः पदनखमयूखांशु पटलम्

दधत्चञ्चत्कान्ति हृदययमितः स्पर्शसहितम् ।

यदा कृत्वा दिव्यं सकलसुखयुक्तंजायते देहवन्धः

तस्यान्मातस्त्वदीयं चरण युगलकं ध्यान गम्यं करोमि।। ॐ ।।

हे अम्बे ! मैं तुम्हारे उस चरण युगल को ध्यान में लाता हूँ, जिसके नखों की कान्ति किरणों का स्पर्श पाकर मेरा हृदय भी कान्ति की चमक धारण कर लेता है। उस स्पर्श की अनुभूति से देहन्बन्धन भी समस्त सुखों से भर जाता है। इसलिये हे माता ! तुम्हारे चरणों का मैं ध्यान करता हूँ।

तदा सत्यमनन्तं च ज्ञानं यत् पारलौकिकम् ।

जायते कृपया यस्याः सा मे नित्या महालया।।

प्रसीदतु महामोहतमसो नाशिका च या।।

सत्य, अनन्त जो पारलौकिक ज्ञान है, वह जिसकी कृपा से होता है, वह नित्या महालया भगवती मेरे ऊपर प्रसन्न हों, जो महामोह रूपी अन्धकार की विनाशिका है।

मणिपूरस्य संशुद्धिर्या या भावस्थितिः अनामाख्या सा स्वानुभूतिं च प्रददाति स्वयं, ततः पूर्वमेतत्तु ज्ञातव्यं मणिपूरस्य रूपकं विचित्रं च किंचिच्चाति परमाद्भुतम् ।।

मणिपूर की जो संशुद्धि है और जो उसकी भावस्थिति है, उसका नाम तो नहीं है, किन्तु स्वानुभूति स्वयं देती है। इससे पूर्व यह जान लेना चाहिये कि मणिपूर का जो विचित्र और अद्भुत रूप है वह कैसा है।

ज्वालाकुलं भूतिविमण्डितं च ग्विर्णवर्णात्मक संहतिस्तथा।

धूमाकृतिः श्वेत शुभा च नीला धूम्रा च पीता च करालकाला।।

मणिपूर चक्र ज्वालाकुल है, भूति विमण्डित है, अनेक चित्र विचित्र रंगों की संहति से भरा है, धूमाकृति है, ज्वालायें कुछ श्वेत हैं, नील हैं धूम्रवर्ण की हैं, पीली हैं और कुछ करालरूप से काले रंग की हैं।

ज्वालाकुला कालकरालकाला महाविशाला च महाविशाला।। ॐ ।।

सा वह्निज्वाला विषमा समाख्या विचित्रवर्णा मिलिता सुवर्णा।।

अग्नि की ज्वाला काल कराल है, बड़ी विशाल है, वह ज्वाला कभी सम और विषम है, विचित्रवर्ण की है। मिले जुले वर्णों की सुन्दर वर्ण वाली है।

तस्या ज्वलज्ज्वालसमाकुला च तत्त्वेन बोधेन परावृता च।

ज्वाला सदा सा शुभशंसिनी च प्राणात्मिका प्राणवृता च प्रोक्ता।।

वह ज्वलित होती हुई ज्वाला तत्त्वबोध से घिरी है। वह ज्वाला सुन्दर शब्द भी करती है। प्राणों से भरी है और प्राणात्मिका है।

मणिपूरके अस्मिँश्चक्रे या वह्निज्वाला विराजते सा विवर्ण वर्णा बहुवर्णा ज्वालामालाकुला च।।

इस मणिपूर चक्र में जो वह्निज्वाला विराजमान है वह विचित्र वर्णों से भरी ज्वालाओं से व्याप्त है।

श्वेता धूम्राश्च पीताश्च नीलाश्च नीललोहिताः।

एता स्ताः वर्णिताः ज्वालाः मणिपूरस्य कोष्ठके।।

मणिपूर के कोष्ठों में वे ज्वालायें श्वेत, धूम्र, पीत, नील और नीललोहित हैं।

कदाचिन्मन्दमन्दाश्च मन्दं चाति महत् पुनः।

ज्वालानां बोधसम्भूतिः प्रस्तुप्ता ज्ञायते क्वचित् ।।

वे ज्वालायें कभी मन्द पड़ती हैं और कभी तीव्र हो जाती हैं। कभी-कभी उन ज्वालाओं का प्रत्यक्ष अनुभव भी सामने आ जाता है।

जलतत्त्वस्य प्राधान्यात् वायुतत्त्वस्य पूर्णतः।

मध्ये तेजः समावद्धं ज्ञायते च विभाकुलम् ।।

नीचे जलतत्त्व की प्रधानता से और ऊपर वायुमण्डल की प्रधानता से बीच में स्थित मणिपूर का तेजस्तत्त्व बंधा है जो प्रभा से परिपूर्ण रहता है।

तदेव प्रोच्यते एवं मलं तत्र प्रतीयते।

तस्य संशोधनं श्रेयस्करं वै मानवार्थके।।

तभी कहा जाता है कि वहाँ मल प्रतीत होता है और उसका शोधन साधकों के लिये श्रेयस्कर है।

तस्य संशोधनं एवं क्रियते तत्त्व वेदिकैः।

वारूणी वरूणस्यास्ति क्रिया मुद्रा[१७] हितार्थिक।।

तत्त्ववेत्ता लोग उसका संशोधन इस भाँति करते हैं। वरूण देव से सम्बन्धित एक वारूणी मुद्रा है जो बहुत हितकारक है।

वारूणीं समकालेन तेजः संशोधनाय च।

प्रयोक्तव्या तदा मुद्रा वारूणी शोधकारिणी।।

तैजस्तत्त्व के शोधन के लिये साधना काल में साधक को इसी वारूणी मुद्रा का प्रयोग करना चाहिये।

पुरा देवेषु दैत्येषु युद्धोऽभूत् स्पर्धिसंज्ञकम् ।

जलोष्मरूप शोष्माणं तस्मात् वै वारूणी कृता।।

प्राचीन काल में देव और दानवों में स्पर्धापूर्ण युद्ध हुआ था जिसमें जल का शोषण अग्नि की ऊष्मा से होने लगा था। तब यह वारूणी मुद्रा वरूण देव ने लगाई थी।

ततश्च सा समायाता वरूणस्य-प्रिया प्रिया।

वारूणी नामका मुद्रा दुर्लभा या च सर्वदा।।

तभी से वरूणदेव की प्रिय यह मुद्रा प्रसिद्ध हुई, इसका नाम वारूणी मुद्रा हुआ। यह मुद्रा सदा परमदुलर्भा है।

सा मुद्रा प्रोच्यते अत्र मणिपूरस्य शोधने।

साधकानां हितार्थाय तां मुद्रां भज सत्वरम् ।।

मणिपूर के शोधन में यहाँ पर वही मुद्रा बताई जा रही है। साधकों के हित के लिये उसी मुद्रा का तुम सेवन करो।

तदा च वायुतत्त्वस्य अग्नितत्त्वस्ययत्नतः।

जलतत्त्वस्य तत् सर्वं नोपसर्पति दुष्कृतम् ।।

तब इससे वायुतत्त्व, अग्नितत्त्व और जलतत्त्व से सम्बन्धित कोई भी विकृति साधक के समीप नहीं आ पाती है।

निर्भयो जायते मर्त्यः मणिपूरं विशोध्य च।

तस्मात्त्वं तत्त्वबोधेन भवत्वं वारूणी प्रियः।। ॐ ।।

मणिपूर का विशोधन करके साधक निर्भय हो जाता है। इसलिये तुम तत्त्वबोध के लिये वारूणी मुद्रा को प्रेमपूर्वक धारण करो।

एषा वै वारूणी मुद्रा दिव्या पूरस्यशोधिका।

तां तु सर्वात्मभावेन गोरक्षो दर्शयिष्यति।।

यह दिव्य वारूणी मुद्रा मणिपूर के शोधन के लिये लाभकारी है। इस मुद्रा को पूरी तरह गोरक्ष तुम्हें करके दिखायेंगे।

गोरखवाणी :- ॐ । अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। आदेश ! आदेश ! माँ का आदेश। नमो गुरू को आदेश। नमो गुरू को आदेश। आदेश। आदेश। मणिपूर चक्र और उसकी शुद्धि के लिये माँ कहती है कि उसके लिये वारूणी मुद्रा को गोरख बतायेगा। माँ ! गोरक्ष बतायेगा। आदेश। मणिपूर के भेदन में जो बताया गया था कि वहाँ पर एक उष्ण तालाब है और यह भी बताया गया था कि वहाँ मणियों की चमक होती है और यह भी समझा दिया गया था कि सुरंग में घुसने के लिये द्वार वहीं से खुलेगा। सब कुछ मणिपूर भेदन में बता दिया गया था, किन्तु उससे थोड़ा ही भिन्न किन्तु सरल और सर्वसुलभ मणिपूर का शोधन है। मणिपूर के शोधन के लिये सर्वप्रथम वारूणी मुद्रा का प्रयोग किया जा रहा है। यह वारूणी मुद्रा वरूण से सम्बन्ध रखती है, जिसमें तीन तत्त्व निश्चित हुए हैं। जल, अग्नि, वायु को समता में लाने वाली वारूणी मुद्रा महत्त्वपूर्ण मुद्रा है। इसकी क्रिया कर लेने पर मणिपूर अशुद्ध नहीं रह सकता है। मलिन नहीं रह सकता, फिर उसमें जो बताई गई थी भिन्न वर्ण की अग्नि ज्वाला, मणियाँ, विभिन्न वर्ण की प्रकाशशील महानाड़ियों की शक्तियाँ जो इनकी तत्त्वभूत हैं, नाभिदेश में जो विचित्र-विचित्र अनुभूतियों की द्योतना है वह भी प्रत्यक्ष में आ जाती है। जब ऐसी स्थिति आने लग जाती है, जब मणिपूर के सम्बन्ध में इस प्रकार की अनुभूति आने लगती है तो समझना चाहिये कि भेदन और शोधन दोनों हो चुका।

जब तक इस प्रकार की अनुभूतियां न हों, दिव्योष्णता होगी, दिव्यप्रकाश होगा, नील धूम्रादि पीत क्यों है ? उसमें पृथ्वी तत्त्व का अंश होगा, नीलत्व वायु तत्त्व का अंश होगा, क्योंकि वहां पर आकर्षण होता है। नीचे का ऊपर को, ऊपर का नीचे को, और फिर उन ज्वालाओं की लिंगाकार स्थिति ऐसा कर देगी जैसे नाभि से कुछ निकल रहा है। या तो नीचे की ओर जा रहा है या ऊपर की ओर आ रहा है, या ऊपर की ओर निकल रहा है, या आगे की ओर निकल रहा है। अरे ! जो लोग दीर्घ काल के अभ्यास के बाद इतना करते हैं, महामाया जागृता शक्ति मथ देगी, स्वयं करा देगी। तो वारूणी मुद्राइसी लिये तो बताई जा रही है। वारूणी मुद्रा के लगा देने से, वारूणी मुद्रा की क्रिया से शक्ति आकर्षण करेगी। मथ देगी। फैंक देगी इधर से उधर, मल विक्षिप्त हो जायेगा, पर यह विलक्षन है। महाशक्तिवाली

वारूणी भी उसमें अपना आँशिक प्रभाव ही दिखा सकती है। किन्तु उसके आँशिक प्रभाव में बिछलन को सुखा देने की भूमिका तैयार हो जाती है। बिना वारूणी मुद्रा के कोई भी मणिपूर का शोधन नहीं कर सकता है। होता ही है, होता जायेगा। वारूणी मुद्रा प्रिय मुद्रा है, और अनुभूति प्रधान है। उस मुद्रा का इस प्रकार से ऐसा रूप स्वरूप है, जो न अति कठिन है न अति सरल है, बीच की कोटि का है, और जब उस मुद्रा का ज्ञान हो जाता है और उस मुद्रा की क्रिया कार्याकुल हो जाती है, तब महामाया भगवती जागृता कुण्डलिनी जिसे मैं अवधूती कहता हूँ, अवधूत कर देती है, धुन देती है। वह शक्ति स्वयं करवा लेगी। घबराते क्यों हो, अरे ! जैसे सुरंग में पैठने की विधि बता दी थी, प्रकाश ज्वाला को लेकर आगे चले थे, तो मलशोधन की कौन सी बड़ी बात है। कर लो मलशोधन। लगा जाओ वारूणी मुद्रा। यह मुद्रा इस प्रकार से होगी। बैठ जाओ। किसी भी आसन से बैठ जाओ। और जिस प्रकार चिद्बोधिनी में बताया गया था कि मेरूदण्ड को कुछ नीचे झुका करके पेट को भीतर ले जाकर के पेट के हिस्से को जरा रगड़ में ले आओ। और जैसे उसमें कूल्हा-चूल्हा चलाने की बात कही थी, जो पृष्ठ के भाग हैं वे इधर उधर को जाँय, इधर को जाँय, उधर को जाँय। अर्थात् एक बार दाईं ओर एक बार बाई ओर ऐसा कर के पेट का वह हिस्सा भीतर गया हुआ हो, उस समय श्वास नीचे को गई हुई हो अर्थात् रेचक में हो और उसके बाद यों करो (पेट भीतर डाल कर रेचक) नीचे से अभी तुम्हें जो स्वाधिष्ठान की बात बताई थी, एकदम उसके बाद जो बदन के हिस्से हैं, कोख के हिस्से हैं उनको ऊपर खींचो, खुलेंगे नहीं, तनेंगे, (यों, तान दो)। तन गये, मूल कुछ ऊपर को खींचो, वायु कुछ ऊपर आया, नाभि भीतर गई। हाथ घुटनों में रख कर मानों पीछे धकेलो। पेट को भीतर खींचो। पीठ जहाँ की तहाँ रहे, पीठ न हिले, आँखें भी तन जायेंगी। तेज का स्वरूप आँखों में खिंच जायेगा। फिर एकाएक पूरक करके फुला दो पेट को, इस तरह कई बार करो और फिर एकाएक खाली पेट को बैठे ही बैठे, श्वासप्रश्वास चले तो ठीक न चले तो ठीक है। नहीं तो यों ही पेट के नीचे ऊपर, आगे पीछे, नीचे ऊपर, आगे पीछे, नीचे ऊपर, आगे पीछे चलाओ। बस, देखो एकाएक गर्मी पहुंचायेगी तो समझो कि शुद्धि का लक्षण प्रकट हो गया है। इसके पश्चात् और बातें बताई जायेंगी।। ॐ ।।

ॐ । हरि ॐ तत् सत् ।।

या जागृता च बलदा महामाया भगवती।

भासमाना च या चक्रे चक्रे चक्रवती च या।।

या तां भजामि परमां क्रियाबोध विधायिनीम् ।।

जो महामाया भगवती जागृता होकर बलवती होती है और जो चक्रवती प्रत्येक चक्र में भासमान होती है उस क्रियाबोध देनेवाली परमा देवी का मैं भजन करता हूँ।

मणिपूरस्य संशोधनं विधौ यद् भवति, यच्च करणीयं भवति यच्च क्रियते यच्चनुभूयते सर्वं तत् पुरतः एव समागमिष्यति।।

मणिपूर के शोधन विधि में जो करणीय होता है, जो किया जाता है और अनुभूत होता है वह सब सामने आ जायेगा।

गदिता वारूणी मुद्रा प्रोक्ता या वरूणप्रिया।

सा मुद्रा चक्रशोधं च कृत्वा मोदं च दास्यति।।ॐ।

जो वारूणी मुद्रा बताई गई उसे करके मणिपूर का शोधन हो जायेगा और उससे प्रसन्नता प्राप्त हो जायेगी।

मोदते साधकस्तत्र मणिपूरस्य शोधने।

तस्मादानन्दप्राप्त्यर्थं शोधने लक्ष्यमानसः।।

भवेच्च साधकस्तत्र कार्यसिद्धिर्भविष्यति।।

मणिपूर के शोधन होने पर साधक आनन्दित हो जाता है। इसलिये आनन्द की प्राप्ति के लिये साधक मणिपूर शोधन को अपना लक्ष्य बना लेवे और उससे कार्यसिद्धि हो जायेगी।

यदा च वारूणीमुद्रा क्रियते साधकेन सा।

तदा शिवारसं श्रेष्ठं ग्रहणीयं विशेषतः।।

जिसकाल में साधक वारूणी मुद्रा करे, उस अवधि में उसे विशेष रूप से शिवा (गुरूच) का रस ग्रहण करना श्रेष्ठ रहता है।

शिवा या च गुडा प्रोक्ता गडुची सा च कथ्यते।

तस्यास्तु रसतत्त्वेन तत्त्वशुद्धिः प्रजायते।।

शिवा जिसे गुडा और गुडूची कहते हैं, उसके रस से तत्त्व शुद्धि हो जाती है।

मधुना सह तस्याश्च रसमातृप्तिकारकम् ।

कृत्वा एकं स्वरुपं च तत्त्वहं तमनन्तकम् ।।

गुडूची के रस में मधु मिला कर दोनों को फैंट कर एक रूप कर लो और तृप्तिपूर्वक उस का सेवन करो।

तदा च तद्भक्षणमात्रेकेण या चोष्णता तत्र विराजते महा।

संशोधनं तस्य च चक्रकस्य तस्याश्च शान्ति गडुची करोति।।

उसके भक्षणमात्र से जो भीतर बढ़ी हुई उष्णता है, गुडूची का रस उसकी शान्ति कर देता है और मणिपूर का संशोधन हो जाता है।

अपरं च एतदौषधं मणिपूर चक्रभेदन काले अथवा मणिपूर शोधन काले अथवा उष्णतायाश्च बाहुल्येन प्रतीतौ, अथवा तीक्ष्णता च धातूनां प्रतीयेत, अथवा उद्दीप्तिभावना प्रबलतरा जायते, सर्वत्र मधुमिश्रितं गुडूचीरसं चावलेहनीयम् । सर्वोऽपि करोति।

इस औषधि का एक और लाभ भी है। मणिपूर के भेदन या शोधन काल में जब अधिक गर्मी प्रतीत हो, धातुओं की तीक्ष्णता मालूम हो, या कामोद्दीपन की भावना प्रबल हो जाय तो सर्वत्र मधुमिश्रित गुडूचीरस का सेवन करो।

तदौषधं भजेत् सर्वः मणिपूरे विशेषतः।

सा च तद्गुणसम्पूर्णा अपरं चाभिधीयते।।

मुद्रामौषधमेवापि दिव्यां पूरस्यशोधने।

तस्यापि सेवनात् सद्यः सर्वं सरलतां भजेत् ।। ॐ ।।

मणिपूर के शोध में विशेषतया इस औषधि का सेवन करना बड़ा गुण कारक होता है। मणिपूर शोधन के लिये एक अन्य औषधि व मुद्रा भी बताई जाती है उसके सेवन से भी शीघ्रतया सब सरल हो जाता है।

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन।। ॐ।। मणिपूर शोधन प्रकरण में जो कुछ भी बताया जा रहा है, वह महा अनुभव की वस्तु है। तत्त्व तत्त्व है। सत् सत् है। सब निचोड़ के धर दिया गया है। इसका भेदन और शोधन ही श्रेयस्कर है और उसी प्रकार की मुद्रा और क्रिया तथा औषधि भी बताई जा रही है। इसके शोधन को मैं बहुत जटिल नहीं बना देना चाहता हूँ, तो चार मुद्रायें और तीन चार औषधियाँ ही सब कुछ कर

डालेंगी, जिनके सेवन में और जिनके करने से और जिनके अनुभव से सर्वदा साधक निर्भय रहेगा।। ॐ ।। तो ऐसा बताया गया है कि जब मणिपूर का शोधन करना हो तो वारुणी मुद्रा को लगा लिया करते हैं और वारूणी मुद्रा के लगाने के पश्चात् मणिपूर की वह विकृनता दूर करनी हो, शोधन करना हो, भेदन भी हो गया हो, तो उस समय के लिये भी कहा गया है, अथवा जब महा उष्णता प्रतीत होने लगे अथवा दीप्ति अर्थात् कामोद्दीपन की भावना आने लगे, अथवा जलतत्त्व का विशेष शोषण होने लगे, ऐसी स्थिति में ऐसा प्रतीत हो कि समस्त शरीर में अग्नि प्रज्जलित हो गई हो और शरीर के धातु रसों में शोषण होने लगा हो, तब उस समय जिसको शिवा कहते हैं, गुडुची भी कहते हैं, गुरूच भी कहते हैं, उसका एक टुकड़ा लेकर के उसका थोड़ा सा रस निकाल के उसमें थोड़ा सा मधु मिला के दोनो को अच्छी तरह से घेप देना। खूब घेप लेना चाहिये और जब साधना में बैठना हो तब उसका सेवन कर लेना और वारूणी मुद्रा लगा लेना, कोई भय नहीं रहेगा, कोई डर नहीं रहेगा। इस प्रकार मणिपूर के शोधन के लिये यह औषधि परम हितैषिणी है। उसी के लिये नहीं, मणिपूर के सम्बन्ध में जितनी भी विकृतियाँ हैं, समस्त विकृतियों को दूर करने वाली यह प्राणदा औषधि है। इसमें समस्त ऊष्म रोगों की शान्ति हो जाती है। प्रज्ज्वलित ज्वाला अपने सन्तुलन में आ जाती है और अनेक शुक्र-सम्बन्धी दोष जितने भी होंगे सबको यह दूर कर देती है। इसीलिये इसे शिवा कहते हैं। यह कल्याण करने वाली है। इसको लोग गिलोय भी कहते हैं। लता होती है। बिना मूल के होती है, जो बिना मूल के बढ़ सकती है। वह मूल को छोड़कर ऊपर आकर के कैसे नहीं अपना प्रभाव दिखायेगी। इसलिये इसका भी प्रयोग कर लेना, जब आवश्यकता पड़े, और इसके पश्चात् और भी सरल सरल कुछ मुद्रा क्रियायें और दिव्य औषधि भी बता दूंगा जिससे यह भी सरल हो जाय। मणिपूर का शोधन हो जाय। तत्त्व की प्राप्ति हो जाय।। ॐ ।।

२-२-६३ सायंकाल ।।१३६।।

हरि ॐ तत् सत् ।।

मूले वासकृतां देवीं महाशक्तिं महागतिम् ।

कपालकुण्डलां वन्दे कपाले शक्तिसंचयाम् ।।

मूलाधार में निवास करने वाली महागतिशालिनी, कपाल के भीतर शक्ति संचय करने वाली कपालकुण्डला महाशक्ति को मैं प्रणाम करता हूँ।

वन्दे कपालिनीं देवीं कुण्डलां कुण्डलाकृतिम् ।

शुद्धां कुण्डलिकां देवीं सदा बोधमयी महत् ।।

कुण्डलाकृति कपालिनी भगवती कुण्डला को मैं प्रणाम करता हूँ जो श[illegible] होकर बोधमयी बन जाती है।

ददातु मे सा च कपाल-कुण्डला या कुण्डला शक्ति महत्वपूर्णा।

सदा च सा मे परिरक्षतां ध्रुवं शक्तिश्च मय्येव समागतां ताम् ।।

वह महत्त्वपूर्ण कपाल-कुण्डलिनी शक्ति मुझे सब कुछ प्रदान करे और वह सदा मेरी रक्षा करे जो शक्ति मेरे भीतर स्वतः आकर प्राप्त हुई है।

सदा समस्तैक विबोधभाषा सा मे महाबोधमयी मयाकुला।

सर्वं च तत्त्वं परिशोधनाय भवेच्च सा शक्तिमती सदैव।।

मुझे बोध देने के लिये जो भाषारूप बनकर आई है और वह महा बोधमयी देवी शीघ्रता से सब तत्त्वों के शोधनार्थ शक्तिमती बने।

सदैव सा शुभ्रक शुभ्रभासा विराजतां सा जननी सरस्वती।।

मुखारविन्दे मम वै सुनित्यं ..... ।। ॐ ।।

समस्त शुभ्र वर्ण वाले पदार्थों की भाँति कान्तिवाली सरस्वती माँ सदा मेरे मुखारविन्द में नित्य निवास करे।

मणिपूरक शोधने च यत् गदितं यच्च प्रदर्शितं स्वयम् ।

अथवा अपरा क्रिया क्वचित् करणीया च बुधैः क्वचित् क्वचित् ।।

मणिपूर के शोधन पर जो कुछ बताया गया है और जो स्वयं प्रदर्शित किया गया है उसके अतिरिक्त एक और अन्य क्रिया भी कभी कभी साधकों को करनी चाहिये।

न च सर्वे भवन्त्येवं एकैव प्रकृति स्थिताः।

प्रकृत्या भेदमादाय औषधं भेदनम् भवेत् ।।

सभी व्यक्ति एक प्रकृति के नहीं हुआ करते हैं। अतः प्रकृति [illegible] औषधि में भी भेद किया जाता है भिन्न भिन्न साधकों के लिये औषधि की भिन्नता है।

कस्यचित् शीतलावृत्तिरूष्णवृत्तिश्च कस्यचित् ।

शीतोष्णा कस्यचित् चैव एवं तत्र च ज्ञायताम् ।।

किसी की शीतल प्रकृति है, किसी की उष्ण प्रकृति है, और किसी की समशीतोष्ण है। इसी प्रकार औषधि तथा क्रिया-मुद्राओं के बारे में भी जानो।

सेव्यतां क्रियतां चैव सर्वं यल्लब्धभाषितम् ।

अनुभूतिं विधायैव तस्मात्तत्ताचरेत् स्वयम् ।।

जो कुछ तुम्हें बताया गया है और तुम्हें क्रिया मुद्रा औषधियाँ प्राप्त हैं उन सबकी अनुभूति करके जो बात जिसकी प्रकृति के अनुकूल पड़े उसी का सेवन करो और कराओ।

औषधं वा क्रियां वापि मुद्रां वापि विशेषतः।

दिनेन पञ्चमात्रेण पूर्वमेवं समाचरेत् ।।

चाहे औषधि हो, क्रिया हो अथवा कोई मुद्रा हो, तीन या पांच दिन तक पहिले स्वयं करके परीक्षण कर लो। यदि अनुकूल पड़ती हो तो उसे ले लो। प्रतिकूल को तत्तद् व्यक्तियों के लिये रख लो।

यदि लाभोऽस्ति पूर्णं च तत्त्वशोधं प्रतीयते।

यदा च मुद्रया यच्च औषधेन पुनः पुनः।।

यदि तीन या पांच दिन के भीतर पूर्णलाभ होता है और तत्त्वशोध प्रतीत होता है तो वही मुद्रा वही क्रिया वही औषधि बारबार-

तदैव ग्रहणीयञ्च अनुभूतिपरं हि तत् ।

अनुभूतिपरामुद्रा क्रिया च अनुभूतिदा।।

ग्रहण करते रहो, क्योंकि वह आजमाई हुई चीज है। सभी क्रिया और मुद्रायें अनुभूतिपूर्विका होती हैं। सभी कुछ सभी के लिये अनुकूल प्रतिकूल नहीं होता है।

एवं ज्ञात्वा महायोगे सर्वं तद् आचरेद् बुधः।।

इस महायोग में इन्हीं सब बातों को समझकर साधक को आचरण कना चाहिये।

अधुना सम्प्रवक्षामि मणिपूरस्य शोधनम् ।

विधानमेकमेवं तत् तद्वै लाभप्रदो भवेत् ।। ॐ ।।

अब मैं मणिपूर के शोधन की बात कर रही हूँ। एक और विधान है वह भी लाभप्रद सिद्ध होगा।

चक्रिणी चक्रिका चक्रा चक्राकारा च चक्रदा।

चक्रस्थिता च सा मुद्रा[१८] चक्रिणीं प्रोच्यते मया।।

एक चक्रिणी मुद्रा है, जो चक्रस्थिता है, चक्रा है, चक्रिका है, चक्राकारा है और चक्रप्रदा है। इसीलिये इस मुद्रा को चक्रिणी कहा जाता है।

चक्रिणी चक्रविद्यायाः आधारभद्रिका मता।

क्वचिच्च चक्रिणी योगात् शुद्धिस्तु मणिपूरके।।

यह चक्रिणी मुद्रा चक्र विद्या के अन्तर्गत आधारभूत मुद्रा है। कभी कभी चक्रिणी मुद्रा के सेवन से मणिपूर की शुद्धि हो जाती है।

भवेद् वै त्वरितं तस्यात्तमेव सततं बुधः।

कुर्याच्च स्वानुभूतौ च स्थापयेत्तां च चक्रिणीम् ।।

यदि यह मुद्रा अनुकूल पड़ जाती है तो बड़ी जल्दी से साधक को लाभ होता है। अनुकूल में आने पर अपनी अनुभूति में लाकर इस चक्रिणी को रख लेना चाहिये।

तया सह पुनर्ज्ञेयं औषधं शुभ्र ज्योतिषम् ।

ज्योतिस्तत्त्वसमायुक्तं सहैव परिभक्षयेत् ।।

इस मुद्रा के साथ औषधि भी जान लेना चाहिये जो शुभ्र ज्योति वाली है और ज्योतितत्त्व से पूर्ण है। चक्रिणी मुद्रा के साथ इसका भी सेवन करना चाहिये।

तुला च अस्यते यस्मात् तुलसी सा च कथ्यते।

मञ्जरीस्तु समादाय तस्याः दत्तावधानतः।।

जिसकी तुलना में अन्य कोई नहीं है उसे तुलसी कहते हैं। उसी तुलसी की मञ्जरी सावधानी से ग्रहण करो।

पञ्चपर्यन्त मात्रस्य मंजरींव्यूहकं शुभम् ।

भक्षयेन्मधुना सार्धं शुद्धिस्तु निश्चिता भवेत् ।।

पाँच मञ्जरियों के गुच्छे को लो और मधु के साथ उसका सेवन करो। निश्चित रूप से मणिपूर की शुद्धि हो जावेगी।

एवं स्वल्प स्वल्पमेव विनाकष्टेन साधकः।

मणिपूर च सशोध्य ऊर्ध्वं गच्छति गच्छति।।

इस प्रकार साधक थोड़ा-थोड़ा करके बिना कष्ट के ही मणिपूर का शोधन करके ऊपर की ओर बढ़ता चला जाता है।

तत्र या मणिसम्पत्तिः तुलसीभक्षणाच्च सा।

मार्गं च सरलं सद्यः तस्मान्मार्गः प्रजायते।।

तुलसीभक्षण से वहाँ जो मणि सम्पति है, वह स्पष्ट होता है, शीघ्र मार्ग सरल हो जाता है और मार्ग खुल जाता है।

ॐ गोरक्ष , गोरक्ष !

गोरक्षवाणी :- अलख निरञ्जन ! अलख निरञ्जन ! अलख निरञ्जन।। ॐ ।। मणिपूर शोधन-प्रक्रिया में बताया जा रहा है कि किस भाँति इसकी शुद्धि होगी। क्योंकि यह तेजस्तत्त्व है और तेजस्वत्व में शुद्धि की विशेष प्रक्रियायें ही होती हैं और विशेष प्रकार की अग्नि तत्त्व के लिये ऐसी क्रियाओं और ऐसी मुद्राओं की आवश्यकता होती है जिनका गुण न शीत प्रधान हो, न उष्ण प्रधान हो। ऐसा होता है कि क्योंकि यदि उष्णता में और भी उष्णता आ गई तो भी अच्छा नहीं और उष्णता में पूर्णरूप से शीतलता आ गई तो भी अच्छा नहीं। इसलिये सावधानी के साथ बताया जा रहा है कि अपनी-अपनी प्रकृति के अनुकूल जितनी क्रियायें और मुद्रायें बताई जा रही हैं जितनी औषधियाँ बताई जा रही हैं, इसको पाँच दिन तक सेवन करना और कराना, देख लेना जो प्रकृति के अनुकूल न पड़े उसे समझना कि दूसरे की प्रकृति का कारण है। उसको भी कर लेना, पर अनुभूति में लाना, बिना अनुभूति के कुछ नहीं होता है, इसलिये ऐसा करना, फिर से एक बात और है। एक मुद्रा है जिसे चक्रिणी कहते हैं, चक्रा कहते हैं। चक्रविद्या की जो आधार मुद्रा है उस मुद्रा को भी लगा लेना। जब उस मुद्रा के साथ जिसे तुलसी कहते हैं, तुलसी को पूजते हैं, घरों में रखते हैं, अच्छा है सुगन्धित सुन्दर छोटा-छोटा सुगन्धित वृक्ष होता है, मञ्जरियाँ आती हैं, तो उसकी पाँच मंजरी ले लेना। न बहुत छोटी हों न बहुत बड़ी हों, उनको या तो पीस करके मधु मिला कर भक्षण करना या यों ही चबा जाना और ऊपर से मधु चाट जाना। यह चक्रिणी मुद्रा के साथ औषधि प्रयोग होता है तो उसका एक विशेष कारण होता है। उसको स्वल्परूप में समझ लेना चाहिये। जितनी भी मुद्रायें और क्रियायें की जा रही हैं उनमें मनुष्य स्वभाव धर्म है, उसमें कुछ त्रुटि ही न रह जाय, वह कुछ विकृति न कर दे। इसलिये औषधि का सेवन भी कर लेना चाहिये और मुद्रा के साथ जब औषधि का सेवन होना है तो मुद्रा की शक्ति और औषधि की [illegible] [illegible] [illegible] सेवन कर लो। [illegible] क्रिया करना तो, चक्रिणी कैसे होगी समझ लो, देख लो, जान लो, अनुभव कर लो।

आओ, आसन जिस पर बैठे हो साधना काल में, अथवा नहीं बैठे हो, पूर्ण रूप से करना चाहते हो, सहसा करना चाहते हो, पहिले ही करना चाहते हो, सहसा करना चाहते हो, चाहोगे क्या, पहिले थोड़ा बता दूं। अभ्यास करा दूं। चलेगी, चल पड़ेगी, चलेगी तो सब चल पड़ेगी। चलेगी तो सब चलेगी। ऐसा करना, ऐसा करना, भाई, दोनों पैरों को यों (लम्बा) फैला लेना। जितने फैले फैला लेना। पर इतने न फैलें कि तकलीफ हो जाय। यों फैलाओ भाई! दोनों हाथ घुटनों के पार्श्व में रख लो। रेचक करो। आगे को झुक जाओ। पेट को खाली रखना पीठ की तरफ सिकोड़ कर, छाती जमीन में हो, दुड्डी भी लग जाय। ऐसे करने में नसें तनेगी तो हाथों को आगे ले जाना। यों कर लेना, थोड़ा देर यों ही रहना, कष्ट होने पर पैरों को फैला देना या समेट लेना। फिर यों सीधे हो जाना, पेट को आसन पर थोड़ा रगड़ लेना, रगड़ा जाय तो। नहीं तो एक भेद यह है, देख लो।

दूसरा भेद, उसी में यों कर लेना। पैर को एक को थोड़ा मोड़ कर बैठना। एक को थोड़ा मोड़ कर लम्बा कर लेना और यों कर लेने के पश्चात् और यों कर लेने के पश्चात् यों दोनों हाथ रखकर छाती को नीचे ले जाना, फिर नीचे को रखना। यह जो जानुभाग है, वह गले की हड्डी के समीप रहे। दोनों हाथ यों रहें (पीठ पर) यह बल पड़ गया। इस बल को ले जाकर धीरे-धीरे सारिका की भाँति पीछे हाथ खोलकर रेचक पूरक करना। ऐसे लगा जाना। फिर धीरे-धीरे से ऊपर उठ जाना। ऐसा करके यह जिसको भी प्रकृति के अनुकूल पड़ जाती है, उसको मणिपुर भेदन शोधन के लिये कोई मुद्रा कोई औषधि नहीं लेनी पड़ती है और जिसको अनुकूल नहीं पड़ती है, पांच दिन में ही सब कुछ ज्ञात हो जाता है अनुभूति में आ जाता है कि इसके लक्षण क्या हैं। जिस समय यह चक्रिणी लगी होगी, यह नीचे का भाग और ऊपर का भाग ऐसा ज्ञात होगा कि तन रहा है। यह मध्य का भाग शीतल मालूम पड़ेगा और भीतर को जाता मालूम पड़ेगा। कभी धीरे-धीरे फरफराहट मालूम पड़ेगी। यह पहिली प्रकार की चक्रिणी का लक्षण है। दूसरी चक्रिणी में ऐसा होता है। जिस समय वक्षःस्थल का बल जानुभाग पर पड़ता है थोड़ा सा ऐसा मालूम पड़ता है आराम मिला। उसके पश्चात् जब श्वास की प्रक्रिया में गतिविच्छेद होने लगा है, रेचक पूरक होने लगता है, तब मालूम होने लगता है नाभि के भाग में थोड़ा तनाव आ गया और शरीर में थोड़ी सी उष्णता व्याप्त होने लगी। बस, समझलो काम बनने लगा और इस चक्रिणी का अभ्यास करने से बड़ा लाभ होता है। करो। देखो, भेदन कर जाओ। अरे ! मणिपुर को संशोधित कर दो। दोनों बातें हो जायेंगे। भेदन नहीं हुआ होगा तो हो जायेगा। शोधन नहीं हुआ होगा तो हो जायेगा।। ॐ ।।

हरि ॐ तत् सत् ।।

बिन्दुविधेयकं सर्वं शून्याकारं खमण्डलम् ।
तत्रापि भ्राजते देवी तां नमामि सरस्वतीम् ।।

जब यह समस्त सृष्टि शून्याकार होकर चिदाकाश मण्डल में परिणत बिन्दुरूप हो जाती है, वहाँ पर भी जो देवी विराजमान रहती है उस सरस्वती मां को मैं प्रणाम् करता हूँ।

आदाय पुस्तकमिदं बहुलं बहुज्ञं
साराहितं च विपुलं विपुलार्थतत्त्वम् ।
कृत्वा च तत्र बहुरम्यक नादनादं,
सा सुन्दरा भगवती मतिमातनोतु।।

बड़े गम्भीर अर्थों से भरी, सारपूर्ण, अनन्तज्ञान से पूरित पुस्तक धारण करके सुन्दर मनोहारी नाद करती हुई वह सुन्दर भगवती मेरी बुद्धि को विस्तीर्ण करे।

वन्दे भगवतीं देवीं विपञ्चीनादकारिणीम् ।
तन्त्रीझंकृतयोगीनां चेतसं नौमि तां सदा।। ॐ ।।

विपञ्ची नामक वीणा का नाद करने वाली, योगियों के चित को तन्त्रीनाद की भांति झंकृत करने वाली भगवती को मैं प्रणाम करता हूं।

चक्रविद्या च या प्रोक्ता साधकानां हिताय च।
जायतां विपुलादिव्या बोधशोधविमण्डिता।।

साधकों के हित के लिए जो चक्रविद्या बताई गई है वह बोध और शोध से परिमण्डित होकर मेरे लिये अपूर्व दिव्या बन जावे।

तत्रैव शोधकार्यस्य प्रकरणे यन्निगद्यते।
तत्सर्वं मूलरूपेण उद्बुद्धं च भविष्यति।।

इस शोध कार्य के प्रकरण में जो कहा जाता है, वह सब मूलरूप में तुम्हारे सामने प्रकट हो जायेगा।

साम्प्रतं करणीयं यत् साधकेन सुखावहम् ।
महायोगरतेनैव तद् वदामि हितावहम् ।।

साधक को अब जो करणीय है और जिसके करने से सुख मिलेगा, उसी कल्याण-कारिणी बात को महायोग-साधक के लिये बता रहा हूं।

यच्चैव संवर्तते रूप मणिरूपं च पूरकम् ।

नानाविधं विधायैव शोधनं कस्यचित् क्वचित् ।।

मणिपूर का जो विभिन्न रूप नाना विध होता है, उसके शोधन के भी कभी-कभी नानाविध रुप हो जाते हैं।

कदाचित् क्वचिदेवं च भिन्नरूपेण तत्र वै।

भिन्ना भिन्ना क्रिया प्रोक्ता औषधं च पृथक् पृथक् ।।

इसलिये कभी कभी किन्हीं साधकों के लिये मणिपूर शोधन के लिये विभिन्न क्रियायें और औषधियाँ प्रकृति भेद से हुआ करती हैं।

सर्वेषां हितकामाय बोधनीयं च तत्त्वतः।

तेनैव तस्य शोधस्य क्रिया फलवती भवेत् ।।

सब की हितकामना के लिये सभी क्रियाओं और मुद्राओं का तत्त्व जान लेना चाहिये। जो जो तरीका अनुकूल पड़े वही क्रिया शोधन कार्य में फलवती रहेगी।

सर्वेषां सर्वभूतानां जनानां ज्ञानधारिणाम् ।

कृते यत् प्रोच्यते शास्त्रं तत्त्वं तस्य निबोधय।।

सब प्राणियों सभी ज्ञानधारी मानवों के लिए जो जो शास्त्र कहा जाता है उसका मर्म समझ लो। सभी बात सभी को लिये समान रूप से नहीं होती।

यथा क शब्दमात्रेण सुप्रयुक्तेन योजितम् ।

अभीष्टं फलते सद्यस्तद्वद् वै योगमार्गके।।

जैसे लोक में 'क' शब्द का प्रयोग करने पर अभीष्ट अर्थ की प्राप्ति होती है उसी भांति योग मार्ग में भी है।

परीक्षितं च ज्ञानं च अनुभूतं च तत्त्वतः।

तदैव फलसम्प्राप्तिर्नान्यथा निष्फलं भवेत् ।।

तत्त्वरूप में परीक्षित अनुभूत और ज्ञात बातों से ही फलप्राप्ति सदा हुआ करती है। अन्यथा सब निष्फल हो जाता है।

परीक्ष्य पूर्वं च निरीक्ष्य सम्यक् सम्यक् प्रकारेण च शोधमार्गे।

क्रिया च मुद्रा च महौषधं च सर्वं भृशं ज्ञानमयं कृतं च।।

प्रत्येक क्रिया और मुद्रा का पहले भलीभाँति निरीक्षण कर लेना चाहिये। इस शोधमार्ग में इस प्रकार बार-बार सुपरीक्षित ज्ञान प्राप्त कर लो।

पुनश्च तद्वै सुमहत्प्रयोगे कृत्वा पुनस्तत्त्व मवेक्षणीयम् ।

एवं कृते सारविभूषिते च सर्वा क्रिया सार्थवती भवेच्च।।

फिर उसी प्रकार के प्रयोग करते हुए बारबार निरीक्षण परीक्षण करते रहो। इस भाँति सभी क्रियायें सारवती और फलदायिनी वन जावेंगी।

सर्वं ज्ञात्वा सुकरप्रकारेण विभिन्न रूपेण विभिन्नयोगेषु भिन्न-भिन्न विधिना एवं मणिपूरस्य शोधनप्रकरणे मणिपूरस्य शोधनं कर्तव्यम् ।।

आसानी से सब कुछ समझ लेने पर विभिन्न प्रयोगों द्वारा विभिन्न उपायों द्वारा विभिन्न विधि से मणिपूरशोधन विधान के अन्तर्गत मणिपूर का शोधन किया जाता है।

यदा च अपरमपि परिज्ञानानुभूति वदामि तदपि सार्थवती भविष्यति।।

अब एक अन्य परखी हुई अनुभूति बताती हूँ, वह भी फलदायक होगी।

अपामार्गं समादाय मूलकं पिष्टपेषणम् ।

कृत्वा विलेपनं तस्य नाभिभागे सुनिश्चितम् ।।

अपामार्ग की जड़ लेकर उसे पीस लो। लेप बनाकर नाभि भाग में लेप कर दो।

एकदा एककाले वा साधनीया समाप्तिके।

शयनीये विशेषेण लाभस्तस्मात् प्रजायते।।

दिन में एक बार साधना समाप्ति के अनन्तर यह प्रयोग करना चाहिए और यदि शयनकाल में किया जाय तो लाभ अधिक होता है।

तस्य मूलस्य तत्त्वेन तत्त्वस्य शोधनं भवेत् ।

केवलं मणिपूरस्य नान्यत्र योज्यतांबुधैः।।

अपामार्ग की जड़ के तत्त्व से मणिपूर चक्र का शोधन हो जाता है। इसका प्रयोग केवल मणिपूर के शोधन में किया जाय। अन्यत्र इसका उपयोग न हो।

एकेन तेन मूलेन घर्षितेन सुमसृणकम् ।

लेपेन नाभिभागे च तत्त्वशुद्धिः प्रजायते।।

अपामार्ग की एक जड़ बारीक घिस कर नाभि भाग में लेप करने से तत्त्व शुद्धि हो जाती है।

यदि कश्चिन्नरः सर्वां क्रियां मुद्रां महौषधम् ।

कर्तुं च नैव शक्नोति अपमार्गं ततो भजेत् ।।

यदि कोई साधक सभी क्रियाओं और औषधियों को नहीं कर सकता है तो केवल अपामार्ग का यह प्रयोग ही पर्याप्त होगा।

सर्वप्रकृतिके लोके सर्वः सर्वहितंहि तत् ।

पूर्वापरत्वमादाय तत्त्वशुद्धिं करोति सः।।

नाना प्रकार की प्रकृति वाले मनुष्य से भरे इस लोक में सब के हित के लिये नाना प्रकार की वस्तुयें हैं। सब चीजों के पूर्वापरत्व प्राधान्य अप्राधान्य को लेकर तत्त्व शुद्धि की जाती है।

एतच्च सर्वं गदितं मया हि यत् श्रुतं कृतं बोधमयं च नीयते।

यदा जनानां हितकाम्यया तदा शुद्धिस्तु तत्त्वस्य सुनिश्चता भवेत् ।।

यह सब जो कुछ मैंने कहा है, उसे सुन करके, तथा बोधमय करलो। जब मानवों के कल्याण की इच्छा हो तो इन उपायों से अवश्य ही तत्त्व शुद्धि हो जायेगी।

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। तत्त्वशोध प्रकरण में जो मणिपूर का शोधन बताया जा रहा है, विभिन्न प्रकार से बताया जा रहा है। वह इसलिये बताया जा रहा है कि जो कुछ भी असुविधा अग्नितत्त्व के शोधन में होती है, वह सावधानी की वस्तु है। वह इतनी सावधानी की वस्तु है कि कोई समझ नहीं सकता। इसलिये उसे टेढ़ा भी कहा गया है, जटिल भी कहा गया है किन्तु महायोग के मार्ग में एक सीधी सी बात बताई जाती है। उसी के आधार पर समझ लेना चाहिये कि मणिपूर जैसे चक्र का शोधन भी चुटकी का खेल हो जाता है। मणिपूर जैसे चक्र के मार्ग पर चलना और उसका भेदन जैसे सरल हो गया था, क्या उसका शोधन सरल नहीं है ? होगा, होगा, किन्तु सावधानी से पैर रखने की आवश्यकता है। सीधा मार्ग जा रहा है। किन्तु मार्ग के दोनों ओर खाइयां हैं। चलो। सीधे। पैर रपट जायेगा तो इधर भी खाई उधर भी खाई। बचना कठिन हो जायेगा। इसलिये तुम्हारा पैर विचलित न हो, तुम्हें महाशक्ति आगे बढ़ाती चली जा रही है। सीधी बात, जब किसी बात से, किसी भी क्रिया से, किसी मुद्रा से ऐसा प्रतीत हो कि पाँच दिन के पश्चात् भी महाबल हं:, उस चक्र को भी कुछ नहीं हो रहा हो, या विशेष प्रकार के साधन में शंका, कुप्रवृत्ति वाले व्यक्तियों को, ऐसा भी कर लूं, वैसा भी कर लूं, सब छोड़ के उस वखत एक ध्यानावस्थित होकर अपामार्ग के मूल को लाकर के उसको

घिस करके, पिष्टपेषण करके मृदु मक्खन जैसा बनालो। चिकना नवनीत के समान बना लो और उसके पश्चात् जब साधना समाप्त कर लो, रात्रि में जब शयन करने जाओ तो पांच दिन पर्यन्त पूर्ण रूप से नाभि भाग में लेप कर दो। यह अपामार्ग का मूल पिष्टपेषण विलेपन मणिपूर के प्रकोष्ठतत्त्व को शोध देगा औ उसका लक्षण इस प्रकार से होगा। जब अपामार्ग के मूल का विलेपन किया जायेगा तो पहिले दिन कुछ ज्ञात नहीं होगा। ऐसा भी मालूम पड़ेगा कि क्यों लगाया होगा। दूसरे ही दिन ज्ञात होगा। शक्ति में विशेष संचार करेगा। एक प्रकार की विशेष अनुभूति नाभि देश से हृदय देश तक होगी। इसमें प्रतीत होगा कि शक्ति आ रही है। इसके पश्चात् तीसरे और चौथे दिन, अथवा व्यवधान होने पर ग्यारहवें दिन तक इन दोनों में स्वल्प मल कृष्ण (काले) रूप में निकल जायगा। तो समझ लेना कि मणिपूर शुद्ध हो गया है। यदि ऐसे में भी व्यवधान हो जाय तो तीन दिन और लगा लो, तो फिर ग्यारहवें दिन कृष्ण मल बाहर निकल जायेगा और साधक को उसकी मलशुद्धि का प्रत्यक्ष प्रमाण मिल जायेगा। इस प्रकार भी न कर सको तो एक दो बात और बतानी है। वह बताकर भी इस प्रकरण को थोड़ा मन्द कर दूंगा या बन्द कर दूंगा। ॐ ।।

४-२-६३ प्रातः काल ।।१३८।।

हरि ॐ तत् सत् ।।

या जागृता भगवती परमा परा च

या सर्वलोकहित कामनया च नद्धा।

या प्रस्फुटा स्फुरति या स्फुरिता च भूता

मूला च स्कन्धा विटपान्विता च।।

जो जागृता परमा परा भगवती समस्त लोकों की हितकामना में तत्पर रहती है और जो प्रस्फुट होकर स्फुरित होती है और कभी अस्फुरित ही रहती है, तथा मूल स्कन्ध और शाखाओं से अन्वित रहती है।

बोधस्य सर्वं परिबोधिका च सा मे सदा भगवती सुखमातनोतु।। ॐ ।।

सब प्रकारर के बोध को बताने वाली वह भगवती मुझे सदा हर्षित करती रहे।

ॐ महाशक्तिं तां चावाहयामि यया विना च न किञ्चिदपि कर्तुं शक्यते। नमामि तां महाशक्तिं सरस्वतीस्वरूपाम्, महालक्ष्मीस्वरूपिणीं तामेव सरस्वतीं धृतमहाकालिका विग्रहां मूलरूपेण एकत्वे समष्टिरूपेण समागतामेकामेवाचलां नित्यां सर्वव्यापिकां तां महाशक्तिं नमामि।। ॐ ।।

मैं उस महाशक्ति का आवाहन करता हूँ जिसके बिना कुछ भी नहीं किया जा सकता है। उस महाशक्ति को, जो महासरस्वती, महालक्ष्मी और महाकाली का रूप धारण करके मूलरूप से समष्टि रूप में सर्वव्यापिका होकर एक रूप में प्राप्त हो जाती है, मैं प्रणाम करता हूँ।

पूर्वं मणिपूर शोधन विधौ बहुप्रोक्तम् । औषधं, क्रियामुद्रा विशेषकृत्यं च। अधुना तु स्वल्परूपेण स्वल्पमेवाभाष्य स्वल्पस्वल्पं च संबोध्य अद्यैव क्रियौपधज्ञानं विधाय द्वितीय साधनकाले प्रकरणमेतत् परिसमाप्तिं गमिष्यति।। ॐ ।।

पहिले मणिपूर शोधन-विधि में बहुत कुछ बता दिया गया है। औषधियां, क्रियायें और मुद्रायें तथा विशेष कृत्य कहे गये हैं। अब स्वल्परूप में थोड़ा सा बचा खुचा बताकर आज ही क्रिया औषधि बताकर दूसरे दिन यह प्रकरण समाप्त।

एका मुद्रा[१८] च या शिष्टा अवशिष्टः च वर्तते।

भद्रिका भद्ररूपा च भद्रं भद्रं करोति सा।।

एक श्रेष्ठ मुद्रा जो बतानी शेष है, वह भद्रकारिणी भद्रिका मुद्रा है, जो सदा कल्याण करती है।

भद्रिका भद्ररूपा च भद्रं भद्रं करोति सा।

भद्रिका भद्ररूपा च भद्रकामार्थदायिनी।।

भद्रिका मुद्रा का रूप भी भद्र है और वह सदा भद्र ही करती है। भद्रिका भद्ररूपा होने के कारण कल्याणकारी कामनाओं को प्रदान करने वाली होती है।

भद्रा भगवतीमेकां मुद्रां कृतवती पुरा।

भद्रा या भद्रिका देवी तस्या मुद्रा च या मता।।

पुरातन काल में भद्रा भगवती ने एक मुद्रा लगाई थी। वही मुद्रा उसी भगवती के नाम से प्रसिद्धि में आई है।

सा मुद्रा भद्रिका प्रोक्ता भद्रभावं तनोतु सा।। ॐ ।।

भद्रिका शोभना मुद्रा सरला बहुलासदा।।

वह मुद्रा भद्रिका मुद्रा है वह सबको भद्रता प्रदान करें। भद्रिका मुद्रा बड़ी सरल है और बहुत लाभ प्रदान करती है।

तां मुद्रां च विधायैव मलसंशोधनं भवेत् ।

यस्य या कोमला वृत्तिः तामसेन विवर्जिता।।

उस मुद्रा को करके मलसंशोधन हो जाता है। जिस साधक की प्रकृति कोमल हो तथा तामसी आहार विहार न हो, उसके अनुकूल यह मुद्रा पड़ती है।

तेनैव साधकेनैतत् कर्तव्या भद्रिका शुभा।

यस्य च मणिपूरस्य स्वल्पशुद्धिः प्रतीयते।।

उसी कोमल प्रकृति वाले साधक को यह शुभ मुद्रा करनी चाहिये, जिसके मणिपूर चक्र की शुद्धि में स्वल्पता हो, मल स्वल्प हो।

तदर्थं भद्रिका मुद्रा करणीया क्वचित् क्वचित् ।

न च सर्वैः प्रयोक्तव्या न च सर्वहिताय च।।

ऐसे सात्विक प्रकृति के साधकों को यह मुद्रा करनी चाहिये, सभी को इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये, यह सबके अनुकूल नहीं पड़ती है।

तेषामेव च लोकानां सर्वेषां मृदुवृत्तिनाम् ।

एषा वृत्तिः सतोवृत्तिः कोमलापरूषाकृतिः।।

जो लोग मृदु वृत्ति वाले हैं, जिनकी वृत्ति सतोगुणी है और आकृति भी कोमल अकठोर है। (जैसे नारीजन अथवा नारीप्रकृति के पुरुष या सात्विक आहारी)

तदर्थं प्रोच्यते मुद्रा भद्रिका मृदुवाहिनी।

सरला शक्तिसम्पन्ना शीतला न च उष्णिका।।

मृदुस्वभाव वाली यह मुद्रा उन्हीं साधकों के लिये बताई जाती है। यह मुद्रा बड़ी सरल है, शक्ति सम्पन्न है, न तो शीतल है और न ही उष्ण है।

मध्या मध्यमभावा च मध्यमानां कृते च सा।

उत्तमानां कृते प्रोक्ता क्रिया औषधशक्तिकम् ।।

यह न अधिक कठिन न अधिक सरल है, मध्यमभाव की मुद्रा है। मध्यम वृत्ति के साधकों के लिये ही यह है, उत्तमों के लिये अन्य क्रिया और औषधियाँ हैं।

बज्राणां च कृते प्रोक्तंकूष्माण्डबीजकं तथा।

अपामार्गस्य मूलं च अपरं यच्च भाषितम् ।।

बज्रसाधकों के लिये कूष्माण्ड और उसके बीज बताये गये हैं। मध्य बज्रों के लिये अपामार्ग की जड़ बता दी गई है।

मध्यमानां कृते मुद्रा काचित् काचित् च प्रोच्यते।

औषधं चापि किञ्चिद् हि मध्यमा योजयन्तु वै।।

कुछ मुद्रा मध्यमों के लिये भी कही जा रही है और औषधि भी उनके लिये बताई जा रही है। मध्यम प्रकृति के लोग उसका सेवन कर लें।

एषा च भद्रिका मुद्रा मध्यमानां कृते स्मृता।

तस्मात् सर्वात्मभावेन भद्रिका भद्रकारिणी।।

केवल मध्यम प्रकृति के साधकों की यह मुद्रा है इसलिये यह उन्हीं को सर्वात्मभाव से मङ्गलकारिणी सिद्ध होगी।

प्रयोक्तव्या सदा तेन यश्च कोमलवृत्तिकः।

अग्रे मुद्रा क्रियाज्ञानं करणीयं न विद्यते।।

कोमल वृत्तिवाला साधक सदा इस मुद्रा का प्रयोग करता रहे। इसके बाद मणिपूर शोधन में किसी मुद्रा व औषधि का ज्ञान शेष नहीं रह जाता है।

औषधं स्वल्पमेकं च गोरक्षः कथयिष्यति।। ॐ ।।

एक छोटी सी औषधि गोरक्ष स्वयं बतायेंगे।

गोरक्ष ! गोरक्ष ! गोरक्ष !

गोरक्ष ! गोरक्ष ! गोरक्ष !

गोरखवाणी :- अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। मणिपूर शुद्धि बताई जा रही है। और विभिन्न प्रकार की मुद्रा क्रिया बता कर औषधि बताकर, उनका प्रयोग बता कर, और उन सबका एक प्रभाव बताकर यह कहा गया है कि किस प्रकार से इस चक्र की शुद्धि हो जाती है और फिर निर्मलत्व की प्राप्ति होती है। यहाँ से ज्योति का स्तम्भ प्रकाश फैलना शुरू होता है। इसलिये इसके शोधन के लिये सावधानी के साथ विभिन्न प्रकार की मुद्रा क्रिया औषधियाँ बता दी गई हैं। तो ऐसा बताया गया है कि तीन प्रकृति के साधक होते हैं। उत्तम प्रकृति के, मध्यम प्रकृति के और अधम प्रकृति के। तो ऐसा क्यों हो गया है। ऐसा संस्कारों के कारण होता है। देखो भाई। पात्र हैं, चिन्ता की बात नहीं है। जब तुमको जैसा पात्र दिया गया भर के ले आओ। छोटा सा कमण्डलु और बड़ा सा घट और एक छोटी सी हंडिया तीन चीजें दे दीं। और तीन व्यक्तियों को भेज दिया कि समुद्र से पानी भर कर लाओ। पर जिसके जितना पात्र होगा उतना ही तो लायेगा। पर दुबारा जब उसको बड़ा पात्र दिया जायेगा कहा जायेगा भर के ला, तो लायेगा। तो इसलिये भेद हो जाता है। संस्कार होते हैं। इसमें संस्कारों की तीव्रता और मन्दता होती है। यह कोई विशेष बात नहीं, होता सब को है। अरे बता रहे हैं, चल रहे हैं। कोई जरा जल्दी पहुंच जाता है, कोई जरा विलम्ब से पहुंच जाता है। कोई जरा विलम्ब से पहुंचता है। रूकता तो नहीं है। ऐसा करके सब की प्रकृति सोची गई और प्रत्येक साधक की प्रकृति के अनुकूल ही औषधि और क्रिया मुद्रायें बताई गई हैं। भेद इतना ही है कि औरतों का और सर्वसाधारण का। किन्तु दो और तीन चीजें भेद कर दी गई हैं। महाबज्रों के लिये तो अपमार्ग की जड़ बता दी गई है और

मध्य कोटि के वज्रों के लिये कूष्माण्ड बीज बता दिये गये हैं। और उससे भी जरा मध्य के कोमल वृत्ति के हैं उनके लिये भद्रिका बता दी गई है। तो भाई इस प्रकार इनका प्रयोग कर लेना। ज्ञात कर लेना। अब भद्रिका मुद्रा इसलिये बताई गई है कि जिनके मणिपूर में स्वल्प मल हो और जिनकी प्रकृति कोमल हो, तामसी प्रकृति के अधिक न हो, उनको भद्रिका मुद्रा लाभदायक होगी, इसलिये बताया जाता है। सभी प्रकार से समझाया जाता है। सभी प्रकार के साधकों को बढ़ाया जाता है, कोई रह न जाय, और फिर शास्त्र की मर्यादा टूटने न पाय। वह भी ध्यान रखना ही है। इसलिये जान लो समझ लो। भाई ! भद्रिका भी अच्छी मुद्रा है। इसका प्रयोग कैसे होगा, यह भी जान लेना चाहिये। यह सरला मुद्रा है। जरा सी देर की बात है।

जरा यों सीधे लेट जाओ। यों लेट जाओ, और इसको (पैर को) वहाँ तक रख लो जहाँ तक जा सके। यों यों यों (लम्बा) कर लेना पैर को आसन बाँध कर स्थायी कर लेना और दूसरे पैर को भी स्थायी कर लेना। फिर मुट्ठी बाँधना, अंगूठा बन्द करना। रेचक, पूरक, कुम्भक करो और कुम्भक की स्थिति में जो पैर बाँधे थे उनको पद्मासन के रूप में ही ऊपर उठा कर पेट की तरफ झुकना। अधिक न झुकना। दोनों कूल्हें पकड़ लो और टिका लो हाथों पर, जोर कुहनियों पर देना। भार उसी पर टिका रहेगा। कोहनियों पर जोर डाल दो। पिण्डलियों के भाग पर ध्यान जमा कर इष्ट मन्त्र का जाप करो। भद्रिका भद्रं करोति। ऐसा कहा गया है। तो प्रकृति समझ लेना और मल की भी कमी समझ लेना। भद्रिका लगा जाना तो बीच के साधक भी अच्छी तरह चल पड़ेंगे। और कर्मसिद्धि हो जायेगी। यह भी न कर सको तो लो, एक दो बातें और बतानी हैं, वह बता कर भी यह प्रकरण बन्द कर दूंगा।

हरि ॐ तत् सत् ।

आधृतज्ञानपरिमलासारां मालाकुलाधाराम् ।

सारां तारसाराङ्कितांशुहारां निखिलभुवनविरचितां ताम्
सुव्यापिकां वन्दे।।

ज्ञान की सुगन्धि का सार धारण किये हुए, निखिल भुवन की सृष्टि करने वाली उस सर्वव्यापिनी सारभूता भगवती को मैं प्रणाम करता हूँ।

चक्रविद्याधिगमसमानाधिकरणे तत्त्वशोधनप्रकरणे तत्त्वशोधप्रज्ञानं यत् प्रोक्तं तत्र सर्वं सुकरं सुफलदायकं च। सावशिष्टं मणिपूरशोधनविधौ एकं महौषधं पुनरपि प्रकटरूपेण पुरतः उपस्थाप्यते।। ॐ ।।

चक्र विद्या समानाधिकरण के तत्वशोधन प्रकरण में जो तत्वशोधन का प्रज्ञान कहा गया है वह सब बहुत सुकर, सरल और लाभदायक है। मणिपूर शोधन विधि में फिर भी एक बची हुई औषधि तुम्हारे सम्मुख प्रस्तुत की जाती है।

भुक्ताल्परूपेण च वंशजातं शुभ्रं यथा तच्च स्वयं स्वरूपे।

तद्वद् विधायैव करोति शुभ्रं तत्पूरकं तन्मलहीनकं च।।

जानाति यो तत्त्वमिदं महत्त्वं तस्यैव सिद्धिः शुभदा च ज्ञेया।।

बाँस से उत्पन्न वंशलोचन जो स्वरूप में शुभ्र है उसे अल्प मात्रा में भक्षण करने पर अपने अल्प रूप के ही समान साधक को मलहीन बनाकर शुभ्र करा देता है।

वंश लोचन के इस महत्त्वपूर्ण तत्त्व को जो समझ लेता है उसे शुभ सिद्धि मिल जाती है।

शुभ्रत्वं विधिवत् ज्ञेयं युतभावेन योजितम् ।

वंशजं योत्वरुपेण कीचकात् जन्मसम्भृतम् ।।

इसके कण घनीभूत होकर सटे रहते हैं और यह वर्ण में बहुत शुभ्र होता है। योत्व भी इसे कहते हैं। बाँस के भीतर इसका जन्म होता है, इसे वंशज भी कहते हैं।

तदैव स्वल्परूपेण भुक्त्वा सद्यस्तु साधकः।

अवशिष्टं मलं तत्र मणिपूरक संस्थितम् ।।

विदूरं कुरूते तस्मात् वंशजं सेवनीयकम् ।

अतः परंच सन्निष्टं शेषं नैव च विद्यते।।

साधक स्वल्पमात्रा में इसका भक्षण जब करता है तभी शीघ्र मणिपूर में जमा हुआ अवशिष्ट मल भी दूर हो जाता है।

इसलिये इस वंशलोचन का सेवन कर लेना चाहिए। इसके पश्चात् फिर मणिपूर में मल शेष नहीं रह जाता है।

मणिपूरं च संशोध्य अग्रे गच्छेत् सुयोगवित् ।

हृच्चक्रंप्रोच्यते यच्च वायुतत्त्वविशेषकम् ।।

मणिपूर का शोधन करके योगी साधक आगे बढ़ता रहे। अब वायुतत्त्व की प्रधानता वाला हृदयचक्र बताया जाता है।

वायुना पूरितं तच्च प्राणानां रोधकं हि तत् ।

हृच्चक्रंच यत् प्रोक्तंचक्रंचक्राङ्कितं स्वयम् ।।

हृदयचक्र वायु से पूर्ण है और प्राण यहीं पर टिके रहते हैं। यह हृदय चक्र स्वयं ही अर्क (अनाहत/हृदय) के नाम से प्रसिद्ध है।

तत्रैव वायुशोधार्थं विशिष्टं नैव विद्यते।

अनुद्भूता च या नित्या सा चक्र शोधिका क्रिया।।

इसमें वायु तत्त्व के शोधन के लिये कोई विशिष्ट बात नहीं है। यह चक्र नित्य ही स्वतः शुद्ध ही रहता है, कोई नई क्रिया इसके लिये नहीं है।

तत्रैव मध्यरुपेण सर्वरोधं करोति सा।

एवं कृत्वा हि तच्चक्रं शुद्धिमापादयेत् बुधः।।

जागृता शक्ति स्वयं ही मध्यम रूप से वायु का निरोध कर देती है तो यह चक्र प्राणायाम से शुद्ध हो जाता है।

प्रतिपादित शुद्धिस्तु हृच्चक्रं निर्मलं भवेत् ।

तदर्थमौषधं प्रोक्तं वायुतत्त्वविशेषिका।।

योग के अन्य चक्रों की शुद्धि कर लेने पर और नाड़ी शोधन कर लेने पर यह चक्र स्वयं निर्मल हो जाता है। कोई औषधि भी इसके लिये नहीं है।

तत्र नास्ति परा मुद्रा[१९] एका एव सुसाधिका।

हिरण्यमुद्रा सा प्रोक्ता हिरण्यधनुनामकात् ।।

केवल एक ही सुन्दर मुद्रा हृदय चक्र के शोधन के लिए कही गई है। उसे हिरण्य मुद्र कहते हैं जिसे हिरण्यधनु, नामक राजा ने लगाया था।

नृपात्तस्यैव समायाता हिरण्या हि हिरण्यका।

सा मुद्रा स्वल्पभावेन वायुतत्त्वस्य शोधिका।।

उन्हीं के नाम से यह प्रचलित हुई है। अतः इसे हिरण्या या हिरण्यका भी कहते हैं। यह मुद्रा धीरे-धीरे वायुतत्त्व का शोधन कर देती है।

तत्र चास्ति मलं न्यूनं सर्वेषां देहधारिणाम् ।

अतस्तच्छोधनं न्यूनं मुद्रा या च हिरण्यका।।

सभी देहधारियों के हृदय-चक्र में मल स्वाभावतः न्यून रहता है। अतः इसका शोधन भी न्यून ही है और उसके लिये हिरण्य मुद्रा है।

तस्यास्तु योग संयोगं प्रयोगं पुरतस्तव।

गोरक्षः स्वल्परूपेण स्वल्पमेव तदा स्वयम् ।।

दर्शयिष्यति तां मुद्रां तस्यास्त्वनुभवं कुरू।।

उसका प्रयोग तुम्हारे सामने आसानी से गोरक्ष स्वयं बता देंगे। उस मुद्रा को गोरक्ष करके दिखायेंगे, तुम उसका अनुभव कर लो।

हिरण्यमुद्रा परमा शुभामता सारा च मुद्रा इति प्रोच्यते कैः।

तस्मात्समाधाय च शुद्धिकाले हृच्च क्रतत्वे शुभमादधारकः।।

हिरण्य मुद्रा बड़ी उत्तम और श्रेष्ठ है। इसलिये हृच्चक्र की शुद्धि के समय सावधान होकर इस मुद्रा को करके शुभ लाभ प्राप्त कर लो।

चक्रादनाहतादूर्ध्वं विशुद्धं कण्ठचक्रकम् ।

विशुद्धचक्रं यत् प्रोक्तं शून्यं तत्र विराजते।।

अनाहत चक्र के ऊपर कण्ठस्थानीय विशुद्ध चक्र है। जो विशुद्ध चक्र है, उसमें आकाश तत्त्व विराजमान है।

आकाशतत्त्वं च विराजते भृशं नीलाम्बरं नीलसुशोधिकायुतम् ।

यन्नील कण्ठारिवलनीतिकान्तां आकाशशुद्धिं प्रवदन्ति सन्तः।।

इसमें पूर्ण आकाशतत्त्व विराजमान है, नीला, आकाश, स्वच्छ सुशोभन आकाश, नीलकण्ठ शंकर के कण्ठ की भाँति आकाश है। आकाश शुद्धि स्वतः निरपेक्ष्य है।

आकाशतत्त्वस्य या शुद्धि निर्मलता च प्रोच्यते सा केनापि कर्तुं शक्यते। तत्र न किमपि करणीयं भवति। तत्र नौषधं स्वभावजं जायते। न च कापि विशिष्टमुद्रा प्रभावसम्पादिका भवति। तत्र यदि कदाचित् कदाचित्

मूलसम्भूतिः तदा कण्ठसंकुचनं कर्तव्यम् । पुनः पुनः कण्ठाकुञ्चनं कृत्वा मलग्रन्थिका विधेया। तच्च विशुद्धस्य स्वयमेव जायते।। ॐ ।।

निर्मल आकाशतत्व की शुद्धि कोई भी आसानी से कर सकता है। इसमें कुछ करना नहीं होता है, कोई औषधि भी नहीं है, कोई विशिष्ट मुद्रा भी नहीं है। यदि कभी उसमें मलिनता प्रतीत हो तो कण्ठ संकोच कर लेना चाहिये। बार बार कण्ठ संकोचन करके गाँठ-सी बांधनी चाहिये। साधक को ऐसा स्वयं ही होता रहता है।

इति चक्रविद्याधिगम समानाधिकरणे तत्त्वशोधप्रज्ञानप्रकरणपरिपूरक समाप्ति पूर्वकं एतत् स्वयं सरस्वत्या समाख्यातं, जितेन्द्र-भारतीयस्य मुखात् तत् साधकानां हिताय कल्याणाय च जायताम् । एतत्तु सर्वं सफलं भवतु।।

यहां पर चक्रविद्या समानाधिकरण के अन्तर्गत तत्वशोधनप्रज्ञान की र्ण समाप्ति पूर्वक जो कहा गया है, वह स्वयं साक्षात् सरस्वती ने जितेन्द्र भारती के मुख से साधकों के कल्याण व हित के लिये कहा है और इसके द्वारा साधकों को सफलता प्राप्त हो।

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन।। ॐ।। मणिपूर चक्र के शोधन में विभिन्न प्रकार की मुद्रा, क्रिया और ज्ञान देकर अनुभव के लिये भी सब कुछ बता दिया गया। लक्षणों से भी परिचित करा दिया गया और इसके पश्चात् कोई भी ऐसी बात असम्भव नहीं है, जो मणिपूर की शुद्धि न हो सके, किन्तु कदाचित् कुछ अवशिष्ट भी रह जाय, रहना तो नहीं चाहिये। ऐसी स्थिति में जिसको वंशज कहते हैं, कीचकज कहते हैं, योत्व कहते हैं, वंशलोचन जिसको कहते हैं, वह जिस प्रकार शुभ्र वर्ण का होता है, उसी प्रकार मणिपूर के उस अग्नितत्त्व में मिलकर वहां भी जो मलकण छूट गये होंगे, उन्हें भी शुद्ध रूप में परिवर्तित कर देता है। तो जब ऐसी स्थिति आ जाय, कुछ मल प्रतीत हो, सम्भवतः शंकाकुल चित्त हो जाय कि कुछ बचा खुचा रह गया है, शंका से पिण्ड नहीं छूटा होगा, तो भाई ! थोड़ा सा एक डली दो डली वंशलोचन खा लेना। सो भी केवल तीन दिन खाना। बस, समझ लो कि अब कोई मल नहीं रह गया। शंका न करना। पर कैसे मालूम पड़ेगा कि नहीं रह गया। जब वंशलोचन के सेवन की समाप्ति होगी, श्वेत मल त्याग होगा और मलत्याग के पश्चात् ऊपर में कुछ उष्णता की प्रतीति होगी। समझ लेना काम बन गया है।

इसके पश्चात् जो हृत चक्र है उसमें वायुतत्त्व की प्रधानता है तो उसका संशोधन करने के लिए, उसको निर्मल करने के लिये औषधि का प्रयोग नहीं है और न कठिन क्रिया प्रयोग में लाने वाली यहां तक कोई ऐसी प्रक्रिया मुद्रा है। केवल एक हिरण्य मुद्रा है। अरे ! उसे हिरण्य धनु नाम के नृपति ने अपनाया था। वह पूर्व में बहुत कलुषित चित्त का था तो उसने और कुछ नहीं किया। हिरण्य मुद्रा को लगा करके सब शुद्ध कर लिया। चित्त शुद्धि हो गई तो हृच्चक्र शुद्ध हो गया, उस चक्र का चित्त शुद्धि से विशिष्ट सम्बन्ध है, होने दो, तुम स्वयं समझो, तुमको क्या हो रहा है। अपने इस चक्र की शुद्धि जल्दी से कर लो। तो देखो भाई !

वह मुद्रा यह है, इस तरह से लगा... चाहिये तो इस प्रकार से बनाई जा रही है, जैसे आसन लगा। फिर आधा ... काल के लिये यों कर लो। (पैर फैला कर अंगूठे पकड़ लो)। फिर थोड़ा देर यों ही अंगूठे पकड़े रहना। अंगूठे यों पकड़ने के पश्चात् फिर छोड़ देना। यों हो जाना, यों आकर यों कर लेना। अगर यों न आय, अर्थात् जंघाभाग के ऊपर पूरा चरणतल न आ सके तो उसको यों कर लेना, फिर चरणतल को यों करके यों हो जाना और फिर चरणतल को यों करके यों हो जाना। जानुभाग को यों कर लेना। अर्थात् जो पुतली का भाग है, वह जानु पर लगा रहेगा। फिर रेचक पूरक कुम्भक कर लेना। वक्षःस्थल के मध्यभाग का जरा सा दबाव रहे। थोड़ा सा जाये नहीं। उससे नीचे जो पिण्डली का भाग है उस पर तनाव पड़ेगा। वहां से जो एक नाड़ी गई है जिसे यूथिका कहते हैं, वह नीचे के भाग तक मणिपूर से आकर, फुरफुराती, यों करती रहती है। यों हो जाती है जैसे अंगुली चालन होता है। इधर उधर, इधर उधर। तो यों कर देने से उसके दबाव से जरा इधर उधर की अपेक्षा स्पन्दन सा हो जायेगा। यह स्पन्दन जितना बढ़ सके बढ़ा लो। शुद्धि हो जायेगी। यहां से स्पन्दन का परिचय मिलना आरम्भ हो जायेगा और फिर बहुत कुछ हो सकता है। इस प्रकार इसको कर लेना। सरल समझ कर छोड़ना नहीं और इसके पश्चात् जो कण्ठ चक्र कहा है।

कण्ठ चक्र में आकाश तत्त्व है। स्वतः निर्मलत्व का विषय है। इसी कण्ठ विजय के कारण शिव को नीलकण्ठ कहा गया है। फिर भी वह नीलकण्ठ है, समस्त नीचे और ऊपर के तत्त्वों से मल को उतार सकता है और आकाश में उनको घुमा देता है। तो उसमें निर्मलत्व आ जाता है और यह निर्मलत्व विशुद्धि की घोषणा की सिद्धि है। तो उस शुद्धि के लिये थोड़ा सा और निर्मल करने के लिए, चमक लाने के लिये कण्ठाकुंचन बार बार कर लो, अभ्यास को, यों कर लेना। तो इस प्रकार से आकाशतत्त्व का शोधन शनैः शनैः होता रहेगा और फिर इसके पश्चात् कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। ये जितनी भी क्रिया मुद्रा औषधि तत्त्व-शोधन के लिये इस तत्त्व शोध प्रकरण में बताई गई हैं, उनकी अनिवार्यता नहीं है। जब जैसा समझो वैसा करना, और करना क्या, लगे रहो तो होता ही है। अभ्यास जरूर थोड़ा कर लेना। और फिर अपने आप चलना। और कोई कष्ट की बात नहीं रह जायेगी।। ॐ ।।

तत्वज्ञान शोधन प्रज्ञान प्रकरण में तत्वशोधप्रकरण गोरक्ष की वाणी में जितेन्द्र भारतीय के मुख से अब बन्द।। ॐ ।।

५-२-६३ प्रातःकाल ।।१४०।।

हरि ॐ तत् सत् ।।

कल्याणं विदधातु सा भगवती या शक्ति सन्दायिनी,
या देवी बहुविघ्ननाशनकरी विघ्नांश्च या सारयेत् ।
सा देवी बिपुला असाध्यसुलभा बोधान्विता बोधिका,
सर्वेषां विदधातु संतत मुदं सा सर्वदा मङ्गला।। ॐ ।।

मङ्गलमुदमातनोतु सर्वत्र सुसाधकानां कृते व्याघातव्यपोहनं कृत्वा सर्वं विक्षेपं व्यपोहति तदैव मङ्गल मलं भवति।।

जो देवी शक्ति प्रदायिनी है वह भगवती कल्याण करे। बड़े बड़े विघ्नों को नाश करने वाली देवी विघ्नों को दूर करे। असाध्य को भी सुलभ कर देने वाली बोधदायिनी विपुला देवी सभी को मङ्गल प्रदान करे और निरन्तर हर्ष प्रदान करे।

अच्छे साधकों का सदा सर्वत्र मङ्गल मोद प्रदान करे, व्याघातों को दूर करके विक्षेप दूर करेंगे तभी मङ्गल होता है।

विघ्नानि सन्ति बहवो विघ्नद्वयमेव केवलं विघ्नम् ।
एकं मलविक्षेपकं प्रोक्तं चित्तप्रकर्षमं परम् ।।

यो तो विघ्न बहुत से हैं प्रधानतया दो ही विघ्न हैं। एक मलविक्षेप है और दूसरा चित्त की चञ्चलता है।

विघ्नद्वयविनाशाय प्रोक्तं पूर्वं भृशं भृशम् ।
अधुना संहतिस्तेषां विघ्नानां प्रोच्यतेध्रुवा।।

विघ्न विनाश के लिये पहिले भी बहुत कुछ कह दिया है, अब यहाँ पर उन सब का एकत्र संग्रह करके कहा जा रहा है।

अथ चक्रविद्यायां व्याघातसंहतिप्रकरणं साधकानां हिताय कल्याणाय भावितात्मकानां च कृते विघ्नापसारणं व्याघातविक्षेप विनाशकं यत्किंचिदपि मन्त्रौषधिव्यूहकंसिद्धं दिव्यं समागतं तत् प्रोच्यते।। ॐ ।।

अब चक्रविद्या के अन्तर्गत व्याघातसंहति प्रकरण साधकों के हित और कल्याण के लिये और आत्मानुभव वाले साधकों के विघ्नों को दूर करने के अर्थ कुछ विक्षेप विनाशक सिद्ध दिव्य मन्त्रौषधि बताई जा रही है।

शरीरजान् विघ्नान् विनाशयति महौषधिप्रयोगः। बोधपरिकृतान् विनाशयति मुद्राक्रिया प्रयोगः। अपरं सकलमपि-समागतं समुद्भूतं व्याघातं विनाशयति मन्त्रौषधिप्रयोगः। तत्र च रूपेण योगसाधने किमपि केनापि प्रकारेण समागतानां विघ्नानां विनाशाय व्याघातसंहतिप्रकरणे उपाय अभिधीयते।।

महौषधियों का प्रयोग शरीरज विघ्नों को नष्ट करता है। मुद्रा-क्रियाओं का प्रयोग बोध के प्रतिकूल विघ्नों को हटाता है। मन्त्रौषधि का प्रयोग अन्यान्य सभी आनेवाले विघ्नों को दूर करता है। योग साधन में किसी भी प्रकार किसी भी कारण से उपस्थित होने वाले विघ्नों के विनाश के लिये व्याघात संहति प्रकरण में उपाय बताया जा रहा है।

वितरतु मुदमेतद् लोकलोकाः विशोकाः।
सुखपरिपुलकास्ते जायतां लोकभावाः।।
वितरतु भुवि एतद् योगविद्यार्थशास्त्रम् ।
सकलजनमुदर्थं जायतां योगविद्या।।

यह शास्त्र साधकों को हर्षित करे। संसार के सभी लोक शोक-विहीन बने। लोक में सभी जन सुख से पुलकित बने। यह योगविद्या का शास्त्र संसार में कल्याण की वृष्टि करे। यह योगविद्या सकल जनों के मोद के लिये हो।

अस्मिन् प्रकरणे यत् किंचिदपि वाणीविषयतामुपनीयते तत्र त्रिविधं विघ्नापसरणं पूर्वं निगद्यते। व्याघातापत्तेः मार्गरोधः मार्गावरोधात्गतिविच्छेदः। गतिविच्छेदात् इष्टलाभफलप्रतिबन्धः। इष्टलाभप्रतिबन्धात् शक्तिसंचरणमनुद्बुद्धम् । अनुद्बुद्धशक्तिसंचरणात् तत्रैव स्थिरत्वाच्च पुनस्तद्बोधनं, उद्भावनं उद्धमनं, ऊर्ध्वगमनं वा न भवति। तत्र गतिविच्छेदो स्यात् इति।।

इस प्रकरण में जिन बातों को वाणी दी जायेगी उस में सर्व प्रथम विघ्नाप्रसारण कहा जायेगा। व्याघात आने से मार्गरोध होता है। मार्गरोध से गतिविच्छेद हो जाता है। गतिविच्छेद से इष्ट लाभ में प्रतिबन्ध हो जाता है। इष्ट लाभ के प्रतिबन्ध से शक्ति संचार में रूकावट आती है। उस रूकावट से वहीं स्थिरता रहती है। स्थिरता से फिर से उद्बोधन ऊर्ध्वगमन नहीं होता है। वहाँ गतिविच्छेदन नहीं होना चाहिये।

शक्तिः संचारस्तु तीव्रतया अग्रे प्रसरतु शक्ति संचरणकाले शक्तिः विशेषबलवती फलवती आनन्दमयी च भवतु। अतः विक्षेपनिःसारणं कर्तव्यम्। व्यघातसंहरश्च विधेयः। यावन्न व्याघातसंहारस्तावत् नेष्टलाभः। अतः साधकाः

स्वमार्गे आपतितानां विघ्नानां संहाराय उद्यताः भवन्तु। यदा भगवती महामाया सा जागृता शक्तिः संचरति, तामेवानुद्भावयितुं बहुशो विघ्नयूथकाः समायान्ति।

शक्ति संचार तीव्रता से आगे बढ़े। शक्ति संचार काल में शक्ति विशेष रूप में बलवती फलवती और आनन्दमयी बने। इस निमित्त विघ्न निःसारण करना चाहिये। व्याघातसंहार भी करना चाहिये, जब तक व्याघात-संहार नहीं होता तब तक इष्ट लाभ भी नहीं होता है। अतः साधक अपने मार्ग में आने वाले विघ्नों के संहार के लिये उद्यत रहे। जब महामाया भगवती शक्ति जागृता होती है तो उसके संचार को रोकने के लिये बहुत से विघ्न आ जाते हैं।

विक्षेपाः मानसिकाः शारीरिकाश्च बुद्धिजाः वा प्रादुर्भवन्ति। तदैव तेषां व्याघातानांसंहाराय अस्मिन् प्रकरणे मन्त्रौषधिप्रयोगरूपेण बहुलाभप्रदं विशिष्टं गुप्तं च तत्तत्संचारं सारं च निगद्यते।। ॐ ।।

ये विक्षेप मानसिक होते हैं, शारीरिक होते हैं या बुद्धिज होते हैं। तभी उन व्याघातों के संहार के लिये इस प्रकरण में मन्त्रौषधि प्रयोग रूप से बहुलाभप्रद विशिष्ट और गुप्त तत्त्व संचार सार रूप में बताया जा रहा है।

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन।। ॐ।। इस योग, महायोग, शक्ति प्रयोग के विशेष मार्ग में आरम्भ से ही बताया गया था कि साधक की शक्ति जब उद्बोधन हो जाता है, चलने लगती है, तो विभिन्न प्रकार के व्यपधान उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे कुछ काल के लिये बहती हुई नदी की प्रबल धारा में कोई कोई पर्वतखण्ड आ जाता है तो कुछ काल के लिए उसका अवरोध होता है, रूक जाती है वह धारा जब तक और अपने अन्तर्गत और शक्ति लायेगी तब तो उसे तोड़ कर ही बहा लेगी, किन्तु यदि उसके प्रथम ही ऐसा भी उपाय हो जाय कि उस पर्वत खण्ड को दूर कर दिया जाय तो धारा अपने पूर्ण प्रवाह रूप में बहती चली जायेगी। यही समझना चाहिये कि व्याघात कई प्रकार के आ सकते हैं, शारीरिक व्याघात हैं, मानसिक व्याघात हैं, चित्तज व्याघात हैं, बुद्धिज व्याघात हैं और उसके पश्चात् भी भौतिक व्याघात हैं। इधर उधर से अन्य भी व्याघात आ जाते हैं कि शक्ति का अवरोध कर देते हैं। तो अन्य प्रकरणों में तो जहाँ कोई अन्य बाधा आ जाती थी, वहाँ क्रिया मुद्रा और औषधि प्रयोग से उसे दूर कर लिया जाता था। यहाँ पर भी अब अन्त में सबका सार सार निचोड़ निचोड़ रूप में बताया जा रहा है कि भाई, पहिले से लेकर आखिर तक आदि से लेकर अन्त तक फिर एक बार देख लो, सोच लो, कहीं पर कुछ अटक तो नहीं रह गई है और जब कभी चलते चलते शक्ति में तीव्रता आ जायेगी, बढ़ जायेगी, तो उस प्रकार यहाँ पर भी यह व्याघात संहति प्रकरण का प्रयोग अपना प्रभाव दिखा देगा और जब साधना काल में लगे हो तो, जैसे आत्मबोध के लिये बताया, तत्त्वशोधन के लिये बताया तो उन सब में फिर किसी प्रकार से व्याघात न आ जाय, कवच दृढ़ हो जाय, तो इसलिये इस प्रकरण में कुछ मन्त्र कुछ औषधि और कुछ ऐसे भी प्रयोग बताये जायेंगे जिनके कारण सब प्रकार के व्याघात दूर हो जायेंगे और यह योगमार्ग सरल सुलभ हो जायेगा। साधकों की धारणा दृढ़ बलवती होगी और उसको पुष्ट करने के लिये ये थोड़ी बहुत चमत्कारी बातें भी बता देना चाहिये। और जिनके अपनाने से शीघ्रातिशीघ्र लाभ होता है, तो फिर जो है उसका प्रयोग भी बताना जरूरी था। वह इस व्याघात संहति प्रकरण में बताया जायेगा। जिससे महामाया भगवती शक्ति के अवरोध करने वाली कोई शक्ति ही नहीं रहेगी। स्थिरता ही स्थिरता बनी रहेगी और साधक अपने गन्तव्य स्थल तक जा सकेगा। विशेष इसमें ध्यान देने की बात एक है कि प्रयोग पर ही सब कुछ निर्भर है। जैसा यथाविधि प्रयोग हो जाने से कार्यसिद्धि होती है। इसलिये इसमें प्रयोगों का भी विशेष प्राधान्य रहेगा और इस प्रकरण को प्रारम्भ किया जायेगा। यह चक्रविद्या का तृतीय व्याघात संहतिप्रकरण कहा गया है जिसमें जनकल्याण, साधक के कल्याण के लिये, सर्व-कल्याण के लिये, विशेष तत्त्व की चमत्कार की बातें बताई जायेगी।। ॐ ।।

५-२-६३ सायंकाल।।१४१।।

ज्योतिर्मयिं प्रकटितांशुसुहारहारां दिव्यां
महौषधिगुणान्वितदिव्यभाराम् ।
आनन्ददान-निपुणां च विभूषिताङ्गीं तां दिव्यभूषणवतीं च
नमामि दिव्याम् ।।

ज्योतिर्मयी, सुन्दर हार की किरणों से सुशोभित महौषधि के गुणों के दिव्य भार को लिये हुए, आनन्द प्रदान में निपुण, दिव्य विभूषणों वाली, विभूषित अङ्गों से समन्वित दिव्य भगवती को मैं प्रणाम करता हूं।

आदाय एकेन महौषधं च हस्तेन चान्येन परत्वतत्त्वम् ।
सा सन्नता भगवती सहिता सुविज्ञा मुद्रा क्रिया पटुपटान्त बहुत्वज्ञाना।। ॐ ।।

एक हाथ में महौषधि धारण करके और दूसरे में सर्वश्रेष्ठ तत्त्व को लेकर जो भगवती झुकी हुई है, मुद्रा और क्रिया में परम प्रवीण है, तथा अनन्त प्रकार का ज्ञान रखती है, वह भगवती मन को विमल कर दे।

या निर्मला मलवहिष्कृत नान्तरूपं धृत्वा करोति विमलं मनुजं सदैव।
सा साधकाहितपरा वरणीयवृत्तिः सद्यस्तु मे भगवती करूणा करोतु ।। ॐ ।।

जो निर्मला भगवती मल के बहिष्कार से अनन्तरूप धारण करके मनुष्य को सदैव विमल कर देती है, वह साधक के हित की धारणा करती हुई भगवती मेरे ऊपर करूणा करे।

अस्मिन् व्याघात संहति प्रकरणे पूर्वं शरीरजं दोषविनिवृत्ति कारकं औषधं, दिव्यं धृतदिव्यशक्तिकं वदामि तत्, यत् सर्वदा साधकानां विघ्नविनाशाय अतुलं बलं विदधाति।।

इस व्याघात संहति प्रकरण में पहिले शरीरज दोषों की निवृत्ति करने वाली दिव्यशक्तिवाली दिव्य औषध बताती हूं जो साधकों के विघ्न विनाश के लिये अनन्त बल देती है।

साधकाः साधनाकाले भवन्तु विघ्नमुक्तिकाः।

अपसर्पन्तु ते विघ्नाः ये योगे क्षतिकारकाः।।

साधक साधनाकाल में विघ्नों से दूर रहें। योग में क्षति करने वाले वे विघ्न बिलकुल हट जावें।

अत एव इदं दिव्यं औषधं परमाद्भुतम् ।

अश्वीकुमार पार्श्वाच्च आगतं तच्च दीयते।।

इसी उद्देश्य से अश्विनी कुमारों से उपलब्ध इस परमाद्भुत इस दिव्य औषध शास्त्र को सुझे दिया जा रहा है।

सदा वै साधनाकाले योगिनां योगवेदिनाम् ।

भवन्ति यत्र वै विघ्ना औषधं तत्र कारणम् ।।

जब योगज्ञाता योगियों के साधनाकाल में विघ्न आते हैं तो उन्हें दूर हटाने के लिये औषधि कारण बनती है।

जायन्ते विघ्ननाशाय तस्मात्तत् कथ्यतेऽधुना।

इसलिये सम्प्रति विघ्ननाश के लिये बताया जा रहा है।

यदा ग्रीष्मे काले प्रभवति तदेकं विपुलकम् ।

तथा वा यत् रूक्षं तदपि परिव्यापोहन कृतम् ।।

परं दिव्यं एकं विपुल-हित-चिन्तोदयमयम् ।

मया एतत् शुद्धं बलयुतमथाभाषितमलम् ।।

ग्रीष्म काल के आने पर एक बड़ी सुन्दर चीज का प्रयोग बता रही हूं। उसे थोड़ी मात्रा में सुखाकर कूटकर ग्रहण करो। विपुलबल देने वाला है, बहुत हितकामना से यह चीज आई है।

ग्रीष्मकाले समायाते दाडिमी बीज चूर्णकम् ।

त्वचादि सहितं सर्वं एक रूपं च कारयेत् ।।

ग्रीष्म काल के आने पर सूखे दाड़िम के बीजों का चूर्ण छिलके सहित एक साथ बना कर रख लो।

श्रृङ्गीवेर रसेनैव मधुना सह भक्षयेत् ।

तेन भक्षण मात्रेण कफनाशो भविष्यति।।

फिर उसमें श्रृङ्गवेर का रस मिला लो और मधु मिला कर चाट जाओ। उसके भक्षण मात्र से कफनाश हो जायगा।

यदि वा पित्तसंवृद्धि जायते च शरीरके।

कर्कटाश्रृङ्गिका सा च आनेतव्या तु साधकैः।।

यदि शरीर में पित्त की वृद्धि हो जाय तो साधक लोग कर्कटश्रृङ्गी ले आवें।

तस्माच्च चूर्णकं कृत्वा कण्ठभागे विलेपनम् ।

विधाय पित्तजं विघ्नं व्यपोहयति सत्वरम् ।।

उसका चूर्ण बना कर कण्ठभाग में लेप कर दें। इस प्रकार करने से पित्त से उत्पन्न विघ्न का विनाश हो जाता है।

अथवा नाभिदेशे च कदलीरस सम्भवम् ।

मधुना सहयोक्तव्यं पित्तनाशो भविष्यति।।

अथवा कदली का रस निकाल कर उसमें मधु मिला कर नाभि देश लेप कर देना चाहिये। इससे पित्तनाश हो जावेगा।

वातनाशाय संप्रोक्तं पित्तनाशाय वै तथा।

कफनाशाय यत्पूर्वं नागरं संस्मृतं मया।।

वात नाश के लिये पित्तनाश के लिये तथा कफ नाश के लिये पहिले ही नागर सोंठ का प्रयोग बता दिया है।

तदैव भक्षणं प्रोक्तं शीतकाले समागते।

नैव मुष्णे प्रयोक्तव्यं शीते तद् योज्यतां ध्रुवम् ।।

शीतकाल के आने पर ही उसका भक्षण करना चाहिये। उसका प्रयोग उष्णकाल में नहीं करना चाहिये। शीतकाल में ही उसका सेवन करना चाहिये।

शीतकाले प्रयुक्तं तु शक्तिदं नागरं सदा।

कफपित्तविनाशं च वायुनाशनकं तथा।।

नागर मोथा का प्रयोग यदि शीतकाल में किया जाय तो वह सदा शक्तिप्रदा रहता है, वह कफ पित्त का विनाश करता है और वायु का नाश करता है।

अखिलं मलसम्पन्नं सर्वदोषविनाशकम्।

नागर नागराः लोकाः भवन्ति च न संशयः।।

मलसम्पन्न सभी दोषों का नाश करने वाला नागर – मोथा बताया गया है। इसका प्रयोग करने वाले लोग भी नागर (चतुर) कहे गये हैं।

एतावत् भाषितं यत्तु स्मरणीयं च साधकैः।

काले काले च या बाधा तद्विनाशो भविष्यति।।

इतना जो कुछ बताया गया है उसे साधक लोग सदा याद रखें। जब समय समय पर कभी बाधा आवेगी तो उसका विनाश होता रहेगा।

अग्रे चैव विधास्यामि प्रयोगमौषधोपमम्।

यच्च सर्वात्मभावेन कल्याणं च करिष्यति।। ॐ ।।

आगे भी औषधि प्रयोग बताऊगी जो सब प्रकार से साधकों का कल्याण करेगी।

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। गोरख जोग जगावे। गोरख रोग भगावे। मां का आदेश। व्याघात – संहति प्रकरण में बताया जा रहा है कि शरीर धर्मी कोई भी साधक सम्भवतः अपनी क्रियाओं के प्रयोग में, मुद्राओं के प्रयोग में शक्ति के अधिक हो जाने से अथवा विशिष्ट साधन सम्पन्न होने के कारण से, और इसके वहीं मूढ़ निहित हो जाने के कारण, कई प्रकार से अथवा दौर्बल्य हो जाने के कारण अथवा वायुमंडल के कारण अथवा घड़े के कच्चे होने के कारण, कुछ भी हो ऐसी व्याधियां आ सकती हैं। उन व्यक्तियों में ऐसा हो सकता है कि कभी-कभी साधन में विघ्न उपस्थित हो सकते हैं। किन्तु साधक को याद रखना चाहिए कि यह जो महादिव्य औषधि प्रकरण बताया जा रहा है कि यह ऊपरी आवरण है, भीतर से महामाया भगवती जागृता कुण्डलिनी सहायता करती है और ऊपर से थोड़ा सा इनका प्रयोग कर लिया जाता है, तो शीघ्र लाभ होता है। अन्यथा प्रकृति के अनुकूल भगवती शनैः शनैः कर लेती है। महामाया की कृपा होते हुए भी महामाया भगवती धृत सरस्वती रुपा जब औषधियों का प्रयोग शरीर की व्याधियों के नाश करने के लिए दे सकती है, तब उनका भी प्रयोग क्यों न कर लिया जाये, सुविधा क्यों न रहे। इस मार्ग पर साधक के सामने, कोई बाधा, डर, भय क्यों रह जाये। जम करके क्यों रह जाये। उसको भी उखाड़ कर फेंक दो। महामाया का आदेश है कि ऐसा भी करलो कि औषधियां काष्ठादि हैं, इनका भी प्रयोग कर लो सेवन हो सकता है। और यदि कोई बल

सम्पन्न साधक अपनी साधना को तीव्र वेग से करना चाहता है और उसे प्रतीत होता है कि कुछ रुकावट सी आ रही है, दौर्बल्य घेर रहा है, तो औषधि सेवन कर लें, ऐसा शास्त्रीय विधान में है। महामाया का आदेश है तो प्रारम्भ में ऐसा बताया गया है ग्रीष्म काल आ जाये तो समय में ऐसा कर लेना। जब ग्रीष्म काल में भी कफवृद्धि हो जाये तो उस समय दाडिम बीज, अरे, दाडिम फल होता है, भक्षण किया जाता है, तो उसको सम्पूर्ण लेकर उसके बीज को सुखा लेना और जो त्वचा है जिसे खाल या छाल भी कहते हैं उसको सुखा लिया जाये फिर उनका चूर्ण बना कर के मधु के साथ सेवन करने से ग्रीष्म काल जनित शरीर में होने वाला कफ विनष्ट हो जाता है। इसके बाद क्या करना है, उसमें मधु तो मिला लिया, अरे, उसमें श्रृङ्गवेर का रस तो नहीं मिलाया, तो एक होगा दाड़िम, एक होगा मधु, एक होगा श्रृङ्गवेर का रस, तीनों का सम्मिश्रण त्रिदोष को शान्त कर देगा।

यदि जो है, कभी शक्ति के साधन में ग्रीष्मकाल में पित्त की वृद्धि हो जाये तो उसको कर्कटश्रृङ्गी कहते हैं, अरे काकड़ासिंगी, काकड़ासिंघी, उस पर लगे होते हैं, फल से होते हैं, सब जानते हैं, बड़े काम की चीज है। काकड़ासिंगी पित्त को भी मारती है। तो उसको क्या करना है। घिस देना है खाली कंठ में लेप कर देना है। अथवा उसको भी मधु में मिलाकर के नाभि में लेप कर देना है। पित्त विकृति दूर हो जायेगी। और वात पित्त कफ तीनों दोषों का नाश करने वाला, शक्ति को बढ़ाने वाला और हर प्रकार से इन मलों को धोकर शुद्ध करने वाला नागर है, जिसे नागर मोथा कहते हैं। इसे नागर लोग अर्थात चतुर लोग अवश्य ही अपनाते हैं। इस प्रकार तीन औषधियों को अपनाने से जो कायज क्लेश हैं वे नष्ट हो जाते हैं और साधक के मन में धैर्य हो जाता है कि मैंने मल दूर कर लिया है और पूर्ण शक्ति को लेकर बढ़ता हुआ साधक चला जाता है। इसलिये यह औषधियां बतायी जा रही हैं। आगे भी इस प्रकरण में, इन तीनों के क्योंकि शरीर में तीनों वात पित्त कफ हैं, अथवा मल है "सर्वे रोगा मलाश्रयाः" मल के आश्रय में सब रोग होते हैं, तो निर्मल बन जाओ और निर्मल होने के लिए औषधि का भी प्रकरण होगा और बहुत कुछ और भी होगा।। ॐ ।।

सारस्वत-कुण्डलिनी-महायोग

(शक्तिपात-शास्त्र)

भाग-तृतीय

ॐ

६-२-६३ प्रातःकाल।।१४२।।

हरि ॐ तत् सत् । नमस्तेऽस्तु भगवत्यै जागृतस्वरूपायै कुण्डलिन्यै।।

हरि ॐ तत् सत् । जागृत स्वरूपाकुण्डलिनी भगवती को नमस्कार है।

नानाकार्यकलापकार्यकुलिका कार्येषु या सर्वदा

शोधं वोधमयैव सर्वसकलं कृत्वा धरायां ततः।

आद्या या स्वयमेव चानतपरा कल्याणभाजां कृते

सर्वं तद् गदहं ददाति सुभगं वन्दे च तां शारदाम् ।।

उस आद्या भगवती शारदा को मैं प्रणाम करता हूं जो नाना कार्य कलापों के सम्पादन में आकुल रही है, बोधमयी होकर जो बुद्धि का शोधन करती है, संसार में पुण्यकर्मा मनुष्यों के लिये स्वयं आकर रोग व्याधि का शमन करने वाले उपायों को प्रदान करती है।

ॐ अस्मिन् व्याघात-संहति प्रकरणे आपात्तिशरीरजदोषान् विदूरीकर्तुं औषधं प्रोक्तं तत् सुविपुलं सुदिव्यं सुनिश्चितं कल्याणपरकम् । सम्प्रति प्रकृतिभेदात् औषधिभेदः ॐ ।।

ॐ इस व्याधि-संहति प्रकरण में, अकस्मात् आ पड़ने वाले शरीरज दोषों को दूर करने के लिये औषधि बताई गई हैं। वे औषधियां बड़ी महत्त्व की, दिव्य और सुनिश्चित कल्याण कारक हैं। औषधियों के बारे में प्रकृति भेद से औषधि भेद हुआ करता है।

किन्तु क्वचित् क्वचित् कदाचित् कदाचित् एवमपि भवति यत् एकमेव औषधं सर्वेषां कृते लाभप्रदं भवति शरीराय। तदपि निवोध्यताम् ।

किन्तु कभी-कभी साधकों के लिये ऐसा भी होता है कि एक ही औषधि सामान्यतया सभी के लिये लाभप्रद होती है। उसे भी समझ लो।

यदा वै साधना काले समायान्ति विपत्तयः।

शरीरजास्तदा शीघ्रं एतद् वै क्रियतां बुधैः।।

जब साधनाकाल में शरीरज विपत्तियाँ आ जाती हैं, तब बुद्धिमान् साधक को निम्न प्रकार से ऐसा कर लेना चाहिये।

विल्वस्य फलमादाय सम्पूर्ण निर्मलं बरम् ।

दिनत्रयेण तत् स्थाप्यं जलेन कृत-संहतिः।।

एक निर्मल बेल का सुन्दर फल लाकर बिना तोड़े ही उसे तीन दिन तक जल में डुबो देना चाहिये।

पश्चात् निष्काष्य तत्वैव शोषणाय जलांशकम् ।

दिवाकरस्य रश्मीनां स्थापनीयं पुरस्ततः।।

तदनन्तर निकाल कर उसका जल सुखाने के लिये सूर्य की किरणों में (धूप में) रख देना चाहिये।

दिनैनैकेन कर्तव्यं केवलं जलशोषणम् ।

पश्चात् तच्चूर्णकं कृत्वा मृदुरूपेण वै भृशम् ।।

इस प्रकार जल का शोषण केवल एक दिन तक करना चाहिये। तब उसका खूब भलीभांति बारीक, बारीक चूर्ण बना लेना चाहिये।

स्थापयेच्च स्वपार्श्वे सः साधको योगसाधकः।

तस्य चूर्णं महद्दिव्यं श्रीफलात्मकमुच्यते।।

योग साधक उस चूर्ण को अपने पास रख ले। यह चूर्ण श्री फल से बना है, अतः यह श्रीफल को देने वाला महा दिव्य चूर्ण होता है।

श्रीफलस्य च चूर्णं तत् सर्वरोग-विनाशकम् ।

शरीर-श्रीसमावृद्धिकारकं प्रोच्यते मया।।

यह श्रीफल का चूर्ण समस्त रोगों का विनाश करने वाला होता है और शरीर की कान्ति एवं पुष्टि को बढ़ाने वाला इसे कहा गया है।

तच्चूर्णकं स्वल्पकस्वल्पमेव दुग्धेन सार्धेन सदैव ग्राह्य ।

शीते च उष्णे च समे च काले तद्व्याधिनाशश्च स कर्तुमिच्छेत् ।।

इस चूर्ण को थोड़ी-थोड़ी मात्रा में प्रत्येक ऋतु में, शीत में, गर्मी में और समशीतोष्ण काल में दूध के साथ सेवन करने से व्याधियों का नाश हो जाता है।

एवंकृते समास्तानां व्याधीनां विघ्नकारिणाम् ।

विनाशो जायते सद्यः श्रीफलं श्रीफलं भवेत् ।।

इस प्रकार प्रयोग करने पर सभी विघ्नकारक व्याधियों का शीघ्र विनाश हो जाता है। यह श्रीफल यथार्थ में श्रीफल ही होता है।

तस्य तच्चूर्णकं स्वल्पं स्वल्पमात्रा समन्वितम् ।

ग्रहणीयं तदा तेन साधकेन स्वयं च वै।।

साधक को चाहिये कि थोड़ी-थोड़ी मात्रा में इसको ग्रहण कर ले।

यदा एवं च ज्ञायेत शरीरे रोगसंहतिः।

समागता च दौर्बल्यं चागते साधनाविधौ।।

जब ऐसा मालूम पड़े कि शरीर में रोग समूह ने आकर स्थान बना लिया है और साधना से उसमें दुर्बलता आ गई है-

तदैव सकलं तस्य अभीष्टं च भविष्यति ।। ॐ ।।

तब ऐसे समय इस चूर्ण का सेवन करने से साधक को अभीष्ट की सिद्धि हो जायेगी।। ॐ ।।

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। साधक सावधान। साधना के मार्ग में बड़ी बाधायें तीन ही बताई गई हैं। उनमें प्रारम्भिक बाधा शरीरिक बाधा है। अरे ! शरीर तो यों व्याधि मंदिर है। किन्तु फिर भी साधना काल में इस घड़े को जैसे निर्मल भी बनाना है, दृढ़ भी बनाना है और शोधन भी करना है और सुरक्षित भी रखना है। तो उसके लिये ये नाना विधान प्रयोग और समस्त तत्त्व की बातें बताई जा रही हैं। तो जब इस घट को निर्मल करना हो, नीरोग करना हो, तो इस बात का ध्यान रख लेना। जिसे बिल्व कहते हैं श्रीफल भी कहते हैं, उसी को बेल भी कहते हैं। वह अत्युत्तम है। उसका एक फल लाकर के अच्छा सा हो, सुन्दर हो और चाहे तो कच्चा हो, चाहे तो पका हुआ हो, कैसा भी हो, उसको लाकर के तीन रात्रिपर्यन्त जल में फेंक देना। और जल में फेंक देने के पश्चात् उसको निकाल करके फिर एक दिन उसे सूर्य की रश्मियों के सामने रखना। अर्थात् धूप देना। जल शोषण करा देना। सुखा देना। और उसके पश्चात् फिर से उसको अच्छी तरह उसका चूर्ण बनाना। फिर ऐसा होगा कि बड़ी कठिनाई होगी चूर्ण बनाने में। तो जैसा भी हो, खूब अच्छी तरह उसे पीस लेना। कूट लेना और फिर से सुखा लेना। अगर ऐसा करने में बड़ी कठिनाई होती हो, तो भाई, सुखाया ही फल ले लेना। पर क्रिया ऐसी ही करना और जब उसका चूर्ण बन जाय, सूख जाय तो उसमें वर्ण भी देख लेना। कुछ रक्त कुछ पीत वर्ण का होगा। उसको अपने पास किसी वस्तु में बनाकर रख लेना। और उसको

सावधानी से रखना। वह ऐसी वस्तु है कि हर समय सेवन की नहीं है। जब ऐसा मालूम पड़े कि कोई भी रोग मुझ पर आक्रमण करने वाला है, उसका प्रारम्भ हो रहा है। उसने मुझको साधना में कुछ कष्ट पहुंचाना प्रारम्भ कर दिया है, तो उस समय थोड़ी सी मात्रा में निकाल करके और उसको तीन तरह से सेवन किया जा सकता है। अरे ऐसा है कि शीत प्रधान प्रकृति वाले उसे दुग्ध से ले सकते हैं। और जो शीतोष्ण समप्रधान प्रकृति के व्यक्ति हों वे चाहे तो जल से ग्रहण कर सकते हैं और चाहें तो बिना जल, बिना मधु बिना दूध के ही उसको मुंह में रख कर उसका रस ग्रहण कर सकते हैं। ऐसा करने से क्या होगा। आपाती शरीरज रोग एक या दो दिन में अपना प्रभाव दिखाकर खतम हो जायेंगे। बढ़ने नहीं पायेंगे। रूकने नहीं पायेंगे। वह श्रीफल श्रीफल की तरह सिद्ध होगा। शरीर की श्री और कान्ति को बढ़ा देगा। किन्तु इसका प्रयोग थोड़ी सावधानी से करना है। वह सावधानी ने ऐसा करना है कि समझ लेना है सचमुच में कोई रोग आ गया है, आ रहा है। अगर ऐसा नहीं है तो यों ही सेवन न करना। अरे ! होगा तो क्या, लाभ भी नहीं होगा। तो तुरन्त तत्क्षण लाभ के लिये उसको बनाकर अपने पास रखे रहना। जब कभी साधना के समय में ऐसी आपत्ति ऐसा विघ्न उपस्थित हो या हुआ प्रतीत होवे तो शरीर को कंचन बनाने के लिये इसका सेवन करना। एक बात और। जब साधना-सिद्धि के पथ पर साधक चल रहा हो और जब उसमें एक वर्ष पर्यन्त अपनी साधना को साध लिया हो तो उसके पश्चात् यदि वह इस चूर्ण को एक मास पर्यन्त भी खालेगा तो उस काल में उसको श्री वृद्धि होगी। शरीर की कान्ति वृद्धि होगी। और रोगों का आक्रमण नहीं होगा, किन्तु इसे एक वर्ष पश्चात् करना। और सामान्यतया तो रोगनिवारण के लिये जैसा बताया गया है वैसा तो होगा ही, लेकिन एक मास पर्यन्त निरन्तर सेवन तो तभी होगा, जब श्री वृद्धि कान्तिवृद्धि की आवश्यकता होगी। शरीर को और दृढ़ बनाने की आवश्यकता होगी और क्रिया को और शक्ति को वेगवती बनाने की भावना आ जायेगी। हो जायेगी। हो जायेगा। वह अभी दूर की बात है। तो प्रारम्भ के साधनाकाल में किसी भी प्रकार विघ्न न आये, उनका नाश करना ही आवश्यक था। उस हेतु औषधि बताई गई और यही है कि औषधि ही नहीं, ऐसा मन्त्र भी बताया जायेगा जो किसी भी रोग को विनाश करने के लिये उसका अभिमन्त्रित स्पर्श किया हुआ जल ही पर्याप्त होगा, फिर औषधि भी उस समय रह जायेगी।। ॐ ।।

हरि ॐ तत् सत् ।

संराधनीया च समस्तसत्वैः या शक्तिराद्या प्रकट स्वरूपा।

अनन्तवीर्या च अनन्तबोधा सा मे सदा बुद्धिबलं ददातु।।

हरि ॐ तत् सत् । जो सब प्राणियों की आराधनीय हैं, और जो आद्याशक्ति प्रकट रूप में अनन्त बोधवती और बलवती बन जाती है, वह मुझे बुद्धिबल प्रदान करें।

दत्वा बुद्धिं बलं देवी मानसं निर्मलं महत् ।

करोतु तत्त्वबोधं च यतः सर्वसुखं भवेत् ।।

वह देवी मुझे बुद्धि और बल देकर मेरे मन को पूर्णरूप से निर्मल कर दे और मुझे तत्त्व बोध भी करादे, जिससे समस्त सुखों की उपलब्धि हो सके।

क्लेशांस्तान् कायजान् सर्वान् विद्राव्य कायपीठकान् ।

निर्मलं विग्रहं कृत्वा अनुभूतिं ददातु सा।।

वह मां भगवती शरीर को पीड़ा पहुंचाने वाले सभी कायज क्लेशों को दूर करके शरीर को निर्मल बनाकर अनुभूति प्रदान करें।

मार्गस्य सर्वरूपेण सर्वशुद्धिं करोतु सा।

या देवी भद्रिका सा च भद्रं भद्रं करोतु मे।। ॐ।

वह भद्रिका देवी सब प्रकार से साधना मार्ग की सर्वतः शुद्धि करदे और सदा मेरा भद्र (कल्याण) करती रहे।। ॐ ।।

ॐ । अस्मिन् व्याघातसंहति प्रकरणे साधकानां हिताय साधनामार्गपरिशोधाय शरीरनीरोगकरणाय मन्त्रौषधिप्रयोगं यत्किंचिदपि निगदितं तत्सर्वं सफली भवतु।। ॐ ।।

ॐ । इस व्याघात-संहति प्रकरण में साधकों के हित के लिए साधनामार्ग के परिशोधन के लिए, शरीर को निरोग बनाने के लिए, जो भी मंत्रौषधि का प्रयोग बताया गया है वह सफल हो।। ॐ ।।

उदरस्थान् समस्तान् तान् विघ्नान् विघ्नकरान् तदा।

विदूरी कृत्य या शक्तिरौषधं बोधवत्यसौ।।

उदर के भीतर स्थित विघ्नकारक सभी व्याधियों को सदा दूर भगा कर वह शक्ति औषधि का ज्ञान भी करा देती है।

सर्वेषां जठरे यच्च मलं तस्य निवारणम् ।
करणीयं च ध्यानेन तदैव कष्टकारकम् ।।

सभी के पेट के भीतर जो संचित मल है उसका निवारण सावधानी से कर लेना चाहिए। वही मल कष्ट देने वाला होता है।

उदरस्थस्य रोगस्य कोष्ठस्य बद्धकस्य च।
सर्वरोगापसरणं येन सर्वं भविष्यति।।

उदरस्थ सभी रोगों का और कोष्ठ बद्धता के सभी रोगों का जिससे निवारण होगा वह औषधि बताई जाती है।

तदौषधं महादिव्यं सुलभं सर्वसाधकैः।
यदा वा शुष्कतां याति मलं वै जठरस्य च।।

यह औषधि बड़ी दिव्य है और सभी साधकों को आसानी से प्राप्त हो सकती है। जब जठर का मल सूख कर शुष्क पड़ जाता है-

अन्त्रिका रूद्रकोषस्य ज्ञायतामुदरास्थितम् ।
तस्यापसरणार्थाय तुलसी बीजचूर्णकम् ।।

वह सूखा हुआ मल रूद्रकोष की आंतों में जमा रहता है। उसे निवारण करने के लिये तुलसी के बीजों का चूर्ण काम में लाया जाता है।

आर्द्रकेण तथा तस्य मधुना मिश्रितं मृदु।
कृत्वा दशदिनेनैव लेहनीयं शनैः शनैः।।

उस चूर्ण को अदरक के रस में मिलाकर धीरे धीरे दस दिन तक साधक को चाट लेना चाहिए।

एतेन उदरस्थानां रोगाणां रोगव्यूहकम् ।
विनश्यत्यप्रयत्नेन सुखं सम्भविता ध्रुवम् ।।

इससे उदरस्थित रोगों और रोग जाल का आसानी से विनाश हो जाता है और साधक को अवश्य आराम मिल जाता है।

एतदौषधमेकं वै ग्राह्यं सर्वत्र सर्वदा।
सर्वैः सर्वात्मभावेन विचिकित्सा न चात्र वै।।

इस औषधि को समान रूप से सभी काल में सभी साधकों को ग्रहण कर लेना चाहिए, इस प्रयोग में कोई संशय की बात नहीं है।

अपरं च महामन्त्रं मन्त्राणां मूर्ध्नि संस्थितम् ।
एकं वदामि वत्स श्रृणु तद्धि समाहितः।।

उदररोगों के निवारणार्थ एक महामन्त्र जो सभी मन्त्रों को शिरोमणि है, हे वत्स ! मैं तुम्हें बताती हूं उसे तुम सावधानी से सुनो।

प्रयोगेण च मन्त्रस्य तस्य वारमनेकशः।
रोगाणां सर्वरूपाणां संक्षयस्तु भविष्यति।।

उस मन्त्र के निरन्तर जप करने के प्रयोग से सभी प्रकार के उदरस्थित रोगों का निवारण हो जायेगा।

पूर्वं मन्त्र तु संसाध्य साधकैस्ततु संख्यकैः।
पश्चान्निर्भयभावेन तन्मन्त्रं च प्रयोज्यताम् ।।

पहिले साधकों को वह मन्त्र निर्दिष्ट संख्या जप के अनुसार सिद्ध कर लेना चाहिये। फिर निर्भय निःशंक होकर उस मन्त्र का प्रयोग करना चाहिए।

मन्त्ररूपेण तेनैव स्पर्शमात्रं जलं शुभम् ।
शान्तिदं सुखदं चैव गदहं च भविष्यति।।

उस सिद्ध मन्त्र के अभिमन्त्रित जल को पी लेने पर उदर के सभी रोगों का विनाश हो जायेगा और साधक को सुख शान्ति मिलेगी।

इत्येवमितिरूपेण मन्त्रस्योच्चारणं कुरू।। ॐ ।।

ॐ रं रूद्राण्यै नमः शरीरस्थान् सर्वान् रोगान् विद्रावय विद्रावय नाशय नाशय ॐ फट् स्वाहा।।

मन्त्र का उच्चारण इस प्रकार करो। "रं रूद्राण्यै नमः शरीरस्थान् सर्वान् रोगान् विद्रावय विद्रावय नाशय नाशय ॐ फट् स्वाहा।"

एतन्मन्त्रं सुजाप्यं च षण्मासेन पुनः पुनः।
यदा वै सिद्धिमायाति सर्वं सिद्धं भविष्यति।।

इस मन्त्र का जप छः मास तक नियम से करो। छः मास में जब मन्त्र सिद्ध हो जाय तब सिद्धि आ जायेगी और सब सिद्ध हो जायेगा।

सर्वत्र सर्वरूपेण सर्वरोगेषु तच्च वै।
प्रयुक्तं सफलं याति नास्ति सन्देहकारकम् ।।

इस मन्त्र का प्रयोग सर्वत्र सब रोगों में प्रयुक्त किया जा सकता है और इस बात पर कोई सन्देह नहीं करना चाहिये।

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। साधक! माँ ने बताया है कि जो शारीरिक विघ्न हैं, उसमें से एक बड़ा विघ्न उदर रोग भी है। उदर में विभिन्न प्रकार के रोग होते हैं। किन्तु सर्वभयंकर सर्वकष्टकारण सर्वपीड़क कोष्ठबद्धता है जिससे मन्दाग्नि रोग की उत्पत्ति होने से शरीर की धातुओं का निर्माण होना शनैः शनैः बन्द होने लगता है और शरीर कान्ति हीन होने लगता है। इसलिये उस जठराग्नि को दीप्त रखना चाहिये, और उदर की जो कोष्ठबद्धता है, मलसंचय की वृत्ति है, उसको मिटाना चाहिये, और इसलिये ये विभिन्न प्रकार के प्रयोग हो सकते हैं। किन्तु साधक को केवल दो प्रयोग उदर की शुद्धि के लिये, उदर की स्थिति को समुचित रखने के लिये बताये जायेंगे। इसलिये यह तो सुलभ प्रयोग। सर्वसाधारण के लिये उपयोगी है। वह है, तुलसी की जो मञ्जरियाँ होती हैं, उनमें जो बीज होते हैं, उन बीजों को निकाल लेना चाहिये, और तीन तोला पर्यन्त निकालना चाहिये। चार तोला, पांचतोला, पर्यन्त भी निकाल सकते हो। उनको निकाल लेना चाहिये, और पीस करके छान करके मृदु बना लेना चाहिये। उस तुलसी के बीज के चूर्ण में अदरख का रस और मधु मिला देना चाहिये, और उसको रात्रि में सोते समय १ मासा चाट लेना चाहिये, और ऊपर से जल पी लेना चाहिये। ग्यारह दिन की अवधि होती है। तो इसका प्रयोग सर्वसाधारण कर सकते हैं। इससे उदरस्थ समस्त विकार विलीन हो जाते हैं और मन्दाग्नि जैसा रोग भी ठीक हो जाता है। इससे क्षुधा की प्रबलता होती है और जब अग्नि में प्रबलता आ जाती है तो लोह काष्ठ जो डाल दो सब भस्म हो जायेगा। प्रज्वलित हो जायेगा, अंगारवत् हो जायेगा, और शरीर की भी कान्ति बढ़ा देगा, तो साधना में किसी प्रकार का विघ्न न होगा और शरीर दृढ़ होकर के साधना के लिये साधन बन जायेगा और उसके पश्चात एक और बड़ी बात बताई जा रही है। जो ऐसा परम दिव्य मन्त्र है जिसके सिद्ध हो जाने पर फिर उससे अभिमन्त्रित जल से ही कार्य सिद्ध हो जायेगा। किसी भी प्रकार का कोई रोग हो, रोग की स्थिति को देख कर के अभिमन्त्रित जल को तीन दिन, पांच दिन, सात दिन, ग्यारह दिन तक देने से, किसी भी प्रकार का रोग हो, सब ठीक जो जाय तो बन्द कर देना। केवल मात्र यह जल ही समस्त रोगों की महाऔषधि होगा, और इसके लिये जो मन्त्र बताया है "रं रूद्राण्यै नमः" उस मन्त्र को षण्मास पर्यन्त जप करके सिद्ध कर लेना चाहिये। उसके जप की संख्या केवल अष्टोत्तर शत प्रतिदिन है। ज्यादा कष्टकारक भी नहीं है। तो इस प्रकार जप करके उसको सिद्ध कर लेना, तो इस प्रकार हमेशा के लिए एक महाकल्याणकारी वस्तु तुम्हारे हाथ में आ जायेगी। तुम्हारा भी कल्याण होगा। रोगों का विनाश होगा। शरीर की कान्ति बढ़ेगी। जग का भी कल्याण होगा, रोगों का विनाश होगा। शरीर की कान्ति बढ़ेगी और साधना अपने मार्ग पर दृढ़ बलवती होती हुई महामाया भगवती की कृपा से आगे बढ़ती चली जायेगी। शीघ्रातिशीघ्र अभीष्ट सिद्धि होगी।। ॐ ।।

हरि ॐ तत् सत् ।।

मन्त्रबीजाक्षरां देवीं मन्त्रिणीं मन्त्रधारिणीम् ।
मन्त्रदां मन्त्रज्ञानां च मन्त्रविद्यां ददाति या।।

हरि ॐ तत् सत् । जो देवी मन्त्र बीजाक्षरा हैं, मन्त्रिणी हैं, मन्त्रधारिणी हैं, मन्त्र देनेवाली हैं, मन्त्र ज्ञान-रूपा हैं और जो मन्त्र विद्या देती हैं।

मन्त्रौषधिप्रयोगेण या देवी साधकस्य च।
कायजं क्लेशमाहन्ति तां नमामि महामहीम् ।।

जो देवी मन्त्रौषधि प्रयोग बनाकर साधक के कायज क्लेशों को विनष्ट कर देती हैं उस महामहिमा वाली देवी को मैं प्रणाम करता हूँ।

कायक्लेशान् सदा सर्वान् क्रियामुद्राप्रयोगतः।
औषधस्य प्रयोगेण व्यपोहति च या सदा।।

जो भगवती सभी कायज क्लेशों को क्रिया मुद्रा के प्रयोग से और औषधि प्रयोग से दूर कर देती है।

सा देवी सर्वदास्माकं कल्याणं कुरूतां भृशम् ।
कल्याणीं तां च वै देवीं प्रणमामि पुनः पुनः।।

वह देवी सर्वदा हमारा पूर्ण कल्याण करें। उस कल्याण कारिणी देवी को मैं वारम्वार प्रणाम करता हूँ।

अस्मिन् प्रकरणे कायक्लेशविनाशाय पूर्वमौषधप्रयोगरूपेण च गदितम्। पुनरपि च औषधरूपेण साधकस्य हिताय तत्त्वं तत्त्वं च दीयते।।

इस प्रकरण में पहिले कायज क्लेशों के निवारणार्थ औषधि का प्रयोग बताया गया था। फिर भी सार-सार में साधक के हितार्थ औषधि बताई जा रही है।

निर्भयाः साधकाः सन्तु प्रयोगाणां कृते सति।
शरीरं निर्मलं भूत्वा साधना-तत्परं भवेत् ।।

इन प्रयोगों के करने से साधक लोग निर्भय बने रहें और उनका निर्मल शरीर साधना के पथ में तत्पर बना रहे।

शरीरजान् बहुविधान् बहुप्रभाव-कारकान् ।
रोगान् हन्ति क्रियामुद्रौषधियोगेन योगवित् ।।

योग विद्या का ज्ञाता साधक क्रिया, मुद्रा और औषधि के प्रयोग से नाना प्रकार के शरीरज विघ्नकारी रोगों का स्वयं निवारण कर लेता है।

मन्त्रप्रयोगेण तथा साधको नाशयेद् रूजः।।

साधक मन्त्रों के प्रयोग द्वारा भी रोगों का नाश कर लेता है।

तदर्थ सर्वं प्रोक्तम् । अपरंच यदि कदाचित् शरीरबाधा समुपस्थिता भवेत् तदा इत्थं करणीयम् ।।

इस उद्देश्य से सभी कुछ कहा गया है। इस पर भी यदि कभी शरीर में बाधायें उपस्थित हो जावें तब ऐसा कर लेना चाहिये।

समायाति यदा रोगः कश्चिदपि कदापि वा।

अथवा रोगजावृद्धिः शरीरे व्यापिका भवेत् ।।

जब कभी कोई किसी प्रकार का रोग आ जावे या रोग बढ़ कर शरीर में व्याप्त हो जाय।

वातजं पित्तजं चैव कफजं त्रिविधं तथा।

अन्तर्वहिश्च वा रोगः प्रत्यक्षाप्रत्यक्षरूपकः।।

रोग प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से बाहरी और भीतरी तीन प्रकार के हुआ करते हैं। वातज, पित्तज और कफज।

उद्भूतश्च यदा जातः केनापि रूपसर्पिणा।

निम्बस्य फलमादाय जले उष्णेच पातयेत् ।।

यदि किसी रूप में संक्रामक होकर अथवा स्वयं शरीर में पैदा हो जाय तो नीम के फल लाकर उन्हें उबाल लेना चाहिये।

यादृशं क्वाथसम्भूतं तादृशं बहुमात्रकम् ।

कृत्वा तज्जलमात्रेण सदैव स्नान माचरेत् ।।

उसे इतना उबाल लो कि क्वाथ बन जाय। फिर जल के स्नान करने मात्र से स्नान कर लेना चाहिये।

तस्य स्नानप्रभावेण अन्तःस्था बहिरागताः।

रोगाः सर्वे विनश्यन्ति न च रोगभयं भवेत् ।।

उस जल से स्नान करने का यह प्रभाव है कि बाहर से आये हुए या भीतर पैदा हुए सभी रोग विनष्ट हो जाते हैं और रोग का फिर भय नहीं रहता है।

केवलं स्नानमित्येव भाषितं करणीयकम् ।

दिनपञ्चकमात्रेण रोगनाशो भविष्यति।।

केवल स्नान कर लेना ही पर्याप्त कहा गया है। पाँच दिन तक स्नान करने से सब रोगों का विनाश हो जायेगा।

यदि वा छन्नरूपेण स्थितो रोगः क्वचित् क्विचत् ।

तदापि मिश्रितं नैम्बं जलस्नानं समाचरेत् ।।

यदि गुप्त रूप में कोई रोग भीतर कहीं किसी साधक के दबा हुआ हो तो भी नीम को उबाल उससे स्नान कर लेना चाहिये।

स्वल्पमात्रापरं तस्य जलं तत्पानमाचरेत् ।

एवं कृते नैव भीतिः निर्भयो जायते पुमान् ।।

बहुत थोड़ी मात्रा में उस जल को पी भी लेना चाहिये। ऐसा कर लेने पर साधक निर्भय हो जाता है। कोई डर नहीं रहता है।

अथवा कायजान् क्लेशान् हन्तुं मन्त्रं समाचरेत् ।

मंत्रंमन्त्रश्च यत् प्रोक्तं निर्बलं सबलं तथा।।

अथवा कायज क्लेशों को दूर करने के लिये मन्त्र का प्रयोग कर लेना चाहिये, "मन्त्र और मन्त्रः" ये दो सबल और निर्बल दो प्रकार के होते हैं।

निर्बलं सबलं कृत्वा तदा तस्य प्रयोगकम् ।

कुर्याच्च साधकश्रेष्ठः सर्वरोगविनाशकम् ।।

निर्बल मन्त्र को सबल बनाकर साधक को रोग विनाश कर लेना चाहिये।

तदेतत् तत्र कर्तव्यं मन्त्रस्य पूर्वशोधनम् ।

पश्चात् प्रयोगमासाद्य मन्त्रसिद्धिश्च जायते।।

वह इस प्रकार करना चाहिये कि पहिले मन्त्र का शोधन कर लो। फिर प्रयोग में लाकर वह मन्त्र सिद्ध हो जायेगा।

"ॐ कं कंकातिमिकामावाहयामि कायजान्रोगान् विनाशयतु"। अस्य मन्त्रखण्डस्य, न सम्पूर्ण मन्त्रस्य, सम्पूर्णमन्त्रस्तु विशिष्टकाले एव प्रयोज्यः। एतत्तु शरीररोग विनाशाय खण्डरूपेण प्रयोक्तव्यः।

"ॐ कं कंकातिमिका मावाहयामि कायजान् रोगान् विनाशयतु।" इस खण्डमन्त्र का सम्पूर्ण मन्त्र तो विशिष्ट काल में ही प्रयुक्त करना चाहिये, इस मन्त्र का प्रयोग खण्ड रूप में रोगविनाश के लिये प्रयोग में लाना चाहिये।

मन्त्रं, मन्त्रश्च चेतनायुक्तः। अतः एतद् रूपेण अकालपर्यन्तं असंख्यकं यथा यावद् वा भवतु तावत् करणीयम् । स्वल्पं वा बहु वा उच्चरणीयम्, एतत् खण्डकम् । तदिदं लाभदं भविष्यति कालान्तरेण। शनैः शनैः तस्यावृत्तिः रोगनाशिका भविष्यति।

"मन्त्रः" तो चेतना युक्त होता है। इसलिये इस मन्त्र को निरवधि, कोई निश्चित संख्या नहीं, कोई अवधि निर्धारित नहीं, जब तक हो करते रहो। तब यह यथासमय धीरे धीरे लाभप्रद सिद्ध होकर रोगों का विनाश कर देगा।

गोरखवाणी :- ॐ । अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। साधक सावधान। इस प्रकरण में नानाप्रकार के रोगों को दूर करने के लिये क्रिया मुद्रा औषधि प्रयोग बताया जा रहा है और इस प्रकार कर लेने पर साधक को विघ्न का अवसर नहीं आता है। साधना में किसी प्रकार की कोई बाधा नहीं आती है। किन्तु सावधान होकर अपने मार्ग पर चलते रहो तो समस्त शारीरिक मल विक्षेपों को दूर करने के लिये विभिन्न रूप से कुछ न कुछ अनुभूतिजन्य वार्ता बताई जायेगी।

तो ऐसा करना कि देखो, पूतां ! अरे जब कभी शरीर में बाह्य या भीतर रोगों की प्रतीति हो, तो ऐसा भी कर सकते हो कि जो निम्ब वृक्ष है, नीम है, उसके फलों को ला करके और उसे रख लेना, और जब ऐसा समय आय तब थोड़ी सी मात्रा में निकाल करके उष्ण जल में डालकर स्नान कर लेना। तो उस स्नान करने के पांच दिन के अन्तर्गत ही चाहे वे बाहरी रोग होंगे चाहे भीतरी होंगे, सब रोग नष्ट हो जायेंगे और यदि कोई रोग ऐसा भी हो कि भीतर ही जड़ जमा लिया हो, तो वैसे ही थोड़ा सा उसी के फल को तप्त करके उसी की लघु मात्रा में स्वल्प मात्रा में चुल्लू, दो चुल्लू के बराबर इतना सा भी लेना और उसको भी पाँच दिन पर्यन्त पीना, सब रोग नष्ट हो जायेंगे और शरीर नीरोग होकर साधना के पथ में आगे बढ़ जायेगा। ऐसा कर लेना ओर इसके पश्चात् ऐसा भी मां ने बताया है कि जब कभी ऐसा हो कि रोगों ने दबा लिया है और ये कभी न कभी प्रकृति के अनुकूल होते ही रहते हैं, यों तो उनका सबका विनाश होगा, लेकिन दीर्घकालीन होगा। अतः शीघ्र चलो, जल्दी चलो तो उसके लिये ऐसा कर लो, मां कह रही है कि "कं कंकालिका" कोई संख्या नहीं है। चलते फिरते, उठते बैठते उसको कभी कभी, अरे !थोड़ी थोड़ी देर में उच्चारण कर लेना। यह खण्ड मन्त्र है और खण्ड मन्त्र ऐसे ही होते हैं। इस खण्ड की शक्ति ऐसी है कि वह थोड़ा बहुत धीरे धीरे प्रभाव डालता हुआ शरीर के वायुमण्डल को बदलेगा तो उसको भी कभी कभी ऐसा कर लेना तो कल्याण होगा। आगे फिर बहु प्रकार के साधन की मां की इच्छा ।। ॐ ।।

७-२-६३ सायंकाल।।१४५ ।।

हरि ॐ तत् सत् ।

चंचत् प्रभानिकर भासितदिग्विभागाम्

चन्द्रोज्वलामहिमरश्मि प्रभास भासाम् ।

दन्तैककान्ति विपुलांशप्रकाशकासां

सर्वस्वभावधवलां प्रभजे विभासाम् ।। ॐ ।।

हरि ॐ तत् सत् । अपनी कान्ति से दिशाप्रान्तों को उज्ज्वल कर देने वाली, चन्द्रमा की भाँति शीतल और सूर्य की भाँति प्रकाशवाली, अपनी दन्त पंक्ति की किरणावली चारों ओर फैला देने वाली सभी प्रकार से धवल प्रकाश वाली उस मां भगवती को मैं नमस्कार करता हूं।

श्वेतसरोरूहकान्ति दधतीं मुखारविन्दके शुभ्राम् ।

व्यपगतकलुषां विशुद्ध शुद्धां सरस्वतीं दिव्यां भजेऽहम् ।।

शुभ्र मुखारविन्द में शुभ्र कमल की कान्ति धारण करने वाली, कलुष से विहीन, शुद्ध विशुद्ध दिव्य भारती सरस्वती मां को मैं प्रणाम करता हूं।

अस्मिन् वै मानुषे लोके मानवाः व्याधिपीडिताः।

शारीराः हृदयस्थाश्च चित्तजाः बुद्धिजास्तथा।।

व्याधयः परिदृश्यन्ते निर्व्याधिस्तु न लोककः।।

इस मनुष्य लोक में मानव नाना व्याधियों से पीड़ित रहते हैं। व्याधियाँ इस लोक में शरीर सम्बन्धी, हृदय सम्बन्धी, चित्त सम्बन्धी और बुद्धि सम्बन्धी कई प्रकार की होती है। कोई भी मनुष्य व्याधिविहीन नहीं है।

सर्वेषां व्याधिनाशाय यो योगस्य च यौगिकम् ।

भावैकभावभावात्म सरसं नीरसं तथा।।

सभी प्रकार की व्याधियों के विनाश के लिये योग विद्या से सम्बन्धित भावपूर्ण होने के कारण सरस और क्रियाओं की जटिलता के कारण नीरस

एकदा सर्वतः सद्यः सर्वव्याधिविनाशकः।

महायोगप्रयोगस्य तस्मात्त्वं भज सत्वरम् ।।

केवल एक उपाय शीघ्र सब प्रकार से सभी व्याधियों का विनाश कर देने वाला यह महायोग का ही प्रयोग है। अतः तुम शीघ्र इसे प्राप्त कर लो।

औषधेन च कायस्थं ध्यानेन मनसस्तथा।

समुद्भूतं महारोगं नीरोगं यः करोति सः।।

प्रयोगः सर्वरूपेण साधकैः क्रियतां भुवि।।

औषधि से शरीरज, ध्यान से मन सम्बन्धी उत्पन्न हुए रोगों का विनाश यह महायोग का अभ्यास कर देता है।

इस महायोग का प्रयोग साधकों को इस संसार में कर लेना चाहिये।

योगेन महायोगेन चित्तस्य व्याधयो विनश्यन्ति। औषधिप्रयोगेन शरीरस्थरोगा अपि नश्यन्ति। तस्मात् सर्वप्रकारेण सावधानेन समाहितेन क्रियामुद्राज्ञानानुभवं विधाय औषधप्रयोगं च ज्ञात्वा योगमार्गे स्वाभीष्टसिद्धिः कर्तव्या।

महायोग नामक योग से चित्त की व्याधियाँ विनष्ट होती हैं। औषधि के प्रयोग से शरीरस्थ रोग नष्ट होते हैं। इसलिये साधक को क्रिया मुद्राओं का ज्ञान और अनुभव करके, औषधि ज्ञान प्राप्त करके योगमार्ग में अभीष्ट सिद्धि करनी चाहिये।

सा च कथं, केन-केन प्रकारेण भवति वा स्वयमनुभूति समागमिष्यति। अधुना शरीरस्थान् सर्वान् रोगान् विदूरीकर्तुं औषधिमन्त्र प्रयोगं प्रतिभासितम् । यदि चैवं सावशिष्टं किंचिदपि स्वात्मरक्षा शरीरस्य करणीया भवति तदर्थं निर्भयत्वरूपेण अभीष्टमन्त्रजापं विधेहि।।

यह कैसे और किस भांति होती है, वह सब अनुभव में आ जायेगा। सम्प्रति शरीरस्थ रोगों को दूर करने के लिये औषधि-मन्त्र प्रयोग प्रकट किया गया है। यदि थोड़ा कुछ बचा खुचा रोग रह गया हो तो अपने शरीर की रक्षा के लिये निर्भय रूप से अपने अभीष्ट मन्त्र का जप कर लेना चाहिये।

यस्य देवस्य यन्मन्त्रं चैतन्यत्वेन मण्डितम् ।

तस्यध्यानेन तद्रूपं रोगरूपं विनश्यति।।

चैतन्य से विमण्डित, जिस देवता का जो मन्त्र होता है उसके ध्यान से और उस मन्त्रार्थ के ध्यान से तत्सम्बन्धी रोग विनष्ट हो जाते हैं।

शीतजा उष्णजा रोगाः समशीतोष्णजास्तथा।

सूर्यस्य हिमरश्मेश्च ध्यानमन्त्रेण सत्वरम् ।।

कोई रोग शीतज होते हैं, कोई उष्णज होते हैं और कोई समशीतोष्णज होते हैं। सूर्य और चन्द्रमा के ध्यान मात्र से शीघ्र ही-

नश्यन्ति द्रुतमित्येवं वाणी दिव्याऽस्तुशास्त्रका।

तस्मात् सूर्यस्य मन्त्रेण चन्द्रमन्त्रेण वै पुनः।।

एकदम नष्ट हो जाते हैं ऐसी शास्त्रों की दिव्य वाणी है। अतः [illegible] से और चन्द्रमा के मन्त्र से बारम्बार।

औषधिमन्त्रपूतेन प्रयोगेण सदैव हि।

निवारयेत् स्वमार्गस्य बाधाः स्वाभीष्टमाप्नुयात् ।।

मन्त्र से अभिमन्त्रित औषधि द्वारा सदा अपने मार्ग की बाधायें दूर कर [illegible] चाहिये। और अपनी अभीष्ट सिद्धि कर लेनी चाहिये।

ॐ चन्द्रो मे चान्द्रमसान् रोगानपहरतु। औषधि[illegible] वै नमः। ॐ स्वात्मसम्बन्धिनः सर्वतः सर्वरोगान् शमय शमय तत्रैव पातय पातय। शक्ति चोद्भावयोद्भावय।। इति ।।

"ॐ चन्द्रो मे चान्द्रमसान् रोगानपहरतु औषधिनाथाय वै नमः [illegible]सम्बन्धिनः सर्वतः सर्वरोगान् शमय शमय, तत्रैव पातय पातय, शक्ति चोद्भावयो[illegible] यह मन्त्र है।

ज्ञात्वा क्वाचित्करूपं च क्वाचित्कं प्रोच्यते मया।

सर्वदा नैव तज्जापः पर्वण्येव च जायते।।

इस मन्त्र को क्वाचित्क समझना चाहिये। किसी पर्व में ही इस मन्त्र का जप किया जाता है।

यदा वा पर्वकाले च पुण्ये वै दिवसे तथा।

द्विशतं जापमात्रेण पर्वमन्त्रेश्च सिद्धिदः।।

जब कोई पर्व पड़े अथवा पुण्य दिवस हो, उस काल में केवल दो सौ संख्या जप कर लेने से इस पर्वमन्त्र की सिद्धि हो जाती है।

पर्वण्येव च कर्तव्यं मन्त्रोच्चारणमेव तत् ।

एकस्मिन्नेव काले च तस्य सिद्धिः प्रजायते।।

पर्वकाल में ही इस मन्त्र का जप करना चाहिये। एक समय में [illegible] से इस चान्द्रमस मन्त्र की सिद्धि हो जाती है।

पुनश्च शीतरोगेषु प्रयोज्यः वाञ्छितार्थदः।

अथवा सूर्य सम्भावे रोगे जाते शरीरके।।

शीत से उत्पन्न रोगों में चन्द्रमन्त्र का प्रयोग करना चाहिये [illegible]ज-

अथवा बुद्धिवैकल्यं जायते शक्ति वृंहितः।

तदा सूर्यस्य मन्त्रस्य जापः सिद्धिप्रदो भवेत् ।।

रोगों में अथवा बुद्धि की विकलता में, सूर्य मन्त्र का जाप सिद्धि प्रदान करता है।

"ॐ नमोऽस्तु दिवाकराय अग्नितत्त्वप्रवर्धकाय शमय शमय शोषय शोषय अग्नितत्त्वं समतां कुरू कुरू ॐ"।।

"ॐ नमोऽस्तु दिवाकराय, अग्नितत्त्व-प्रवर्धकाय शमय शमय, शोषय शोषय, अग्नितत्त्वं समतां कुरू कुरू ॐ "।

अस्य कार्यमन्त्रस्य सूर्यसम्बन्धिनः दुर्बाधापीडितो भवति दृष्टिपीडितो वा भवति, अग्नितत्त्वपीडितो वा भवति, बुद्धिवैकल्येन वा पीडितो भवति, ऊष्माणमनुभवति, एतदपि चत्वारिंशत्, संख्या परिमितं जपनीयम् केवलं कस्यामप्यमावास्यायाम । केवलं कस्यामप्यमायाम् । तदा च एतेषु समुद्भूतेषु रोगेषु जलं स्पृष्ट्वा पानायदातव्यम् । सर्वं लाभप्रदं भविष्यति। प्रोक्तं तत् न सर्वसाधकानां कृते, विशिष्टसाधकानां हिताय, विशिष्ट साधकानां वोधाय, विशिष्ट साधकानामनुभवाय च प्रोच्यते। ॐ अस्मिन् प्रकरणे औषधिमन्त्रजपं किञ्चिदपि शरीररोगनिःसारणाय प्रोक्तम् । अपरं च द्वितीयं द्वितीयरूपेण अभिधास्यते।। ॐ ।।

सूर्य सम्बन्धी इस कार्यमन्त्र का प्रयोग तब होता है, जब कोई व्यक्ति दुर्बाधापीड़ित हो, दृष्टि रोग से ग्रस्त हो, अग्नितत्त्व के वैषम्य से पीड़ित हो, बुद्धिवैकल्य (उन्माद, पागलपन) से पीड़ित हो, शरीर में जलन और गर्मी का अनुभव करें, तो ऐसी स्थिति भी अमावास्या के दिन केवल ४० (चालीस) बार जप कर लेना चाहिये। मन्त्र सिद्धि के अनन्तर, मन्त्र से जल को अभिमन्त्रित करके रोगी को पिला देना चाहिये। सब रोगों में लाभ होगा, यह मन्त्र विशिष्ट साधकों के हित, कल्याण और लाभ के लिये बताया गया है, वे इसे अनुभव में ले आवें। इस प्रकरण में औषधि मन्त्र जाप बताया गया है।

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। इस व्याघात-संहति, विघ्न निवारण, विघ्नविनाशक प्रकरण में सम्मिलित रूप से मन्त्रौषधि का प्रयोग शारीरिक व्याधियों के विनाश के लिये कहा गया है, जिसके प्रयोगमात्र से सर्वप्रकार से विघ्न विनष्ट हो जाते हैं। शरीर निर्मल होता चला जाता है और कान्ति बल सम्पन्न होता हुआ बलवती साधना का साधन बन जाता है। और इस प्रकार धारणा की पुष्टि का एकमात्र साधन हो जाता है। रोगों की औषधियां भी हैं। रोगापसारक मन्त्र भी हैं। जो इस प्रकार शरीर के लिए दोनों बना दिये गये हैं। और जब विशेष स्थिति आ जाती है, ऐसा होता है कि शरीर में उष्णता की महातीव्रता

आ गई है, उसको सहन न कर सकने के कारण बौद्धिक स्तर बिगड़ रहा हो, अथवा जब किसी के भी शरीर में अग्निवर्ण की तीव्रता हो गई हो, ऐसी स्थिति में इस मन्त्र का प्रयोग बताया गया है। यह सूर्य सम्बन्धी मन्त्र है। इसको भी मां ने बताया है। और शीतल प्रधान रोग उत्पन्न हो जाते हैं, बात की अधिकता होने लगती है, तब उस समय इस चन्द्र सम्बन्धी मन्त्र प्रयोग करके उसे भी दूर किया जा सकता है, तो चन्द्रसम्बन्धी मन्त्र जो मां ने बताया है इसे दो सौ बार किसी महापर्व में जप लेना चाहिये, वह सिद्ध हो जायेगा। इस समय समय पर आवश्यकता हो तो उसका अनुकूल प्रयोग करना। सूर्यमन्त्र जो बताया है, वह चालीस बार जप से ही सिद्ध हो सकता है, उसमें भी शक्ति आ जायेगी। और जलस्पर्शमात्र से, लगा देने मात्र से, पिला देने मात्र से और स्नान से भी, पीड़ित को बहुत लाभ होगा। इस प्रकार शरीर के समस्त रोगों को यदि इन दो मन्त्रों की सहायता से दूर करना चाहो तो कर सकते हो। पर इतने पर भी एक बात थोड़ी रह गई है, जो बता देनी चाहिये। दोनों मन्त्रों से अभिमन्त्रित जल का प्रयोग हो सकता है। ध्यान रखना साधक ! स्वयं के लिये भी और औरों के कल्याण के लिये भी ऐसा प्रयोग किया जा सकता है। किन्तु पूर्व में इन मन्त्रों को जैसा बताया है, वैसा अनुभव में लाना और पश्चात् प्रयोग में लाना। कल्याण होगा। शरीर के रोग नष्ट हो जायेंगे। पश्चात् चित्त के और मानसिक रोगों के लिये भी विशेष वार्ता जो बताई गई थी, उसकी ऐसी चर्चा की जायेगी कि कुछ तो क्रिया मुद्रायें जो बता चुका हूँ उन्हीं का कुछ उपयोग बताया जायेगा और कुछ स्वल्प एकाक्षर से लेकर बहु अक्षर पर्यन्त मन्त्र होंगे और कुछ सूर्य और चन्द्र से सम्बन्ध रखनेवाली औषधियाँ भी होंगी, जिनके सेवन से ये अन्य प्रकार के क्लेश नष्ट हो जायेंगे उनका वर्णन किया जायगा।। ॐ ।।

८-२-६३ सायंकाल।।१४६।।

हरि ॐ तत् सत् ॐ।। सर्वस्वरूपेण जागृतमखिलं च प्रसुप्तं दूरमुपैति यन्मनस्तत् शिवसङ्कल्पकमस्तु। यद् वृत्तीनां चाञ्चल्यं न निवर्तते महामाया भगवती तत् चाञ्चल्यं निवारयतु।।

हरि ॐ तत् सत्। सब भाँति जागृत, और पूर्ण प्रस्तुप्त जो मन दूर से दूर चला जाता है, वह शिवसङ्कल्प हो जाय। जिस मन की वृत्तियों का चाञ्चल्य निवृत्त नहीं होता है, महामाया भगवती उस चाञ्चल्य का निवारण कर दे।

मनो मे पूतभावं च प्रकाशस्य च शाश्वतम्।

निर्मलं येन चाञ्चल्यं तद्भवेत्तुनिराकुलम्।।

मेरा मन पवित्र भाव और प्रकाश को प्राप्त करे, जिससे मेरा मन निर्मल बनकर चाञ्चल्य रहित होता हुआ निराकुल हो जाय।

शरीरजान् महारोगान् दूरीकर्तुं च भाषितम्।

मन्त्रौषधं क्रियायोगं सर्वं तच्छक्तिदायकम्।।

शरीरज महारोगों के दूर करने के लिये जो मन्त्रौषधि और क्रिया योग बताया गया है वह सब शक्तिदायक है।

अधुना मानसं रोगं तस्यापसरणं तथा।

स्वल्पभावेन स्वल्पेन निगदामि श्रृणुष्वत्वम्।।

अब मानस रोगों के बारे में और उनके निवारण के बारे में थोड़े संक्षेप में कहती हूँ, तुम उसे सुनो।

चाञ्चल्यं प्रथमो रोगः स्तम्भो भावो द्वितीयकः।

तृतीयमस्थिरं चैव धावतं च चतुर्थकम्।।

मन का सब से पहिला रोग चाञ्चल्य है, द्वितीय रोग स्तम्भ है, तृतीय रोग अस्थिर होना है, चौथा रोग अस्थिरता है।

पञ्चमं गतिविच्छेदः षष्ठमुत्पतनात्मकम्।

आत्मकं प्रोच्यते भूयः सप्तमस्तु मलाश्रयः।।

पाँचवा रोग गतिविच्छेद है, छठा रोग उत्पतनात्मक (भड़क जाना) है और सातवां मलाश्रय होकर मलिन होना है।

तांश्चरोगान् महारोगान् कः समर्थोपसारितुम्।

दूरं वा पूर्णरूपेण दुष्करं तद्धि मे मतम्।।

इन सातों मन के महारोगों को दूर करने में कौन समर्थ है। पूर्णरूप से इन सबको दूर करना बड़ा दुष्कर है, ऐसा मैं समझती हूँ।

तथापि या क्रिया प्रोक्ता या मुद्रा घूर्णिका मता।

चिद्बोधिनीं समाख्याता स्कन्धनी च तृतीयका।।

फिर भी जो क्रिया रूप में तुम्हें घूर्णिका मुद्रा बताई है, चिद्बोधिनी मुद्रा और स्कन्धनी मुद्रा बताई गई है।

एषा क्रिया महामुद्रा चाञ्चल्यस्य निवारिका।

एतेषां च विना तस्य चाञ्चल्यं न विनश्यति।।

ये तीनों क्रिया मुद्रायें मन के चाञ्चल्य का निवारण कर देती हैं। इन मुद्राओं के बिना मन का चाञ्चल्य विनष्ट नहीं होता है।

तस्मादेताः क्रियाः मुद्राः कार्या वै सावधानतः।

यदि वाञ्छन्ति वै सर्वे साधकाः मार्गबोधकाः।।

इसलिये सावधान होकर नियमित रूप में सभी साधकों को, यदि वे अपने मार्ग की जानकारी चाहते हों, तो इन क्रिया मुद्राओं के करते रहना चाहिये।

अथवा चौषधं प्रोक्तंअपामार्गस्य मूलकम्।

अधस्तान् स्थापनेनैव गतिस्तु तीव्रतां व्रजेत्।।

अथवा अपामार्ग की जड़ जो एक औषधि है, उसे आसन के नीचे रखने से क्रियाओं की गति में तीव्रता आ जाती है।

अथवा पुच्छभागस्य पक्षाश्चैव शिखण्डिनः।

एकत्वेन बहुत्वेन स्थापनीया अधस्तले।।

अथवा मोर के पंख दो चार लाकर आसन के नीचे रख लेना चाहिये।

तस्मादपि च जायेत मनसः स्थिररूपता।

मानसं कष्टदं रोगं विनिहन्ति च पिच्छकम्।।

इससे भी मन की स्थिरता आती है। मोर पंखों को आसन के नीचे रखने से कष्ट प्रद मानस रोग विनष्ट हो जाते हैं।

मयूरस्य तदा तत्र आनीय च प्रयुज्यताम्।

अथवा या च वै मुद्रा पुरा प्रोक्ता मया शुभा।।

इसलिये मोरपंख लाकर आसन के नीचे रखने का प्रयोग कर लो। अथवा एक बड़ी उत्तम मुद्रा जो मैंने पहिले तुम्हें बताई थी।

तस्यास्तु सम्प्रयोगेण मनः सुस्थिरतां ब्रजेत् ।

अश्वोदरी समाख्याता बहुपूर्व मया च या।।

उसके प्रयोग से भी चंचल मन स्थिर हो जाता है। मैंने पहिले तुम्हें जो अश्वोदरी मुद्रा बताई थी।

तस्याश्चाभ्यासमात्रेण मनसो रोगव्यूहकः।

विनश्यति द्रुतं तस्य अश्वोदरी प्रभावतः।।

उस मुद्रा के अभ्यास मात्र से मन के सभी रोगव्यूह शीघ्र विनष्ट हो जाते हैं। अश्वोदरी मुद्रा का ऐसा प्रभाव है।

सर्वा मुद्रा क्रियाः सर्वाः व्यर्थं नैव प्रदर्शिताः।

महायोगे महाशास्त्रे तासां वै फलमुत्तमम् ।।

जितनी भी क्रिया और मुद्रायें बताई गई हैं वे व्यर्थ ही नहीं कही गई हैं। इस महायोग–शास्त्र में उनका फल परमोत्तम है।

अथवा सम्प्रवक्षामि मानसं रोगनाशकम् ।

अपरं औषधं दिव्यं तत्रैव तत्परो भव।। ॐ ।।

अथवा मानस रोगों के विनाश के लिए एक दूसरी दिव्य औषधि में बताती हूँ, उसी का तुम तत्परता से सेवन करो।

गुञ्जामूलं समादाय तलेषु लेपनं च तत् ।

कर्त्तव्यं पादभागेषु शयनावसरे हितत् ।।

गुंजा की जड़ लाकर पैर के तलुओं में सोते समय लेप कर देना चाहिये।

एवं कृते च कालेन मनस्तु निश्चलं भवेत् ।। ॐ ।।

इस प्रकार प्रयोग करने पर यथा समय मन निश्चल हो जायेगा।। ॐ ।।

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। इस व्यापार संहति प्रकरण में अब मानस रोगों के सम्बन्ध में कुछ ऐसे प्रयोग भी बताये जायेंगे जो चमत्कारपूर्ण ही नहीं, महत्त्वपूर्ण भी होंगे। जब अश्व को वश में करने के लिए, क्रिया मुद्रायें बताई गई थी उनका अभ्यास कर लेना कल्याणकारी होता है। मन का सबसे बड़ा रोग चञ्चलता है। स्तम्भवृत्ति है। गतिविच्छेद में भी विचरण करते रहना है। महायोग में इसके विचरण की वृत्ति के बन्धन को मजबूत कर देना चाहिये और उसके लिए घूर्णिका, विहंगिनी, स्कन्दनी और अश्वोदरी बताई गई थी। उनका सदुपयोग, सत्प्रयोग, करना उत्तम

फलकारी होगा। ये मुद्रायें मन के पंख को तोड़ देने के लिए बज्र का काम करती हैं। ये मन की गति को कमजोर बना देने के लिए महौषधि का काम करती हैं। और ऐसा भी बताया गया था कि मन तभी वश में होता है जब उसका चाञ्चल्य रोग नष्ट हो जाता है। अब अपामार्ग के मूल को आसन के नीचे रखकर गति को स्थिर कर दिया जाता है, मनमें स्थिरता आ जाती है। अथवा ऐसा भी किया जा सकता है जो मयूर है, शिखण्डी है जिसको मोर कहते हैं उसके पुच्छ भाग पर जो पंख होते हैं, जिनमें विभिन्न प्रकार की चन्द्रकृति बनी होती है, उसके एक या दो पंख लाकर के आसन में रख लेना, मढ़ देना, धर देना। उससे विद्युत शक्ति दौड़ती है। और मन के चाञ्चल्य को समाप्त कर देती है। शनैः शनैः मन वश में होने लगता है। चाञ्चल्य को त्याग कर निर्मल होने लगता है। इस मन में संकल्प विकल्पात्मकता का जो भाव है वही उत्पन्न करने वाला है। उसमें स्थिरता लाने के लिए यह प्रयोग बताया गया है। और उसके बाद एक प्रयोग और भी बताया जाता है जिसको गुंजा कहते हैं, जिसे उचट्टा भी कहते हैं, घुंघुची भी बोलते हैं, रत्ती भी बोलते हैं। उसकी जड़ को लाकर के और सोते समय पैरों में पीसकर लगा लेना सो जाना, धीरे धीरे मन वश में हो जायेगा। थोड़े ही दिन कर लेना, ज्यादा नहीं, मन की गति ठीक हो जायेगी। रोग मिट जायेगा। इस प्रकार इस मन के, इन रोगों को, मानसिक रोगों को दूर करने के लिए औषधि प्रयोग के साथ मन्त्र का प्रयोग भी हो सकता है जो यथावसर बताया जायेगा। कल्याण हो।। ॐ ।।

१-२-६३ प्रातःकाल।।१४७।।

[illegible] ॐ नमु मम् ।

[illegible]शक्ति [illegible]रूपां महातत्त्वप्रकाशिकाम् ।

[illegible] [illegible] देवीं साक्षाद्वै शक्ति रूपिणीम् ।।

[illegible] ॐ [illegible] । महारूपा, महतत्त्व प्रकाशिका साक्षात् शक्तिरूपिणी मां शारदा भगवती [illegible] प्रणा[illegible] हूं।

[illegible] विशेषरूपा या सद्गुणोदयकरी प्रतिभाप्रभाकरी।

[illegible]कारिणी नित्यदा च सा मे सदा भगवती गतिमातनोतु।।

[illegible] शक्ति रूपा होकर साधक में सद्गुणों का उदय क[illegible]ती हुई प्रतिभा को उज्[illegible] सदा हितकारिणी भगवती मुझे सदा साधना में गति [illegible] करे।

[illegible]नं दिव्यं ज्ञानं ददातु सा।

[illegible] ध्यानाच्च ज्ञानं यत्रोपजायते।।

[illegible]भगवती मुझे दिव्य ज्ञान और नित्य अनुभूति प्रदान करे, जिससे मेरा ध्यान सिद्ध हो जाय और ध्यान में [illegible] की सिद्धि हो जाय।

अस्मिन् [illegible] मानसान् रोगान् विद्रावयितुं शमयितुं विनाशयितुं च यन्मन्त्रौ[illegible] प्रोच्य[illegible] [illegible] साधकानां कल्याणाय जायताम् ।।

इस प्रकरण में मानस रोगों को दूर करने के लिए शमन के लिये जो मन्त्र औषधियां कही गई [illegible] सब [illegible] का कल्याण करें।

[illegible] [illegible] पूर्णं सदैव समतावृतम् ।

[illegible] च [illegible]यिवं तदवस्थो नरः सदा।।

[illegible] सदा [illegible] अस्थिर स्वभाव वाला है, उसमें जो साधक समता वृत्ति ले आता है वही [illegible] रख सकता है।

[illegible] च अस्थिरा विघ्नकारिणी।

[illegible] नानाक्लेशान् भुंजन्ति लोकके।।

[illegible] अस्थिर और विघ्नकारिणी दशा है उसी के कारण मनुष्य संसार में नाना प्रकार [illegible] करता है।

[illegible] रोगाः नश्यन्ति सततं तदा।

[illegible] शान्तिश्च जायते परा।।

जब महामाया भगवती के प्रभाव से सभी मानस रोग सदा के लिये शान्त हो जाते हैं तब अपूर्व शान्ति मिल जाती है।

तदैव ध्यानं च परं वरं वर तथैव ज्ञानं च परं परं परम् ।

तदैव वा भूति विभूति भूतिकं तदैव सर्वं सुखदं सुबोधकम् ।।

मन की शान्ति और स्थिरता से ही श्रेष्ठ ध्यान होता है और परम ज्ञान भी तभी उपलब्ध होता है। तभी सभी भूति और विभूतियाँ प्राप्त होती हैं और सभी उपार्जित ज्ञान लाभप्रद होता है।

तदर्थमौषधिप्रयोगः मन्त्रप्रयोगश्च विधातव्यः एतन्मनो यद्यपि शास्त्रकाराणां धारणया दृढाभ्याससेवितं स्ववशे संस्थितं भवति। तथापि महामाया भगवती शक्तिस्तद् बलात् समुत्कर्ष्य स्वयमेव स्ववशमानयति। तदर्थं प्रारम्भचरणविनिपाते मन्त्रौषधि प्रयोगः करणीयो भवति।। ॐ ।।

उसके लिये मन्त्र प्रयोग और औषधि प्रयोग करना चाहिये। यद्यपि शास्त्रकारों की धारणा के अनुसार दृढ़ाभ्यास और निरन्तर अभ्यास द्वारा ही यह मन स्थिर होता है, तथापि शक्तिपात-महायोग में महामायाभगवती शक्ति बलपूर्वक साधक के मन को खींचकर अपने वश में कर लेती है। आरम्भिक काल में ही केवल मन्त्रौषधि प्रयोग करना होता है।

मनसो रोगमाहन्तुं श्रृङ्गाटक विशेषकम् ।

पूर्णकं तस्य वै चूर्णं साधना वा यदा भवेत् ।।

जब साधना काल हो, मन के रोगों को दूर करने के लिये एक अकेला सिंघाड़े का चूर्ण ही पर्याप्त होता है।

तदा तद् भक्षणं कृत्वा पुनः साधनमाचरेत् ।

दिनत्रयेण तच्चूर्णं भोक्तव्यं निर्मलत्वकम् ।।

श्रृङ्गाटक का चूर्ण भक्षण करके फिर साधना में लगना चाहिये। तीन दिन तक सिंघाड़े का चूर्ण भक्षण कर लेने से मन में निर्मलता आ जाती है।

तदा च मन्त्रयोगस्य प्रयोगः क्रियते सह। ॐ ।

एतन्मन्त्रस्य जापं वै प्रारम्भे च दिनत्रये।।

उसी काल में मन्त्रयोग का प्रयोग भी साथ ही साथ किया जाता है।। ॐ ।। प्रारम्भ के तीन दिन इस मन्त्र का जप करना चाहिये।

पुनश्च शक्तिः सम्भूता सर्वं शुद्धं करिष्यति।

यावन्नप्रबला शक्तिस्तावच्च करणीयकम् ।।

फिर जागृता शक्ति स्वतः सब कुछ शुद्ध कर लेगी। जब तक शक्ति में प्रबलता नहीं आती है, तभी तक ये प्रयोग करने चाहियें।

शक्तेः प्रबलभावे च किञ्चिदपि न विद्यते। मन्त्रोमेतदुच्चारणीयम् ।।

शक्ति के प्रबल भाव होने पर फिर कुछ करना नहीं पड़ता है। इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये।

ॐ महाशक्ति आराधयामि सा मे शक्तिः प्रसीदतु, चञ्चलं मानसं स्थिरतां उपनयतु, स्थिरतामुपनयतु, स्थिरतामुपनयतु।। इत्येतत् बारत्रयेण प्रोचार्य सार्बिको मन्त्र प्रयोगः।

"ॐ महाशक्ति आराधयामि, सा मे शक्तिः प्रसीदतु, चञ्चलं मानसं स्थिरतामुपनयतु, स्थिरतामुपनयतु, स्थिरतामुपनयतु,।" इस मन्त्र का उच्चारण तीन बार करना चाहियें। यह सार्विक मन्त्र है।

सार्विको मन्त्रप्रयोगस्तु केवलं साधनाकाले प्रारम्भे एकादश बारेणैव भवति। शनैः शनैः पश्चान्न च तस्यावश्यकतापि विद्यते। एतत् करणीयम् ।। ॐ ।।

सार्विक मन्त्र का प्रयोग केवल साधनाकाल में आरम्भ में ११ बार करना होता है। धीरे धीरे फिर उसकी आवश्यकता नहीं पड़ती है।

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। ॐ अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। इस प्रकरण में अब मानस चंचलता सम्बन्धी जो रोग होते हैं, उनको विनष्ट करने का प्रयोग बताया जा रहा है और उस प्रयोग के साथ ऐसा भी बताया जा रहा है कि जब मन नितान्त ही चञ्चल होकर किसी भी ओर लगने की प्रवृत्ति नहीं रखता और जब साधक को शक्ति प्राप्त होती है, तो क्षणिक यह मन आकृष्ट होता है। पर उसे भी जब वह शक्ति पूर्ण प्रबल रूप से नहीं आई है स्वल्प दिनों तक सात या ग्यारह दिन पर्यन्त प्रारम्भ में जब उसकी स्थिति चाञ्चल्यपूर्ण हो जाती है, और वह इस मार्ग का अभ्यासी नहीं होता है, अनभ्यास में शक्ति जब उसे इधर खींचती है तो भड़क उठता है तो उसको वशीभूत करने के लिये दो प्रयोग बताये जा रहे हैं उनको कर लेना। ध्यान में रख लेना। लेकिन यह बहुत प्रारम्भ के साधक के लिये बताये जा रहे हैं कि जब अपने मार्ग में चलना प्रारम्भ कर रहा है, जब वह शक्ति के चरणों में आना चाह रहा है, और जब महामाया की उस पर कृपा होनी चाह रही है, ऐसे समय में यदि मन वशीभूत नहीं हुआ तो शक्ति उस समय थोड़ी सी विचलित होकर सुप्तावस्था में आ जाती है, दीर्घकाल की बात हो जाती है और फिर उस दीर्घ काल में ऐसा भी होता है कि वह शक्ति कालान्तर में जागती है। प्रभावशाली होती है। क्योंकि कारण ऐसा होता है कि सबकी भूमिका, सबका क्षेत्र, और सबका आधार निर्मल और पुष्ट पहिले से नही होता है। कुछ का होता है। कुछ का नहीं होता

है। जैसे बताया गया था कि ऐसे भी साधक होते हैं कि जिन्हें कूष्माण्ड के बीजों का प्रयोग करा देना होता है। तो ऐसे ही कुछ साधक ऐसे हो जांय जिन पर देखा जाय कि इनका मन चञ्चलता से विशेष युक्त है, किसी प्रकार मार्ग में बैठने से, आने से, चलने से भड़क उठता है, तब ऐसी स्थिति में, महामाया ने उनको अपना कृपापात्र बना दिया है, तो उनको कहो, भाई तुम ऐसा करो कि तीन दिन तक जो श्रृङ्गाटक है और, जल फल भी कहते हैं, सिंघाड़ा भी कहते हैं, उसका चूर्ण बना करके ऐसे ही मुंह में रखकर पानी पी लेना। तीन दिन तक एक समय में सेवन करना। अगर ऐसा नहीं है तो उसको दूसरे रूप में भी ले सकते हो। उसको खाद्य पदार्थ के रूप में भी लिया जा सकता है। किसी भी वस्तु में मिश्रित करके प्रयोग में लाया जा सकता है। उसको किसी भी रूप में लिया जा सकता है। पर प्रारम्भ में तीन दिन ऐसा करने से प्रारम्भ के साधक की शक्ति बलवती होती हुई उसके मन को खींचती लिये चली जायेगी और वह अपने मार्ग में जमने लगेगा। चलने लगेगा। भड़केगा नहीं। वस्तु बहुत विचित्र है, पर मन भी बहुत विचित्र है। इसलिये जैसे को तैसे से खींच ही लेना चाहिये। तो भाई ! ऐसा भी प्रयोग कर लेना। जब महाप्रयोग हो रहा हो उन्हीं दिनों "महाशक्ति आराधयामि" यह जो मन्त्र माँ ने बताया है, उसको भी जप बैठो, तो पहिले ही एकादश बार अर्थात् ग्यारह बार बोल लो। यह सार्विक मन्त्र होता है। सार्विक मन्त्र का तात्पर्य यह होता है कि जो साधना के पहिले थोड़े से क्षणों के लिये बोले जाते हैं। ऐसे मन्त्रों को सार्विक मन्त्र कहते हैं। ऐसे मन्त्र स्थाई नहीं होते हैं। वे कुछ काल के लिये कुछ क्षण के लिये ही साधना के थोड़ा सा परिष्कार के लिये होते हैं। तो उन सार्विक मन्त्रों में से यह भी एक शक्ति मन्त्र है जो उस समय पुष्टि का कारण होता है, तुष्टि का कारण होता है। मार्ग में लगा देने का कारण होता है। और फिर तो महामाया भगवती शक्ति स्वतः प्रबला होकर आधार को निर्मल करती हुई बढ़ती चली जाती है। और अभीष्ट की प्राप्ति में विलम्ब होने की सम्भावना नहीं रहती है। इसलिये साधक को ये प्रयोग बता दिये गये हैं जिन में कहीं पर भी जगत् के कल्याण में बाधा न हो। योग का वायुमण्डल तैयार हो जाय। ॐ ।

१०-२-६३ प्रातःकाल।।१४८।।

हरि ॐ तत् सत् ।

नवलां सबलां बलाबलां ममतां चैव नमामि तां देवीम् ।

विमलां विमलार्थकारिणीं समतां मलव्यपोहने रतां च।।

विपुलां कटिभारमध्यविपुलां वन्दे च तां शारदाम् ।। ॐ ।।

नवला, सबला, बला, अबला, ममता देवी को नमस्कार है जो स्वयं भी विमला है और साधक को विमल कर देने वाली और उसके मल को सदा दूर करने में लगी हुई समता स्वरुपिणी मां को मैं प्रणाम करता हूँ।

कटि के भार से मध्यभाग में विपुल, उस मां शारदा को नमस्कार करता हूँ।

या भगवती महामाया महायोग प्रसाधिका।

योगस्याधारभूता सा नृत्यतां च पुरो मम।।

जो भगवती महामाया महायोग की सिद्धि देती हैं और जो योगविद्या की आधारभूता हैं मेरे सम्मुख नृत्य करें।

सा नित्या अतुलातुलापरिवहा नित्याभवा बोधदो।

सर्वं मानसमेव या हरित वै सा भगवती प्रीयताम् ।। ॐ ।।

वह नित्य भवा, बोधदात्री, अतुलरहस्यों से भरी जो देवी मेरे सम्पूर्ण मन को ही खींच लेती है, वह भगवती मेरे ऊपर प्रसन्न हो जाय।

अस्मित् व्याघातसंहति प्रकरणे मनसश्चाञ्चल्यं तस्य वृत्तीनां च निवारणाय यत्किञ्चिच्च प्रोच्यते तत्सफलं भवतु साधकानां कृते।। ॐ ।।

इस व्याघातसंहति प्रकरण में मन की चञ्चलता और उसकी वृत्ति के निवारण के लिये जो कुछ भी कहा जाता है वह साधकों के लिये सफल बने।

मनसो निग्रहो नैवं भवितुं शक्यते यदि।

तस्मात् सर्वमनर्थं च जायते साधकाय तत् ।।

यदि मन का निग्रह किसी कारण नहीं हो सकता है तो साधक के लिये वह बड़े अनर्थ की चीज बन जाती है।

अनर्थानां च मूलं यत् कल्पयत्याशु संयुतम् ।

एकमेव मनस्तस्मात् तन्निरोधः शुभं भवेत् ।।

एक अकेला मन ही सब अनर्थों की जड़ है जो बड़ी जल्दी स्वयं ही नाना संकल्पों को जुटा देता है। अतः उसका निरोध करना कल्याण कारक है।

या मुद्रा च क्वचिच्चैव क्वचिच्च कार्यसाधिका।

क्वचिन्मंत्रस्य संयोगः मनसो निग्रहाय वै।।

मन के निग्रह के लिये कहीं कहीं क्रिया का उपयोग, कहीं कहीं पर मुद्रा का प्रयोग और कहीं कहीं मन्त्र का प्रयोग करना सफल होता है।

कर्तव्यं साधकेनैवमेतस्मात् कष्टकं विना।

मनः आयाति वै तस्य वशं नात्र च संशयः।।

साधक को ऐसे ही उपाय करने चाहिये। इस से मन अनायास ही वश में आ जाता है। इस में कोई संशय नहीं है।

यथा सुसारथिरश्वान् विनियुंक्ते पृथक् स्वतः।

तथा सुसाधक एतत् मनश्चेद् योजयेद् ध्रुवम् ।।

जैसे अच्छा सारथी घोड़ों को स्वयं जोतता और अलग करता है उसी भाँति अच्छा साधक अपने मन को इच्छित स्थान पर जमा सकता है।

साधनामार्गके तत्त्वतत्त्वार्थस्य निवेशने।

तेनैव कार्यसिद्धिः स्यात् तदर्थं चेष्टते पुमान् ।।

तत्व के सार की प्राप्ति के लिये साधना मार्ग में मन सदा लगा रहे, इसी से कार्यसिद्धि होती है और इसीलिये साधक की चेष्टा बनी रहती है।

तदेव प्राप्यते तस्मात् यदर्थं चेष्टते जगत् ।

अतः सर्वात्मरूपेण मनसः संस्थितिं व्रजेत् ।।

मन के स्थिर होने पर संसार में मनुष्य जिसकी प्राप्ति की कामना करता है वह उसे प्राप्त हो जाती है। अतः सर्वात्मभाव से मन को स्थिर करने का प्रयास करना चाहिये।

तस्य चाञ्चल्यनाशार्थं मन्त्रोच्चारणतत्परः।

भव त्वं येन ते कार्ये बाधा नैव भविष्यति।।

उस मन के चाञ्चल्य को नष्ट करने के लिये तुम सदा मन्त्रोच्चारण में लगे रहो जिससे तुम्हारे साधना-कार्य में बाधा न हो।

तस्माद् दत्तावधानेन मन्त्रयोग श्रृणुष्व त्वम् ।

श्रुत्वा च जपमात्रेण मनस्ते सुस्थिरं व्रजेत् ।। ॐ ।।

इसलिये सावधान होकर तुम मन्त्र-योग को सुन लो। उसे सुनकर और उसका जाप करके तुम्हारा मन सुस्थिर हो जायेगा।। ॐ ।।

ॐ तामाराधयामि महालयां मनो मे या लयतां नयति। सा सर्वदा अस्य भद्रं करोति। अस्य मन्त्रोच्चारणं काले काले सावकाशे च करणीयम् ।। अनेनापि सुस्थिर मागमिष्यति। सा च अनुभूतिपरा भविष्यति। कल्याणप्रदा च भविष्यति।

"ॐ तामाराधियमि महालयां मनो मे या लयतां नयति, सा सर्वदा अस्य भद्रं करोति।" इस मन्त्र का उच्चारण समय समय पर अवकाश के क्षणों में करते रहना चाहिये। इससे भी मन सुस्थिर हो जायेगा। वह अनुभूति बड़ी श्रेष्ठ और कल्याण-प्रद होगी।

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। शरीर के दोषों को दूर करने के पश्चात् मानसिक रोगों का संहार करने के लिये, निवारण के लिये, विनाश के लिये समस्त प्रयोगों का ऐसा कुछ विधान रखा जा रहा है जिससे साधक साधना मार्ग पर चलता रहे। बढ़ता रहे। कल्याणमार्ग में चला पर उसकी सबसे बड़ी बाधा उसका यह चञ्चल मन है जिसको बड़े तत्त्व वेत्ता, ज्ञानी, योगी, महायोगी, वश में करने के लिये कठिनाइयों का सामना करते रहते हैं, और तब इसके पंख तोड़कर इसे पङ्गु बनाकर इस पर विजय कर सके हैं। अरे ! जिन पर महामाया भगवती की कृपा हो या हो रही हो, उनके लिये भी शरणागत भावना के कारण से ही मन वशीभूत हो सकता है। पर उस पर विश्वासपूर्ण मन्त्र की प्रक्रिया बताई जायेगी। अतः मां का आदेश है कि मन की चञ्चलता के लिये महामाया के मन्त्र का जप करो, वह मन को लय में ले जा करके सुला देगी। यह कालिक मन्त्र है। कालिक मन्त्र का तात्पर्य होता है अवकाश के क्षणों में थोड़ी देर अथवा जैसे कि बताया गया है पहिले भी चलते फिरते, उठते बैठते अवकाश के क्षणों में थोड़ा थोड़ा बोलते रहना। तो ऐसे अभ्यास से एक ही बार ऐसी स्थिति आ जायेगी कि सट्ट पट्ट हो जायेगा और कुछ करने की आवश्यकता नहीं रहेगी फिर जैसा एक सुन्दर सारथी अपने घोड़े को जिधर चाहे बल्गा खींच करके ले जाता है तुम भी जिधर चाहोगे, लगा लोगे: महामाया कल्याण करेगी, फिर इसी प्रकार तुम को चित्त के बुद्धि के रोगों को भी दूर करने का उपाय और प्रयोगों का अनुभव दिया जायेगा।। ॐ ।।

१०-२-६३ सायंकाल।।१४९।।

अतुलामतुलशक्तिसम्पन्नां अतुलानुभवमण्डितविग्रहाम् ।

मण्डनैकविद्यावोधिकां महाशक्तिं भावयामि।। ॐ ।।

हरि ॐ तत् सत् । अतुला, अतुलशक्तिसम्पन्ना अगाध अनुभव से मण्डित, सुन्दर श्रेष्ठविद्या के बोध से मण्डित कर देने वाली महाशक्ति का मैं ध्यान करता हूँ।। ॐ ।।

सर्वं मानसजं मलं विमलतां या सर्वदा सम्मुखी

कृत्वा वै शुभयोगमार्गमभितः संशोधयत्यर्थकम् ।

सा नित्या अतुलातुलाधिकरणा दिव्या सदा मोहदा

कुर्याद् वै समुदार्थमुज्ज्वलमहो निर्मानसं मानसम् ।। ॐ ।।

जो सम्मुख आकर सम्पूर्ण मानव मल को चारों ओर से दूर करके कल्याणप्रद योग को साफ करती है, अगाध अनन्त भावों में अधिकार रखने वाली, परमप्रीतिप्रदा वह देवी भगवती मेरे मानस को सदा उज्ज्वल करती हुई मेरे मन को स्थिर कर दे।

मानसजं क्लेशं सर्वतः विदूरीकृत्य सर्वतः उन्मील्य, सर्वतः संशोध्य साधकः स्वकार्यसिद्धौ सफलतां प्राप्नोति।।

मानसिक मल को सर्वतः दूर करके, उसका सर्वतः विकास करके, संशोधन करके साधक अपनी कार्य सिद्धि में सफलता प्राप्त करता है।

अत एव च यद्ध्येयं मानसं कष्टकारकम् ।

रोगं पूर्वं पृथक् कृत्वा साधनातत्परो भवेत् ।।

इसलिये साधक को चाहिये कि वह कष्टदायक मानसिक रोग को दूर करके साधना में तत्पर बन जाय। यही ध्येय रखे।

यत एव च वै तत्र कारणं प्रतिबन्धकम् ।

प्रतिबन्धविनाशाय मानसं रोगमुत्सृजेत् ।।

जहाँ पर जिस ओर से साधना में प्रतिबन्ध का कारण आवे उसे उसी प्रकार के उपाय से मानस रोग को विनष्ट करता रहे।

त्यजेच्च तस्य संसक्तिं विरक्तिं क्रियतां च वै।

तदर्थमौषधं चैव मन्त्रं चैव समानकम् ।।

उस मनकी आसक्ति को हटा कर विरक्ति पैदा करे। इसके लिये औषधि और मन्त्र ये दोनों समान रूप से उपाय बताये गये हैं।

बहु सम्भाषितं तत्र पुनरेव च कथ्यते।

यत्पूर्व गदितं मन्त्रं औषधं च समानकम् ।।

पहिले भी इस बारे में बहुत कह दिया है, फिर भी कहा जा रहा है। पूर्व में बताई गई औषधि और मन्त्रों का साथ-साथ प्रयोग करते हुए।

तत्प्रयोगं विधायैव अनुभूतिपरो भवेत् ।

अथवा काकजंघायाः काकाक्ष्या का यहुत्वकम् ।।

तुम अनुभूति में तत्पर रहो, अथवा एक उपाय और है। काकजंघा जिसे काकाक्षी और काकमाची (मकोय) कहते हैं।

मूलस्य पेवनं कृत्वा नाभौ च लेपनं स्मृतम् ।

स्वल्पकालेन एकस्मिन् काले वा लेपनं हि तत् ।।

उसकी जड़ को पीस कर नाभि में लेप कर दो, थोड़े दिनों तक एक दिन में एक बार उसका लेपन करना चाहिये।

करोति मनसोवृत्तिं स्थिरां नात्र च संशयः।

अथवा स्वल्पपत्राणि हरितानि विशेषतः।।

यह प्रयोग मन की वृत्ति को स्थिर कर देता है, इसमें कोई संशय नहीं है। अथवा मकोय के थोड़े हरे पत्ते ले लो।

तेषां रसं समादाय तस्य वा लेपनं शुभम् ।

नाभिभागे महाभागे मनसो रोगनाशनम् ।।

उनका रस निकाल कर उसके रस को नाभि भाग में चारों ओर लेप कर दो। यह उपाय मानस रोगों को नष्ट कर देगा।

तद्धि प्रोक्तं समासेन एतद्वै क्रियतां बुधैः।

अथवा ज्ञायते एवं नैवं तद्वशमागतम् ।।

यह बात बड़ी आसान और छोटी सी है, ऐसा कर लो। अथवा यदि इस उपाय से भी मन वश में नहीं आता है तो ऐसा करो।

काठिन्येव च सद्भूतिः समुद्भूतिश्च जायते।

तदा वै ज्ञायतामेतत् मनो भ्रमति वै भृशम् ।।

इतस्ततश्च तत् सर्वं मन्त्रमेतत् प्रयुज्यताम् ।। ॐ ।।

बड़ी कठिनता से मन स्थिर होता हो, और बार बार मानस रोग पैदा हो रहे हों, ऐसा प्रतीत हो कि मन बहुत भटक रहा है इधर उधर, तो इस मन्त्र का प्रयोग कर लो।। ॐ ।।

ॐ महाशक्त्यै नमः, मनसश्चाञ्चल्यं विनाशय, विनाशय, वारय वारय निवारय निवारय, त्वामावृणोमि, स्थिरं तत् कुरू कुरू स्वाहा।।

"ॐ महाशक्त्यै नमः, मनमश्चाञ्चल्यं विनाशय, विनाशय वारय वारय, निवारय निवारय, त्वामावृणोमि, स्थिरं तत् कुरू कुरू स्वाहा"।।

एतन्मन्त्रप्रयोगस्य प्रयोगः शुभदायकः।

भविष्यति सदा सर्वं सर्वेषां हितकारकः।।

इस मन्त्र का प्रयोग बहुत शुभदायक है। सबके लिये सर्वदा हितकारक होगा।

अस्यप्रयोगः कर्तव्यः क्वचित्कः क्वचिदेव च।

यदा वै ज्ञायते एवं मनो धावति धावति।।

इस मन्त्र का प्रयोग कभी-कभी ही विशेष परिस्थितियों में करना चाहिये। जब लगे कि मन बराबर दौड़ता ही चला जा रहा है और रूकता ही नहीं है।

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। इस अनिष्ट निवारक प्रकरण में यही बताया जा रहा है कि मानसज जो क्लेश हैं, रोग हैं विक्षेप हैं स्थिरीकरण कैसे होता है। इस स्थिरीकरण को कीलक भी कहते हैं। उस मन को इस तरह कीलित कर लिया जाता है जिससे वह स्थिर भाव को प्राप्त हो जाता है। इसलिये कई प्रकार के साधन बताये गये हैं। जब जो साधन जिस रूप में सुलभ हो सके, लाभप्रद हो सके, उसे उस समय अपनी सुविधा के अनुसार अपना लेना चाहिये। और जब ऐसी स्थिति आ जाय कि बहुत ही उच्चाट हो जाय, मन चक्कर लगाने लगे। सारा किया कराया व्यर्थ होने लगे तो ऐसे समय में दो प्रयोग कर लेने चाहिये, जिसको काकजंघा कहते हैं, अरे, जिसे सब बहुत प्रिय मानते हैं। छोटा सा वृक्ष होता है, काले, लाल फल होते हैं। छोटे-छोटे दाने

होते हैं। उसको जन साधारण की भाषा में मकोय मक्को भी कहते हैं, उसका पेड़ ले आओ। मूल को पीस कर नाभि में लगा लो। अथवा पत्तों का रस निकाल कर एक दो तीन चार दिन तक जब तक मन बिल्कुल स्थिर न हो जाय, दो ही चार दिन की बात है उसका लेप कर देना और विलेपन करने के साथ ही साथ ऐसा भी कर लेना कि उसी काल में "महाशक्त्यै नमः" वाले मन्त्र का प्रयोग भी कर लेना। यह क्वाचित्क प्रयोग है। कभी-कभी के लिये होता है जैसा कि सार्विक मन्त्र बताया गया था इसी तरह यह भी कालिक मन्त्र है। इसे औषधिक मन्त्र भी कहते हैं, इसका उच्चारण कर लेना। जैसा भी हो थोड़ी देर कर लेना, कोई चिन्ता नहीं है। साधना में बैठने के पहिले ही, जिस समय मन चञ्चल हो जाय, भटक जाय तो पहिले ऐसा कर लेना। इसके पश्चात् अपने क्रिया मुद्राभ्यास में रत हो जाना, जो बहु लाभप्रद होगा। इस प्रकार अनेक दृष्टिकोणों से, अनेक प्रकार से, इस मन के मानसिक रोगों को दूर करने का प्रयोग बताया गया है। जिससे सुनिश्चित ही साधक को इस मार्ग में अपने मन को वशीभूत करने में इसका निग्रह करने में सुविधा होगी और इसके पश्चात् चित्तज रोगों को दूर करने का प्रयोग बताया जायेगा, जिससे सब प्रकार के साधक का कल्याण हो और अपने मार्ग पर दृढ़ता से चलता रहे।। ॐ ।।

११-२-६३ प्रातःकाल।।१५०।।

हरि ॐ तत् सत् ।।

चेतनां चिति सम्पन्नां चित्तरोगविनाशिनीम् ।
वन्दे तां चिन्मयीं देवीं चिदानन्द-स्वरूपिणीम् ।।

हरि ॐ तत् सत् । चित्तज रोगों को विनाश करने वाली चित्ति सम्पन्ना, चिन्मयी, चिदानन्द स्वरूपिणी, चेतना भगवती देवी को मैं प्रणाम करता हूँ।

नित्याकृपा स्वयं शक्ता रोगाणां च विनाशने।
तां नमामि चिदाकारां चिच्छक्ति चित्स्वरूपिणीम् ।। ॐ ।।

रोगों के विनाश के लिये जो अपनी कृपा से स्वयं समर्थ है, उस चिदाकारा चित्तस्वरूपिणी चित शक्ति को मैं प्रणाम करता हूँ।। ॐ ।।

अधुनाऽस्मिन् प्रकरणे केवलं चित्तोद्भवान् रोगान् विनाशयितुं परिहरणाय किञ्चिन्निगद्यते।।

अब इस प्रकरण में केवल चित्तोद्भव रोगों के विनाश और परिहार के लिये कुछ कहा जाता है।

मनसस्तु स्थितिः प्रोक्ता संकल्पाकल्पनात्मिका।
तद्भिन्ना या च संसक्तिः चित्तजा चिन्मयी च या।।

मनका स्वभाव तो संकल्प और विकल्प करने वाला होता है। उससे भिन्न जो आसक्ति है, वह चित्तज कही जाती है।

भावनां प्रतिबिम्वं च या वृत्तिस्तु पुनः पुनः।
गृह्णाति द्रव्य-भावेषु पदार्थेषु च तत्परा।।

जो वृत्ति बारम्बार द्रव्य एवं पदार्थों के प्रतिबिम्ब को ग्रहण करने में लगी रहती है।

सा जन्यात्मा सदा सक्ता संसारबोधभाविका।
विम्बाकारा च या वृत्तिः चितिशब्देन व्याहृता।।

वह बार-बार उदित होती हुई संसार के नाना बोधभावों में आसक्त होती चली जाती है। उसी विम्बाकारा वृत्ति को चिति शब्द से कहा गया है।

चित्तजान् सकलान् रोगान् ध्यानेनैव विनाशयेत् ।
तदर्थमौषधं नैव मन्त्रं चैव क्वचित् क्वचित् ।।

चित्तज सभी रोगों को ध्यान-योग द्वारा विनष्ट कर देना चाहिये। उसके लिये मन्त्र और औषधि भी कहीं कहीं प्रयुक्त हुआ करते हैं।

ध्यानेन चित्तस्य समस्तरोगान् विनाशयेद् यः सफलः सुसाधकः।
तदैव सर्वं दृढरूपकेण सुसाधनायां सुमतिर्भवे च।। ॐ ।।

जो श्रेष्ठ साधक ध्यान से ही समस्त चित्तज रोगों का विनाश कर देता है वही सफल है। उसी स्थिति में दृढ़रूप से साधना में साधक की बुद्धि सदा लगी रहती है।

जागृता या च वै ज्ञाता दशा स्वप्नसमुद्भवा।
तद्भिन्ना या सुषुप्तिश्च तत्र चित्तस्य संस्थितिः।।

एक दशा जागृत है, दूसरी स्वप्न दशा है और सुषुप्ति दशा इन दोनों से भिन्न है और इसी सुषुप्ति दशा में चित्त की संस्थिति होती है।

तदैव चित्तसम्भूतिः भावधारां प्रकर्षति।
तत्रैव सर्वरोगाञ्च प्रादुर्भूतान् करोति सा।।

चित्त की उत्पत्ति वहीं से होती है और वहीं से भावधारायें बढ़ती हैं, वहीं से चित्तज सारे रोग साधक के चित्त में प्रादुर्भूत होते हैं।

अत एव च तान् रोगान् क्लेशान् नानाविधान् परान् ।
विनाशयेन्महाप्राज्ञः योगविद् ध्यानसंस्थितः।।

इसलिये नाना प्रकार के छोटे बड़े चित्त के रोग और क्लेशों को योग वेत्ता साधक ध्यान में संस्थित होकर विनष्ट करता रहे।

ध्यानेन सर्वांश्च परांश्च रोगान् विनाशयेद् यो मतिमान् ध्रुवं ततः।
योगेन ध्यानस्य महास्थितिः सदा आयाति तत्रैव विधीयतां शुभम् ।।
भावात्मकं बोधमनन्तबोधकं चित्तस्य यद्रोगविनाशकं स्मृतम् ।।

जो साधक छोटे बड़े सभी रोगों को ध्यान द्वारा ही विनष्ट करदे वही बुद्धिमान् है। ध्यानयोग के निरन्तर अभ्यास से साधक में यह स्थिति स्वयं आ जाती है। अतः इसी ध्यान-योग में तत्पर बने रहो।

ध्यानयोग भावात्मक बोध देता है और चित्त में रोगों को दूर कर देता है।

चित्तजारोगाः बहुविधाः भवन्ति। सर्वेऽपि ते विशेष-हेतुकाः। पदार्थेषु द्रव्येषु च या आसक्तिः, या संसक्तिः सा च संस्कार-बोध समुद्भूता चित्तस्य वृत्ति विशेषा तामेव विशेषवृत्तिं समादाय मनस्तत्रासक्तिं गच्छति।।

चित्तज रोग बहुत प्रकार के होते हैं। उन सबके अलग अलग विशेष कारण भी होते हैं। पदार्थ और द्रव्यों में जो आसक्ति होती है, वह संसार के बोध से पैदा होती है। और वह चित्त की विशेष वृत्ति है, उसी विशेष वृत्ति को लेकर मन उसमें आसक्ति किया करता है।

अतएव तन्मात्रिकं चित्तस्य वृत्तिं निवारयेद् धीमान्। तच्च ध्यानेन मन्त्रप्रयोगेण च। ध्यानं त्रिविधं प्रोक्तम् । तत्रैव प्रारम्भिक काले भावबोधनं द्वितीयकोट्यां तन्निवारकं तृतीयरूपेण तद्वस्थितम् अतएव चित्ते समागते प्रतिबिम्बात्मके भावे तत्रैव सन्निवेशयेत् ।।

इसलिये बुद्धिमान साधक चित्त की उस संसार में आसक्त वृत्ति का निवारण कर दे। वह ध्यान से अथवा मन्त्र प्रयोग से होता है। ध्यान तीन प्रकार का कहा गया है। ध्यान के प्रारम्भ में भाव-बोधन होता है ! दूसरी कोटि में उसका निवारण होता है, और तृतीय कोटि में उसी में स्थित हो जाता है। अतः चित्त में प्रतिबिम्ब रूप में जो भाव आवें उन्हें वहीं जमा दो।

तदर्थं च समये समये कदाचित् कदाचित् किंचित् किंचित् मुद्रापि उपयोज्या। उपयोगवती च भवति। तत् सर्वं व्याख्यायते।। ॐ ।।

उसके लिए कभी कभी कहीं कहीं समय समय पर मुद्राओं का प्रयोग कर लेना चाहिए। वह बड़ी उपयोगी रहती है। उसकी अब व्याख्या की जायेगी।

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। चित्त से सम्बन्ध रखने वाले विक्षेप के कारण बने हुए जो रोग हैं, उन रोगों के विनाश के लिये उपाय और प्रयोग बताया जा रहा है जिसके कारण चित्त में होने वाले विरूद्ध धर्म वाले क्लेश भी नष्ट हो जाते हैं। चित्त जागृत अवस्था में और स्वप्न अवस्था में काम नहीं करता है। सुषुप्ति अवस्था में ही वह विशेष रूप से अपनी भावधाराओं को इधर उधर आकर्षण में लाता है। ये जो पदार्थों में और द्रव्यों में आसक्ति का भाव है यह आसक्ति का भाव चित्त की संस्कारभूमि का फल है। इससे मन का विशेष लगाव नहीं होता है। जब चित्त के विक्षेपात्मक संस्कार उत्पन्न होते हैं, तब प्रत्येक पदार्थ में आसक्ति विशेष रूप से बढ़ जाती है और उस आसक्ति में ऐसा आकर्षण होता है कि वह मन की वृत्ति को भी जबरदस्ती खींच देती है। इस प्रकार से समस्त आसक्ति की वृद्धि हो जाती है। उस आसक्ति का विनाश करना ही चित्त के रोगों को दूर करना है। जब आसक्ति की भावना कम हो जायेगी, उसी को वैराग्य का प्रथम चरण कहते हैं। और जब ऐसा होने लगता है तब ध्यानावस्था और भी पुष्ट होने लगती है। तो चित्त के इन समस्त विक्षेप रूपों को नाश करने के लिए केवल मात्र ध्यान का उपयोग है। मन्त्र का उपयोग है। और कभी कभी किसी विशेष रूप वाली मुद्रा प्रक्रिया का भी प्रयोग है जिसके कर लेने से साधक के चित्तज रोगों का भी नाश हो जाता है। ये

चित्तज रोग संस्कार की भाव सत्ता पर दृढ़ होते हैं। इसलिये इनको समूल विनष्ट कर देना ही अच्छा होता है। यद्यपि ये विक्षेप जैसे मानसिक रोग होते हैं उतने भयंकर और कष्टकारक नहीं हैं, और शीघ्र ही दूर जाने वाले होते हैं तो इनके लिये जब भगवती महामाया बलवती हो जाती है और जब स्वतः वह ध्यानावस्था तक पहुंचने लगता है तब उसको भी पुष्ट और दृढ़ कर लेना चाहिए। उससे चित्त के विक्षेप, चित्त के रोग नष्ट होने लगेंगे। इसीलिये शक्ति सम्पन्न होने की आवश्यकता होती है कि ध्यान में आ जाने के कारण चित्त के विक्षेप भी सदा ही दूर होने लग जांय और इसके लिए अन्य प्रकार से फलस्वरूप में जो कुछ भी बताया जायेगा, साधक को उसका समुचित रूप से उपयोग और प्रयोग करके अनुभूति कर लेनी चाहिये, जिससे कि चित्त के सभी रोग कभी भी पीड़ित न कर सकें। ध्यान और वैराग्य दोनों में पुष्टि होती चली जाय, और उसके पश्चात् मान क तुष्टि और आत्मिक तुष्टि का भी प्रश्न स्वतः हल हो जायेगा। इसलिये चित्तज रोगों दूर करने का विधान बताया जा रहा है। उसकी जो विशेषतायें होंगी उनकी व्याख्या की जायेगी।। ॐ ।।

हरि ॐ तत् सत् ।। ॐ ।।

कात्यायनीं महामायां कान्तकांशुष्ककामिनीम् ।
कायाधारं महाधारं या वृणोति नमामि ताम् ।।

हरि ॐ तत् सत् ।। ॐ ।। महामाया कत्यायनी भगवती को प्रणाम है, जो शुष्क आवरण धारण करने की कामना रखती है और शरीर का महाआधार लेती है।

कात्यायनीं महाशक्तिं कायस्थां कायसम्भवाम् ।
सकलां सारभूतां च तां नमामि करालिकाम् ।।

काय में स्थित, काय में सम्भूत करालिका, सारभूता कात्यायनी महाशक्ति को मैं प्रणाम करता हूं।

अस्मिन् प्रकरणे चित्तजरोगाणां विनाशाय यत् किञ्चिद् भाष्यते तदपि ध्येयम् ।

इस प्रकरण में चित्तज रोगों के विनाश के लिये जो कुछ कहा जा रहा है उस पर भी ध्यान देना चाहिये ।

ये वै सन्ति महादोषाः चित्तजाश्चित्तरुपकाः।
संश्लिष्टा मनसा सार्धं शक्यन्ते नैव तत् क्वचित् ।।

चित्त रुप में रहने वाले जो भी चित्तज महादोष हैं और जो मन के साथ संश्लिष्ट होकर रहते हैं, उनका विवेचन करना कभी कभी कठिन हो जाता है।

पृथक् कर्तुम् विशेषेण जानन्ति केऽपि कोविदः।
जानन्ति कोविदः केचित् तद्विश्लेषणमुत्तमम् ।।

उनको पृथक् पृथक् करके बताना बड़े निपुण ज्ञाता ही जानते हैं और उनका पृथक-पृथक विश्लेषण कर देते हैं।

तदैव चित्तजान् रोगान् जानन्ति च बुधाः स्वयम् ।
समस्ता श्चित्तजाः रोगाः असम्भूतिसमुद्भवाः।।
सम्भूतिविषयास्तेतु कर्तव्याः भूतिमिच्छता।।

जानकार लोग तभी चित्तज रोगों को समझ पाते हैं जब उनका विश्लेषण हो। यों सभी चित्तज रोग अविद्या के कारण उत्पन्न होते हैं।

कल्याणेच्छुक साधक को चाहिये कि उन्हें वे शुद्ध विद्या के सम्मुख रख दे।

चित्तजाः रोगाः पृथक् रूपेण पृथक् करणीया भवन्ति। सर्वे च समुचितरूपेण पारयितुं न शक्नुवन्ति। मानिसकाः रोगाश्चित्तजा वा रोगाः संश्लिष्टाः भवन्ति तत्परिच्छेदः न केनापि कर्तुं शक्यते।।

चित्तज रोग पृथक् रूप में पृथक् करने पड़ते हैं। उन्हें भली प्रकार पृथक करना बड़ा कठिन होता है। क्योंकि मानसिक और चित्तज दोनों रोग परस्पर संश्लिष्ट रहते हैं। उनका वर्गीकरण कोई विरला ही कर सकता है।

तत्रैव पूतबुद्धयः दृढमतयः मनीषिणः एव विश्लेषणं कर्तुं शक्नुवन्ति, तथापि चित्तजाः रोगाः तदैव विनाशमुपगच्छन्ति यदा चित्तस्य लयावस्था समायाति। यदि चेत् सा न समायाति चित्तजाः दोषाः सावशेषाः सन्ति। तान् रोगानपसरयितुं केवला कात्यायनी मुद्रा[२०] विधेया।।

फिर भी पवित्र बुद्धि वाले मनीषी लोग उनका विवेचन कर ही लेते हैं। फिर भी चित्तज रोगों का विनाश तभी होता है जब चित्त लयावस्था में पहुंचता है। यदि लयावस्था नहीं आती है तो चित्तज रोग बने ही रहते हैं। उन रोगों के विनाश के लिए केवल कात्यायनी मुद्रा का उपयोग कर लेना चाहिये।

कात्यायिनी महामुद्रा चित्तरोगविनाशिनी।

चित्तजान् सकलान् रोगान् विनाशयति सा ध्रुवम् ।।

यह कात्यायनी मुद्रा चित्त रोगों का विनाश करने वाली है। यह मुद्रा अवश्य ही समस्त चित्तज रोगों को निश्चयात्मक रूप में विनष्ट कर देती है।

तस्मात् साधक श्रेष्ठेण मुद्रा कात्यायनी क्वचित् ।

क्रियारूपेण सा मुद्रा साधनीया तु ऊर्ध्वगा।।

इसलिये उत्तम साधक कभी कभी इस कात्यायनी मुद्रा का क्रिया रूप में अभ्यास करके सिद्ध कर ले। यह मुद्रा साधक की उन्नति कर देती है।

एका मुद्रा च सा मुद्रा कात्यायनीति सा स्मृता।

तस्याः प्रयोगमात्रेण चित्तजाः सर्वरोगकाः।।

विलीयन्ते सदा चित्तं लयं गच्छति सत्वरम् ।

अत एव च सा मुद्रा प्रयोक्तव्या सुसाधकैः।।

यह एक अकेली कात्यायनी मुद्रा महत्त्व पूर्ण है जो समस्त चित्तज रोगों का विनाश प्रयोग मात्र से कर देती है।

इस मुद्रा से चित्त शीघ्र ही लयावस्था में चला जाता है, अतः अच्छे साधकों को सदा ही इस मुद्रा का प्रयोग कर लेना चाहिये।

तस्याः प्रयोगमात्रेण नश्यन्ति चित्तजाः सदा।

रोगाश्चैव महारोगाः सा मुद्रारोगनाशिका।। ॐ ।।

तां मुद्रां सफलां मुद्रां गोरक्षो दर्शयष्यति।।

इस मुद्रा के प्रयोग मात्र से चित्तज सभी रोग, महारोग सदा के लिये विनष्ट हो जाते हैं। यह मुद्रा इस भाँति रोग विनाशिका कही गई है।। ॐ ।।

इस मुद्रा को समग्र क्रिया के रूप में गोरक्ष स्वयं करके दिखा देंगे।

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। व्याघात संहति प्रकरण में चित्तज रोगों के विनाश का उपाय बताया जा रहा है। ये चित्तज रोग ऐसे हैं जो मानसिक रोगों के सदृष ही हैं और कभी कभी साधारण साधक, भोले भाले साधक, अनुभवहीन साधक सबको एक ही समझ लेते हैं। और ठीक भी है और समझना भी चाहिये। क्योंकि अनुभव सिद्ध ही जान सकता है, तत्त्व क्या है, सार क्या है, परन्तु इसका भी अनुभव होना ही चाहिये। इसलिये बताया जा रहा है कि चित्त के दोष वे दोष होते हैं जो असम्भूति से उत्पन्न होते हैं। अर्थात् अविद्या से उत्पन्न होते हैं। अर्थात् अस्वरूप में स्वरूप को देखने के कारण होते हैं। और अतत्त्व में तत्त्व को देखने का कुछ संस्कार बना हुआ होता है जो चित्तज रोग का रूप धारण करता है। तो उसको पृथक् पृथक करके, उसका विश्लेषण करके, उसको भी दूर करने का प्रयोग करना, केवल मात्र पहिले तो सीधी सी बात है। भाई, कात्यायनी मुद्रा को लगा जाओ। कात्यायनी मुद्रा ऐसी मुद्रा है जो महामुद्रा कही जाती है। इस कात्यायनी मुद्रा में पाँच मुद्रायें एकत्र होकर के अपना अर्धरूप दिखाती हुई कात्यायनी की पूर्णता करती हैं। प्रत्येक मुद्रा का एक एक अंश कात्यायनी मुद्रा में आता है और तब कात्यायनी चित्त को लय की अवस्था में ले जाती है और चित्त के रोगों को दूर कर देती है। तो कात्यायनी मुद्रा का प्रयोग कर लेना साधक के लिये उत्तम होता है। क्योंकि उससे चित्तज रोगों का विनाश होता है और फिर उसे वहाँ यों समझने की आवश्यकता नहीं रहती है कि ये मानसिक रोग हैं या चित्तज रोग हैं। उसे तो केवल इस बात का अनुभव हो जाना चाहिये कि उसका चित्त लय में जा रहा है कि नहीं। चाहे वह साधन में हो या साधन में न हो। अरे ! उसकी जो भावधारा है वह ऐसी बन जाती है कि सब ठीक ही है। ऐसा भी ठीक है, वैसा भी ठीक है। यह भी ठीक है। वह भी ठीक है। बस ठीक है। ठीक ही ठीक है। और जिस वक्त वह साधना में बैठा होता है उस वक्त उन पाँच मुद्राओं के मेल से उसमें वह सोहं की भावना कुछ काल के लिये उदित होकर के वह भी लीन हो जाती है। तो भाई ! इस मुद्रा को देखो। इस प्रकार से कर लेना। समझ लेना। अनुभव में लाना। ऐसा कर लेना। यह देखो। यह बैठ गये। और इस तरह से बैठ करके यों कर

लिया। थोड़ा से नीचे थोड़ा सा आगे पीछे हिले तो फिर इसमें सबसे पहिले अर्धझंपनी का रूप आयेगा। ऊपर उठे नीचे हो गये। तो जो पैर का तल भाग है वह दबा हुआ होता रहेगा। इस प्रकार करना। एक बार, दो बार, तीन बार कर लेना। न हो तो यों बैठ जाना। और उसके पश्चात् रेचक पूरक करके ऊपर नीचे हिल लेना। ऐसी स्थिति कुछ देर रहेगी, और फिर अर्धस्कन्दिनी लग जायेगी। इसमें ऐसा हो जायेगा। सिर भी और गात भी हिलें। और फिर वह अर्धचिद्रोधिनी का स्वरूप कूल्हा चलाना चल पड़ेगा और फिर इसको थोड़ी देर करते रहना। इसमें भी रेचक पूरक और कुछ नहीं। कुम्भक कर लेना ऐसी स्थिति में जब ऊपर नीचे हो रहे होंगे तब श्वास में सोहं की ध्वनि स्वयं अपने आप पहिचान में आने लगेगी। पहिचान लेना। कुम्भक लगा जाना। जितनी देर तक रहे रहना। और इसी में जिसे भद्रकर्पूरिका कहते हैं; कर्पूरिका तो पूर्व में बताई जा चुकी है। भद्र पूर्वक कर्पूरिका भी हो जायेगी। और इसी में तुम्हारी घूर्णिका भी चलेगी। इसमें बड़ा आनन्द आयेगा। चित्तज रोगों का स्खलन प्रारम्भ हो जायेगा। अभ्यास हो जोयगा और इसके पश्चात् जब चित्त में विशेष आनन्द आने लगे तो चाहे इस रूप में हो सकता है। घुटनों के ऊपर माथे के भाग को रख सकते हो। टेक दो। और ऐसा नहीं हो सकता है तो (नीचे जमीन में झुक जाओ। और ऐसा भी नहीं तो फिर जरा उठ करके नीचे को हो जाओ। चाहे हाथ कैसे भी रहें, यह भद्र घूर्णिका हो जायेगी और कात्यायनी मुद्रा चित्तज रोगों को दूर कर देगी। और लय की अवस्था में आकर आनन्द की अनुभूति होने लगेगी। और क्या चाहिये। तुम्हारे अभीष्ट की सिद्धि में देर नहीं रह जायेगी। तो इस कात्यायनी मुद्रा का प्रयोग कर लेना।। ॐ ।।

हरि ॐ तत् सत् ।।

अनित्यं नित्यरूपेण नित्यं नित्यात्मनित्यके।

पश्यन्ति ध्यानरूपेण योगिनस्तत्त्ववेदिनः।।

हरि ॐ तत् सत् ।। ॐ ।। तत्व द्रष्टा योगी लोग नित्यात्मक वस्तुओं में अनित्य वस्तुओं को और अनित्य वस्तुओं के भीतर नित्य वस्तुओं को ध्यान के द्वारा पृथक् पृथक् देख लेते हैं।

तेषां च वन्दनीया या शुभ्रा शुभ्रा महामहा।

तां नमामि महामायां महाशक्तिं महोन्नताम् ।। ॐ ।।

ऐसे तत्व दृष्टाओं द्वारा जो वन्दनीय है, महाशुभ्र वर्ण वाली और शुभ्र सतोगुणी स्वभाव वाली सर्वश्रेष्ठ महामाया महाशक्ति भगवती को मैं प्रणाम करता हूं।

सरला सुस्मिता या च सारल्येन सुशोधिका।

वक्रा सा सरला देवी सरलं प्रापयेच्च मे।।

सरल स्वभाव वाली, मन्दहास से भरी, सरलता से साधक का शोधन कर देने वाली वह सरला देवी रहस्यमयी होने के कारण कुटिल प्रतीत होने वाली मुझे सरलभाव प्रदान करें।

अस्मिन् व्याघात-संहति प्रकरणे अपरमेकमुपायं प्रयोगं च हितकाङ्क्षया साधकानां वदामि। येन च समस्ताश्चित्तजा रोगाः विनश्यन्ति। चित्तजाश्चित्त-समुद्भूता-स्तेषां विवेचनं कर्तुं सूक्ष्मरूपेण यदि शक्यते तदा ज्ञायते यावच्छारीरिकी स्थितिः मानसिकीं सर्वाविनाशबितुमेते चित्तजादोषाः कारणत्वेन न स्वीकृताः सन्ति।।

इस व्याघात-संहति प्रकरण में एक दूसरा उपाय व प्रयोगों को साधकों की भलाई की इच्छा करके बताती हूं, जिस से साधक के समस्त चित्तज रोग विनष्ट हो जाते हैं। चित्त में उत्पन्न रोगों को चित्तज कहते हैं। यदि सूक्ष्म रूप में उन दोषों का विवेचन किया जाय तो ज्ञात हो जोयगा कि शारीरिक और मानसिक सभी प्रकार के रोगों के कारणभूत ये चित्तज दोष नहीं होते हैं और उनका विनाश भी चित्तज दोषों के विनाश होने पर नहीं होता है।

चित्तजाः प्रवलारोगाः सर्वत्रविघ्नकारिणः।

सूक्ष्माश्च सूक्ष्मरूपेण तस्मात्ते त्रिगुणात्मकाः।।

चित्तज प्रबल रोग जो सर्वत्र विघ्नकारी होते हैं बड़े सूक्ष्म होते हैं और सूक्ष्म होने के कारण त्रिगुणात्मक हैं।

भूत्वा, निरीक्ष्य ज्ञात्वा च तेषां नाशो विधीयताम् ।

अन्यथा च कृतं सर्वं व्यर्थमेव भविष्यति।।

अतः उन्हें भलीभांति देखकर उनका विनाश कर लेना चाहिये। अन्यथा सब योग साधन किया कराया व्यर्थ और निष्फल हो जायेगा।

सूक्ष्मा ऐते विकारास्तु विकारमानयन्ति ते।

अत एव च एतेषां रोगाणां विजये पुरा।।

कात्यायनी मया प्रोक्ता अधुना मन्त्रपीठिका।

प्रोच्यते ज्ञायतां तां च ज्ञात्वा त्वं च सुखी भव।।

ये सूक्ष्म विकार पैदा कर देते हैं। इसलिये इन रोगों के विनाश के लिये पहिले–

मैंने कत्यायनी मुद्रा बताई थी। अब मन्त्र–पीठिका बताई जा रही है, उसे जान लो और जानकर सुखी बन जाओ।

"ॐ चित्तात्मिकां महाचित्तिं चित्तस्वरूपिणीं आराधयामि, चित्तजान् रोगान् शमय शमय ठं ठं ठं स्वाहा, ठं ठं ठं स्वाहा"। अस्य मन्त्रस्य प्रयोगेणापि चित्तजा दोषाः विनश्यन्ति। अस्य मन्त्रस्य प्रयोगः रात्री शयनकाले शय्यायां गतेन केनापि प्रकारेण प्रोच्चारणीयं मन्त्रपीठिका एषा।

"ॐ चित्तात्मिकां महाचित्तिं चित्तस्वरूपिणीं आराधयामि, चित्तजान् रोगान् शमय शमय, ठं ठं ठं स्वाहा ठं ठं ठं स्वाहा ठं ठं ठं स्वाहा"। इस मन्त्र के प्रयोग से चित्तज दोष विनष्ट हो जाते हैं। इस मन्त्र का प्रयोग रात्रि में शयन काल में बिस्तरे पर लेट कर हर हालत में जप पूर्वक करना चाहिये, यह केवल उच्चारण करने की मन्त्रपीठिका है।

पीठमन्त्रं पीठस्थं करोति, तस्मात् शयने चित्तवृत्तिं निवारयति। चित्तं च निर्मलं करोति। एतदपि करणीयम् । न चात्र संख्यानियमः। न चात्र अन्यदपि किञ्चिद् विशिष्टरूपेण करणीयं भवति। अनेन मन्त्रेण सुनिश्चितं साधकानां चित्तजाः दोषाः नाशमुपगच्छन्ति।। ॐ ।।

पीठ मन्त्र पीठ में स्थित कर देता है। इसलिये शयनकाल में चित्तवृत्ति का निवारण करता है। चित्त को निर्मल कर देता है। इसमें संख्या का कोई नियम नहीं है। इस प्रयोग में विशिष्ट रूप में कुछ करणीय भी नहीं है। इस मन्त्र द्वारा सुनिश्चित रूप में साधकों के चित्तज दोष विनष्ट हो जायेंगे।। ॐ ।।

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। इस प्रकरण में जैसा कि बताया जा रहा है, चित्त के मन्त्र होते हैं। चित्त के दोष होते हैं। चित्त के रोग होते हैं। वे बड़े सूक्ष्म होते हैं। उनका सूक्ष्मरूप से विवेचन करना चाहिये। जानना चाहिये, उनको पहिचानना चाहिये। वे चित्त के दोष ऐसे हैं जो मन को भी, शरीर को भी और अन्य प्रकार के जितने भी तत्त्व बिन्दु हैं, इनको विचलित कर देते हैं। कारण यह है कि मनकी आसक्ति तो प्रबल रूप से प्रत्यक्षानुभूति का विषय बन जाती है। पर जो चित्त की गुप्त वृत्तियां हैं, ये समय समय पर जागृत होकर सूक्ष्मरूप से आसक्ति उस सूक्ष्मसत्ता को बढ़ा देती है जिससे मनुष्य एक ऐसे जाल में फँस जाता है कि फिर वह ऐसा समझता है कि सब मेरे ही मन के कारण है। पर उसमें मूल कारण भीतर से चित्त के दोष होते हैं। इनको विक्षेप का मूल कारण बताया गया है। तो मन भी, शरीर भी, बुद्धि भी विक्षेप में न आ जाय तो इन चित्त के दोषों को विनाश कर दो। ये हैं सूक्ष्म, पर उभय प्रभाग के रूप में प्रभावित जिस वक्त हो जाते हैं, आकम्पित कर देते हैं, आसक्तियों को सांसारिक रूप में बदल करके बुद्धि और मन का विषय बना करके उन्हें अहंकार के रूप में प्रकट करवा देना प्रारम्भ कर देते हैं। इसलिये अहंकार की मूल उद्भूति का कारण भी ये ही होते हैं। अतः इनको विनाश करना ही श्रेयस्कर होगा। और उसके लिये जैसी कात्यायनी मुद्रा बताई गई थी, उसका प्रयोग बताया गया था, उसका फल बताया गया था, वैसे ही यहां भी मन्त्र–पीठिका बताई गई है। इस मन्त्र में जो अन्त में ठं का प्रयोग किया गया है वह स्थिर करणार्थ है, बिदूरी करणार्थ है, उसमें भाव–रहस्य भरा हुआ है। वह रहस्य भी कभी प्रकट हो जायेगा। किन्तु सम्प्रति साधक को मां के दिये हुए, मां की शक्ति से बने हुए आये हुए मन्त्रपीठिका, ऐसा यत्नरहित करने का जो उपाय है, उसे अपनाना चाहिये और शयन के समय जब अपने शयनासन पर जाय, सबसे निवृत्त हो जाय, जब तक निद्रा न आवे तब तक इसका प्रयोग करले। निद्रा आने पर स्वतः अपने आप छूट ही जायेगा। तो ऐसा मन्त्र है जो चित्त को निर्भय बना देगा, और उसकी वृत्तियों में परिष्कार होना प्रारम्भ हो जायेगा तो मार्ग में प्रसन्नता के साथ चलता चला जायेगा। साधक ! मार्ग में बाधा नहीं होगी।

१२-२-६३ सांयकाल।।१५३।।

हरि ॐ तत् सत् ।।

शरणागतं च या देवी सदा रक्षति रक्षति।

सर्वभावेन तां भव्यां भावयामि भवां सदा।।

हरि ॐ तत् सत् । जो देवी सदा शरणागत की अवश्य ही रक्षा करती है, उस भव्य देवी का मैं सर्वभाव से ध्यान करता हूँ।

भव्या भावोदया या च भव्यभाव-विबोधनी।

भव्या सा भावशुद्धि तु करोतु च पुनः पुनः।।

जो भव्य है, भावोदय करने वाली है, भव्य भावों का विबोध देने वाली है, वह देवी निरन्तर मेरी भावशुद्धि करती रहे।

चित्तस्य सर्वरोगान् या ध्यानेनैव विनाशयेत् ।

ध्यानमुद्रात्मिकां तां च ध्यानगम्यांभजाम्यहम् ।। ॐ ।।

जो माँ चित्त के सभी रोगों को ध्यानमात्र से विनष्ट कर देती है, उस ध्यानगम्या ध्यान-मुद्रात्मिका भगवती को मैं प्रणाम करता हूँ।

चित्तजान् सकलान् रोगानपहन्ति च सा नित्या भगवती मे प्रसीदतु चित्तजान् रोगान् नाशयितुं यन्मन्त्रात्मकं वा यन्मुर्द्राधिका व्यूहं यत् प्रोक्तं तत्रैव साधनाकाले अनुभूतिपरं च भविष्यति। अनुभवे च समागमिष्यति। अपरं च।।

जो नित्याभगवती चित्त के सभी रोगों को दूर करती है, वह मेरे ऊपर प्रसन्न हो। चित्तज रोगों के नाश के लिये जो कुछ मन्त्रात्मक उपाय और घूर्णिका व्यूह की क्रियायें बताई थीं, साधक को साधनाकाल में अनुभूति में आ जायेंगी। इस पर और भी कहा जाता है।

या मुद्रा सारिका मुद्रा मुद्रा[२१] विस्थापिका तथा।

पूर्वं वै गदिता या च तस्या नित्या क्रिया शुभा।।

जो सारिका मुद्रा बताई थी और विस्थापिका मुद्रा बताई थी, ये दोनों ही चित्तज रोगों की शान्ति के लिए बहुत लाभप्रद हैं।

जायते चित्तजान् रोगानपहर्तुं समर्थिका।

अत एव च लाभार्थं चित्तदोष विनिर्मलम् ।।

कर्तुं च सारिका मुद्रा कर्तव्या च सुसाधकैः।

विस्थापिका च सा तत्र मुद्रा प्रोक्ता विशेषतः।।

ये दोनों मुद्रायें चित्तज रोगों का विनाश् करने में पूर्ण समर्थ हैं। इसलिये लाभ प्राप्त करने के लिये और चित्तदोषों को निर्मल करने के लिये-

अच्छे साधक को सारिका मुद्रा करनी चाहिये। इसके लिए विस्थापिका मुद्रा भी विशेष रूप में बताई गई है।

तस्याश्च सम्प्रयोगेण कार्यसिद्धिः प्रजायते।

नश्यन्ति चित्तजाः दोषास्तस्मात्तां चक्रियान्विताम् ।।

कुर्याच्चैव स्वयं पूर्वसिद्धं भविष्यति।

अथवा मूलरूपा या मूला च मूलसम्भवा।।

उसके प्रयोग से भी कार्यसिद्धि हो जाती है। चित्तज रोग दूर हो जाते हैं। इसलिये इन क्रियान्वित मुद्राओं को स्वयं ही कर लेना चाहिये तो सब सिद्ध हो जायेगा। अथवा मूलाधार में स्थित मूलरूपा में उद्भूत-

मूलाधारा महाशक्तिः तस्याश्चाराधनं शुभम् ।

मन्त्ररूपेण कर्तव्यं पूर्णोत्थानं भविष्यति।।

जो महाशक्ति है, उसकी आराधना भी मन्त्ररूप में करनी चाहिये, जिससे शक्ति का पूर्ण उत्थान हो जायेगा।

यदा वै चित्तजादोषाः विनश्यन्ति प्रयोगतः।

तदा वैराग्यभावस्य प्रादुर्भावो भविष्यति।।

जब चित्तज दोष उपर्युक्त उपायों से दूर हो जायेंगे तब वैराग्य भाव का प्रादुर्भाव होने लग जायेगा।

लक्षणं शुभदमेतत् ज्ञातव्यं च बुधैः सदा।

विरक्तिभावमापन्नं चित्तं च मोदमाश्रितम् ।।

बुद्धिमान् साधक जाने कि यह शुभलक्षण है। चित्तज दोष शान्त होने पर चित्त विरक्ति भाव धारण करके प्रसन्नता से भर जाता है।

जायते सर्वदा तस्य यस्य दोषाः न संस्थिताः।

अत एव च दोषाणां नाशार्थं गदितं च यत् ।।

सम्यक् रूपेण तत् सर्वं करणीयं हितैषिणा।। ॐ ।।

जिस साधक के चित्त में दोष नहीं रह जाते हैं उसका चित्त विरक्ति पूर्ण और शान्त हो जाता है। इसलिये दोषों के नाश के लिये उपाय बनाये गये हैं। हितेच्छु को चाहिये कि भलीभाँति उन उपायों को करले।

मूलात्मिकां शक्तिमाराधयितुं मूलभूतमिदं मन्त्रकायं समुपस्थापनीयम् ।

मूलात्मिका शक्ति की आराधना के लिये मूलरूप इस मन्त्र काय को जपो।

ॐ लं पं दिव्यरूपं दिव्यस्वरूपं या धारयति सा धारा प्रसीदतु, तत्रस्थाश्चित्तजाः रोगाः विनश्यन्तु, इति मन्त्रकायस्य प्रयोगस्तदैव कर्तव्यः यदा सर्वतोभावेन गतिविच्छेदो भवेत् । नान्यथा कुर्यात् ।।

"ॐ लं पं दिव्यरूपं दिव्यस्वरूपं या धारयतु सा धारा प्रसीदतु, तत्रस्थाश्चित्तजाः रोगाः विनश्यन्तु।" इस मन्त्र का प्रयोग तभी करना चाहिये, जब शक्ति का नितान्त गतिविच्छेद हो जाय। अन्यथा इसका प्रयोग न करो। १०८ बार नित्य जपे सोते समय।

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। चित्त के दोषों को दूर करने के लये नाना प्रकार के उपाय और प्रयोग बताये गये हैं, इनका प्रयोग करने पर समस्त चित्तज दोष नष्ट हो जायेंगे। इसके पश्चात् किसी प्रकार की त्रुटि नहीं रहेगी। इसलिये साधक को सावधान होकर के जैसा कि बताया गया है सारिका और विस्थापिका का प्रयोग कर लेना चाहिये। उससे चित्तज दोषों का नाश होता है अथवा ऐसा भी होता है कि कभी कभी और किसी किसी रूप में विशेष रूप से सब कुछ होने पर भी गति अवरोध हो गया हो, शक्ति रुक गई हो, चित्त की दशा कुछ ऐसी हो गई हो कि उसमें डामाडोल की स्थिति आ गई हो। ऐसे समय में मूल मन्त्र काय का प्रयोग करके उस गति के अवरोध को दूर किया जा सकता है। तो यह मूलमन्त्रकाय केवल उन्हीं साधकों के लिये है जिनकी गति रुक गई हो। प्रत्येक साधक को यह कदापि नहीं करना चाहिये। कभी कभी उसे करने से उल्टा प्रभाव हो जाता है। अतः सावधानी से जान लेना चाहिये कि शक्ति की गति का अवरोध हो गया है, चित्त की गति का विक्षेप हो गया है, और विक्षेपों ने उसे पंगु बना दिया है। आसक्ति की भावना उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है, तो ऐसे समय में इस मन्त्रकाय का प्रयोग दो समय सायंप्रातः अवश्य कर लेना चाहिये और उच्चारण करता रहे। जब तक स्वयं चित्त में योगनिद्रा का उदय न हो जाय तो ऐसा करने से साधक को अपने कार्य में सिद्धि हो जायेगी। ये केवल ऐसे मन्त्र हैं जिनका सार्विक, सार्वजनिक प्रयोग नहीं होता है। इसको सुप्तोत्थित मन्त्र कहते हैं। सर्वसाधारण को यह मन्त्र नहीं करना चाहिये और इस प्रकार के करने पर अवश्य ही साधक के चित्त के रोगों का विनाश हो जायेगा। ये सब बातें इसलिये बताई जा रही हैं कि जिससे साधक सबल होकर, साधना में रत होकर परतत्त्व की प्राप्ति कर ले। चित्त के दोष विनष्ट हो गये हैं, इसका लक्षण यह होगा कि साधक की आसक्ति की भावना में कमी होती चली जायेगी और सर्वसम्पन्न होते हुए भी, सब कुछ विद्यमान होते हुए भी, उनका त्याग करके योग करने की भावना उसके अन्दर विद्यमान हो जायेगी, तो समझना कि चित्तजदोष सब नष्ट हो गये हैं। अथवा हो रहे हैं। इन लक्षणों के आधार पर समझना कि साधना बलवती हो रही है। ॐ ।

१३-२-६३ प्रातःकाल।।१५४।।

हरि ॐ तत् सत् । ॐ । ॐ ।

या शक्तिः शक्तिजन्या च सर्वसंघर्षशंकरी।

विजित्य दुर्गुणान् सर्वान् देवभावं ददाति या।।

हरि ॐ तत् सत् । ॐ । ॐ । जो शक्ति शक्ति से ही उद्भूत है और सभी संघर्षों में कल्याण करती है, और जो शक्ति समस्त दुर्गुणों को जीत कर देव भाव प्रदान करती है।

या च वै देवतारूपा देवभावोदयात्मिका।

सकलान् दोषसंघातान् विनाशयति या सदा।।

जो शक्ति देवतात्मिका है, तथा साधन में देवभाव का उदय कर देती है और समस्त दोषसमूह को विनष्ट कर देती है, उसे मैं प्रणाम करता हूँ।

चित्तज दोषापसारणाय एका मुद्रा श्रेष्ठतमा प्रोच्यते। सा च मुद्रा[२१] वासवी मुद्रा।।

चित्तज दोषों के अपसारण के लिये एक श्रेष्ठतम मुद्रा बताई जाती है और वह वासवी मुद्रा है।

या मुद्रा वासवी मुद्रा वासवेन समाश्रिता।

विजित्य सकलान् दैत्यान् यस्याः शक्तिं समाश्रितः।।

जो वासवी मुद्रा है उसका आश्रय वासव (इन्द्र) ने लिया था। जिस मुद्रा शक्ति से युक्त होकर इन्द्र ने समस्त दैत्यों पर विजय प्राप्त की थी।

वासवस्तेन अभ्यस्ता सा मुद्रा च पुनः पुनः।

तस्मात् सा वासवी मुद्रा बलदा दोषनाशिका।।

इस मुद्रा का इन्द्र ने निरन्तर अभ्यास किया था, इसलिये इस मुद्रा का नाम वासवी मुद्रा है। यह मुद्रा साधक को बल देने वाली और दोषों का नाश करने वाली है।

शक्तिदा स्थिररूपेण स्थिरत्वं च प्रयच्छति।

तस्मात्तां वासवीं मुद्रां ऊर्ध्वगां प्रियभाविकाम् ।।

यह मुद्रा स्थिर रूप से शक्ति देने वाली है और स्थिरता प्रदान करती है। इसलिये परम सुख देने वाली, साधक को ऊर्ध्वगति देने वाली इस वासवी मुद्रा का-

वासवीं च समाश्रित्य सर्वं सिद्धं भविष्यति।

तदा वै चित्तजा दोषा भविष्यन्ति न वै पुनः।।

मूलात्मिकां शक्तिमाराधयितुं मूलभूतमिदं मन्त्रकायं समुपस्थापनीयम् ।

मूलात्मिका शक्ति की आराधना के लिये मूलरूप इस मन्त्र काय को जपो।

ॐ लं पं दिव्यरूपं दिव्यस्वरूपं या धारयति सा धारा प्रसीदतु, तत्रस्थाश्चित्तजाः रोगाः विनश्यन्तु, इति मन्त्रकायस्य प्रयोगस्तदैव कर्तव्यः यदा सर्वतोभावेन गतिविच्छेदो भवेत् । नान्यथा कुर्यात् ।।

"ॐ लं पं दिव्यरूपं दिव्यस्वरूपं या धारयतु सा धारा प्रसीदतु, तत्रस्थाश्चित्तजाः रोगाः विनश्यन्तु।" इस मन्त्र का प्रयोग तभी करना चाहिये, जब शक्ति का नितान्त गतिविच्छेद हो जाय। अन्यथा इसका प्रयोग न करो। १०८ बार नित्य जपं सोते समय।

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। चित्त के दोषों को दूर करने के लये नाना प्रकार के उपाय और प्रयोग बताये गये हैं, इनका प्रयोग करने पर समस्त चित्तज दोष नष्ट हो जायेंगे। इसके पश्चात् किसी प्रकार की त्रुटि नहीं रहेगी। इसलिये साधक को सावधान होकर के जैसा कि बताया गया है सारिका और विस्थापिका का प्रयोग कर लेना चाहिये। उससे चित्तज दोषों का नाश होता है अथवा ऐसा भी होता है कि कभी कभी और किसी किसी रूप में विशेष रूप से सब कुछ होने पर भी गति अवरोध हो गया हो, शक्ति रूक गई हो, चित्त की दशा कुछ ऐसी हो गई हो कि उसमें डामाडोल की स्थिति आ गई हो। ऐसे समय में मूल मन्त्र काय का प्रयोग करके उस गति के अवरोध को दूर किया जा सकता है। तो वह मूलमन्त्रकाय केवल उन्हीं साधकों के लिये है जिनकी गति रूक गई हो। प्रत्येक साधक को यह कदापि नहीं करना चाहिये। कभी कभी उसे करने से उल्टा प्रभाव हो जाता है। अतः सावधानी से जान लेना चाहिये कि शक्ति की गति का अवरोध हो गया है, चित्त की गति का विक्षेप हो गया है, और विक्षेपों ने उसे पंगु बना दिया है। आसक्ति की भावना उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है, तो ऐसे समय में इस मन्त्रकाय का प्रयोग दो समय सायंप्रातः अवश्य कर लेना चाहिये और उच्चारण करता रहे। जब तक स्वयं चित्त में योगनिद्रा का उदय न हो जाय तो ऐसा करने से साधक को अपने कार्य में सिद्धि हो जायेगी। ये केवल ऐसे मन्त्र हैं जिनका सार्विक, सार्वजनिक प्रयोग नहीं होता है। इसको सुप्तोत्थित मन्त्र कहते हैं। सर्वसाधारण को यह मन्त्र नहीं करना चाहिये और इस प्रकार के करने पर अवश्य ही साधक के चित्त के रोगों का विनाश हो जायेगा। ये सब बातें इसलिये बताई जा रही हैं कि जिससे साधक सबल होकर, साधना में रत होकर परतत्त्व की प्राप्ति कर ले। चित्त के दोष विनष्ट हो गये हैं, इसका लक्षण यह होगा कि साधक की आसक्ति की भावना में कमी होती चली जायेगी और सर्वसम्पन्न होते हुए भी, सब कुछ विद्यमान होते हुए भी, उनका त्याग करके योग करने की भावना उसके अन्दर विद्यमान हो जायेगी, तो समझना कि चित्तजदोष सब नष्ट हो गये हैं। अथवा हो रहे हैं। इन लक्षणों के आधार पर समझना कि साधना बलवती हो रही है। ॐ ।

१३-२-६३ प्रातःकाल।।१५४।।

हरि ॐ तत् सत् । ॐ । ॐ ।

या शक्तिः शक्तिजन्या च सर्वसंघर्षशंकरी।

विजित्य दुर्गुणान् सर्वान् देवभावं ददाति या।।

हरि ॐ तत् सत् । ॐ । ॐ । जो शक्ति शक्ति से ही उद्‌भूत है और सभी संघर्षों में कल्याण करती है, और जो शक्ति समस्त दुर्गुणों को जीत कर देव भाव प्रदान करती है।

या च वै देवतारूपा देवभावोदयात्मिका।

सकलान् दोषसंघातान् विनाशयति या सदा।।

जो शक्ति देवतात्मिका है, तथा साधन में देवभाव का उदय कर देती है और समस्त दोषसमूह को विनष्ट कर देती है, उसे मैं प्रणाम करता हूँ।

चित्तज दोषापसारणाय एका मुद्रा श्रेष्ठतमा प्रोच्यते। सा च मुद्रा[२१] वासवी मुद्रा।।

चित्तज दोषों के अपसारण के लिये एक श्रेष्ठतम मुद्रा बताई जाती है और वह वासवी मुद्रा है।

या मुद्रा वासवी मुद्रा वासवेन समाश्रिता।

विजित्य सकलान् दैत्यान् यस्याः शक्तिं समाश्रितः।।

जो वासवी मुद्रा है उसका आश्रय वासव (इन्द्र) ने लिया था। जिस मुद्रा शक्ति से युक्त होकर इन्द्र ने समस्त दैत्यों पर विजय प्राप्त की थी।

वासवस्तेन अभ्यस्ता सा मुद्रा च पुनः पुनः।

तस्मात् सा वासवी मुद्रा बलदा दोषनाशिका।।

इस मुद्रा का इन्द्र ने निरन्तर अभ्यास किया था, इसलिये इस मुद्रा का नाम वासवी मुद्रा है। यह मुद्रा साधक को बल देने वाली और दोषों का नाश करने वाली है।

शक्तिदा स्थिररूपेण स्थिरत्वं च प्रयच्छति।

तस्मात्तां वासवीं मुद्रां ऊर्ध्वगां प्रियभाविकाम् ।।

यह मुद्रा स्थिर रूप से शक्ति देने वाली है और स्थिरता प्रदान करती है। इसलिये परम सुख देने वाली, साधक को ऊर्ध्वगति देने वाली इस वासवी मुद्रा का-

वासवीं च समाश्रित्य सर्वं सिद्धं भविष्यति।

तदा वै चित्तजा दोषा भविष्यन्ति न वै पुनः।।

अवलम्बन लेकर सब कुछ सिद्ध हो जायेगा। इसके प्रभाव से चित्तज दोष फिर से पैदा नहीं होंगे।

साधको बलसम्पन्नः शान्ति चैवाधिगच्छति।

सा शान्तिरात्मसम्भूता पररूपा परात्परा।।

इस मुद्रा के प्रभाव से साधक बल सम्पन्न बन जाता है और शक्ति प्राप्त कर लेता है। इस मुद्रा से प्राप्त आत्मशक्ति सम्बन्धिनी शक्ति बहुत श्रेष्ठ और परात्पर होती है।

तामेव शान्तिमाधातुं यतन्ते योगिनो जनाः।

अत एव विधातव्या वासवी वासवोपमा।।

उसी परमशान्ति के धारण करने के लिये योगीजन प्रयत्न किया करते हैं। अतएव वासव के समान शक्तिसम्पन्न इस वासवी मुद्रा को करते रहना चाहिये।

मुद्रा सदैव सा मुद्रा वाञ्छितार्थफलप्रदा।

मुद्राप्रयोगे चित्ते तु प्रोच्चार्यं मन्त्रव्यूहकम् ।।

यह मुद्रा सदैव वाञ्छित अर्थ को और अभीष्ट फल प्रदान कर देती है। इस मुद्रा के प्रयोग-काल में एक मन्त्रव्यूह का उच्चारण करना चाहिये।

एतादृशं पुनस्तेन साधकेन सुनिश्चितम् ।। ॐ ।।

"जागृता या महाशक्तिः सर्वदोषविनाशिका।

समस्तान् चित्तजान् दोषान् सा मे हरतु सत्वरम्"।। ॐ ।।

वह मन्त्र व्यूह निम्न प्रकार है, जिसे साधक प्रयोग कर ले।

"जागृता या महाशक्तिः सर्वदोष विनाशिका समस्तान् चित्तजान् दोषान् सा मे हरतु सत्वरम्"।। ॐ ।।

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। चित्तज रोगों को विनाश करने के लिये अन्तिम मुद्रा वासवी मुद्रा बताई गई। यह वासवी मुद्रा उसी प्रकार बताई गई है जिस प्रकार सर्व प्रयोगों में बलदायिनी घूर्णिका मुद्रा है। इसी प्रकार चित्त के समस्त दोषों को दूर करने के लिये वासवी मुद्रा का प्रयोग कर लेना चाहिये। यह वासवी मुद्रा है। इसे ऐन्द्री मुद्रा भी कहते हैं। बज्री मुद्रा भी कहते हैं। इसलिये मुद्रा का प्रयोग कल्याणकारी है। इसी से चित्त के सब रोग दूर होते हैं और चित्त में किसी प्रकार की कोई भी त्रुटि चित्तज दोषों में नहीं रह जाती है। इसलिये यह अन्तिम मुद्रा अन्त में बताई गई है कि जहाँ कहीं भी कोई दोष रह जाय उसका भी विनाश हो जाय। और जब वासवी मुद्रा लग

जाय तो उसके साथ अन्त में "जागृता या महाशक्तिः" इसका उच्चारण मन में करना चाहिये। उससे क्या होगा, कम्पन होगा, संचालन होगा, क्रियायें होंगी और उसी में चित्त के सब दोष खो जायेंगे। तुम अपनी ध्यानावस्था में चले जाओगे। परम शान्ति को प्राप्त करोगे। इस शान्ति अवस्था के लिये योगी लोग चेष्टा करते हैं। इसे वासवी मुद्रा तुम्हें दे देगी। इस मुद्रा का प्रयोग इस प्रकार है। यह है वासवी मुद्रा। इसमें कुछ नहीं करना है। यों हो जाओ। अर्थात् जमीन पर पीठ के बल लेटकर आसन लगाकर लेटे रहो। हाथों को स्थानपरिचायिका की अवस्था में जैसा करते हो, कर लो। दोनों बगलों में दबा लो। लेटे रहो। मेरुदण्ड धरा पर लगा रहे। आसीन रहो। फिर "जागृता या महाशक्तिः" बोलते रहना। थोड़ी देर चलेगा। फिर नाना प्रकार की क्रियायें वासवी मुद्रा के कारण होंगी। उसके बाद खो जाओगे। इस वासवी मुद्रा को सरल होते हुए भी बहुलाभप्रद और बहुमूल्यवती समझना। यह भी वैसी ही मुद्रा है, इसमें भी वैसे ही गुण हैं, जैसे चिद्बोधिनी में और घूर्णिका में हैं। यह भी परम महामुद्रा ही है। इससे तुम्हारे श्वास प्रश्वास में गति आ जायेगी। विचित्र प्राणायाम स्वतः होने लग जायेंगे। कम्पन भी कभी-कभी ऊपर नीचे मध्य में हाथों में पैरों में होता रहेगा। और उसके बाद शक्ति प्राप्त हो जायेगी। इसलिये इस वासवी मुद्रा को, प्रिय मुद्रा को, महत्त्वपूर्ण मुद्रा को प्रयोग में लाना। सब कुछ सिद्ध हो जायेगा। ॐ ।

१३-२-६३ सायंकाल।।१५५।।

हरि ॐ तत् सत् ।

चिदानन्दस्वरूपाणां जागृतां नौमि भास्वराम् ।

सहस्रभास्कराभासां भासयन्तीं विभावये।।

हरि ॐ तत् सत् । चिदानन्द स्वरूपिणी, दीप्तिमती, सहस्रों सूर्यों की भाँति प्रकाश वाली और चारों ओर प्रकाश फैलाने वाली देवी भगवती को मैं प्रणाम करता हूँ।

दिगन्तं पूर्णरूपेण तां नमामि महोदयाम् ।

चित्तजान् सकलान् रोगान् विनिवार्य पुनः पुनः।।

या करोति सदा शक्तिःनिर्मलां तां नतोऽस्म्यहम् ।

ऐते वै चित्तजाः रोगाः सर्वत्र कष्टदायकाः।।

जो शक्ति पूर्ण उदित होकर दिग्दिगन्त को प्रकाश से भर देती है और बार-बार समस्त चित्तज दोषों को दूर करके-

जो साधक को निर्मल बना देती है उसे मैं प्रणाम करता हूँ। ये चित्तज रोग सर्वत्र कष्टदायक हुआ करते हैं।

तेषां निर्मूलनं कृत्वा चित्तं निर्दोषकं कुरू।

दोषा नैव यदा सन्ति चित्तं वे निर्मलं परम् ।।

तदा तु ध्यानजा सिद्धिः त्वरितं च भविष्यति।

उनका निर्मूलन करके अपने चित्त को निर्दोष बना लो। जिस सिद्धि से दोष बिल्कुल भी नहीं रहेंगे और चित्त निर्मल हो जायेगा।

वही ध्यान से प्राप्त सिद्धि शीघ्र ही आ जायेगी।

अतएव समस्त चित्तजान् रोगान् विनाशयितुं वहवः उपायाः प्रयोगाश्च समाख्याताः। तेषां चित्तजरोगाणां संक्षयः करणीयः सावधानेन।।

इसलिये समस्त चित्तज रोगों का विनाश करने के लिये बहुत से उपाय और प्रयोग बताये गये हैं। उन चित्तज रोगों का विनाश साधक को कर लेना चाहिये।

महामाया सैव सुप्तोत्थिता सदैव बहुकार्याकुला बहुकार्यवती च भूत्वा सर्वशक्तिजा सर्वतत्त्वं समाधाय ध्यानजां स्थितिं परिपुष्टां करोति! अतएव स तदर्थमेतत् सर्वं व्याख्यातम् ।। ॐ ।।

वह महामाया भगवती शक्ति जागृता होकर नानाकार्यों में आकुल होती हुई और बहुत से कार्यों को करती हुई सब प्रकार की शक्तियों को समेटती हुई सभी तत्त्वों का संग्रह करती हुई ध्यानज सिद्धि को परिपुष्ट करती है। इस लक्ष्य से यह सब कहा गया है।

इदानीं चापि तस्माद्ध्र्वं सन्ति बुद्धिजाः दोषाः, बुद्धयुदभवाः रोगाः। तेषां निवारणाय यत्किञ्चिदपि प्रोच्यते सम्भाव्यते तदपि साधकानां कृते बहुलाभप्रदं भूयात् ।।

तब भी उसके ऊपर बहुत से अन्य बुद्धिज दोष रह जाते हैं, उन बुद्धिज रोगों के निवारण के लिये जो कहा जा रहा है वह सब भी साधकों के लिये बहुलाभप्रद होगा।

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। साधक! सावधान ! अब तक इस व्याघात-संहति प्रकरण में चित्त के समस्त दोषों के विनिवारण करने के लिये उनके विनाश के लिये नाना प्रकार से दृष्टिकोणों से नाना प्रकार के मन्त्र प्रयोग (और औषधि प्रयोगों का परित्याग करके) केवल क्रिया का विस्तार करके और स्वल्पमुद्रा का प्रदर्शन करके उनको वशीभूत करने का, उनको दूर करने का, उन पर अधिकार करने का उपाय बताया गया है। अब बुद्धिज रोगों को दूर करने का कभी-कभी औषधि प्रयोग भी बताया जायेगा। क्योंकि बुद्धिज रोगों का कारण भी ऐसा तत्त्व होता है, जो पार्थिव सम्बन्धी होता है और पार्थिव प्रभाव से युक्त होता है। और उसमें कई प्रभावों का सम्मिश्रण होता है। क्योंकि उसमें भी जड़त्वधर्म विशेष है। और वह केवल प्रतिबिम्ब-प्रवाहिका होती हुई ही आगे बढ़ती है। इसलिये उसमें मन्त्रऔषधि क्रिया का स्वल्पस्वरूप ऐसा प्रयोग बताया जायेगा जिसके करने से बुद्धिज रोग और दोष विनष्ट हो जायेंगे। और उसके पश्चात् फिर किसी प्रकार से साधक को एक संघात के रूप में एक संघटना के रूप में किस प्रकार अपने मार्ग में चलकर अपने कार्य की सिद्धि होती है, इसका ज्ञान और अनुभव भी करा दिया जायेगा।। ॐ ।।

साधक ! यथावकाश, यथासमय, यथानिर्देशानुसार इस प्रकार के उपायों और प्रयोगों को अनुभव कर लेने पर अकष्टसाध्य रूप से मार्ग चलने का अभ्यास हो जायेगा। और निरन्तर गति बढ़ती चली जायेगी। फिर किसी प्रकार के विक्षेपों के आने का भय नहीं रहेगा। अतः सावधानी से इनका प्रयोग करते हुए, आगे बुद्धिज रोगों के दूर करने का भी प्रयास करो।। ॐ ।।

१४-२-६३ प्रातःकाल।।१५६।।

हरि ॐ तत् सत् ।

ॐ बुद्धिं शुद्धां निर्मलां च गुणात्मिकाम्, मेधां धारणाभिधां एकां एका नित्या सरस्वती मेधां मे वितरतु, सा भगवती या स्वयं प्रकाशवती प्रकाशविस्तारयित्री च।। ॐ ।।

हरि ॐ तत् सत् । एका नित्या सरस्वती देवी जो स्वयं प्रकाशवती है और प्रकाश का विस्तार करती है वह मुझे शुद्ध निर्मल गुणात्मिका निर्मल मेधा बुद्धि और धारणा प्रदान करे।

अन्धकारे यथामार्गे दुर्गमे संकरे यथा।

तथैव लोक-लोकेऽस्मिन् बुद्धयभावे गतिर्नहि।।

जैसे इस लोक में दुर्गम संकरे कठिन मार्ग में अन्धकार ही अन्धकार हो तो चलना सम्भव नहीं होता है उसी भाँति बुद्धि के अभाव में भी कोई गति नहीं होती है।

बुद्धिस्तु कल्पसंकल्पं विकल्पं कल्पसारकम् ।

गृहणाति ग्राहिका या च सा बुद्धिः प्रोच्यते बुधैः।।

विद्वानों ने कहा है कि मन के संकल्प-विकल्पों के सार को जो इन्द्रिय शक्ति ग्रहण करती है उस ग्रहिका शक्ति को बुद्धि कहा जाता है।

संकल्पांश्च विकल्पांश्च समुद्भूतानितस्ततः।

गृहणाति विश्वरूपेण या सा बुद्धिर्मता बुधैः।।

विद्वानों का कथन है कि इधर उधर के उठे हुए समस्त सङ्कल्प विकल्पों को समेट कर समग्र रूप से जो इन्द्रिय शक्ति ग्रहण करती है उसे बुद्धि कहा जाता है।

यथा वै निर्मलादर्शः यद् यावत् यत्स्वरूपकम् ।

तत्स्वरूपेण प्रत्यक्षं समायाति स्वरूपकम् ।।

जिस प्रकार निर्मल दर्पण के सामने रखी वस्तु का जिस प्रकार का जो स्वरूप होता है वही स्वरूप प्रत्यक्ष दर्पण में भी आ जाता है और दर्पण तद्रूप दीखने लगता है।

यदि वा समलं तच्च तद्रूपं नैव दृश्यते।

तद्वत् धूम्रावृता बुद्धिः सम्मोहा मोहमावृता।।

वस्तुतत्त्वं न गृहणाति न गृहणाति यथाविधि।

तस्मादबुद्धि पवित्रां च निर्मलां च विधेहित्वम् ।।

यदि दर्पण मलिन होगा तो वस्तु का यथार्थ रूप प्रतिबिम्बित नहीं होगा। उसी भाँति सम्मोह, मोह भ्रान्ति आदि दोषों के धूम से कलुषित बुद्धि-

वस्तुतत्त्व को ग्रहण नहीं कर पाती है, उन वस्तु के यथार्थ स्वरूप का बोध नहीं हो पाता है इसलिये तुम बुद्धि को पवित्र और निर्मल बनाओ।

जीवमात्राः विधेर्लोके बुद्धिः संसारकारिणी।

विमला पूतभावा च दोषनाशाय जायते।।

विधाता की इस सृष्टि में सभी जीवों में बुद्धि है। यही बुद्धि संसार का बोध देती है। यदि यही बुद्धि निर्मल और पवित्र बन जाती है तो जीव के सभी दोष नष्ट हो जाते हैं।

सम्मोहः प्रथमो दोषः रोगश्चैव महात्मिकः।

उद्भ्रान्तिः भ्रमपूर्णत्त्वं द्वितीयं दोषमुच्यते।।

बुद्धि का पहिला दोष सम्मोह है, जो बड़ा अनर्थकारी रोग है। दूसरा दोष उद्भ्रान्ति है जो बड़ा भ्रम पैदा करता है।

तृतीयं चञ्चलत्वं च जतुत्वं च चतुर्थकम् ।

स्त्यानं चास्थिरभावंश्च पञ्चमस्तु तदा स्मृतः।।

तीसरा दोष चंचलता है, चतुर्थ जड़त्व है, स्त्यान अर्थात् अस्थिर भाव पाँचवां बुद्धि दोष है।

दोषो बुद्धिभवो रोगः कथ्यते पूर्वजैः सदा।

अथवा सत्स्वरूपं च विहाय अस्वरूपकम् ।।

पूर्वकालीन तत्त्वद्रष्टा विद्वानों ने बुद्धिज दोष उसे कहा है, जिसमें सत् स्वरूप को छोड़ कर असत् स्वरूप को यथार्थ वस्तु समझ में आवे।

ग्राह्यात्मकमिदं भूतं दुर्गुणं जायते ध्रुवम् ।।

अथवा बुद्धिवैकल्यं बुद्धिध्वंसश्च जायते।।

असत् पदार्थ ही सत्य है, यह निश्चयात्मक भाव ही दुर्गुण होता है। इसी को बुद्धिवैकल्य अथवा बुद्धिध्वंस कहा जाता है।

तदा ध्वंसात्मकं सर्वं दृश्यते नात्र संशयः।

अत एव च वै लोकाः पूर्वजाश्च मनीषिणः।।

वाञ्छन्ति प्रथमां बुद्धिं पवित्रां पुण्यमात्मनः।। ॐ ।।

मेधां मे सततं देवी शारदा सम्प्रयच्छतु।।

ऐसी स्थिति में सब कुछ ध्वंसात्मक ही दीखता है, इसलिये प्राचीन मनीषी लोगों ने-

ऐसी कामना की है कि शारदा भगवती सदा सर्वप्रथम पवित्र बुद्धि और मेधा प्रदान करें।

धारणां च महाकाली बुद्धिं चैव सरस्वती।
धीर्मे ददातु सा देवी महालक्ष्मीः महामतिम् ।।
सर्वरूपेण सद्बुद्धि पवित्रां पूतिकां तथा।। ॐ ।।

महाकाली मुझे धारणा शक्ति दे, सरस्वती मुझे बुद्धि दे, महालक्ष्मी मुझे महामति तथा धी प्रदान करे।

सब प्रकार से भगवती मुझे पवित्र सद्बुद्धि प्रदान करें।। ॐ ।।

ॐ । बुद्धिजान् दोषान् विनाशयितुं महाकाली महालक्ष्मी महासरस्वती-देवताप्रसादः समुपलब्धव्यः। देवताः दण्डमादाय गोपालवत् कस्यापि रक्षां न कुर्वन्ति, देवतानां प्रीतिः, देवतानां प्रसादः तदैव ज्ञातो भवति यदा पवित्रा बुद्धिः, सरला बुद्धिः, निर्मला बुद्धिः, विषयग्राहिणी बुद्धिः समुपलभ्यते।।

ॐ । बुद्धिज दोषों के विनाश के लिये महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती देवियों का प्रसाद प्राप्त करना चाहिये। देवता कोई डण्डा लेकर ग्वाले की भाँति गौओं के पीछे रक्षा करती हुई नहीं दौड़ती है। देवताओं की प्रीति या प्रसाद तभी ज्ञात होता है, जब पवित्र बुद्धि, सरल बुद्धि, यथार्थ-विषय ग्राहिणी बुद्धि साधक प्राप्त कर लेता है।

या च बुद्धिः सरला न च कुमार्गगामिनी, न कुण्ठिता कुण्ठारहिता च या वर्तते सा बुद्धिः यदा जायते, कार्यवती च भवति तदा देवताप्रसादः एव जातः, तदैव बुद्धिरोगाः बुद्धिदोषाः महादोषाः सन्ति यदा ते कदापि बुद्धिवैकल्यं जनयन्ति, तदा तु विनाशः सुनिश्चितः समुपस्थितः।।

जो बुद्धि सरल हो, कुमार्गगामिनी न हो, कुंठिता कुण्ठा ग्रस्त न हो ऐसी बुद्धि जब हो जाय, कार्यवती हो जाय तभी समझो कि देवता का प्रसाद हो गया। जब बुद्धिज रोग व बुद्धि दोष बुद्धि वैकल्य पैदा करते हैं तब समझो कि विनाश निश्चय ही उपस्थित हो गया है।

सम्मोहात् बुद्धिदोषाः बुद्धिरोगाश्च भवन्ति, तदैव बुद्धिभ्रम उत्पद्यते। बुद्धिविभ्रमाद् विनाशः सुनिश्चितः। अत एव च बुद्धिजान् सर्वान् रोगान् विनाशयितुं सदैव चेष्टा विधेया। सा च चेष्टा शक्त्याधीना निग्रहाधीना वर्तते। तथापि बोधाय मन्त्रौषधिमुद्राक्रियाप्रयोगोऽपि कर्तव्यः।।

सम्मोह से बुद्धि दोष और बुद्धिरोग होते हैं। तभी बुद्धिभ्रम भी पैदा होता है। बुद्धिविभ्रम से विनाश सुनिश्चित है। इसलिये सभी बुद्धिरोगों के विनाशार्थ चेष्टा करनी चाहिये। वह चेष्टा शक्ति के आधीन होती है। फिर भी औषधि क्रिया मुद्रा मन्त्रादि का प्रयोग करना चाहिये।

सुगमतया येन लक्ष्यसिद्धिर्भवेत्, बुद्धिश्च निर्मला भवेत्, तदर्थं पूर्वमन्त्रप्रयोगः पश्चाद् औषधिप्रयोगः, तदनन्तरं क्रियाप्रयोगः भविष्यति। तत्तु पुरत एव समागमिष्यति।। ॐ ।। गोरक्ष ! गोरक्ष !

सुगमतया जिससे लक्ष्य-सिद्धि हो सके, बुद्धि निर्मल बने, इस दृष्टि से पहिले मन्त्रप्रयोग, फिर औषधि प्रयोग और तदनन्तर क्रिया प्रयोग होगा। वह अब सब सामने आ जायेगा। गोरक्ष ! गोरक्ष !!

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। इस व्याघात-संहति प्रकरण में अब बुद्धि से उत्पन्न होने वाले जो दोष हैं जिन्हें रोग कहा गया है, उनका निवारण करने के लिये मन्त्रौषधि क्रिया का प्रयोग बताया जायेगा। बुद्धि बहुत बड़ी वस्तु है। इसीलिये पूर्व में समस्त देवताओं ने, ऋषियों ने, महर्षियों ने, मुनियों ने, योगियों ने, महायोगियों ने, तत्त्ववेत्ताओं ने, ज्ञानियों ने, भक्तों ने, सभी ने पवित्र बुद्धि की कामना की है, प्रार्थना की है। उसे पवित्र करने के लिये देवताओं की कृपा की आकांक्षा की है। बुद्धि में जब सम्मोह हो जाता है, तब उसका तात्पर्य होता है, विवेक का पिण्ड छोड़ देना। अविवेक हो जाना और यथा तथा रूप में वस्तु को ग्रहण न करना अर्थात् वस्तु को स्वरूप से न पहिचानना। यह सम्मोह हो जाता है, जब बुद्धि में इस प्रकार का मल विक्षेप आ जाता है, जब ऐसा दोष उत्पन्न हो जाता है तब उसका विभ्रम होने लगता है, अर्थात् उसमें भ्रान्ति आ जाती है। स्वयं भ्रम, शंका स्वयं अनिश्चयात्मकता आ जाती है, अस्थिरता के आने से मनुष्य जीवन में सफलता का पात्र नहीं बन सकता है। उसमें दोष आ जाते हैं, कार्य दोष-पूर्ण हो जाते हैं और वह शान्ति की वहाँ छाया भी नहीं देख सकता है। जीव, यात्रा में चलता हुआ, सब कुछ करता हुआ यदि बुद्धि निर्मल हो तो सब सफल है। और वह शान्ति पाता है, जहाँ बुद्धि कुण्ठित है, अपवित्र है, भ्रष्ट हो गयी है, अविवेकिनी है, विषयों को ठीक रूप में ग्रहण करने की उसमें शक्ति नहीं है, तो सब कुछ किया कराया व्यर्थ हो जायेगा।

जैसे एक दर्पण में अगर मल आ गया है तो उसमें प्रतिबिम्ब यथावत् नहीं दिखाई देगा। अथवा आदर्श जिसे काँच का टुकड़ा कहते हैं, यदि वह दोष पूर्ण हो गया तो मुखाकृति कभी लम्बी दिखाई देगी, मलिन दिखाई देगी, मोटी दिखाई देगी, चौड़ी

दिखाई देगी, पतली दिखाई देगी और जो कुछ सत्य होगा वह दिखाई नहीं देगी। तो जिस प्रकार आकृति का भ्रम हो जाता है, उसी प्रकार यदि बुद्धि निर्मल नहीं हुई, क्योंकि बुद्धि भी तो प्रतिबिम्ब को ग्रहण करने की एक शक्ति ही है, तो वस्तु स्थिति का ज्ञान नहीं हो सकेगा। इसलिये पूर्वजों ने सर्वप्रथम बुद्धि को पवित्र करने के लिये बुद्धि के दोषों को दूर करने के लिए ही प्रार्थना की है। अपनी बुद्धि को इस प्रकार निर्मल रखा, विवेकवती रखा, सूक्ष्म रखा कि जिसके आधार के कारण उनके समस्त कार्य पूर्ण रूप से होते रहे और वे शान्ति पाते रहे। इसलिये अन्त में सारे महायोग शास्त्र को चर्चा करने के पश्चात् वह बुद्धि दोषों का प्रकरण अन्तिम प्रकरण कहा गया है।

सब कुछ करते चले जा रहे हो, लेकिन यदि बुद्धि विभ्रम हो गया तो सब गया। यदि तथाकथित अनिश्चयात्मकता रह गई तो किया कराया सब गया। इसलिये इन बुद्धि दोषों को दूर करने का उपाय बताया जायेगा। वह उपाय मन्त्रौषधि क्रिया के रूप में होगा। जिसके कारण साधक के बुद्धि दोष रोग नष्ट हो जायेंगे। इसलिये इसमें सर्वप्रथम शुद्ध मन्त्रों का प्रयोग किया जायेगा। साधक ! सावधान ! उन निर्देश और आदेशों का पालन करते हुए, जीवलोक की यात्रा में योगाभ्यासी होकर, योगतत्त्व का अनुभवी होकर जीवन के लक्ष्य तक पहुंचने का जो ध्येय है उसकी पूर्ति हो जायेगी।। ॐ ।।

१४-२-६३ सायंकाल।।१५७।।

हरि ॐ तत् सत् ।

नमामि तां महाशक्तिं दिव्यरूपात्मिकां पराम् ।

सदा या बुद्धिरूपेण लोके चास्मिन् विराजते।।

हरि ॐ तत् सत् । मैं दिव्यरूपा परा महाशक्ति को प्रणाम करता हूं, जो सदा बुद्धिरूप में इस लोक में विराजमान रहती है।

बुद्धिभावमयी देवी चिन्तनोत्कलिका कला।

कला कालसमाधीना कलिका कालरूपिणी।।

कराला कलिका या च कलानां विकलात्मिका।

सा देवी बुद्धिरूपेण जनबुद्धि स्वरूपिणी।।

चिन्तन में उत्सुक कला, काल में परिव्याप्त, कालरूपिणी जो बुद्धि भावमयी देवी है, वह कराल-कलिका है और कलाओं को विकलित करने वाली है, वही देवी बुद्धिरूप में प्रतिव्यक्ति के भीतर विराजमान रहती है।

समागता च संसारे संसारं तरणात्मिका। ॐ ।

सैव बुद्धि-महाबुद्धि-र्महा मेधा महास्मृतिः।।

सर्वरूपेण सर्वत्र राजते च स्वयंवरा।।

संसार सागर में तरण करने के लिये लोक में यह अवतीर्ण हुई है। वही बुद्धि है, महाबुद्धि है, महामेधा है और महास्मृति है।

वही सर्वरूप में सर्वत्र स्वयंवरणीय होकर विराजमान रहती है।

अस्मिन् प्रकरणे बुद्धिजान् दोषान्, रोगान् विनाशयितुं तेषां संक्षरणाय च पूर्व मन्त्रप्रयोगं कुरू। पश्चाच्च बुद्धे-र्निर्मलत्वं प्रत्यापन्नं भविष्यति।। ॐ ।।

इस प्रकरण में बुद्धिज दोषों और रोगों का विनाश करने के लिये, उनके संरक्षण के लिये पहिले मंत्र-प्रयोग करलो। फिर बुद्धि की निर्मलता प्राप्त हो जायेगी।। ॐ ।।

मन्त्रोच्चारणमेवं च कर्तव्यं वै सुसाधकैः।

बुद्धिजान् सकलान् रोगान् यत्प्रयोगश्च नाशयेत् ।।

अच्छे साधकों को इस प्रकार करना चाहिये जिससे बुद्धिज समस्त दोष और रोग मन्त्रप्रयोग से नष्ट हो जावें।

मन्त्रस्य बीजरूपस्य बुद्धितत्त्वस्य सर्वथा।

प्रयोगो निर्मलाधारं करोति च न संशयः।। ॐ।

बुद्धि तत्त्व के बीजरूप मन्त्र का प्रयोग सर्वथा बुद्धि को निर्मल बना देता है। इसमें कोई संशय नहीं है।

अथ मन्त्रः। "ॐ सर्वभूतप्रियां सर्वत्रविचरणशीलां सवितुः शक्तिम् आवाहयामि। सा मे बुद्धि निर्मलां करोतु ॐ सं सं सं। सं सं सं। सं सं सं।" अस्य मन्त्रस्य प्रयोगः शयनावसरे शयनोत्थानावसरे च वारमेकं करणीयः। अस्य मन्त्रोच्चारणेन कालान्तरेण सवितुः महाशक्तिः स्वयमेव अन्धकारस्वरूपकां भ्रमात्मकतां विनशयिष्यति।।

मन्त्र यह है:- "ॐ सर्वभूत प्रियां सर्वत्र विचरण शीलां सवितुः शक्तिम् आवाहयामि सा मे बुद्धि निर्मलां करोतु। ॐ सं सं सं, सं सं सं, सं सं सम्। ओम् इस मन्त्र का प्रयोग शयन के समय और प्रातः जागते समय एक बार करना चाहिये। इस मन्त्रोच्चारण से कालान्तर में सविता की महाशक्ति स्वयं अन्धकार रूप भ्रम का नाश कर देगी।

अपरं च इदमपि प्रयोज्यं कदाचित् कदाचित्, मध्याह्ने साधकेन। "ॐ सावित्रीं आवाहयामि सा मे बुद्धि संशोधयतु"। अस्य प्रयोगः मध्याह्ने सप्तपञ्चकेन च करणीयः। अनेनापि बुद्धे-र्निर्मलत्वं प्रत्यागच्छति।। ॐ ।।

दूसरा एक प्रयोग भी इसके साथ करना चाहिये, कभी-कभी मध्याह्न में। "ॐ सावित्रीं आवाहयामि, सा मे बुद्धि संशोधयतु"। इसका प्रयोग मध्याहने में ७ बार या १२ बार करना चाहिये। इससे भी बुद्धि की निर्मलता प्राप्त होती है।

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। साधक। इस व्याघात-संहति प्रकरण में जो प्रयोग बताये जा रहे हैं, वे बुद्धिज रोग के नाश के लिये हैं। ये अन्तिम प्रयोग हैं और अन्तिम प्रकरण में यह कहा जा रहा है कि बुद्धि के दोषों को दूर कर लो तो किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं होगी। क्योंकि बुद्धिज रोग ऐसे रोग हैं जो अत्यन्त ही दुःसाध्य, कष्ट साध्य हैं। ये सहसा ज्ञात नहीं होते हैं। किन्तु कुभाव इनका फलीभूत होते हुए दिखाई देता है। तब कुछ-कुछ ज्ञात होता है। और कभी-कभी बुद्धिविकल्प बढ़ भी जाता है। इस प्रकार के दोषों को विनाश करना ही श्रेयस्कर होता है। और इसके लिये सर्वसाधारण रूप से सविता की शक्ति को, सावित्री को आराधित कर लेना चाहिये, उस शक्ति में बुद्धिदोषों को विनाश करने की शक्ति है, क्योंकि वह शक्ति महामाया की एक आंशिक विभूति है और उस आंशिक विभूति के आराधन से समस्तरोग नष्ट होते हैं। तो पूर्वोच्चारित मन्त्र "सवितुः शक्ति" वाले को जो सोने के और जागने के समय

उच्चारित होता है और जो दूसरा मध्याह्न के लिये सावित्री का आवाहन किया जाता है, यह सात बार कर लेना चाहिये। इसकी अवधि कुछ नहीं है, केवल मध्याह्नवाला तो १२ दिन भी किया जा सकता है और सायंप्रातः वाले के लिये सात दिन पर्यन्त अवधि है। इसको कर लेने से जब बुद्धि के ऊपर का मलावरण दूर हटता है, तब सम्मोह का स्तर दिखाई देता है। तब उस सम्मोह के विनाश के लिये द्वितीय मन्त्र और मुद्रा का प्रयोग बता दिया जायेगा और उसके बाद जो विभ्रम, विक्षेप, भ्रान्ति, सन्देह, संशय होता है, तर्क वितर्क होता है उसके विनाश के लिये औषधि प्रयोग भी बताया जायेगा। इससे समस्त दोष नाश हो जायेंगे।। ॐ ।।

१६-२-६३ सायंकाल।।१५८।।

गोरखवाणी: "ॐ सौं सौं सौमहासरस्वती बुद्धि मे निर्मलां करोतु"।।

इस मन्त्र का प्रातः सायं एक मास तक जप उसी अवस्था में करना चाहिये, जब बुद्धि नितान्त कुण्ठित हो जाये। और विवेकहीन हो जाय।

बुद्धिज दोषों को दूर करने के लिये भ्रान्ति, भ्रम, विभ्रम के नाश के लिये मन्त्र।

"धीं धीं धीं धारणाख्या प्रसीदतु, निर्मलत्वं बुद्धेश्चप्रयच्छतु। यं लं सं। यं लं सं। यं लं सं।।"

एक मास पर्यन्त सोते जागते समय एक बार उच्चारण, इसके साथ ताम्रपर्णी मधु लें। ७ दिन तक एक बार प्रातः सेवन करलें।

१७-२-६३ प्रातःकाल।।१५९।।

हरि ॐ तत् सत् ।

दिव्यां शक्तिः सशक्तं प्रकटितविभवां सर्वकल्याणकर्त्रीम्

धात्री या वै नवीनं मुदितशुभगुणं काम्यरूपं अनन्तम् ।

सद्योजातं समस्तं विरलतरलं बुद्धिदानेन तुष्टम्

सा मे नित्या सदैव प्रथितगुणगणा पातु सत्काम्यकामा।। ॐ ।।

अनेक विभव प्रकट करने वाली, सर्वकल्याणकारिणी, समर्थवती दिव्य शक्ति, जो नये सुन्दर गुणों को धारण करती है, भक्ति में गद्गद विरल तरल साधक को बुद्धिदान से तुरन्त तुष्ट कर देने वाली भगवती सदा मेरी रक्षा करती रहे।

या बुद्धिः सर्वथा शुद्धा निर्मला या च सूक्ष्मिका।

सा बुद्धिर्मे सदायातु कल्याणाय विशेषतः।।

या शक्तिश्च महामाया महाकल्याणकारिणी।

कल्याणं सर्वदा सा वै करोतु लोकवासिनाम् ।।

जो बुद्धि सर्वथा शुद्ध, निर्मल और सूक्ष्म है वही बुद्धि मुझे मेरे मंगल के लिये प्राप्त हो जाये।

महाकल्याणकारिणी महामाया शक्ति लोक-वासियों का सदा कल्याण करें।

येन निर्मलबुद्धिश्च जनाः संयान्तु सत्वरम् ।। ॐ ।।

जिससे बुद्धि निर्मल हो जाय और लोग शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त कर सकें।

बुद्धिजा विविधाः रोगाः वर्णिताः दुःखदायकाः।

तेषां विनाशनायैव प्रोक्तंच बहुरूपकम् ।।

प्रयोगाश्च उपायाश्च प्रोक्तास्तत्र शनैः शनैः।

एतेन सर्वरूपेण रूपेण रोगसंक्षयः।।

विविध प्रकार के बुद्धि के दुःखदायक दोषों का वर्णन किया गया है। उनके विनाश के लिये ही बहुत प्रकार से कहा गया है।

प्रयोग और उपाय बताये गये है, जिन से शनैः शनैः सब प्रकार से रोग का संशय होता चला जायेगा।

भविष्यति यथाशीघ्रं नात्र कार्या विचारणा।। ॐ ।।

अपरं च प्रवक्षामि बुद्धिरोगविनाशकम् ।

दिव्यं मन्त्र महद्दिव्यं अर्थान्वितमलभ्यकम् ।।

इस बात पर कोई संशय नहीं करना चाहिये। ॐ । बुद्धिरोग का विनाशकारक एक अन्य मन्त्र भी मैं बताती हूँ जो दिव्य महादिव्य, अर्थ से भरा और अलभ्य है।

अत्यद्भुतं च तत् सर्व कार्यसिद्धिकरं च तत् ।

तन्मन्त्रं जपनीयं च कदापि च कदापि च।।

यस्य बुद्धेस्तु वैकल्यं जायते कार्यनाशकम् ।

यह मन्त्र बड़ा अद्भुत और सर्व-कार्यसिद्धि करने वाला है। कभी-कभी इस मन्त्र का भी जप कर लेना चाहिये।

जिस साधक के बुद्धि की विकलता उसकी साधना को नष्ट कर रही हो।

अथमन्त्रः। "ॐ भैरवाङ्कनिलयां भंकात्मिकां नमामि, बुद्धिविभ्रमो मे नश्यतु ॐ ॐ ॐ । अस्य मन्त्रस्य प्रयोगस्तदैव कर्तव्यः यदा क्रोधसमन्विता बुद्धिः सम्भवेत् । अथवा क्रोधस्य मात्रा विशेषतः वर्धिता भवेत् । बुद्धिवैकल्यं च भवेत् । तदैव प्रयोगो विधेयस्तावत् यावद् बुद्धिवैकल्यं न विनश्यति। न चैवं ज्ञायते यत् शान्तिः समागच्छति।। ॐ ।।"

मन्त्र यह हैः- "ॐ भैरवाङ्क निलयां भंकात्मिकां नमामि, बुद्धिविभ्रमो मे नश्यतु, ॐ ॐ ॐ "। इस मन्त्र का प्रयोग तभी करना चाहिये जब बुद्धि क्रोध समन्विता हो जाय, अथवा क्रोध की मात्रा विशेष बढ़ जाय, बुद्धिवैकल्य हो जाय, इसका प्रयोग तब तक करते रहना चाहिये जब तक बुद्धिवैकल्य विनष्ट नहीं हो जाता है और जब तक यह ज्ञान न हो जाय कि शान्ति मिल गई है।

गोरखवाणी :- ॐ अलख निजञ्जन। अलख निजञ्जन। अलख निरञ्जन। इस प्रकरण में बुद्धिज दोषों को नाश करने के लिये पुनः मन्त्र प्रयोग बताया जा रहा है। इन मन्त्रों का प्रयोग ऐसा प्रयोग है जिसे तात्कालिक प्रयोग कहते हैं। ऐसे मन्त्रों में स्थायी शक्ति नहीं होती है, किन्तु ये शक्ति रूप से जिस समय जिस में जिस वस्तु की आवश्यकता होती है और जिसका निस्सारण करना होता है, ये निस्सारणार्थ गतागत मन्त्र कहे जाते हैं। इन मन्त्रों में वस्तु जाती है, आती है। कुछ विनाश के लिये होती है, कुछ उपलब्धि के लिये होती है, तो ये गतागतिक मन्त्र कहे जाते हैं। इनका प्रयोग भी गतागतिक रोगों के लिये है। तो इस प्रयोग को इसलिये बनाया गया है कि जिससे ये समस्त रोग दूर हो जाँय और जैसा कि मां का आदेश है। "ॐ भैरवांकनिलयां" वाले मन्त्र का प्रयोग उस समय करना चाहिये जब प्रतीत हो कि बुद्धि में वैकल्य है, और उसका कारण क्रोध की मात्रा है, वातावरण भी अशुचि है, तो ऐसे समय में जब क्रोध की मात्रा बढ़ जाय, सम्मोह बढ़ जाय, भ्रान्ति भी बढ़ने लगे और चित्त में भी विक्षेप आने लगे, तो बुद्धि के इस विकार को दूर करने के लिये इस मन्त्र का प्रयोग करते चले जाना। उच्चारण करते चले जाना, करते चले जाना, करते चले जाना। और जब क्रोध की मात्रा और वैकल्प की मात्रा शान्त हो जाय तो बन्द कर देना। इस प्रकार करने से बुद्धि भ्रष्ट नहीं होने पायेगी और जब ऐसा हो है कि किसी का स्वभाव धर्म ही ऐसा बन जायगा तो उसके लिये औषधि प्रयोग भी बता दिया जायेगा जिससे उसका भी कल्याण होगा। ॐ।

तब सभी कुछ शुद्ध और निर्मल हो जाता है। बुद्धि मल विहीन और चंचलता का त्याग कर देती है।

अत एव च तां मुद्रां माण्डूकीं त्वं समाचर।

तस्याः प्रभावमात्रेण बुद्धिदोषाः समन्ततः।।

नाशं संयान्ति वै नित्यं नात्र कार्या विचारणा।

एषा सा माण्डूकी मुद्रा प्रयोज्या साधकैः सदा।।

इसलिये तुम माण्डूकी मुद्रा का प्रयोग करो, इसके प्रभाव से बुद्धि दोष चारों ओर से-नष्ट हो जायेंगे। इसमें कोई संशय नहीं करना चाहिये। साधकों को यह माण्डूकी मुद्रा सदा प्रयोग में लानी चाहिये।

अस्याः प्रभावेण बुद्धिजाः दोषाः नाशमुपयान्ति। बहुफलप्रदा च सा माण्डुकी मुद्रा। यदापि बुद्धिजान् दोषान् सम्भावयेत् तदा तां मुद्रां भजेत् ।। ॐ ।। गोरक्ष ! गोरक्ष ! गोरक्ष !

इसके प्रभाव से बुद्धिज दोष नष्ट हो जाते हैं। यह मुद्रा बहुत बड़ा लाभ देने वाली है। जब जब बुद्धि दोषों की सम्भावना हो तब तब इसको लगा लेना चाहिए। ॐ ।। गोरक्ष ! गोरक्ष ! गोरक्ष !

गोरक्षवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। आदेश। आदेश। आदेश। ॐ । अब बुद्धिज दोषों को नाश करने के लिये यहा उपयोगी मुद्रायें बताई जा रही हैं। इस मुद्रा को माण्डूकी मुद्रा कहते हैं। इस मुद्रा का प्रचलन माण्डूक्य ऋषि के द्वारा हुआ था। और माण्डुक्य ऋषि ने इस मुद्रा का प्रयोग मण्डूकों से ही सीखा था। यह मुद्रा बुद्धि के चाञ्चल्य विधर्मों को दूर करने के लिये अत्युपयोगी मुद्रा बताई गई है और यह मुद्रा ऐसी मुद्रा है जिससे कि केवल बुद्धिज दोष ही दूर नहीं होते हैं, उदर रोगों पर भी यह अपना प्रभाव डालती है और हृदयस्थ रोग भी नहीं होने पाते हैं। यह विचित्र मुद्रा है जिसे माण्डुक्य ऋषि ने अत्यन्त प्रिय माना था। और जिसके प्रभाव से उनकी चञ्चल बुद्धि स्थिर हो गई थी। गहरा भाव आ गया था और तेज सोचने समझने की शक्ति आ गई थी, कुण्ठायें मिट गई थीं। आवरण के घेरे टूट चुके थे। इसलिए आज फिर इस मुद्रा का स्मरण दिलाया जा रहा है। जब तुम मन्त्रों के प्रयोगों से थक जाओ और सुलभता चाहो तो फिर लगा लो माण्डुकी मुद्रा जो माण्डूकी मुद्रा अनुकूल पड़ गई, लगा जाओ माण्डुकी मुद्रा, यह मुद्रा बलवती मुद्रा है। माण्डूकी मुद्रा इस मुद्रा को कहते है। यों घुटनों के और कुहनियों के बल पर इस तरह थोड़ी देर [illegible]ल्पकाल ऐसा करके यों आगे को झुक जाओ। फिर शनैः शनैः शनैः शनैः इस प्रकार आ[illegible], कोई कठिनाई नहीं, यों लेजाकर के जोड़ दो। सीधे इस तरह सिर को, यह जो कान — समीपस्थ भाग है, जिसे कनपटी भी कहते हैं, कर्णपूर भी कहते हैं, इस भाग को इस

तरह से थोड़ा सा बंक मुद्रा में करके (सर को बांई ओर घुमा कर) यों लाकर के और करतल को जो पृष्ठ भाग है यों करके, कभी कभी यों भी कर सकते हो। ऐसा अगर असुविधाजनक जान पड़े तो सीधे यों कर लो। जहाँ तक हो सके तर्जनी का भाग कनपटी पर रहे। अन्यथा यो भी हो सकता है। किन्तु ऐसा कर देने पर वह विशेष लाभप्रद नहीं होती है। लाभ तो होगा, शनैः शनैः होगा। किन्तु जरा यों कर लेना। तर्जनी का जो भाग है वह कनपटी पर लगा रहे। जब ऐसी स्थिति में आ जाओ, पीछे के दोनों पैर इस तरह से मुक्त होकर के हल्के रूप से, स्वल्परूप से, जहाँ तक आ सकें। इन पुट्ठों के भाग के ऊपर आ जाय। उदरभाग और वक्षभाग भूमि पर संलग्न हुआ है। इसके पश्चात् साधारण श्वास लो। और उसके पश्चात् छोड़ना। रेचक पूरक, रेचक पूरक कर लो किन्तु जिस समय पूरक में पेट उठे तो धरती पर जाय तो पीछे का हिस्सा थोड़ा उठ जाय और आ सके तो इन स्कन्ध भागों को यों कर लो (जरा ऊपर) या यों कर लो, जैसे जाँय, जाने दो। स्वतः चले जायेंगे। फिर यों ही लगे रहो (रेचक पूरक करते रहो) कुम्भक लगे तो यथावस्थिति में आ जाओ ॐ ॐ ॐ ध्वनि करते रहना। तो इससे बुद्धि तो शुद्ध होगी, भ्रान्ति मिटेगी, बुद्धि के दोष दूर होंगे, और बुद्धि को तत्त्व ग्रहण का अभ्यास हो जायेगा। यथावत् वस्तुस्थिति को विवेकरूप से ग्रहण करने का अभ्यास हो जायेगा और इससे उदरस्थ दोष भी दूर हो जायेंगे। कभी कभी कटि भाग को भी खींच लेना (ऊपर की और), कभी यों भी चला सकते हो। (नीचे ऊपर) उसके पश्चात् जब मुद्रा को तोड़ करके उठाना चाहोगे। तब फिर यह स्थिति होगी, (घुटनों और हाथों के पंजों के बल शरीर टिका रहे) घुटनों को आगे सिमेटोगे और फिर अपने आसन पर यथावत् बैठ जाओगे, यह माण्डूकी मुद्रा है जो अत्युपयोगी है। इसको अभ्यास कर लेना। स्वल्पकाल में ही सिद्धिप्रद होगी। कल्याण होगा। ॐ ।

१८-२-६३ प्रातःकाल।।१६१।।

हरि ॐ तत् सत् ।

ॐ । नमामि तां भगवतीं जागृत-स्वरूपां-महामायां कुण्डलिनीम् या सदा सततं जागृता देवी सर्वदोषापहारिणी तां नमामि भुवनेश्वरीम् ।। ॐ ।।

हरि ॐ तत् सत् । ॐ जागृत स्वरूप कुण्डलिनी भगवती को मैं प्रणाम करता हूँ। जो देवी जब जाग पड़ती है तब वह भुवनेश्वरी सभी दोषों का विनाश कर देती है, उसे मैं प्रणाम करता हूँ।।

तां नमामि महाशक्तिं जगदेकहितैषिणीम् ।

या वै सर्वविधं लोककल्याणं कुरूते सदा।।

सा वै सदा महामाया महाबुद्धि प्रदायिनी।

जगत् का अद्वितीय हित करने वाली उस महाशक्ति को मैं प्रणाम करता हूँ जो सदा सब प्रकार से लोककल्याण करती है।

वही महामाया भगवती महाबुद्धि प्रदायिनी होती है।

अथास्मिन् प्रकरणे व्याघात-संहति स्वरूपेण बुद्धिजान् समस्तान् दोषान् अपहर्तुं यत् किञ्चिदपि प्रोच्यते, तत् साधकानां हिताय कल्याणाय च भवतु।।

अब इस प्रकरण में व्याघात संहति रूप में बुद्धिज समस्त दोषों का अपहरण करने के लिये जो कुछ कहा जा रहा है वह साधकों के हित और कल्याणार्थ हो।

साधकाः साधनायुक्ताः निर्भयाः गतकल्मषाः।
पवित्रां बुद्धिमाधाय मोदन्तां भुवि सर्वदा।।

साधक लोग साधना में लग्न रहते हुये निर्भय होकर विकार विहीन बनें। पवित्र बुद्धि को लेकर सदा प्रसन्न बने रहें।

तेषां च बुद्धिजान् रोगान् अपहन्तुं पुनः पुनः।
मन्त्रौषधि-प्रयोगं च क्रियारूपेण कथ्यते।।

उनके बुद्धिज रोगों को बार बार विनष्ट करने के लिये मन्त्रौषधि का प्रयोग क्रियारूप में बताया जा रहा है।

यदावै यस्य रूपस्य प्रयोगस्य प्रयोजनम् ।
भवेत् तस्य प्रयोगस्य करणीयं सुयोजनम् ।।

जब जिस दोष के निवारण के लिये जैसे प्रयोग का प्रयोजन हो तब वैसा ही प्रयोग सोच समझकर कर लेना चाहिये।

यदा वै भ्रान्तिरायाति जडत्वं व्यापकं भवेत् ।
स्त्यानं च सम्भवेदेवं बुद्धि वैंकल्यतां ब्रजेत् ।।

जब बुद्धि भ्रान्ति आ जाय और व्यापक रूप में जड़ता आ जाय, अस्थिरता और बुद्धि में विकलता आ जाय।

तदा मुद्राप्रयोगेण तन्निरोधो विधीयताम् ।
अथवा चौषधं दिव्यं इदं यच्च तदुच्यते।।

तब मुद्रा प्रयोग के द्वारा उसका निरोध करना चाहिये। अथवा जो दिव्य औषधियाँ बताई जा रही हैं, उसका प्रयोग कर लेना चाहिये।

तस्य प्रयोगभूतेन दोषनिःसारणं कुरू। ॐ ।
कोविदारस्य पुष्पाणि आदाय च फलानि वै।।
तेषां सम्पेषणं कृत्वा भृंगराजेन संहतम् ।
कृत्वा विलेपनं तस्य शिरःस्थ मध्य मस्तके।।

तत्तत् रोगों में बताई गई तत्तत् औषधि अथवा क्रिया मुद्रा कर लेनी चाहिये। कोविदार के (कचनार के) फूल और फल एक साथ ले लो। उन्हें पीसकर भृंगराज को भी साथ में पीस कर सिर के मध्य भाग में विलेपन कर देना चाहिये।

दिनत्रयेण कर्तव्यं भागे तस्मिन् विलेपनम् ।
विलेपनं विधायैव दोषाणां संक्षयो भवेत् ।।

तीन दिन तक इस प्रकार विलेपन करके दोषों को विनाश हो जायेगा।

एतस्य सुप्रयोगस्य फलं शीघ्रं भविष्यति।
स्त्यानं च जडता भ्रान्तिः सर्वमेव विनश्यति।।

इस प्रयोग का परिणाम बहुत शीघ्र दिखाई पड़ जायेगा। अस्थिरता, जड़ता और भ्रान्ति का सब विनाश हो जायेगा।

अथवा मन्त्ररूपेण दोषाणां क्षरणं कुरू।
तदा च पूर्णरूपेण मन्त्रशक्तिश्च या मता।।
सा शक्तिर्दोष नाशाय प्रबला च भविष्यति।।

अथवा मन्त्र-प्रयोग से दोषों का निवारण कर डालो। मन्त्रशक्ति प्रयोग करने पर वह पूर्ण रूप से प्रबल होकर

शक्ति दोष नाश के लिये बलवती बन जायेगी।

अथ मन्त्रः। ॐ क्रीँ क्रीँ क्रीँ, खं खं खं, बुद्धिदोषान्, विनाशय, विनाशय निर्मलां कुरु कुरू ॐ फट् स्वाहा।।

अब मन्त्र हैः- "ॐ क्रीँ क्रीँ क्रीँ, खं खं खं, बुद्धिदोषान् विनाशय विनाशय, निर्मलां कुरू कुरू ॐ फट् स्वाहा"।।

अस्य मन्त्रस्य प्रयोगस्तदैव करणीयः यदा बुद्धेः बहुजाड्यं जडता वा प्रतीत भवेत् । एतच्च पक्षमात्रेण करणीयः। केवलं यदा कृष्णः पक्षस्तदैवास्य प्रयोगो विधेयः।। ॐ ।।

इस मन्त्र का प्रयोग तभी करना चाहिये जब बुद्धि में बहुत जड़ता आ जाय। इसका प्रयोग एक पक्ष तक करना चाहिये। जब कृष्ण पक्ष हो तभी इसका प्रयोग करना चाहिये।

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। ॐ अलख निरञ्जन। ॐ । बुद्धि के समस्त दोषों को दूर करने के लिये नाना विधान और प्रयोग क्रमशः नित्य ही बताये जा रहे हैं और अब उन दोषों की औषधि मन्त्र और क्रियायें भी प्रायः समाप्ति पर हैं, और इस प्रकरण की समाप्ति पर आ रही हैं। जब यह कहा जा रहा है, कि बुद्धिज दोष वैसे विभ्रम की बुद्धि हो, उसमें स्फुरण नहीं हो रहा हो, नये नये भावों के उदय होने की शक्ति नहीं आ रही हो। बिम्ब ग्रहण करने की शक्ति समाप्त होती जा रही हो। तब ऐसे समय में अथवा जब बुद्धि में विक्षेप की मात्रा विशेष प्रतीत हो, ऐसे समय में अथवा उन्मत्तावस्था या उन्माद की सी अवस्था आ गई हो, ऐसी अवस्था में ये जो औषधि बताई गई है इसका प्रयोग किया जा सकता है। कोविदार जिसे भाषा में कचनार कहते हैं, कचनार, यह भी बड़ी औषधि है, उसको यों भी ग्रहण किया जाता है। शाक के रूप में भी भक्षण होता है। अच्छा सुन्दर वर्ण का पुष्प होता है। उसके पुष्प को ले लेना और उसमें लघु रूप से कभी कभी फल भी दिखाई देते हैं, इन कच्चे पक्के फलों के रूप में अगर ऐसे मिल जाँय तो उनको भी ले लेना। अन्यथा कोई ऐसी बात नहीं और उनको लेकर के पीस लेना और भृंगराज की थोड़ी सी पत्तियां ले आना उसे भांगरा भी कहते हैं। भगेरा भी कहते हैं तो उनको भी ले आना, उसकी पत्तियों को भी उसके पुष्प व फलों में मिला देना और पीस लेना और पीस करके जब खुद मृदु रूप मे वह हो जाय तब उसको सर के मध्य भाग में विलेपन कर देना, लगा देना और वह रात्रि के समय में लगाना और वह भी एक पक्ष तक लगाना और कृष्ण पक्ष में ही लगाना तो विशेष लाभ होगा और इसी औषधि के साथ में उन्हीं दिनों जब औषधि विलेपन किया जा रहा हो तो एक बार रात्रि में वही एक पक्ष तक अर्थात् १५ दिन तक क्रीं क्रीं क्रीं वाले मन्त्र का भी उच्चारण कर लेना। उस मन्त्र की शक्ति संचरित होकर के बुद्धिजनित दोषों को, औषधिप्रयोग को भी शक्ति देती हुई विभूत कर देगी और बुद्धि और निर्मल और कुछ और पवित्र कर देगी। इस में साधक की जीवयात्रा निर्दोष हो जायेगी। गन्तव्य की प्राप्ति में बाधा नहीं होगी और जो अपना मार्ग है, उस पर समुचित रूप से बढ़ता चला जायेगा। और इस प्रकार इन बातों को मौन करके और सर्वत्र विघ्न निःसारण के लिये ये औषधि और मन्त्र इत्यादि का प्रयोग बताया जा रहा है। इससे सबका कल्याण होगा। ॐ ।

१८-२-६३ सायंकाल।।१६२।।

ॐ । अत्र बुद्धिजान् दोषान् विनाशयितुं पुनरपि किञ्चित् निगद्यते।

ॐ । यहाँ पर बुद्धिज दोषों के विनाशार्थ फिर से कुछ कहा जा रहा है। ॐ ।

यदा बुद्धि दोषा विशिष्टा भवन्ति

तदा विघ्नरुपा स्तथा ते भवन्ति।

तदा बुद्धि चाञ्चल्यमेवं तथा वै

जडत्वं च भ्रान्तिश्च बुद्धि प्रयाति।।

जब बुद्धि दोष विशिष्ट रुप में बढ़ते हैं तब साधक के लिये विघ्नकारक होते हैं, बुद्धि की जड़ता चञ्चलता और भ्रान्ति की वृद्धि होने लगती है।

तदा सर्वदोषान् पृथग् वै विधाय

तदा साधको याति तत्त्व-प्रपत्तिं।।

अतः सर्वरोगस्य व्यूहं विनाश्य

तदा वै महादिव्य शक्तिःप्रयाति।।

सभी दोषों को निरन्तर दूर करते हुए तब साधक तत्त्व की प्राप्ति कर लेता है। अतः सभी रोगों के व्यूह का विनाश करते हुए साधक में बड़ी दिव्य शक्ति आ जाती है।

यदा च बुद्धिजा दोषाः प्रबलाः विघ्नकारकाः।

विविधाः सर्वतो बुद्धेः जायन्ते कार्यनाशकाः।।

जब बुद्धिज दोष प्रबल विघ्नकारक हो जावें और वे नाना रुप धारण करके साधना कार्य का विनाश कर रहें हों।

तदा तेषां नाशाय बुद्धेश्च पावनाय मन्त्रौषध प्रयोगश्च करणीयः साधकैः।। ॐ ।।

तब उनके विनाश के लिये, बुद्धि को पवित्र करने के लिये मन्त्रौषध प्रयोग कर लो।

अथ मन्त्रः। ॐ ह्रीं हिरण्यात्मिकां हिरण्यां हरिणीमाराधयामि। बुद्धिजान् दोषान् विनाशय, शमय शमय, विद्रावय विद्रावय, ॐ ॐ ॐ ।।

यह मन्त्र हैः-" ॐ ह्रीं " हिरण्यात्मिकां हिरण्यां हरिणीमाराधयामि, बुद्धिजान् दोषान् विनाशय, शमय शमय, विद्रावय विद्रावय ॐ ॐ ॐ ।।

अस्य मन्त्रस्य प्रयोगः शुक्ले पक्षे भानुवासरादारभ्य मंगलान्तं उच्चारणीयम्। तदा चास्य प्रभावः बुद्धिजान् दोषान् बुद्धिजान् विक्षेपान् बुद्ध्यवरोधान् जडत्वप्रतिपादकान् विघ्नान् नाशयति।।

इस मन्त्र का प्रयोग शुक्ल पक्ष में रविवार से लेकर मंगलवार तक करना चाहिये। तब इस मन्त्र का प्रभाव सभी बुद्धिज दोषों और विक्षेपों को, बुद्धि के अवरोधों को, जड़त्व पैदा करने वाले विघ्नों को नष्ट कर देगा।

रोगाश्च विनश्यन्ति। अस्य प्रयोगस्तदैव बलदा..कः बुद्धि-तत्त्वस्य शोधकः। तथा सावधानेन प्रयोगो विधेयः। तत्र चौषधं औषधप्रयोगं च वदामि।।

इस प्रयोग से रोग विनष्ट हो जायेंगे। इसका प्रयोग तत्काल बलदायक और बुद्धितत्त्व का शोधक होता है। सावधानी से प्रयोग करना चाहिये। औषधि प्रयोग भी बताती हूँ।

यदा मन्त्रस्य प्रयोगः करणीयस्तदैव औषध प्रयोगोऽपि करणीयः। तस्मिन्नेव काले सेवनीयमौषधम् ।। ॐ ।।

जब मन्त्र का प्रयोग करना हो, तब उसी काल में औषध प्रयोग भी करना चाहिये। मन्त्र और औषधि दोनों का प्रयोग एक साथ होगा।

ताम्बूलस्य हरित्पत्रं गुडेन मिश्रितं शुभम् ।

मात्रा तु एकरुपा च केवला चैव गुट्टिका।।

पान के हरे ताजे पत्ते गुड़ के साथ पीस कर उसकी गुटिका बना लो ।

तस्यास्तु सेवनं कृत्वा बुद्धिस्तु प्रबला भवेत् ।

तथा च सर्वदोषांश्च शमयत्येव निश्चितम् ।।

इस गुटिका का सेवन करने से बुद्धि प्रवल हो जायेगी, और निश्चयात्मक रुप से सभी बुद्धि दोषों का शमन हो जायेगा।

यत् पत्रं तस्य यद् वर्णा हरितं गुडमिश्रितम् ।

कृत्वा तेन सदा एवं नश्यन्ति बुद्धिदोषकाः।।

पान का जो पत्ता हो वह हरा और ताजा हो, उसमें गुड़ पीस कर उसका सेवन करो। इस प्रकार बुद्धिदोष मिट जायेंगे।

निर्मलं च संयाति बुद्धितत्त्वं विशेषतः।। ॐ ।।

इससे बुद्धितत्त्व की विशिष्ट रुप में निर्मलता आ जाती है।

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। इस प्रकरण में बुद्धिज दोषों को हटाने के लिये, सर्वकार्यसाधिका बुद्दि को निर्मल करने के लिये, बहुप्रयोगों का कथन किया जा रहा है। इनके सेवन से सब दोष विनष्ट हो जायेंगे और उसके पश्चात् निर्मल कार्यसाधिका मल-विहीना बुद्दि प्रतिबिम्ब को ग्रहण करने की शक्ति से युक्त हो जायेगी। अतः अन्य मन्त्रक्रिया और औषधि प्रयोग इस प्रकरण में बताये गये हैं जिससे सदैव बुद्धि में पवित्रता आ जायेगी। जब कभी विक्षेप आयेंगे सम्भव प्रयास उन्हें भी दूर कर देगा। इसलिये उनको दूर करने के लिये मन्त्रौषधि का प्रयोग करें, और मां का आदेश है कि हिरण्याहरिणी मंत्र का प्रयोग शुक्ल पक्ष में रविवार से मंगलवार तक तीन रोज तक रात्रि में एक ही बार उच्चारण करना। उस उच्चारण के साथ साथ उस समय हरित वर्ण के पान के पांच पत्ते पीस कर उसमें गुड़ मिलाकर बेर के दाने के बराबर गोली बनाकर सेवन करना। एक प्रातः काल करना। एक बार सांयकाल करना। उससे क्या होगा। सब ऐसी जड़ता के कारण आने वाले रोगों का निरोध हो जायेगा और मन्त्र से औषधि भी शक्ति पायेगी। साधुता आ जायेगी और वातावरण शुद्ध हो जायेगा। पूतां, इसका प्रयोग कर लेना, कल्याण होगा।। ॐ ।।

१९-२-६३ प्रातःकाल।।१६३।।

हरि ॐ तत् सत् ।

नमस्ते महाबुद्धिदात्र्यै नमस्ते नमस्ते महाबोध शोधोद्यतायै।

नमस्ते समस्तैकतत्त्वभिदायै नमस्ते सदा चैकशक्त्यैकध्येयै।। ॐ ।।

हरि ॐ तत् सत् । ॐ । महाबोधदात्री भगवती को नमस्कार है। महाबोध और महाशोध के लिये उद्यत मां को नमस्कार है। समस्त तत्त्वों का ज्ञान कराने वाली मां को नमस्कार है। ॐ ।

नमः शांकरीं शंकरस्यात्मशक्ति नमो वै शिवां सर्व शं वै विधात्रीम् ।।

सर्व प्रकार के मंगल करने वाली, शिवा शंकर की आत्म शक्ति शंकरी को नमस्कार है।

नमामि तांमतुलितबलयुतां परेशीं परमतत्त्वलक्षप्रापिकां महामायां भगवतीं जागृतां महाशक्तिं महायोगप्रसाधिकाम् ।। ॐ ।।

अतुल बल सम्पन्ना, परमेश्वरी, परम तत्त्व लक्ष्य को प्राप्त कराने वाली महामाया भगवती महाशक्ति महायोग प्रसाधिका जागृता देवी को मैं प्रणाम करता हूँ। ॐ ।

या शक्तिः सर्वभावेन सर्वत्रैव विराजते।

तत्त्वस्य तत्त्वबोधाय सा मे भवतु शाम्भवी।।

जो शक्ति सर्वभाव से सर्वत्र विराजमान रहती है वह शाम्भवी शक्ति तत्त्व के बोध के लिये उद्यत रहे।

अणवः शक्ति सम्पन्नाः शक्ताश्च परमाणवः।

सूक्ष्माश्च संस्मृता या च तेषामन्तर्विराजिता।।

अणु भी शक्ति सम्पन्न है, परमाणु भी शक्तिपूर्ण है। सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्त्वों के भीतर भी वह शक्ति विराजमान है।

समष्टिरुपा या देवी व्यष्टिरुपा तथैव च।

एक रुपा अनेका च सा मां रक्षतु रक्षतु।।

जो देवी समष्टि रुपा भी है और व्यष्टि रुपा भी है। एकरुपा भी है और अनकेरुपा भी है। वह भगवती मेरी निरन्तर रक्षा करती रहे।

बुद्धिं तां विमलां शुद्धां मन्त्रयोगेन साधिताम् ।

दिव्यौषधि प्रयोगेण विशुद्धां क्रियया तथा।।

मन्त्रयोग से विमल और शुद्ध की हुई और दिव्यौषधि प्रयोग द्वारा तथा क्रियाओं द्वारा विशुद्ध की गई।

तां बुद्धिं सर्वदा शक्तिः महाशक्तिस्तु रक्षतु।

दोषाः समस्ता नश्यन्तु माभूत् तत्सम्भवा-स्तथा।।

उस बुद्धि की सर्वदा महाशक्ति रक्षा करती रहें। मेरे सभी दोष नष्ट हो जावें और फिर से कभी पैदा न होने पावें।

अधुना सर्वभावेन बुद्धेः पावनत्वं, सुस्थिरकरणाय अथवा या बुद्धिर्मन्त्रौषधि प्रयोगेण क्रिया प्रयोगेण वा निर्मला जाता तस्या निर्मलत्वं सदैव तथैव तिष्ठतु, एतदर्थ मन्त्रप्रयोगः कथ्यते, औषधि प्रयोगश्च।

अब यह बताया जा रहा है कि मन्त्रौषधि प्रयोग द्वारा क्रिया मुद्रा द्वारा सब प्रकार से निर्मल और विशुद्ध हुई बुद्धि की पवित्रता सदा स्थिर बनी रहे, इस उद्देश्य से मन्त्र प्रयोग और औषधि प्रयोग बताया जा रहा है।

अथ मन्त्रः-ॐ सौं बीजाक्षर-मण्डितां नौमितामाणविकीं महाप्रलयसाधिकां शक्तिं, सा मे समस्तान् दोषान् विजित्य निर्मलत्वं बुद्धिश्च स्थापयतु। ॐ ।

यह मन्त्र हैः-ॐ सौं बीजाक्षर मण्डितां नौमितामाणविकीं महाप्रलय साधिकां शक्ति, सा मे समस्तान् दोषान् विजित्य निर्मलत्वं बुद्धिश्च स्थापयतु। ॐ ।।

अस्य मन्त्रस्य प्रयोगस्तदैव करणीयः यदा मासान्ते पूर्णिमा अमावास्या वा स्यात् । एकादश वारेण जपभावेन उच्चारणीयः मन्त्रः।

इस मन्त्र का प्रयोग तभी करना चाहिये जब मासान्त में पूर्णिमा अथवा अमावास्या पड़े। ११ बार उच्चारण करके यह मन्त्र पढ़ना चाहिये।

एतस्य मासत्रयमात्रेण कर्तव्यः प्रयोगः न न्यूनं नाधिकम् । मन्त्रस्यास्य प्रभावेण स्वयमेव प्रत्यक्ष रूपेण वा भगवती महामाया बुद्धिप्रदायिनीं प्रत्यक्षं सर्वं निर्मलं विधाय बोधं दास्यति। अस्य मन्त्रस्य प्रयोगः प्रत्यक्ष रूपेण साक्षात् बुद्धिशक्तिं प्रदर्शयिष्यति।।

तीन मास तक यह प्रयोग करना चाहिये, न कम न अधिक। इस मन्त्र के प्रभाव से स्वय ही प्रत्यक्ष रूप में महामाया भगवती बुद्धि प्रदायिनी प्रत्यक्ष सब निर्मल करके बोध प्रदान कर देगी। इस मन्त्र का प्रयोग साक्षात् प्रत्यक्ष रूप में बुद्धि शक्ति को प्रदर्शित कर देगा।

तथा च मन्त्रदेवतां, मन्त्र शक्ति, मन्त्रबीजाक्षरं मन्त्रफलं तत्रैव प्रदर्शयति, अस्य मन्त्रस्य शाम्भवी शक्तिः देवता। तत्त्वशोधनं बुद्धिबोधनं स्थिरीकरणं च तत्फलम् । अपरं च अस्य रहस्यं गूढातिगूढं तदैव प्रतीतं भविष्यति। अपरं च अस्मिन्नेव काले तस्मिन्नेव दिने अमायां पूर्णिमायामेव एकादशवारं मन्त्रोच्चारणं क्रियते तदैव औषधस्य सेवनमपि समाचरणीयम् ।।

मन्त्र देवता, मन्त्र शक्ति, मन्त्र बीजाक्षर, उसका फल प्रत्यक्ष सामने आ जायेगा। इस मन्त्र की शाम्भवी शक्ति देवता है, तत्त्वशोधन और बुद्धि स्थिरीकरण उसका फल है, और भी इस मन्त्र का रहस्य अति गूढ़ है जो सभी प्रकट हो जायेगा। जब अमावास्या को औषधिका प्रयोग किया जा रहा हो उसी समय साथ साथ में ११ बार इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये।

या च प्रोक्ता वचा कुष्टा खण्डमेकं पृथक् पृथक् ।

कृत्वा जले च वै तस्य चर्वणं शुभसम्मतम् ।।

जिसे कुष्ठा या बचा कहते हैं उसका एक खण्ड लेकर जल के साथ उसका चर्वण कर लेना बड़ा लाभदायक होता है।

यदा वै चर्वणं तस्य लेपमात्रेण जायते।

कर्णयोः पृष्ठभागे तु विलेपनं शुभं भवेत् ।।

जब चर्वण करो तब उसी काल में इस का लेप भी कानों में पिछले हिस्से में कर देने से बहुत लाभकारी होता है।

तत्रैव लेपनेनैव कर्णमूले च पृष्ठके।

नाडितत्त्वस्य संबोधो बुद्धेर्बोधो भविष्यति।।

कर्णमूल के पृष्ठभाग में लेपन करने से बुद्धि सम्बन्धी नाड़ी तत्त्व का संशोधन होकर बुद्धि का बोध हो जायेगा।

गोरखवाणी :- अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। ॐ । बुद्धिज दोषों के विनाश के लिये सब कुछ बताया जा चुका है और उसका प्रयोग करने से अवश्य ही बुद्धिज रोग विनष्ट होंगे, और जब उन दोषों के दूर होने पर बुद्धि में निर्मलता आ जायेगी, पवित्रता आ जायेगी, विवेक शीलता आ जायेगी, तब उसको स्थिर करने के लिये भी उपाय कर लेना चाहिये जिससे फिर से उन दोषों का प्रादुर्भाव न हो सके। वे फिर से बार बार इस प्रकार बुद्धि पर अपना आक्रमण न कर सकें, इनके प्रभाव से बुद्धि को मुक्त करने के लिये ऐसा कर लेना, जो शाम्भवी देवता का मन्त्र बनाया गया है, उसको प्रत्येक मास के अन्त में या तो पूर्णिमा को या अमा को , उस मन्त्र को ग्यारह बार पढ़ लेना, और उस मन्त्र के प्रभाव से मन्त्र की शक्ति, मन्त्र का देवता, मन्त्र की क्रिया, मन्त्र का फल और उसकी चरम लक्ष्य की वस्तु भी प्रत्यक्ष अनुभूति का विषय बन जायेगी। साधक को ज्ञान होने लगेगा कि इस मन्त्र में जो रहस्य था या है प्रत्यक्ष रूप में प्रस्फुटित हो रहा है, यह महामाया की कृपा का महाफल है। इसीलिये इस प्रकार उस मन्त्र का प्रयोग भी कर लेना, और ऐसा करना कि उसी समय में औषधि प्रयोग भी कर लेना। जिसे बच कहते हैं, कुष्टा कहते हैं, जो औषधि है, जड़ के रूप में होती है, स्वाद उसका बड़ा कटु तीक्ष्ण होता है, उसको लोग बुद्धि-वृद्धि के लिये ऐसे ही ग्रहण करते हैं, तो उसको ऐसे कर लेना कि एक छोटा सा टुकड़ा लाकर के जैसे चन्दन घिसते हैं वैसे ही घिस लेना, जब विलेपन जैसा हो जाय तब कर्ण के पृष्ठ भाग में विलेपन करके फिर मन्त्र जाप करके बैठ जाना। नाड़ी तत्त्व शोध हो जायेगा, उसमें पवित्रता शुद्धता रह जायेगी। इस प्रकार प्रत्येक मास के अन्त में इसको करना। तीन बार ही तो करना है, कर लेना। तो पूतां, कल्याण होगा। फिर कदापि बुद्धि में विभ्रम नहीं होगा। अब बुद्धि में विभ्रम नहीं होगा। कल्याण होगा, और फिर किस प्रकार से साधक अपनी गतिविधि का लेखा जोखा करता रहेगा उसको इसका आभास भी सदा होता चला जायेगा। ऐसा मां का आदेश है। कल्याण हो।

१९-२-६३ सायंकाल।।१६४।।

हरि ॐ तत् सत् ।

नमो योगमार्गप्रशस्तैकभाव्यै नमः सिद्धिदात्र्यै अनन्तप्रभायै।

सदा बुद्धिरूपा च या पुष्टरूपा सदा बुद्धि संशोधिकायै नमस्ते।।

हरि ॐ तत् सत् । योगमार्ग को प्रशस्त करने के लिये जिसकी एक मात्र सत्ता है, अनन्त सिद्धिदात्री, अनन्त प्रभावशाली, बुद्धिरूपा, पुष्टिरूपा, बुद्धि संशोधिका भगवती को बारम्बार प्रणाम है।

नमस्ते सदा चित्स्वरूपाभिधारै नमस्ते महा जागृतायै परायै।

नमः शक्ति सम्पन्नभावात्मिकायै नमो बुद्धिसंशोधिकाशंकरायै।।

चित्स्वरूपा को सदा प्रणाम है, महा जागृता परमा को प्रणाम है, शक्ति सम्पन्ना को प्रणाम है, बुद्धि संशोधिका शंकरी भगवती को प्रणाम है।

नमामि तां महाशक्तिं योगसंरक्षकारिकाम् ।

या च वै प्रबलारूपा सर्वतत्त्व-समन्विता।।

योग संरक्षिका उस महाशक्ति को प्रणाम है जो प्रबल रूप में आकर सर्वतत्त्वों से समन्वित हो जाती है।

जागृता जागृतिं या च प्रयच्छति शुभां शुभाम् ।

नमामि तां महाशक्तिं त्वां वै सर्वत्र राजिताम् ।।

जो भगवती जागृता होकर नई नई कल्याण कारक जागृति प्रदान करती है, सर्वत्र विराजमान उस महाशक्ति को मैं प्रणाम करता हूं।

विराजिता या सकलैकलोके संराधिता या च विशौक-लोकैः।

भवाय भव्या च विहाय शोकं तामाश्रयन्ते गतशोक-लोकाः।।

समस्त संसार में जो विराजमान है, शोक रहित लोगों द्वारा जो आराधित है, शोक जे दूर करके जो संसार को सुखी बनाती है उसी का आश्रय शोकहीन लोग करते है।

या शक्तिः प्रबलतमा भूता बुद्धिस्थान् बुद्धिसमुद्भवान् बुद्धिजान् रोगान् समस्तान् दोषान् च अपहरति। ॐ ।

जो शक्ति प्रवलतम होकर बुद्धिस्थ और बुद्धिसमुद्भव समस्त दोष एवं रोगों का अपहरण कर देती है, उसे नमस्कार है। ॐ ।

बुद्धि दोषाश्च ये लोके सूक्ष्माः सूक्ष्माः निरूपकाः।

तेषां स्वरूपरूपं च वर्णितं बहुशो मया।।

इस लोक में जो भी सूक्ष्म और सूक्ष्मतम बुद्धि दोष हैं। उनका स्वरूप बहुत भांति मैं पहिले वर्णन कर चुकी हूँ।

तन्नाशाय च वै सर्वं मन्त्रौषध-विधात्मकम् ।

क्रियारूपेण यच्चात्र भाषितं भावदायकम् ।।

उनके नाम के लिये भी भाँति भाँति के मन्त्रौषधि, क्रिया मुद्रा के उपाय बता दिये गये हैं।

अधुना संप्रवक्षामि मन्त्रं दिव्यं महौषधम् ।

संममेव तयोस्तत्र प्रयोगः क्रियतां बुधैः।।

सम्प्रति एक दिव्य मन्त्र और दिव्य औषधि बता रही हूँ। मन्त्र और औषधि दोनों का प्रयोग साथ साथ ही साधकों को करना चाहिये।

तत्प्रभावेण वै सर्वे बुद्धिदोषाश्च सूक्ष्मकाः।

स्थूला वा छिन्नविच्छिन्नाः जायन्ते नात्र संशयः।।

उसके प्रभाव से बुद्धि के जो भी स्थूल, सूक्ष्म, लुप्त, गुप्त, बचे खुचे दोष होंगे वे सभी नष्ट हो जायेंगे। इसमें संशय नहीं है।

अपहारस्तु वै तेषां दोषाणां नित्यशो भवेत् ।

तस्मामन्त्रौषधं चैव प्रयोक्तव्यं सुसाधकैः।।

उन दोषों का दूरीकरण सदा सर्वदा के लिये हो जाय, इस उद्देश्य से अच्छे साधकों को इस औषधि का और मन्त्र का प्रयोग करना चाहिये।

अथ मन्त्रः। ॐ शांकरीं शं शमय शमय दोषान् सर्वान् च नाशय, ॐ पं पं पं, पं पं पं, पं पं पं, ॐ ।।

यह मन्त्र है:- "ॐ शांकरीं शं शमय शमय दोषान् सर्वान् च नाशय, ॐ पं पं पं, पं पं पं, पं पं प, ॐ ।।"

अस्मिन् मन्त्रप्रयोगे महादिव्या शांकरी शक्ति विद्यते, ॐ शंकरा देवता, शांकरी शक्तिः, रोगाविनाशनं तत्फलं प्रत्यक्षमनुभूति विषये समागमिष्यति। अस्य मन्त्र प्रयोगस्य विशेषतः मन्त्रव्यूहकस्य प्रयोगः तदैव कर्तव्यः यदा (कृष्ण पक्षे) अमास्यात् ।।

इस मन्त्र प्रयोग में एक दिव्य शांकरी शक्ति निहित है। शंकरा देवता है, शांकरी शक्ति है, रोग विनाशन उसका फल है, जो प्रत्यक्ष अनुभूति का विषय बन जायेगा। इस मन्त्र का प्रयोग तभी करना जब अमावास्या हो।

अमायां वारमेकं च करणीयः प्रयोगकः।

औषधं तेन सार्धं च भक्षणीयं बलप्रदम् ।।

अमावास्या में केवल एकबार इस मन्त्रौषधि का प्रयोग करना चाहिये। एक बार मन्त्र पढ़कर औषधि भक्षण कर लेनी चाहिये, यह बहुत बलप्रद है।

औषधं परमं दिव्यं दिव्यं शक्तिप्रदं महत् ।

दोषापहं परं दिव्यं सेवनीयं तदैव तत् ।। ॐ ।।

यह परम दिव्य औषधि है और बड़ी शक्ति देने वाली है। दोषों को दूर कर देती है। इसका सेवन अमावास्या के दिन कर लेना चाहिये। ॐ ।

वटस्य अंकुरान् रक्तात् ताम्रवर्णविमण्डितान् ।

अग्रतस्तान् समादाय कुर्याच्च चवर्णं तदा।।

लाल लाल ताम्रवर्ण के सुन्दर कोमल, वट के अंकुरों को लेकर उनका चवर्ण कर लेना चाहिये।

केवलं चवर्णं कृत्वा मन्त्रधारेण सार्धकम् ।

महादिव्यं महाशीघ्रं फलं चैव भविष्यति।।

चवर्ण करते समय केवल मन्त्र का उच्चारण कर लो। इससे बड़ा दिव्य और बड़ी जल्दी फल मिल जायेगा।

बुद्धिजाः सकला रोगाः शान्तिमायान्ति सत्वरम् ।

तस्मादिदं च कर्तव्यं कल्याणं च भविष्यति।। ॐ ।।

बुद्धि के सभी रोग शीघ्र शान्त हो जायेंगे। इसलिये इसका प्रयोग कर लेना चाहिये, सब कल्याण होगा।

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। मां का आदेश है कि अब इस प्रकरण की समाप्ति हो रही है, तो मन्त्रौषधि प्रयोग का भी अन्तिम प्रयोग बता दिया जाना चाहिये और वह इसलिये बता देना चाहिये कि अन्त में जो कुछ भी शेष बचे हुए सूक्ष्म या वृहत् बुद्धिज दोष हों, बुद्धिज रोग हों, वैसे न रहने पावें। इसीलिये साधक श्रेष्ठ को अपने मार्ग में चलते हुए अपनी बुद्धि को पवित्र करने के लिये, स्थिर करने के लिये विवेकवती और विचारशील बनाने के लिये समय समय पर जब जब जैसी आवश्यकता हो तब तब इस प्रकार के मन्त्रों का और इस प्रकार की बताई गई औषधियों का सेवन कर लेना चाहिए। जब जैसी परिस्थिति सामने आ जाय उसके लिये वैसा ही विधान भी बता दिया गया है, सावधानी से उनका प्रयोग कर लेना। और ऐसा भी बताया गया है कि जब किसी प्रकार का सूक्ष्म या स्थूल, लघु या महा बुद्धि दोष, द्वेष की भावना, बुद्धिज दोष, विक्षेप पदार्थ, सम्मोहवाला मलविक्षेप अथवा दिव्य भाववाली मलविरलता आ जाय और बुद्धि में विकारों का होना प्रारम्भ हो जाय, अथवा बुद्धि सदैव विकारग्रस्ता हो करके केवल विद्रोह और विप्लव की बातें सोचा करे और उसमें एक प्रकार की मल-विरलता आ जाय जो निम्नस्तर की बातों को सोचने के अतिरिक्त उच्चस्तर की बात को सोच ही न सके, ऐसे समय में शंकर की शांकरी शक्ति वाला मन्त्र प्रयोग कर लेना चाहिये। अमा में सायं कर लो या प्रातः कर लो। एक बार ही इसको कर लेना। और उसके साथ में जो वट वृक्ष है, बरगद है, उसकी जो टहनियां होती हैं उसके आगे जो रक्त वर्ण के अंकुर जैसे होते हैं, वे लाल होते हैं, कोमल कोमल होते हैं, निकाल करके, ला करके, थोड़ी सी मात्रा में उनका भी भक्षण कर लेना तो इससे बुद्धिज दोषों का विनाश हो जायेगा। तो इसलिये इसकी अवधि चार मास है। इस बात को पूर्ण रूप से ध्यान रखना। चार अमायें जब व्यतीत हो जायेंगीं, पचंमी आमा जो आयेगी उसमें स्वतः ही बुद्धि के प्रकाश के लक्षण, बुद्धि के विचारशीला होने के लक्षण और बुद्धि के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों के ग्रहण करने के लक्षण स्वतः ही प्रकट होने लगेंगे और इस प्रकार साधक अपने कार्य में सफल हो जायेगा। इसके पश्चात् जैसा कि मां का आदेश है। थोड़ा बहुत महत्त्व और बता करके फिर जैसी मां की इच्छा होगी वैसा ही आदेश दिया जायेगा। तो साधक ! सावधान।। ॐ ।।

२०-२-६३ प्रातःकाल।।१६५।।

प्रकरण की समाप्ति

हरि ॐ तत् सत् । ॐ ।

सकल जन मनः सम्मोदसम्पादयित्रीम्

सकल-जन-समूहे शोध सद् बुद्धिदात्रीम् ।

सर्वात्मता बोध विबोधदात्रीम् ।

आधारं न समस्तं सुदृढं कुरू शारदे सर्वकाले।।

हरि ॐ तत् सत् ।। ॐ ।। समस्त मानवों के मन को प्रसन्न कर देने वाली, सकल जनों की बुद्धिवत शोधन करने वाली, सर्वात्मता का विशिष्ट बोध देने वाली भगवती को प्रणाम है। हे शारदा भगवती ! मेरे उस आधार को सुदृढ़ कर दो।

अस्मिन् व्याघात्- संहति प्रकरणे बुद्धिजान् रोगान् अपसारयितुं सर्वं सुखदं लाभप्रदं औषधि मन्त्रक्रिया प्रयोगं कथितम् । तत् सर्वं विशिष्टरूपेण अनुभूतिपरकं चक्रविद्याया तत्त्वात् तत्त्वभूतं प्रकटितम् येन सर्वत्रैव साधकानां कल्याणं भवतु।।

इस व्याघात्-संहति प्रकरण में बुद्धिज रोगों में अपसारणार्थ सब कुछ सुखद और लाभप्रद औषधि मन्त्र क्रिया के प्रयोग बताये गये हैं। यह सब अनुभूति जन्य और अनुभूति परक चक्र विद्या में तत्त्व तत्त्व, सार सार प्रकट किया गया है। इस विद्या से सर्वत्र साधकों का कल्याण हो।

अत एव चास्मिन् प्रकरणे सर्वसुनिश्चितं सारं सारं तत्त्वभूतं च निगदितम् । येन बुद्धिवैकल्यं विनश्यति। बुद्धिभ्रान्तिश्च नश्यति। बुद्धिस्तु प्रबला, निर्दोषा निर्विकारा च जायते।। ॐ ।।

इसलिये इस प्रकरण में सार सार सर्व सुनिश्चित तत्त्वभूत बातें बताई गई हैं, जिससे बुद्धि वैकल्य का विनाश होता है। बुद्धिभ्रान्ति नष्ट होती है। बुद्धि प्रबल, निर्दोष निर्विकार हो जाती है। ॐ ।

महायोगे चास्मिन् निगदितमिदं तत्त्वभूतं विशिष्टम् ।

नित्यं नित्यात्मकं च प्रमुदित मनो दोष रोषापसारम् ।।

उत्का तत् सर्वमेवं विगलितं भयं पूर्ण-संसिद्धिकामम् ।

सर्वं तत् पूर्णरूपं परिमितबलं जायतां साधकानाम् ।।

इस महायोग शास्त्र के अन्तर्गत विशिष्ट सारभूत नित्य सुनिश्चित तत्त्व बताये गये हैं। साधक लोग इनके द्वारा दोषों का अपसरण करके निर्भय बन जायें, पूर्णसिद्धि की कामना करें। साधकों के लिये यह शास्त्र पूर्णरूप से अपरिमित बलदायी बने।

शास्त्रे चास्मिश्च यत्प्रोक्तं शक्तिपातं सुदुर्लभम् ।
तत्सर्वं बहुरूपेण स्वानुभूतौ निवेश्य च।।
दत्तं च भाषितं चैव वर्णितं च पुनः पुनः।
अनुभूतौ समारोप्य साधकस्य तदैव तत् ।।

इस शास्त्र में जो सुदुर्लभ शक्तिपात विद्या बताई गई है वह सब नाना भाँति से अनुभूति में बिठाकर साधकों को दिया गया है, कहा गया है और बार बार दिखाया गया है। साधकों की अनुभूति में तत्काल जमा कर प्रकट कर दिया गया है।

सारं सारं मया प्रोक्तंप्रोक्तंशास्त्रस्य तत्त्वतः।
सुप्ता गुप्ता च या विद्या प्रकटिता सा मया पुनः।।

शास्त्र का तत्त्व तत्त्व लेकर मैंने सार बातें कहीं हैं। जो विद्या अब तक लुप्त और गुप्त थी वह मैंने पुनः प्रकट की है।

तस्याः प्रयोगमाधाय लोकाः सन्तु प्रसन्नकाः।
सकलाश्च सदा वै ते भवन्तु हितकामुकाः।।

इस विद्या का प्रयोग लेकर संसार के मानव प्रसन्न बने रहें और वे अन्य लोगों के लिये हितकामना करते रहें।

इदं शास्त्रं महत् शास्त्रं दिव्यं शास्त्रं फलप्रदम् ।
योगमार्गे विशेषेण सर्वश्रेष्ठं भविष्यति।।

यह शास्त्र बड़ा ही दिव्य शास्त्र है और दिव्य फल देने वाला है। यह शास्त्र विशेष करके योग मार्ग में सर्वश्रेष्ठ गिना जायगा।

अस्य शास्त्रस्य या वार्ता या शक्तिर्यत् फलं च तत् ।
सर्वं संयाति कालेन साधकानां हिताय च।।

इस शास्त्र की जो बातें हैं, जो शक्ति है ओर जो महान् फल है वह सब यथा समय साधकों के कल्याण के लिये सामने आ जाता है।

प्रचरतु भुवि चैतत् दिव्यशास्त्रं महच्च
मुदितजनसमूहो योगतत्त्वतर्थवेत्ता।।
भवतु भवतु लोकः शोक रोगादि मुक्तः।
सफलमतिमनोज्ञं शास्त्रमायातु लोके।।

इस दिव्य महान् शास्त्र का इस संसार में भरपूर प्रचार हो। इसके प्रचार से जनसमाज योगतत्त्वार्थ का वेत्ता बने और जीवन में सुखी हर्षित रहे। सारा लोक इस विद्या के प्रचार से शोक मुक्त तथा रोगमुक्त बन जाये। इस लोक में यह अति सुन्दर शास्त्र पूर्ण सफलता प्राप्त करें।

वितरतां विपुलतां विशिष्टतां गच्छतु शास्त्रमिदं सदैव लोके।
प्रकटितसकलज्ञानं गुप्तलुप्त विधानं।
परिमितपरिमाणं सर्वकल्याणपूर्णं
भवतु सफलमेतत् पूर्णरूपेण सद्यः सकल सफल सिद्धि
चक्ररूपेण यातु।।

यह शास्त्र सर्वदा इस लोक में अपनी एक विशिष्टता बनाये रखे। इस शास्त्र में लुप्त गुप्त विधान और ज्ञान प्रकट किया गया है। अपरिमित परिमाण में यह शास्त्र सर्वजन का कल्याण कारी बने। इस प्रकार समस्त सफल सिद्धि देता हुआ यह शास्त्र पूर्णरूप से सफल बने और चक्र की भांति इसका भी संसार के कोने कोने में यशगान होता रहे। चक्र विद्या यथार्थनाम वाली बने।

ॐ । इदं सर्वं शास्त्ररूपेण वाणिविमण्डितं सर्वं यत् किंचित् प्रोक्तं भाषितं जितेन्द्र भारतीयस्य मुखात् ख्यापितं च इदं सिद्धं वाणी विमण्डितं शास्त्रं भुवि प्रचरताम् । लोकानां कल्याणाय च जायताम् ।।

ॐ । यह पूर्ण शास्त्र गोरख बाबा की वाणी से विमण्डित है। इसमें जो कुछ भी कहा और बताया गया है वह श्री जितेन्द्र भारतीय के मुख से प्रख्यापित हुआ है। यह वाणी विमण्डित शास्त्र संसार में प्रचार प्राप्त करे। लोगों का कल्याण हो।।

यदा वै भुवि अस्य प्रचारो भविष्यति तदैव शक्ति सम्पन्नाः सर्वे जनाः योगमार्गगामिनो भूत्वा सर्वत्रैव सुखं शान्ति च प्राप्स्यन्ति।। ॐ ।।

जब पृथ्वी में इस शास्त्र का प्रचार होगा तभी शक्ति सम्पन्न सभी लोग योगमार्ग के पथिक बन कर सर्वत्र सुख शान्ति प्राप्त कर लेंगे।। ॐ ।।

नमोऽस्तु तस्मै गुरवे नमः सदा।

यत्पादपद्मोपहितं मनो मे।

योगस्य मार्गे सुविसंयतं च

शक्तिं च सम्प्राप्य मुदान्वितं च।।

उन गुरुदेव को बारम्बार मेरा प्रणाम है, जिनके चरण कमलों में मेरा मन विश्राम पा रहा है और जिनकी कृपा से योग मार्ग में मेरा मन लगा है और जिनसे शक्ति प्राप्त करके हर्ष से भर गया है।

कल्याणं भवतु ।। ॐ ।। गोरक्ष ! गोरक्ष !!

कल्याण हो ।। ॐ ।। गोरक्ष ! गोरक्ष !!

गोरखवाणी :- ॐ अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। अलख निरञ्जन। ॐ । चक्रविद्या का यह व्याघात-संहति प्रकरण जिसमें शारीरिक, मानसिक चित्तज और बुद्धिज दोषों को विनाश करने का अन्तिम प्रकरण था उसमें केवल बुद्धिज रोगों को नाश करने के लिये विशेष रूप से प्रयोग और उपाय बताये गये और उन उपायों और प्रयोगों को करने से यह भी बताया गया था कि योगमार्ग में प्रवृत्त होने वाले सभी अभ्यासियों का, सभी साधकों का सभी जिज्ञासुओं का कल्याण होगा और इस प्रकार जो शक्तिपात की परम्परा लुप्त गुप्त हो गई थी, पुनः प्रचार में आ जायेगी, और यह जो विद्या थी जो लुप्त गुप्त थी जिसे मैं भी चाहता था कि पुनः प्रकट हो जाय, वह वाणी और शास्त्र के रूप में बद्ध हो गई ओर इसका उपयोग, इसका प्रयोग, इसका अनुभव सदा फलदायक होगा। इससे साधकों की कामना की पूर्ति होगी। यह शास्त्र धरती पर प्रचरित होगा तो साधकों का, जिज्ञासुओं का कल्याण होगा और इस प्रकार जो शक्तिपात की विद्या लुप्त गुप्त हो गई थी, पुनः प्रचार में आ जायेगी। यह शास्त्र धरती पर प्रचरित होगा तो सभी साधकों के जिज्ञासुओं के मनोरथ फलीभूत होते चले जायेंगे। स्वल्पकाल में यह मार्ग, यह विद्या, यह शास्त्र बहुलाभप्रद होगा। ये जितने भी उपाय और प्रयोग बताये गये हैं, सूक्ष्म हैं, स्वल्प काल के हैं। सार सार लिया हुआ है और उसमें से भी निचोड़ निचोड़ कर दे दिया है जिसको स्वल्पकाल में बहुत लाभ हो सके, लोगों की भ्रान्ति मिट सके, लोगों में योग का वायुमण्डल तैयार हो। लोग महायोग के कल्याण मार्ग पर चलकर स्वयं का और जन का कल्याण करते हुए विश्व शान्ति के पूर्ण पोषक बनके "सर्वेऽत्रसुखिनः सन्तु" की घोषणा कर सकें। यही एक बार मेरी इच्छा का विषय बना था। उसकी इस प्रकार से पूर्ति की गई है। साधक ! सावधान ! इसका समुचित उपयोग, प्रयोग और प्रचार करने से स्वयं ही योगसिद्धि का द्वार खुल जायेगा। इसलिये ऐसा करो कि जितना प्रदत्त ज्ञान, अनुभूति का विषय बना है, वह पुष्ट अनुभूति है, क्योंकि इसको आधार पर भी कस लिया गया है। इसलिये इस शास्त्र को कल्याण के

इच्छुकों को बताते चले जाना। समझाते चले जाना और योग का वायुमण्डल तैयार करते चले जाना। आगे मां की जैसी इच्छा होगी, वैसा ही आदेश भी होगा, वैसा ही किया भी जायेगा किन्तु इस शास्त्र का किसी न किसी रूप में, अरे ! स्वयं ही यह ऐसा शास्त्र है जिसमें सरस्वती मां भगवती महामाया ने स्वतः अनुभूत वस्तुओं का सब कुछ सार दे दिया है। उसकी शक्ति का विकास होगा, फिर ऐसा होता है कि भाई, जन-कल्याण की भावना से जो कार्य होता है, वह दिव्य फलदायक होता है। उसका ऐसा दिव्य फल है कि जो जीवन की पवित्रता की ओर मोड़ता हुआ शुद्ध, पवित्र, मुक्त बना देता है। इसलिये ऐसा सोच समझ कर और अनुभूति करके इस शास्त्र का दिव्य प्रचार, बहु प्रचार होने से जन-कल्याण होगा ऐसा करना मां का आदेश है। इस प्रकार चक्र विद्या का अन्तिम प्रकरण गोरक्ष की वाणी में जितेन्द्र भारतीय के मुख से जो कहा गया सो अब बन्द।। ॐ ।।

।। इति ।।

अथ प्राण पराविद्या

।। जागृत – शक्ति निरीक्षणम् ।।

२१-७-६४।।१६६।।

अथ पराविद्यायां प्रथमाधिकरणम् ।।

अब पराविद्या के अन्तर्गत प्रथमाधिकरण आरम्भ होता है।

हरि ॐ नत् सत् । धातुः कण्ठविहारिणीं प्रमुदितां वन्दे मुदा भारतीम् ।। ॐ ।।

हरि ॐ तत् सत् । ब्रह्मा के कण्ठ में विहार करने वाली प्रमुदित भारती देवी को मैं प्रणाम करता हूँ।। ॐ ।।

ॐ। अथ पराविद्यायां प्राणानां गमनागमनं गत्यवगतिः अवरोधानवरोधानां विषये यदुचितं साधकानां हिताय प्रोच्यते तत् सर्वेषां कल्याणाय जायताम् । पराविद्यायां ज्ञानानुभवरूपेण कृतं वा उपलब्धं वा भुक्तं वा सर्वं पुष्टिपथं प्रयाति। तत् केन प्रकारेण साधको जानाति, कथं च साधकः अनुभवति, कथं शक्तिः स्थितिविशिष्टं साधकं प्रतिपादयति तदपि सर्वं पराविद्यायां प्रकटरूपेण प्रोच्यते।।

ॐ । अब पराविद्या के अन्तर्गत प्राणों का गमनागमन, गति, अवगति, अवरोध और अनवरोध के विषय में जो साधकों के लिए उचित है, कहा जा रहा है। उससे सभी का कल्याण हो। पराविद्या में ज्ञानानुभव रूप से जो भी किया गया, उपलब्ध हुआ या मुक्त होता है वह सब पुष्टि पथ में आ जाता है। उसे साधक कैसे जानता है, साधक कैसे अनुभव करता है, शक्ति कैसे स्थिति विशिष्ट साधक को लक्ष्य तक पहुंचाती है, सब पराविद्या में प्रकट रूप से कहा जाता है।

पराविद्या च या प्रोक्ता प्राणानां गमनात्मिका।
ऊर्ध्वं गच्छन्ति वै प्राणा अथ आयान्ति सत्वरम् ।।

प्राणों के गमन अथवा गति के बारे में जहां तक बताया जाता है उसे पराविद्या कहते हैं। प्राण साधक शरीर में ऊपर जाते हैं फिर नीचे को चले जाते हैं।

गमनागमनं तेषां कल्याणाय यदुच्यते।
तत्सर्वं ज्ञायतां पूर्णं कार्यसिद्धिर्भविष्यति।।

उसके गमन और आगमन के बारे में साधकों के कल्याणार्थ कहा जा रहा है, उसे समझ लो। [illegible] पूर्ण सिद्धि प्राप्त हो जायेगी।

यदा गच्छन्ति वै प्राणाः सेतुं यावत् प्रकर्षतः।
ऊर्ध्वं न यान्ति वै तत्र स्थिरतां हि व्रजन्ति ते।।

प्रकट रूप में जब प्राण सेतु तक (भ्रूमध्य तक) पहुंचते हैं, किन्तु उससे ऊपर नहीं जा पाते हैं वहीं स्थिरता प्राप्त कर लेते हैं।

तत्रैव स्थिरता तेषां ज्ञायतां तत्त्वतः शुभा।
नाभिदेशात् समाकृष्य कण्ठदेशं निवेशयेत् ।।

वहीं पर उनकी शुभगति को तत्त्व पूर्वक समझ लो। साधक प्राणों को नाभिदेश से खींच कर कण्ठ देश तक स्थापित करें।

तत्र कण्ठे स्थिताः प्राणाः किञ्चित् कार्याकुला मताः।
पुनः डक्कार भावेन गच्छन्ति च इतस्ततः।।

वहां कण्ठ देश में स्थित हुए प्राण कुछ कार्य में आकुल होते हैं और फिर डकार के रूप में इधर उधर बिखर जाते हैं।

पार्श्वभागे समाकृष्य अपरं अपरात्मकम् ।
वायुं तत्रैव संरोध्य ऊर्ध्वं ते प्रापयन्ति वै।।

उदर के दोनों पार्श्व भागों को संकुचित करके, प्राण और अपान दोनों को वहां नाभि में रोक लेने पर, वे प्राण ऊपर की ओर चढ़ने लगते हैं।

तदा च हृदये किंचित् स्फुरणं लघुसंज्ञकम् ।
जायते न चिरात् तत्र ज्ञायतां सुस्थिरा स्थितिः।

तब हृदय देश में कुछ कुछ स्फुरण होने लगता है। यदि ऐसा स्फुरण (धुक धुकी) होने लगे तो समझ लो कि प्राण की स्थिति सुस्थिरा है।

यदि रूद्धा महाप्राणा गमनागमनाख्यकाः।

तेषां संरोधमात्रेण योगमार्गः शुभः स्मृतः।।

गमन और आगमन करने वाले प्राणों को यदि भली भांति निरोध कर लिया जाय तो उसके संरोधमात्र से योगमार्ग में मंगल हो जाता है।

यदि तत्र विरूद्धास्ते प्राणाः कार्याकुलाः न वै।

तदा प्रमादभावो हि आलस्यमानयेद् ध्रुवम् ।।

यदि प्राण निरूद्ध नहीं हो पाते हैं तो अपना कार्य नहीं कर पाते हैं। तब प्रमादभाव और आलस्य को उत्पन्न कर देते हैं।

आलस्ये च समायाते गतिविच्छितिरल्पकः।

एष भावो विरूद्धाख्यः प्रादुर्भूतो गमिष्यति।।

आलस्य के आने पर साधना में गतिविच्छेद हो जाता है। और गति विच्छेद भाव साधना में विरूद्ध भाव पैदा करता है।

तदा च विविधाः शंका-स्तर्काश्चैव अनेकशः।

प्रजायनो प्रकर्षेण मुह्यते मतिमानपि।।

तब नाना प्रकार के तर्क और शंकायें तीव्र रूप में साधक के भीतर उठा करती हैं। बुद्धिमान साधक भी मोह में पड़ जाता है।

तदा जानाति तं पूर्वं अशुभं अशुभा गतिः।

प्राणानां जायते नैव किं करोमि पुनः पुनः।।

वह समझता है कि योग मार्ग में मेरे लिये अशुभ हो रहा है। प्राणों की गति ठीक नहीं चल रही है, क्या करूं ऐसे ही बार बार सोचा करता है।

क्रिया मे निष्फला जाता कृतं कर्म शुभं नहि।

तस्मात्याज्यो मया एतन् किमनेन भविष्यति।।

मेरी क्रियायें निष्फल हो रही हैं, किये गये सभी साधन के कार्य शुभ नहीं हो रहे हैं। इसलिये यह मार्ग मुझे छोड़ देना चाहिये, इस मार्ग में लगे रहने से मेरा क्या बनेगा ?

एतादृशी यदा बुद्धिर्जायते योगविन्नरे।

जायतां मार्गसिद्धिर्वै स एवं प्रापयेत् स्वकम् ।।

योगज्ञाता साधक के भीतर जब इस प्रकार की बुद्धि उदित हो जाय तो समझो कि योगमार्ग में उसकी सिद्धि हो जायेगी। वह अपने को स्वयं लक्ष्य तक ले चलेगा।

सा सिद्धिः पूर्विका प्रोक्ता भूमिका योगसिद्धिदा।

न जायते यदा सा वै तदा कार्यं न जायते।।

यह योग सिद्धि देने वाली प्रारम्भिक भूमिका कही गई है। साधक को यदि ऐसी स्थिति नहीं आती है तो काम नहीं बनता है। (शंका, तर्क, चिन्ता आदि आरम्भ में होते ही हैं)

अतः योगसमायुक्तो योगमार्गरतो नरः।

प्राणानां गतिभावं तं अवगच्छेत् पुनः पुनः।।

नाभिदेशात् तदा ऊर्ध्वं कण्ठदेशं तु संस्थिताः।

मध्ये संघातसम्पूर्णाः प्राणाः श्रेयस्कराः स्मृताः।।

अतः योगमार्ग में लगे साधक को चाहिये कि वह प्राणों के गतिभाव को बारम्बार ज्ञात करता रहे।

उन प्राणों को श्रेयस्कर समझा जाता है, जो नाभि देश से उठकर कण्ठ में स्थित होते हैं और मध्य में (उदर भाग में) संघर्ष रूप में रगड़ खाते हैं (प्राणापान दोनों परस्पर धक्का देते हैं)

तस्मात् सम्पूर्ण भावेन ऊर्ध्वं स्थानद्वयं ध्रुवम् ।

आगच्छेत् च नरस्तत्र कार्यसिद्धिर्भविष्यति।।

इसलिये साधक को चाहिये कि सम्पूर्ण भाव से ऊपर दो स्थानों पर (कण्ठ और भ्रूमध्य) तक किसी प्रकार पहुंच जावे। इसी से कार्य सिद्धि होगी।

अपरं च प्रवक्ष्यामि लक्षणं शुभसंज्ञितम् ।

तदैव ज्ञातभावेन विच्छित्तिं भावयिष्यति।।

एक अन्य शुभ लक्षण और बताती हूं जिसके जानने से प्राणों का गतिविच्छेद हो जायेगा।

हृदये व्यग्रता व्याप्ता मूर्च्छाभावात्मिका च या।

तीव्रेण बहिरायाति जानीयाच्च पुनः पुनः।।

हृदय में व्याप्त हो जाय और उससे जो मूर्च्छाभाव आ जाय और इस मूर्च्छा में तीव्रगति से प्राण बाहर आ जावें तो यह शुभ लक्षण है। (ऐसा अश्वोदरी मुद्रा में हुआ करता है।)

कदाचिद् बहुधा सा वै मूर्च्छा मूर्धन्यसंज्ञिका।

तत्रैव हत्प्रदेशे तु जानीयाद् योगमार्गकः।।

कभी कभी वह मूर्च्छा इतनी तीव्र होती है कि मस्तक तक पहुंच जाती है। कभी हृदय प्रदेश में ही प्रतीत होती है। साधक इसका अनुभव कर लो।

यदा वै मूर्च्छनाभावः कदाचिद् वै क्वचित् कवचित् ।।

भविष्यति तदा तत्र सर्वं शुद्धं प्रज्ञायताम् ।।

जब मूर्च्छाभाव कभी तो आवे और कभी नहीं भी आवे तब वहाँ समझना चाहिये कि सबकुछ ठीक चल रहा है, प्राणों की गति ठीक है।

बहुकालगते चैव न च मूर्च्छा समागता।

तदा तु प्रोक्तः संरोधः सफलं न गतं ध्रुवम् ।।

बहुत काल बाद भी मूर्च्छा नहीं आती है तो समझना चाहिये कि प्राणों का निरोध सफल नहीं हुआ है।

जानीयाल्लक्षणं चैतत् शंकाविच्छिन्नकारकम् ।

अन्तर्दृष्टि समाधाय तत्रैव दृश्यतां स्वयम् ।।

यह लक्षण शंका पैदा करने वाला होता है। इस शंका का समाधान साधक को अन्तर्दृष्टि का अवलम्बन करके स्वयं देश लेना चाहिये कि कहाँ गलती है।

सर्वं ज्ञानं प्रकाशं च अनुभूतिं गमिष्यति।

तस्मात् पूर्वं परं भावं जानीयाद् योगवित्नरः।।

सब कुछ साधक के प्रकाश में और अनुभव में आ जायेगा। इसलिये योगवेत्ता साधक को चाहिये कि वह पूर्व और परभाव को स्वयं जान ले। (अर्थात् मेरी प्रारम्भिक स्थिति है या आगे बढ़ रहा हूँ इसका अपने भीतर ज्ञान करें)

२३-७-६४।।१६७।।

हरि ॐ तत् सत्।। ॐ ।। नमामि वीणादण्डाकुलामपरिमितविद्यानिधिरूपां जागृतस्वरूपां महासरस्वतीम् ।। ॐ ।।

हरि ॐ तत् सत् । ॐ । वीणा दण्ड में व्यस्त, अपरिमित विद्याओं की निधिभूत जागृत स्वरूपा महा सरस्वती को मैं प्रणाम करता हूँ।

वन्दे विज्ञानमण्डितां सकलशास्त्र-पण्डितां वाणीम् ।

वरवादिनीं शुभ्रां पुण्यां गुण्यां सरस्वतीम् ।। ॐ ।।

विज्ञान से मण्डित, सकल शास्त्रों में पारंगत उत्तम भाषिणी, गुणों से पूर्ण, भगवती वाणी सरस्वती को मैं नमस्कार करता हूँ।

अथ एतस्तु विज्ञानं परायाः कथितं शुभम् ।

तत्र संस्थितिरूपेण भावेन भावितात्मकम् ।।

अब परा विद्या का वह श्रेष्ठ विज्ञान बताया जाता है, जो भाव रूप में आत्मा के भीतर ही संस्थित रहता है।

स्वरूपज्ञानं बोधं च जानीयाद् हि नरः स्वयम् ।

यत्प्रोक्तं योगमार्गेऽस्मिन् प्राणानां संस्थितिध्रुवा।।

साधक को स्वयं स्वरूप का बोध और ज्ञान करना चाहिए कि योगमार्ग में जो प्राणों की स्थिर स्थिति बताई गई है वह ठीक है या नहीं।

सा च प्रत्यक्षरूपेण साधकेनानुभूयते।

सर्वेषां तत्त्वरूपाणां कुञ्चिका शुभदा शुभा।।

साधक प्रत्यक्ष रूप से स्वयं इस बात का अनुभव कर लेता है। सभी तत्त्व रूपों की एक कल्याणकारी सुन्दर कुञ्जी इस योगमार्ग में है।

येन ज्ञाता च लब्धा च जितं तेन स्वरूपकम् ।

दृष्टं तेनैव तत्सर्वं अनुभूतं पुनः पुनः।।

जो साधक उस कुञ्जी को जान लेता है और प्राप्त कर लेता है समझो कि उसने स्वरूप पर जीत पा ली है और उसने तत्त्वार्थ देख लिया है और अनुभूत कर लिया है।

तत्त्वरूपेण रूपेण अन्तर्ज्ञानं विशेषतः।

अन्तर्दृष्टि समाधाय कुञ्चिकां तत्त्वशोधिकाम् ।।

तत्त्वतः अन्तर्दृष्टि का अवलम्बन करके तत्त्व शोधिका उस कुञ्जिका को-

बोधिकां भावरूपस्य ज्ञायतां पूर्णतः शुभः।।

जो भाव रूप की बोधिका है उसे भली प्रकार पूर्णतया समझ लो।

अथ सर्वेषां प्राणानां गत्यवगतिः अनुच्छेद विच्छेदरूपकं भावरूपकं शोधनं बोधनं उद्त्बोधनं प्रबोधनं संशोधनं यद् भवति तत्त्वतस्तत् साधकेनानुभूयते महामाया प्रभावेण।।

समस्त प्राणों की गत्यवगति, अनुच्छेद और विच्छेद, भावरूप शोधन, बोधन, उद्बोधन, प्रबोधन तथा शोधन जो कुछ होता है वह तत्त्व रूप में महामाया के प्रभाव से साधक के अनुभव में आता रहता है।

अथ विष्कुम्भकात्मकानां द्वादशात्मकानां भावात्मकानां क्रियास्वरूपेण संस्थितिबोधिका एकैव कुञ्चिका ज्ञाता सुखदा सुखावहा तत्त्वदा तत्त्वबोधप्राणशोधिका भवति।।

विष्कुंभक द्वादश भावों की क्रिया रूप में स्थिति का बोध कराने वाली एक ही कुञ्जी यदि जान ली गई तो वह सुखद और तत्त्वबोधदात्री और प्राण शोधिका होती है।

तस्मात्तत्रैव जिज्ञासा कर्तव्या साधकेन वै।

तद् ज्ञात्वा पूर्णरूपेण सर्वं लब्धं भविष्यति।।

इसलिये उस कुञ्जी को जानने की जिज्ञासा साधक को करनी चाहिये, उसे जानकर पूर्णरूप से सब कुछ उपलब्ध हो जायेगा।

ज्ञातं वाप्यनुभूतं च तत्रैव दृष्टिमागतम् ।

जायते ध्रुवज्ञानं हि निरीक्षण-परीक्षणात् ।।

साधक निरीक्षण और परीक्षण द्वारा वहीं पर जान जाता है, अनुभव कर लेता है और निश्चयात्मक ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

अथ नामादि रूपेण प्रोच्यते व्यूहकं हि तत् ।

श्रूयतां सारसर्वस्वं बुद्धिस्तत्र विधीयताम् ।।

उस कुञ्जी का नाम और व्यूह भी बताया जाता है। वह सारसर्वस्व है, उसे सुन लो और उसमें बुद्धि लगा लो।

चक्राणां या स्थितिः प्रोक्ता षडाख्या षड्विधानिका।

नाडीनां च त्रयाणां वै ग्रन्थीनां परिपूरिका।।

जो चक्रों की छः प्रकार की छः स्थितियां बताई गई हैं और तीनों नाड़ियां तथा तीनों ग्रन्थियां बताई गई हैं, वह कुञ्जी उन सबकी एक ही परिपूरक है।

सर्वेषां व्यूहमेतद्धि द्वादशं द्वादशात्मकम् ।

सर्वेषां च समानार्थं कुञ्चिकैव प्रदीयते।।

द्वादश स्थानों के व्यूह को एक सामान्य भाव में लाकर स्थापित करने वाली एक कुञ्जी तुम्हें दी जा रही है।

श्रूयतां ज्ञायतां चैव पुनश्चैवावधीयताम् ।

नीयतां ध्यानरूपेण स्थीयतां तत्त्वतस्ततः।।

उसे सुनो, जानो बार बार उसमें अवधान दो, ध्यान से फिर तत्त्व में स्थित हो जाओ।

जालन्धरं समारोप्य मूलबन्धं विधाय च।

उड्डियानं समाश्रित्य त्रयाणां संगमः शुभः।।

जालन्धर बन्ध लगा लो। मूलबन्ध लगा लो। उड्डियान बन्ध भी लगा लो। इन तीनों बन्धों का एक साथ संगम हो जाना लाभकारी होता है।

यो जानाति नरस्तं वै संगमं संगमात्मकम् ।

त्रयाणां पुष्पदं शुभ्रं शुभकल्याण-कारकम् ।।

जो साधक इन तीनों बन्धों का सुन्दर संगम जानता है उसका परम कल्याण हो जाता है और पुण्य फल प्राप्त कर लेता है।

एतत्त्रयं विधायैव कृत्वा तत्र क्रियां पराम् ।

परा विद्यां समाप्नोति अनुभूति परात्मिकाम् ।।

साधक इन तीनों बन्धों को लगाकर श्रेष्ठ क्रिया करके पराविद्या की परम अनुभूति प्राप्त कर लेता है।

अनुभूय महातत्त्वं सारं सारं सुखावहम् ।

आवृणोति परां प्रीतिं योगसिद्धिकरां पराम् ।।

सार सार में सुखदायक महातत्त्व का अनुभव करके योग सिद्धिदायिका परमप्रसन्नता साधक प्राप्त करता है।

पराविद्या समायुक्तः बन्धत्रय समन्वितः।

सर्वं महामहामाया प्रभावेण च विन्दति।।

बन्धत्रय से समन्वित होकर साधक परा विद्या की प्राप्ति करता हुआ महामाया के प्रभाव से सबकुछ प्राप्त कर लेता है।

तद् ज्ञात्वा सफलं भूतं पूतरूपं मनोरथम् ।

करोति योगमार्गेऽस्मिन् कुञ्चिका लब्ध मानवः।।

इस योग मार्ग में कुञ्चिका प्राप्त कर लेने वाला साधक सफल् मनोरथ हो जाता है और पवित्र हो जाता है।

अपरं मार्गमिकं हि महामाया प्रकाशितम् ।

जानाति साधकस्तत्र जानन्नपि न मुह्यति।।

महामाया द्वारा प्रकाशित एक और भी मार्ग है जिसे जान लेने पर फिर साधक क म में नहीं पड़ता है।

केवलं स्थिरग्रीवोऽसौ स्वकीयां स्थितिमाचरेद् ।

प्राणानां गमनं कृत्वा प्राणानामूर्ध्वकं ततः।।

ग्रीवा को स्थिर रखकर आसन में अपनी स्थिति सीधी रख लो। प्राणों को बाहर निकाल कर फिर ऊपर को खींचो।

कुर्याच्चैव नरस्तत्र मेरूदण्ड स्थिरस्थिरः।

यदि ग्रीवा स्वयं याति इतश्चैव ततः पुनः।।

इसमें मेरूदण्ड पूर्ण स्थिर रहे। इसमें यदि ग्रीवा स्वयं इधर उधर को चली जाय।

अग्रे वा पृष्ठभागे वा पतत्येषा पुनः पुनः।

तां स्थितिं स्थिर भावेन जानीयाद् योगविन्नरः।।

आगे को चली जाय पीछे को बार बार गिरती जाय, तो योगज्ञाता साधक स्थिर भाव से उसे जानता रहे।

तत्रैव चक्रभेदं च ग्रन्थिभेदं च वै ध्रुवम् ।

नाडिशोधं स्वयं जातं अवगच्छति मानवः।।

ग्रीवा के स्वयमेव यथेच्छ संचालन द्वारा वहीं चक्रभेदन, ग्रन्थिभेदन, नाड़िशोधन हो जायेगा और साधक स्वयं इसका अनुभव कर लेगा।

तस्मात् सुस्थिर भावेन ग्रीवायाश्च गतिं सदा।

पश्येच्चैव स्वयं तत्र शक्तियोग समाकुलः।

इसलिये स्थिर भाव ग्रीवा की गति को सदा देखता रहे। साधक की योग की शक्ति स्वयं काम करती रहेगी।

२४-७-६४।।१६८।।

हरि ॐ तत् सत् । ॐ नमोऽस्तु। अन्धकारव्यूहनाशिनीं कण्ठदेशवासिनीं शुभ्रहासिनीं विविधतत्त्वार्थप्रकाशिनीं बन्दे।। ॐ. ।।

हरि ॐ तत् सत् । ॐ नमस्कार है। अन्धकार पुंज का नाश करने वाली, कण्ठदेशवासिनी, शुभ्रहासिनी, विविध तत्वों का प्रकाश करने वाली भगवती को मैं प्रणाम करता हूं।

पराविद्या प्रकाशाय या च बोधवती सदा।

तां नमामि महाशक्तिं पराज्ञान-प्रदायिनीम् ।।

पराविद्या प्रकाशाय या च बोधवती सदा।

तां नमामि महाशक्तिं पराज्ञान-प्रदायिनीम् ।।

पराविद्या के प्रकाशन के लिये जो सर्वदा बोधवती रहती है, उस पराज्ञान दायिनी महाशक्ति को मैं प्रणाम करता हूँ।

यत् प्रोक्क्तं विपुलं प्रकाशजनकं मार्गं महाबोधकम् ,

तद् आपातविभेद भेद परकं पारं परं पारयेद् ।

तन्मार्ग प्रवरं प्रचारपरकं पारं परं पारयेत् ,

सः योगी परतत्त्वदर्शकपरः स वेत्ति स्वात्मानकम् ।।

विपुल प्रकाश देने वाला जो महाबोधजनक मार्ग बताया गया है वह सभी बीच बीच में पड़ने वाले भेद-भाव का विभेदन करने वाला है और साधक को लक्ष्य के उस पार तक पहुंचा देने वाला है। इस मार्ग का प्रचार होना चाहिये। वही योगी परतत्त्व का द्रष्टा है जो अपनी आत्मा को जान लेता है।

अस्मिन् पराविद्या स्वान्तानुभवात्मपरके प्रकाशे यत्किञ्चित् निगद्यते, तत्र केवलं अनुभूतिपरकं साधकानां तुष्टिपुष्टिपरकं च। तत्कृतमनुभूतं कुञ्चिकायां तस्य स्वानुभवरूप परिपुष्टिर्विधेया।।

स्वान्तानुभव की विशिष्टतावाले इस पराविद्या के प्रकरण में जो कुछ कहा जा रहा है, वह केवल अनुभवपरक है और साधकों की पुष्टि तुष्टि देने वाला है। जो कुछ क्रिया साधन में अनुभव किया गया हो, कुञ्चिका में उस स्वानुभव की परिपुष्टि कर लेनी चाहिये।

श्वासप्रश्वासमात्रेण नैवं प्राणगतिर्मता।

परापरप्रबोधेन नाडिशोधेन तत्त्वतः।।

केवल श्वासप्रश्वास लेने मात्र को प्राणों की गति नहीं कहा जाता है। परापर प्रबोध से और विधिपूर्वक नाडी-शोधन से-

प्राणानां परमोभावः परप्राप्तिप्रकाशकः।

ज्ञायते विपुलेनैतत् बाहुल्येन पुनः पुनः।।

प्राणों की श्रेष्ठ स्थिति होती है जो पर तत्त्व की प्रकाशिका होती है। इसी से प्रचुर रूप से बारम्बार यह ज्ञात होता है कि प्राणों की ऊर्ध्वगति किस प्रकार की है।

अन्तर्दृष्टिं च जानाति यो नरो योगपारगः।

तया दृष्ट्या च वै तत्र अन्तर्द्वन्द्वं प्रपश्यति।।

योग में पारंगत जो व्यक्ति अन्तर्दृष्टि को समझ लेता है वही उस दृष्टि द्वारा अपने भीतर के अन्तर्द्वन्द्व को भी देख लेता है।

अन्तर्द्वन्द्वे समाज्ञाते विज्ञाते योगकल्पके।

स्वानुभूतिसमायुक्तो मोदते नात्र संशयः।।

अन्तर्द्वन्द्व के ज्ञात हो जाने पर और योग विधि का भलीप्रकार ज्ञान रखने पर साधक स्वानुभूति से युक्त होकर हर्षित हो जाता है, इस में कोई संशय नहीं है।

न च शंका समायाति अनुभूतं न वा मया।

कृतं वा न कृतं वै तत् ज्ञातं तत्र न जायते।।

मैंने अनुभव किया है या नहीं, ऐसी शंका फिर उसे नहीं रहती है। मैंने कुछ किया है या नहीं किया, सफल हूं या नहीं ऐसा संशय फिर नहीं होता है।

तत्र ध्यानार्थयोगो हि ध्यानगम्यः परस्तुतः।

ध्यानभावेन तत्रैव प्रपश्यन्ति मनीषिणः।।

समझदार मनीषी साधक लोग ध्यान द्वारा यह देख लेते हैं कि उनका ध्यान ऐसा उच्च कोटि का है जिस से परतत्त्व का अधिगम होता है।

पुरा प्रोक्तंमया चैतत् परावाणीप्रसङ्गके।

पराशब्दस्य चार्थस्तु तस्य बोधो विधीयताम् ।।

परावाणी के प्रसङ्ग में मैं पहिले यह बात बता चुकी हूं कि परा इस शब्द का क्या अर्थ है, उस शब्द के अर्थ का बोध करते रहो।

पःपातालबोधार्थं रस्यार्थो रमणं मतः।

पातालादाकाशपर्यन्ते प्राणानां क्रीडनं मतम् ।।

"प" का अर्थ पाताल है। "र" का अर्थ रमण करना है, "आः" का अर्थ आकाश है। पाताल से लेकर आकाश तक प्राणों का क्रीड़न होने को "परा" कहा जाता है।

अत्र पातालदेशात्तु खदेशे स्वसमन्विते।

क्रीडनं सर्वतत्त्वानां पराविद्याप्रसंगके।।

जायते साधके चैतत् अवधानेनसंगतः।

ज्ञायतां वायूनांबोधः गमनागमनात्मकम् ।।

इस पराविद्या के प्रसङ्ग में पाताल देश से आकाश तक सभी तत्त्वों का क्रीड़न-साधक के भीतर होता रहता है, साधक अपने भीतर ध्यान में देखता है। साधक को चाहिये कि शरीर के भीतर प्राणों के गमनागमन को देखते हुए ज्ञान करता रहे।

क्ववा गच्छति वै वायुः दृश्यतां च पुनः पुनः।

एतन्निरीक्षणं प्रोक्तंसुखदं शुभकारकम् ।।

बारम्बार देखते रहो कि श्वासप्रश्वास किस प्रकार कहां कहां जा रहे हैं। इस प्रकार श्वास प्रश्वास का निरीक्षण सुखद और शुभकारक होता है।

जानीयाद् भूयशस्तत्र क्व गतः प्राणसंज्ञकः।

वायुस्तत्र गतिस्तत्र बारं बारं निरीक्षणम् ।।

प्राण कहां से किधर जा आ रहे हैं यह बारम्बार भीतर देखते रहो। वायु और उसकी गति का बारम्बार निरीक्षण करते रहो।

कुर्याच्च मतिमान् योगी स्वात्मानं विन्दते पुनः।

यदि नैवं समायातं बोधं वा ज्ञानमात्मकम् ।।

तस्मात्तत्रैव तज्ज्ञेयं च्युतिस्तत्र प्रकीर्तिता।

स्खलतिस्तत्र संजाता अन्तर्दृष्ट्या विलोक्यताम् ।।

बुद्धिमान् योगी इस प्रकार करते हुए अपनी आत्मा तक पहुंच जाता है। इस प्रकार की निरीक्षण क्रिया से यदि कुछ भी आत्मा का ज्ञान और बोध नहीं होता हो तो वहां समझना चाहिये कि कहीं पर त्रुटि है, गलती है, निरीक्षण में सावधानता नहीं है अन्तर्दृष्टि से स्वयं उसको पहिचान लो।

यदि नास्ति च सा दृष्टिस्तस्मात् कार्यं कृतं नहि।
वायुना सार्धरूपेण एकेनापि क्वचित् कदा।।
एतज् विज्ञानमात्रेण योगः सिद्धिप्रदो भवेत् ।। ॐ ।।

यदि इस निरीक्षण क्रिया की अन्तर्दृष्टि नहीं आ पाई है तो सब कुछ व्यर्थ है, क्रिया की सफलता नहीं है। किसी किसी साधक को तो कभी कभी केवल इसी एक मात्र से प्राणों की गति के निरीक्ष-विज्ञान मात्र से ही योगाभ्यास सिद्ध हो जाता है।। ॐ ।।

२५-७-६४।।१६९।।

हरि ॐ तत् सत् ॐ ।।

ध्यानबोध्यां महाशक्तिं महामेधास्वरूपिणीम् ।
महाज्ञानप्रदां देवीं प्रणमामि महामतिम् ।।

हरि ॐ तत् सत् । ॐ । ध्यान द्वारा बोधनीय, महामेधास्वरूपिणी, महाज्ञानप्रदायिनी महामति स्वरूपिणी महाशक्ति को मैं प्रणाम करता हूं।

धारणाध्यानरूपाख्यां सुविज्ञातां महेश्वरीम् ।
वन्देतां परमां शक्तिं परमार्थ प्रकाशिकाम् ।।

धारणा-ध्यानरूपिणी, सुविज्ञाता महेश्वरी, परमार्थ प्रकाश करने वाली उस परमा शक्ति को मैं नमस्कार करता हूँ।

या देवी ध्यानरूपेण अन्तर्दृष्टौ समागता।
व्याप्ता साखिलतत्त्वेषु सा देवी प्रमुदा सती।।
कल्पान्ता कल्पकल्पान्ता कल्पान्ते न कदा कृतिः।
प्राणव्यापारसंसाध्या संप्रसीदतु शारदा।। ॐ ।।

जो देवी ध्यान रूप में अर्न्तृष्टि में आ जाती है और समस्त तत्त्वों में व्याप्त होकर प्रमुदित होती हुई- कल्पकल्पान्त काल में व्याप्त होकर भी विकृति को प्राप्त नहीं होती है और नासिका के व्यापार (श्वास प्रश्वास) द्वारा सिद्ध होती है, वह शारदा मुझ पर प्रसन्न हो।

यद् ज्ञानानुभवरूपेण लभ्यते सहजात्मिका।
ध्यानावस्थितिः सा वै साधकाय प्रजायताम् ।।

जिस भगवती के ज्ञान और अनुभव से सहज ध्यानावस्थिति उपलब्ध हो जाती है वह सहज ध्यानावस्थिति साधकों को प्राप्त हो जाय।

साधकः साधनालग्नः भग्नो विघ्नसमूहकः।
स्थानव्यापारपारार्थी स जानातु स्वयं इदम् ।।

जब साधक साधना में लग्न हो और उसके विघ्न समूह भी नष्ट हो गये हों, अपनी स्थिति और क्रियाओं में दक्ष होकर स्वयं इस प्रकार जान ले कि-

यदाध्यानस्थितिस्तस्य प्रादुर्भूता प्रजायते।
समत्वरूपमाधाय शरीरं निश्चलं भवेत् ।।

जब उसकी ध्यान स्थिति प्रादुर्भूत हो, तब समत्वरूप धारण करके उसका शरीर निश्चल हो जाता है।

ध्यानं च त्रिविधं प्रोक्तं असंगं संगरूपकम् ।
संगासंग समानार्थं त्रिविधं तेन प्रोच्यते।।

ध्यान तीन प्रकार का कहा गया है। असंगध्यान, संगध्यान और संगासंग ध्यान। इस भाँति तीन प्रकार का ध्यान कहा जाता है।

यदा शरीरं निश्चेष्टं प्राणानां च शुभागतिः।
पदार्थाभावरूपेण असंगं कथितं बुधैः।।

जब शरीर निश्चेष्ट रहे और प्राणों की, गति शुभ रहे, साथ ही बाह्य पदार्थों का अभाव प्रतीत हो, ग्राह्य ग्राहक, ग्रहण इस त्रिपुरी का अभाव हो, उसे असंग ध्यान कहते हैं।

असंगध्यानरूपं तद् जायते योगसाधके।
अत्र किंचिद् विभासा वा भाषा वा नैव विद्यते।।

योग साधक को जब असंग ध्यान होता है वहाँ कुछ भी ग्राह्य नहीं रहता है। उस स्थिति को व्यक्त करने की कोई भाषा नहीं होती है।

केवलं प्राण संव्यूहं स्वल्परूपेण स्वल्पकम् ।
त्वरितं न समायाति स्वल्पं स्थानं जहाति च।।

केवल प्राण-व्यूह स्वल्प स्वल्प रूप में चलते हैं, उसमें तीव्रता नहीं होती और प्राणों में चलने का स्थान, दूरी भी बहुत घट जाती है।

न तत्र भासते किंचिद् दृश्यते श्रूयतेऽपि तत् ।
सर्व नासाग्रके भागे केवला दृष्टिरूपिका।।

उपस्थिति में कुछ भी भासित नहीं होता है, कुछ सुनाई और दिखाई भी नहीं पड़ता है। दृष्टि केवल नासाग्र भाग में जमी रह जाती है।

जायते स्फुरणत्वेन नेत्रयोर्यागतिर्भवेत् ।

नेत्र अधः समायाते ऊर्ध्वं याते पुनः पुनः।।

कभी कभी नेत्रों में स्फुरण भी होता है। नेत्रों की गति ऐसी होती है कि कभी आँख ऊपर भ्रूमध्य की ओर जाती है और कभी नीचे की ओर आ जाती है।

इतस्ततः समायाते लघुपीडा समुत्थिता।

तत्र वै क्षणमात्रेण शोभनं रमते मनः।।

जब नेत्र इधर उधर घूमते हैं तो उनमें कुछ पीड़ा का भाव उठता है और क्षण मात्र को मन उसमें रम जाता है। इसमें साधक आनन्द प्राप्त करता है।

मनसस्तुसमायोगात् ध्यानं तत्र प्रजायते।

रमणं वृत्तिव्यूहस्य चित्तस्य मनसस्तथा।।

मन के समायोग से फिर ध्यान लग जाता है। सभी वृत्तियों के साथ मन भी रमण करने लग जाता है।

एकाग्रता स्थिता तत्र असंगे ध्यानरूपके।

यदातु संगरूपेण द्वितीयं ध्यानगं मनः।।

असंग ध्यान में एकाग्रता की स्थिति रहती है। जब संगनामक दूसरी कोटि के ध्यान में मन लगता है तो-

तत्र शैथिल्यमायाति मेरूदण्डं पुनः पुनः।

मेरूदण्डस्तु संयातु निम्नभागे क्वचित् क्वचित् ।।

वहाँ बारम्बार मेरू दण्ड में शिथिलता आती है, कभी कभी मेरू दण्ड नीचे की ओर भी झुक जाता है।

ज्ञायते त्वरितं नैव शैथिल्यं परिपूरितम् ।

तत्र एकाग्रता तिष्ठेत् व्याप्ता सा न स मस्तके।।

मेरू दण्ड का वह शैथिल्य जल्दी प्रतीत नहीं हो पाता है। एकाग्रता इस ध्यान में भी रहती है किन्तु वह मस्तक तक व्याप्त नहीं होती है।

कण्ठादुपरिभागे तु दृष्टिबोधः प्रजायते।

एवं प्रतीयते तत्र दृष्टिस्तु घूर्णिका गता।।

कण्ठ के ऊपर के हिस्से में दृष्टि जमी हुई रहती है। उसमें ऐसा प्रतीत होता है कि दृष्टि घूम घूम रही है, घूर्णिका कर रही है।

वहिर्ज्योतिः समायाता दृश्यते नहि तत्र तत् ।

किन्त्वेवं ज्ञायते तत्र प्राणानां रोधनं महत् ।।

नेत्र ज्योति बाहर रहती है, किन्तु दीखता कुछ नहीं है। केवल ऐसा ज्ञान रहता है कि बड़ी जोर से प्राणों का निरोध हो रहा है।

शनैः शनैः समायातं तेषां तत्र प्रजायते।

पदार्थानां स्थितिः स्पष्टा तत्त्वानां च स्थितिस्तथा।।

फिर धीरे धीरे पदार्थों की स्थिति और तत्त्वों की स्थिति सामने स्पष्ट प्रतीत होती है।

सम्प्रज्ञातसमोभावः भूयोः भूयः प्रजायते।

तदा तु ज्ञायतामेवं ध्यानं वै संगसंज्ञकम् ।।

इसमें सम्प्रज्ञात समाधिकी की-सी स्थिति बार बार आती है। जब उक्त प्रकार के लक्षण रहें तो समझो कि संग नामक ध्यान हो रहा है।

जानाति साधक श्रेष्ठस्तद्विज्ञानं विशेषतः।

तृतीयं ध्यानरूपं तद् संगासंग समाकुलम् ।।

तत्र साधकवर्यस्य स्थितिः शुभ्रा विराजते।

क्वचित् संज्ञायते एतत् सर्वं वै दृष्टिरूपकम् ।।

उत्तम साधक भलीभाँति इस ध्यान के विशिष्ट ज्ञान को स्वयं जान लेता है। अब तीसरे प्रकार का संगासंग ध्यान ऐसा होता है कि-

वहाँ साधक की स्थिति स्वच्छ व शुभ्र रहती है। कभी कभी ऐसा लगता है कि सब कुछ दृष्टि में आ रहा है।

प्रत्यक्षेण समायाति प्रयाति च पुनः पुनः।

कदाचिद् ज्योतिः सम्पन्नः कदाचित् शून्यसंज्ञकः।।

दृश्य पदार्थ प्रत्यक्ष में आते हैं फिर लुप्त हो जाते हैं। कभी ज्योति से सम्पन्न हो जाता है और कभी शून्यता आ जाती है।

कदाचिद् भावरूपेण कदाचिद् बोधका स्वयम् ।

प्राणाः प्राणसमापन्नाः प्राणरूपाः फलप्रदाः।।

प्राण शक्ति सम्पन्न होकर कभी नूतन भावों तथा बोध की स्वयं जागृति कर देते हैं। प्राणों की यह स्थिति कल्याण-कारक होती है।

विलीनतां च गच्छन्ति आगच्छन्ति च पुनः पुनः।

तस्यां स्थितौ स्वयं तत्र योगस्थो योगसाधकः।।

प्रमोदभावमायाति निश्चला निश्चला गतिः।

तस्य प्रादुर्महाप्राणाः कार्याकुलसमागताः।।

वे प्राण कभी विलीन हो जाते हैं और कभी फिर उदित हो जाते हैं। इस स्थिति में योग-साधक योग में लग्न होकर स्वयं ही आनन्द प्राप्त करता है और प्राणों की गति कभी निश्चल और कभी चलनशील रहती है। उदय अवस्था में वे प्राण कार्याकुल ते हैं।

अर्धार्धरूपरूपेण ज्ञायते तत्र सा गतिः।

एवं ध्यानस्थितिः प्रोक्ता त्रिविधा त्रिस्वरूपकाः।।

यो जानाति नरः सद्यो योगस्तस्य प्रसिद्ध्यति।

एतत् सर्वं स्वयं तस्य प्रसाधकस्वरूपकः।।

प्राणों की गति आधे आधे रूप में ज्ञात होती है। कभी भान रहता है, कभी नहीं रहता है। इस प्रकार यह तृतीय कोटि के ध्यान की स्थिति है। इन त्रिविध ध्यानों को जो साधक जानता है उसका योग शीघ्र सिद्ध हो जाता है। ये तीनों ध्यान स्वयं ही उस साधक की योग सिद्धि कर दिया करते हैं।

सर्वव्यूहात्मको भावः प्रत्यक्षीकरणे व्रजेत्।

स्वभावभावरूपेण स्वयमेव प्रजायते।।

इन तीनों प्रकार के ध्यानों में सर्वव्यूहात्मक भाव साधक के प्रत्यक्ष में आ जाता है। ये ध्यान स्वाभाविक रूप से यथा समय यथा स्थिति होते रहते हैं।

ध्यानस्थितिर्महारूपा विचिकित्सा न विद्यते।

एतत् तस्य समाज्ञानं करोति हि स साधकः।।

ध्यान स्थिति बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। इसमें कोई संशय नहीं करना चाहिये। साधक इस ध्यान स्थिति का पूर्ण ज्ञान कर ही लेता है।

तस्य स्वभावज्ञानं हि सर्वं शुद्धस्वरूपकम्।

हृदयस्थं भृकुटिस्थं नाभिस्थं जायते स्वयम्।।

साधक को स्वभाव का ज्ञान पूर्ण शुद्ध रूप में होता है। वह ज्ञान हृदय देश में, नाभि देश में तथा भृकुटि भाग में होता है।

स्थानत्रयेण संज्ञेयं ध्यानत्रयमुपस्थितिः।

तस्मात् सर्वं समाहारा धारा एषा प्रलीयते।।

इन तीनों ध्यानों की स्थिति इन्हीं तीन स्थानों में होती है। फिर इन तीनों स्थानों को छोड़कर के वह ध्यान-धारा स्वयं विलीन हो जाती है।

जायतां सफला तत्र क्रिया या च कृता मया।

दृष्टानुभूतपूर्वा च सर्वा सा सफला मता।।

जब ऐसा होने लगे, तब समझो कि मेरी सभी क्रियायें जो कुछ मैंने की हैं, सफल हो गई हैं, उन्हें मैंने भलीभाँति देख और अनुभव कर लिया है।

२६-७-६४।।१७०।।

हरि ॐ तत् सत् । ॐ ।

चैतन्योपहितां परां प्रकृतिकं शुद्धान्तबोधस्थितम् ।

वन्दे भावमयं परं प्रकटितं आत्मस्वरूपं च तत् ।।

हरि ॐ तत् सत् । ॐ चैतन्य से परिपूर्ण, पराप्रकृति सम्बन्धी, शुद्ध अन्तर्बोध में स्थित भावरूप में प्रकट हुए आत्मस्वरूप को मैं प्रणाम करता हूँ।

आत्मन्येव प्रपश्यन्ति सर्वं ये अन्तरात्मनः।

तेषां ध्यानसमापत्तिः परिपुष्टा स्वतो वरा।।

जो साधक अपनी आत्मा के भीतर ही अन्तरात्मा के दर्शन करते हैं उनकी ध्यान-समाधि स्वतः उत्तम रूप में परिपुष्ट होती चली जाती है।

जायते ध्यानसम्पत्तिः या च श्रेयस्करा मता।

अनन्तरूपरूपेण ध्यानेन परिवेष्टितम् ।।

साधक को वह ध्यान-सम्पत्ति बड़ी श्रेयस्कर होती है। फिर साधक के परिपुष्ट ध्यान द्वारा उसका पूरा शरीर ही अनन्त प्रकार के ध्यानों से परिवेष्टित हो जाता है।

इदं शरीरं संस्थानं किं किं तत्र निगद्यते।

लक्षं लक्षं परं लक्षं ध्यानमेतत् स्थितं मतम् ।।

यह शरीर आत्मा का एक संस्थान है। इसके भीतर क्या क्या कुछ नहीं भरा पड़ा है। कितना वर्णन किया जाय। लाखों करोड़ों ध्यानों के भेद इस शरीर के अंग प्रत्यंगों में बताये गये हैं।

तस्मात् सूक्ष्मस्वरूपेण त्रिविधं ध्यान संज्ञकम् ।

यस्मै च रोचते तत्तु अनुभूतं करोति यः।।

अतः सूक्ष्म रूप में तीन प्रकार के ध्यान बता दिये गये हैं। जिसे इनमें आनन्द आने लगता है, वह अनुभूति भी कर लेता है।

ध्यानयोगी स वै प्रोक्तः ध्यानाधिगतमानसः।

तस्मात् सर्वात्मभावेन तदा ध्यानपरायणः।।

भूयाच्च मतिमान् लोके तस्य सिद्धिः प्रजायते।।

जिस साधक का मन ध्यान के वशीभूत हो गया होता है उसे ध्यान-योगी कहा जाता है। इसलिये तुम भी सर्वात्मभाव से ध्यान-परायण बनो। बुद्धिमान् व्यक्ति को इस लोक में ध्यान परायण होकर ही उसे सिद्धि प्राप्त होती है।

यद् ध्यानं गदितं परं परतरं तन्निर्विकारं वरम्,

एकं शान्तिकरं प्रबोधपरदं मोदेन-संसाधितम् ।

मोदादात्मप्रवृत्ति सूक्ष्मपरको यो दृश्यते पूर्णतः,

ज्ञाने यः स्वयमेव साधकवरस्तस्य प्रतीतिस्तु सः।।

जो सबसे उत्तम ऊंचे से ऊंचा ध्यान कहा गया है वह निर्विकार होता है, वही श्रेष्ठ ध्यान है, वह ध्यान अद्वितीय, शान्ति-प्रद, परम प्रबोधदायी, दिव्यानन्दपूर्ण होता है, क्योंकि साधक अपने पुरूषार्थ साधना से उसे सिद्ध करके प्राप्त करता है, ध्यान से प्राप्त अलौकिक हर्ष से साधक आत्मा की सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रवृत्तियों में मन जमाये रखता है और उसे स्वतः लोकोत्तर ज्ञान का प्रादुर्भाव होता है, उसकी अनुभूति का प्रमाण केवल वह स्वयं ही होता है।

एवंरूपेण यत्किञ्चिदपि पराविद्यायां त्रिविधरूपकं गदितं तस्य स्वरूपलक्षणं च प्रभाषितं तन्निरूपणं तत्प्रतिपादनं तत्परीक्षणं तन्निरीक्षणं तस्यानुभूतिः सम्यक् प्रकारेण विधीयताम् । अपरं चैव प्रोच्यते पराविद्यायां, परा अपरा प्रकृतिद्वयात्मिका। परा चैतन्योपहिता सूक्ष्माम् सूक्ष्मतरा सूक्ष्मतमा प्रतीयते।।

इस भांति जो कुछ भी पराविद्या में त्रिविध ध्यान बताया गया है और जो उनका स्वरूप एवं लक्षण बताये हैं, उनका तुम स्वयं निरूपण, प्रतिपादन, निरीक्षण, परीक्षण और उसकी अनुभूति भलीभांति कर लो। पराविद्या में एक बात और भी बताई जाती है। शक्ति के दो भेद हैं, एक परा है और एक अपरा है। परा उसे कहते हैं जो चैतन्योपहित सूक्ष्म से सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम प्रतीत होती है।

परादशायां साधकः स्वात्मानं चैतन्योपहितं चैतन्येन समन्वितं पश्यति, जानाति, अनुभवति, तत्र एवंभूतं दर्शनं ज्ञानं प्रस्फुटीभवति प्रज्ञायते यत् ध्यानावस्थायां या परा शक्तिः सा सूक्ष्मा चैतन्यविमण्डिता च वर्तते। अहं तस्यानुभूतिं च करोमि।।

परा दशा से साधक अपने को चैतन्योपहित, चैतन्य समन्वित देखता, जानता और अनुभव करता है। उसमें इस प्रकार का ज्ञान साधक को प्रस्फुटित होता है कि ध्यानावस्था में जो परा शक्ति चैतन्य से विमण्डित सूक्ष्मातिसूक्ष्म है, मैं उसकी अनुभूति ले रहा हूँ।।

सा च करणेषु इन्द्रियेषु इन्द्रियव्यापारेषु व्याप्ता सर्वत्रैव प्राणानां व्यापारं सूक्ष्मरूपेण प्रतिपादयति, तत्र सर्वं समष्टिरूपेण सर्वत्रैव अनुभूयते। तस्यामवस्थायां चैतन्योपहितशक्तिः परायाः परबोधिका।।

और वही पराशक्ति ज्ञानेद्रियों, कर्मेन्द्रियों और उनके व्यापारों में व्याप्त होकर सर्वत्र सूक्ष्मरूप से प्राण व्यापार का प्रतिपादन कर रही है। परा दशा में सब कुछ समष्टि रूप में सर्वत्र सब कुछ अनुभूत होता है। उपस्थिति में चैतन्योपहिता परा शक्ति के पर शक्तिमान का बोध भी दे देती है।

सर्वं शरीरमात्रं च चैतन्येन करोति च।

युक्तंतस्मात्तदा तत्र एवं रूपमनेकशः।।

साधक यह जान जाता है कि समस्त शरीर मात्र चैतन्य से पूर्ण है, एक ही चैतन्य शक्ति से पूर्ण अनेक शरीरों के पृथक् पृथक स्वरूप एक ही शक्ति है।

दृश्यते अनुभूतिं च समागच्छति पूर्णतः।

या च शक्तिः द्वितीया सा अपरा सा च स्थूलिका।।

यह सब साधक साक्षात्कार कर लेता है और उसकी पूर्ण अनुभूति में भी यह बात आ जाती है। जो दूसरी शक्ति है, वह स्थूल है उसे अपरा कहते हैं।

साधारणा च सा प्रोक्ता वाह्यदर्शनकारिका।

तां विहाय नरः शीघ्रं परायाः दर्शनं शुभम् ।।

वह साधारण कही गई है और वह वाह्य पदार्थों के दर्शनानुभव में प्रवृत्त रहती है। उस अपरा शक्ति को छोड़कर साधक शीघ्र परा के दर्शन के लिये उद्यत रहे।

कृत्वा मत्त्वा च तां शक्तिं गत्वा नत्वा प्रसीदति।

परां शक्तिं समादाय अपरां वर्जयेद् बुधः।।

उसकी उपासना करके, उसे समझ करके, उस परा शक्ति के समीप पहुंचकर और उस परा शक्ति का नमन करके साधक हर्षित हो जाता है। साधक परा शक्ति की उपलब्धि करके अपरा का त्याग कर दे।

एवं कृत्वा समासेन अन्तर्दृष्टिसमन्वितः।

जायते योगविद् योगी पराशक्तिविमण्डितः।।

इस भांति संक्षेप में ध्यानाभ्यास द्वारा अन्तर्दृष्टि से समन्वित होकर योग साधक योगविद्या का ज्ञाता होता हुआ परा शक्ति से विमण्डित हो जाता है।

अन्तर्दृष्टिसमापन्नः स वै मोदितमानसः।

सदैव तृप्तिभावेन शान्तिं प्राप्नोति शाश्वतीम् ।।

अन्तर्दृष्टि प्राप्त करके वह परम हर्षित हो जाता है। तदनन्तर परम तृप्तिभाव से शाश्वत शान्ति प्राप्त कर लेता है।

यो जानाति च विज्ञानं परायाः परबोधकम् ।

तस्य मार्गो महामार्गः सरलो जायते ध्रुवम् ।।

परा शक्ति के परबोध के विज्ञान को जो साधक जान लेता है, उसके लिए योग का यह महामार्ग निश्चय ही सरल हो जाता है।

स च पश्यति सर्वं तत् यत् ज्ञात्वा मोदमाप्नुयात् ।

तस्मात् परापराज्ञानं कृत्वा सम्यक् प्रसीदति।।

वह फिर सब कुछ देख लेता है जिसे जानकर प्रमुदित हो जाता है। परा शक्ति के परम ज्ञान की प्राप्ति द्वारा परमानन्दित हो जाता है।

अस्यां विद्यायां यत्किंचित् प्रोक्तं तद् ध्यानावस्था परकं परापर्यन्तं परासमन्वितं विशेषेण अनुभूयतां सर्वैः साधकैः। प्रसीदन्तु च सर्वे मोदनिर्भराः पराचैतन्यमण्डिताः।। ॐ ।।

इस विद्या में ध्यानावस्थापरक पराशक्ति समन्वित परा शक्ति के बारे में जो कुछ कहा गया है, सभी साधक उसकी अनुभूति प्राप्त करें, सभी प्रमुदित रहें और पराचैतन्य से विमण्डित होकर आनन्द से भर जावें। ॐ ।।

२७-७-६४॥१७१॥

हरि ॐ तत् सत् ॐ ।

कराम्बुजानुकारिणीं पदाम्बुजानुकारिणीम् ।

विचित्रभावधारिणीं प्रकृष्टप्राणसारिणीम् ॥

हरि ॐ तत् सत् ॐ । कमल की भाँति सुन्दर हाथों वाली, कमल से चरणों वाली, विचित्र भावों को धारण करने वाली तथा उत्कृष्ट प्राणशक्ति का प्रसार करने वाली शारदा को मैं प्रणाम करता हूँ।

महामहान्धकारके सुदुस्तरात् प्रसारिणीम् ।

नमामि तां च शारदां विशुद्धबुद्धिकारिणीम् ॥

बड़े दुस्तर महान्धकारपूर्ण संसार से उद्धार करने वाली विशुद्ध बुद्धिदायिनी उस भगवती शारदा को मैं प्रणाम करता हूँ।

अथ पराविद्या प्रसंगके यत् प्राणानां विषये ध्यानस्थितौ च लक्षणादिकं विशिष्टरूपेण प्रकीर्तितं तत् सर्वं साधकस्य अनुभवपोषणाय जायताम् । अपरं च अस्यामेव विद्यायां प्रोच्यते यत् साधकानां साधनावस्थायां साधनाकाले वा यदनुभूतिपरकं प्राणानां ऊर्ध्वगतिकं संकल्पविकल्पात्मकं तत्त्वं तदपि ज्ञानानुभवाय भवति, तदैव प्रोच्यते।।

पराविद्या के प्रसंग में प्राणों के विषय में और ध्यान स्थिति के बारे में जो कुछ विशिष्ट लक्षणों के सहित प्रतिपादित किया गया है, वह सब साधक की अनुभूति-परिपुष्टि के लिये सफल बनें। इसी विद्या में यह भी कहा जाता है कि साधक के साधना काल में या साधनावस्था में प्राणों की ऊर्ध्वगति के साथ जो संकल्प-विकल्पात्मकतत्त्व अनुभव में आते हैं, वे भी ज्ञानानुभव के लिये महत्व रखते हैं।

साधकाः साधनालग्नाः जानन्तु च पृथक् पृथक् ।

प्राणानां गतिविच्छेदः अधस्तादूर्ध्वकं तथा।।

साधना में लगे साधकों को यह जान लेना चाहिये कि प्राणों की गति का विच्छेद और उनका नीचे से ऊपर की ओर चढ़ना आदि पृथक् पृथक् गतियाँ हैं।

विश्लेषणं पृथक् तत्त्वे प्राणरूप स्वरूपके।

जायते साधकस्तत्र जानीयात् स्वपरां गतिम् ॥

प्राणों का स्वरूप पृथक् पृथक् तत्त्वों पर पहुंचने पर पृथक - पृथक् हो जाता है, साधक को अपनी स्थिति स्वयं समझ लेनी चाहिये।

प्राणाः क्रीडन्ति वै यत्र अथ ऊर्ध्वं पुनः पुनः।

तेषां तत्क्रीडने यस्तु आयामो दृश्यते स्वयम् ।।

जब प्राण नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे की ओर बार बार क्रीड़ा करते हैं, इस क्रिया में उनका जो आयाम, श्रम होता है, वह स्वयं दीख पड़ता है।

श्रूयते यत्र यत्किंचित् तत्रैवानुभवे व्रजेत् ।

कथं क्रीडन्ति वै प्राणाः आयामस्तु कथं भवेत् ।।

प्राणों के क्रीड़न में भीतर जो शब्द जहाँ जैसा सुनाई पड़ता है, वहीं वह अनुभव में आ जाता है। पता लग जाता है कि प्राण किस गति से किस आयाम पर चल रहे हैं।

प्राणायामस्ततः प्रोक्तः सविस्तरविशेषकः।

सूक्ष्मभावेन तज्ज्ञेयं विद्युद्गतिसमन्वितम् ।।

प्राणों का विशिष्ट विस्तार पूर्वक आयाम होता रहता है, इसलिये इसे प्राणायाम कहते हैं। विद्युत गति की भाँति सूक्ष्म रूप से उनका प्रसरण होता है।

मेघानामन्तरे यद्वत् राजते चपला शुभा।

शरीरे चक्रसंस्थाने प्राणवायुस्तथैव च।।

जैसे बादलों के भीतर सुन्दर बिजली चमकती है उसी भाँति इस शरीर के भीतर चक्र-चक्र में प्राण वायु की चमक दिखाई पड़ती है।

द्युतिमादाय तत् शुभ्रां धावयेत् सर्वव्यूहकम् ।

सा विद्युत् धवला धौताः प्राणैः सार्धं प्रधावति।।

वह शुभ्र धवल स्वच्छ विद्युत धारा अपनी शुभ्रकान्ति से सम्पूर्ण शरीर व्यूह को प्लावित करती हुई प्राणों के साथ दौड़ती है।

झंकृणोति ततः प्राणान् देहकम्पः प्रजायते।

अथवा रूद्ररूपेण प्रवायुरधोरधः।।

संघर्ष रूपमायाति घर्षणेन सुसंगतः।

तत्र संघर्षणं तेषां वायूनां लाभदं मतम् ।।

वह विद्युत प्राणों को झकझोर देती है। इससे देह में कम्पन हो जाता है। अथवा वह प्राणवायु नीचे-नीचे ही रूद्ररूप में (तीव्रवेग से) संघर्षण में आता है। इस घर्षण से युक्त होकर नाभि को केन्द्र बनाता है। प्राणवायु का ऐसा संघर्षण बहुत लाभप्रद होता है।

साधकाः मोदमाना वै मनसां सह संगताः।

रमन्ते प्राणव्यूहेन तस्माद्ध्र्वं व्रजन्ति ते।।

साधक लोग आनन्दित होकर मन और प्राणव्यूह के साथ एकीभाव करते हुए ऊपर की ओर चढ़ने लगते हैं।

प्राणाः मनः समाधाय निश्चलं तद्विधाय च।

निधाय च समापतिं ध्यानयोग्या भवन्ति ते।।

मन और प्राण दोनों एकाकार होकर निश्चल होकर गति से साधक को एकाग्र देते हैं। और साधक को ध्यान के योग्य बना देते हैं।

ते प्राणा अग्रतोयान्ति पृष्ठतश्च प्रयान्ति ते।

स्थिरा रूद्धा विरूद्धाश्च गतिं कुर्वन्ति शाश्वतीम् ।।

वे प्राण ऊपर की ओर आगे से भी चलते हैं और पीछे की ओर से भी चलते हैं। कभी स्थिर होकर, कभी रूककर, कभी विरूद्ध गति के साथ निरन्तर ऊपर को बढ़ते हैं।

यदा विद्युतसमाकारा काचिद्धारा प्रतीयते।

स्फुरणं प्रस्फुटितं तत्र ज्ञायतां गतिरूर्ध्वकः।।

जब कभी विद्युत् की प्रभा की भांति कोई धारा शरीर के भीतर प्रतीत होती है तो समझ लो स्फुरण होकर प्राणों की गति ऊपर की ओर हो रही है।

अथवा बहुरूपेण संकल्पाः कल्पनात्मकाः।

विकल्पाश्च समायान्ति चित्तविक्षेपकारकाः।।

अथवा बहुत प्रकार से कल्पित संकल्प-विकल्प जो साधक चित्त में विक्षेप करने वाले होते हैं उठा करते हैं।

तेषां बाहुल्यमेवैतत् प्राणानां गतिबोधकम् ।

जायते तत्र संघर्षः पीडितं च यतो भवेत् ।।

उन संकल्प-विकल्पों का उदय भी प्राणों की गतिविधि को बताने वाला हुआ करता है। उस दशा में साधक के भीतर द्वन्द्व-संघर्ष की पीड़ा होती है।

संकल्पानां विकल्पानां प्राधान्यं बहुलं व्रजेत् ।

तत्र सर्वशरीरे च तदा तत्त्वस्मृतिर्भवेत् ।।

जब संकल्प विकल्पों का प्राधान्य बहुत मात्रा से होता है तब सम्पूर्ण शरीर में तत्त्वों की स्मृति आ जाती है।

केवलं कल्पजं ज्ञानं भूयः भूयः प्रधावति।

नाशमायाति वै सद्यो यदा प्राणास्तु ऊर्ध्वगाः।।

संकल्पों का ज्ञान बार बार दौड़ता रहता है। ऐसी स्थिति में ऊर्ध्वगामी प्राण शीघ्र विनष्ट हो जाते हैं।

ऊर्ध्वं व्रजन्ति वै प्राणाः कल्पसंघर्ष नाशकाः।

तदा तु धारणा तत्र गतिरूपेण जायते।।

जब प्राण ऊपर की ओर चढ़ते हैं तो संकल्पों के संघर्ष का नाश हो जाता है। तब साधक की धारणा प्राणों की गति के साथ लग जाती है।

ऊर्ध्वं पश्यति वै तत्र अधः पश्यति साधकः।

मध्ये पश्यति वै तत्र प्राणानां त्वरितां गतिम् ।।

तब साधक प्राणों की गति के अनुसार कभी ऊपर कभी नीचे की ओर देखता है, कभी मध्य भाग में प्राणों की त्वरित गति देखा करता है।

अथवा कल्पव्यूहस्य संकल्पस्य विशेषतः।

मनः शिवसमायुक्तं जायते शुभकारकम् ।।

अथवा कभी कभी संकल्प-विकल्पों के व्यूह के साथ मन शिव से समायुक्त हो जाता है, ऐसी स्थिति शुभ कारक है।

शिवसंकल्पसंयुक्तं शिवभावपरायणम् ।

शिवरूपं सदा पश्येत् तदा प्राणास्तु ऊर्ध्वगाः।।

जब मन शिवसंकल्प से समायुक्त हो, शिव भाव परायण हो तथा शिव रूप के दर्शन करे तब प्राणों की गति ऊर्ध्वगामिनी हो जाती है।

अथवा चपला यद्वत् तद्वद्देहेषु व्यापिका।

शक्तिः प्रधावनार्थाय चेष्टते व्याकुला हि सा।।

अथवा, जैसे आकाश में विद्युत चमकती है उसी भाँति सारे शरीर में व्याप्त विद्युत समान शक्ति दौड़ने को व्याकुल होती है।

तदा शंका च विस्तारं प्राणानां गतिरूपकम् ।

जायते तत्त्वज्ञानाय पराज्ञानाय निश्चितम् ।।

तब प्राणों की गति का विस्तार हो जाता है, साधक शंकित भी हो जाता है, ऐसी शंका निश्चय रूप में तत्त्व ज्ञान और परा ज्ञान के लिये सफल होती है।

अथवा कण्ठमाकुंच्य तालुभागे शनैः शनैः।

श्वासस्य गतिसंवेगो जायते प्राणरोधकः।।

अथवा, साधक कण्ठ को तालुभाग मे धीरे धीरे समेट कर श्वास की गति का वेग प्राण निरोध करने लग जाता है।

त्वरया च बहिर्याति न स्थितिं च करोति तत् ।

जानीयात् साधक श्रेष्ठः प्राणाः ऊर्ध्वगतिं गताः।।

किन्तु प्राणवायु रूक नहीं पाते हैं और वहाँ स्थिर न होकर त्वरित गति ॰ बाहर निकल जाते हैं। ऐसे में साधक समझ ले कि प्राण ऊर्ध्वगति को चल पड़े हैं।

संकल्पानां विकल्पानां शून्यता यदि वा भवेत् ।

तदापि तत्समायोग ऊर्ध्वं तां च गतिं मतिम् ।।

जब संकल्पों और विकल्पों की शून्यता हो जाय तब भी समझना चाहिए कि प्राणों की गति ऊपर की ओर हो रही है।

बोधयेद् बोधभावाय अनुभावाय तत्त्वतः।

एवं कृत्वा सदा स्वं वै स्वरूपं प्राणसंज्ञकम् ।।

उपर्युक्त लक्षणों से प्राण तत्त्व का अनुभव और बोध कर लेना चाहिये। इस प्रकार देखकर और अनुभव करते हुए अपने प्राण के सही रूप को जान लेना चाहिये।

अवगच्छेन्नरो यस्तु योगमार्गे रतः परः।

अग्रे चैवं प्रवक्षामि वर्णनं सूक्ष्मरूपकम् ।।

इस भाँति साधक योग मार्ग में रत होता हुआ प्राणों की ऊर्ध्वगति को पहिचानता रहे। अब आगे सूक्ष्म रूप का वर्णन करती हूँ।

सूक्ष्मात् सूक्ष्मसमाकारं रन्ध्रपर्यन्तगामिनम् ।

प्राणानां स्थितिबोधोऽसौ ध्यानंस्थितिसमन्वितः।।

सूक्ष्म से भी सूक्ष्म आकार की प्राणों की धारा जो रन्ध्र पर्यन्त तक चली जाती है। ऐसे प्राणों की स्थिति को बोध ध्यान स्थिति में हुआ करता है।

तस्मात् प्रजायते तस्य परातुष्टिः परामतिः।। ॐ ।।

उसी ध्यान स्थिति में साधक को परम तुष्टि होती है और उसे उच्च मति (ज्ञान) प्राप्त होता है।

२८-७-६४।।१७२।।

हरि ॐ तत् सत् ।। ॐ ।।

सालंकृतां शुभगुणां शुभभावयुक्ताम् ।

भोक्त्रैकभोगभवनां नमितात्मिकां ताम ।।

अनन्तरूपोद्भव ज्ञानरूपां,

दिव्यस्वरूपां च प्रदिव्यभावाम् ,

कालान्तसंघात्मकशून्यशून्याम् ।

शून्यां स्थितिं तां च भजामि नित्यम् ।।

हरि ॐ तत् सत् । ॐ । अलंकार धारिणी, शुभ गुणों वाली, शुभभाव समन्विता, भोक्ता को अद्वितीय भोग प्रदान करने के लिए स्वयं नत होकर उपस्थित होने वाली, अनन्त रूपों में ज्ञान पैदा करने वाली, दिव्यस्वरूपा, दिव्यभावमयी, कल्पान्त में समस्त सृष्टि संघ को शून्य करके शून्याकार होने वाली, उस शून्यरूपा स्थिति का मैं भजन करता हूँ।

प्राणानामूर्ध्वभावेन या संज्ञा शून्यभाविका।

शून्यात्मिकां च तां रूपां अरूपां च नमाम्यहम् ।।

प्राणों की ऊर्ध्वगति होने पर शून्यरूपा मूर्च्छा आती है, उस अरूप और रूपवती शून्यात्मिका देवी को मैं नमस्कार करता हूँ।

रूपारूपां विरूपां च अरूपां रूप धारिणीम् ।

प्राणानां गतिशून्यां तां प्रपश्यामि पुनः पुनः।।

मैं, प्राणों की गति से प्राप्त उस शून्यभाव को बारम्बार देखा करूँ, जो रूपवाली भी है, विरूपा है और अरूपा भी।

प्राणानामार्तिनाशाय विकासाय च शुभ्रिकाम् ।

अभ्रंकशां कशायुक्तां काशीभावविमण्डिताम् ।।

प्राणों के कष्ट को दूर करने के लिये, उनके विकास के लिये अभ्रंकशा, कशायुक्ता, काशीभाव से परिमण्डिता–

ककारात्मसमाकारां कपाले चोर्ध्वगामिनीम् ।

तां संज्ञां च समाप्नोमि यां प्राप्य मुदमाप्नुयाम् ।।

ककार बीजाक्षर के आकार वाली, कपाल भाग में ऊर्ध्वगामिनी उस उद्भूतसंवेदना को प्राप्त करता रहूं, जिसे प्राप्त करके हर्ष प्राप्त कर लूं।

परा विद्या महाविद्या परतत्त्व प्रकाशिका।

प्राणानां गतिभावार्था सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरा हि सा।।

परा विद्या वह महाविद्या है, जो परतत्त्व का प्रकाश करती है और प्राणों के गतिभाव के लिये सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप धारण कर लेती है।

पराविद्या प्रबोधेन जानाति योगिसंज्ञकः।

योगः कथं मया प्राप्तः सत्वरं च विशुद्धकः।।

पराविद्या के प्रबोध से योगी यह जान जाता है कि मैंने शीघ्र ही योग को किस शीघ्रता से प्राप्त कर लिया है।

ध्यानयोगे च वै यत्र मन्त्रजापः प्रजायते।

प्राणानां सूक्ष्मिका तत्र गतिः सा ज्ञायते ध्रुवम् ।।

जहाँ ध्यानयोग में मन्त्र का जाप चल जाता है, उस स्थिति में प्राणों की सूक्ष्म गति बनी रहती है, साधक उसे निश्चय ही जानता रहता है।

यदा प्राणाः समायाताश्चित्तेन मनसा सह।

संयोगं जपयोगोऽस्मिन् प्रादुर्भवति नित्यशः।।

जब प्राण चित्त और मन के साथ मिल कर एकाकार हो जाते हैं, वहां इन तीनों के संयोग होने पर जप का सदा प्रादुर्भाव हुआ करता है।

यदा वै गमनाभावे प्रत्यागमनके तथा।

जपार्थी जपयोगेन इष्टं जयति सत्वरम् ।।

जब प्राणों का गमनाभाव हो और प्रत्यागमन भी न हो रहा हो, तब साधक को जपयोग में इष्ट मन्त्र का जाप शीघ्र चलता रहता है।

इष्टयोगेन वै जापः तस्य यद्वा प्रजायते।

रेचके पूरके चैव कुम्भकान्ते तथैव च।।

इष्ट मन्त्र का जपयोग-साधक को रेचक में, पूरक में और कुम्भक के अन्त में भी चलता ही रहता है।

जपभावस्तु वै तत्र प्राधान्येन प्रजायते।

प्राणानां सूक्ष्मिका तत्र गतिः संज्ञायते परा।।

जब जप की प्रधानता साधन में होती है तब प्राणों की परम सूक्ष्म गति ज्ञान भी होता रहता है।

परायां प्राणसंधानः सूक्ष्मतां याति वै तदा।

कुम्भकान्ते च मध्ये च प्रारम्भे लग्नके तदा।।

पराशक्ति में प्राणों का सन्धान होने पर प्राण सूक्ष्मता में आ जाते हैं। पूरक, रेचक और कुम्भक तीनों में सूक्ष्मता आ जाती है।

साधकः इष्टमन्त्रस्य जपजापसमाकुलम् ।

मनसा स्वल्पवेगेन समुधारयति स्वतः।।

उस स्थिति में साधक स्वतः ही मन ही मन धीरे धीरे जप में लगा हुआ इष्ट मन्त्र का जाप करता रहता है।

तस्मात्तद् ज्ञायतां तत्र प्राणाः गच्छन्ति ऊर्ध्वकम् ।

अपरं यदि वा तत्र कपाले मध्यभागके।।

ऐसी स्थिति और लक्षणों से जानना चाहिये कि प्राण ऊपर की ओर चढ़ रहे हैं। एक दूसरा लक्षण यह भी है कि कपाल के मध्य भाग में यदि-

अन्तस्तालु समाभागे शीतलत्वं प्रजायते।

नासिका रन्ध्रभागेऽपि शीतलत्वं क्वचित् क्वचित् ।।

तालु भाग के आसपास शीतलता की प्रतीति होती हो और कभी कभी नासिका के छिद्रों में शीतलता का अनुभव होता है।

प्रजायते तु वै कण्ठे शीतलत्वं स्वयं स्वयम् ।

प्रयाससाध्यं तन्नैव सहजं सहभाविकम् ।।

कभी कण्ठ के भीतर भी स्वयं ही शीतलता की प्रतीति होती है। यह शीतलता भाव प्रयास साध्य नहीं होता है, अपितु सहज स्वाभाविक होता है।

शीतलत्वं यदा व्याप्तं तदा प्राणाः प्रतिष्ठिताः।

अथवा मध्यगे भागे भारं तत्र प्रतीयते।।

इस भाँति जब शीतलता व्याप्त हो तो समझना चाहिये प्राण भली भाँति प्रतिष्ठित होकर सध गये हैं, अथवा कभी कभी सिर के मध्य भाग में बोझ की प्रतीति होती है।

भारं भारं समाभारं तत्त्वाकारं विशेषतः।

ग्रीवायां वेदनं किंचित् कुञ्चनं च प्रसारणम् ।।

यह भार ऐसा महाभार होता है कि कोई विशेष वस्तु रखी हुई हो। इसमें ग्रीवा में कुछ पीड़ा भी होती है और उसमें संकोच तथा प्रसार भी होता है।

जायते प्राणवेगस्तु ऊर्ध्वं गच्छति निश्चितम् ।

एतद् ज्ञानं च विज्ञानं महायोगे प्रसिद्धकम् ।।

ऐसे जब लक्षण हों तो समझो कि प्राण निश्चय ही ऊपर की ओर जा रहे हैं। इस प्रकार का ज्ञान और [illegible]त्र महायोग-विज्ञान प्रसिद्ध है। प्रायः सभी शक्तिपात दीक्षितों को होता है।

लये मन्त्रे जपे सर्वं किंचित् किंचित् समायुतम् ।

अनुभूतिपरं तत्त्वं करोति च यदाहितः।।

तदा शूलसमाकारं प्राणं पश्यति ऊर्ध्वगम् ।

प्राणानां व्यूहकं प्राणं चैतन्यत्वेन संगतम् ।।

लय दशा में, मन्त्र जप में जब साधक थोड़ा बहुत तत्त्व की अनुभूति ध्यान पूर्वक करता होता है-

तब प्राण शूल का आकार धारण करके प्राणों को ऊपर चढ़ता हुआ देखता है। तब प्राण-व्यूह चैतन्य के साथ संगत हो जाते हैं।

ऊर्ध्वं व्याप्ति समायाति ततश्चेतः प्रसीदति।

यदि वा प्राणसंघर्षे प्राणानां गतिकारके।।

केवलं साधनाकाले साधनासाधसाधकाः।

विचाराः यान्ति वै यत्र कथं मे साधनं भवेत् ।।

ऊपर की ओर प्राणों की व्याप्ति आ जाती है उसमें साधक का चित्त प्रसन्न हो जाता है अथवा जब प्राण संघर्षण में लगे हुए गति शील हों, तब साधनाकाल में साधन में रत साधक को अनेकों विचार आ घेरते हैं। जैसे- मेरा साधन कैसे चलेगा, कैसे मैं आगे बढ़ूं।

केन रूपेण संयाति केन रूपेण ज्ञायते।

केन रूपेण संसिद्धं तद् व्रजेच्च हि सत्वरम् ।।

इत्यात्मकं हि भावं वै निर्गच्छति पुनः पुनः।

श्वासेन सह वै तत्र जानीयात् प्राणसंगतिः।।

संगमेन समायुक्ता दशा ऊर्ध्वाकुला मता।

विप्रकृष्टेन भावेन लग्नं वै यदि तन्मनः।।

तदापि प्राणसंरोधः स्थिरतां याति वै क्वचित् ।।

ये प्राण कैसे चल रहे हैं ? यह कैसे ज्ञात हो ? साधन कैसा चल रहा है ? जल्दी से जल्दी मेरा योगाभ्यास किस प्रकार सिद्ध हो ? इस प्रकार के भाव बारम्बार उठा करते हैं। श्वास प्रश्वास में उपर्युक्त विचार आते हैं। ऐसी स्थिति में समझना चाहिये कि - प्राण संघर्ष करते हुए ऊपर की ओर जाने के लिये छटपटा रहे हैं। यदि मन बड़े कष्ट पूर्वक भी प्राणों की गति के साथ लग जाता है तब भी कभी कभी प्राणों का निरोध स्थिर हो जाता है।

क्वचिच्चलग्नं बहुधा मनः पुनः क्वचिच्च भावः समुपस्थितः सदा।

क्वचिच्च कालं समुपागतं क्वचित् क्वचिच्च केनापि च

दृश्यते क्वचित् ।।

कभी मन प्राणों के साथ बहुत लगा रहता है, कभी कभी नित्य भावों का उदय हो होता रहता है, कभी बहुत काल तक मन में आता है और कभी कोई साधक मन की गति देख भी लेता है।

क्वचित् समाकालं समायुतं च क्वचिच्च बोधेन विबोधनं च।

क्वचिच्च प्राणैः सह संगतं च जपेन सार्धं सह शोधनं च।।

कभी-कभी वर्तमान काल की बातों को सोचने लगता है, कभी बोध से फिर उद्बुद्ध हो जाता है, कभी प्राणों की गति में लग जाता है और कभी-कभी जप के भाव में लगा रहता है। इन स्थितियों में प्राणों का शोधन होता रहता है।

तदा एवं ज्ञायतां यद् प्राणाः शुद्धिभावं गताः ऊर्ध्वं गच्छन्ति। अत्र चैनदपि विज्ञेयं यत् नाडीव्यूहस्य संशोधनं समुपस्थितः। यदेतादृशी ज्ञाताज्ञातदशा साधकेनानुभूयते तदा स्वभावेन सहज भावेन अप्रयासेन परामायानुग्रहेण एनं स तत्र विजानाति यात्राडीशोधनं प्राणानामुद्बोधनं च भवति।। ॐ ।।

तब ऐसा समझना चाहिये कि प्राण शुद्धिभाव को प्राप्त करके ऊपर को जा रहे हैं। यहाँ पर यह भी जान लेना चाहिये कि नाड़ी-व्यूह का संशोधन उपस्थित हो गया है। जब ऐसी ज्ञात अज्ञात दशा का अनुभव साधक करने लगे तब स्वाभाविक, सहज और बिना प्रयास के ही परमा महामाया भगवती के अनुग्रह से नाड़ी शोधन और प्राणों का उद्बोधन हो रहा है ऐसा साधक जान जाता है। ॐ ।

२९-७-६४।।२७३।।

नमामि तं महावृक्षं महायोगफलप्रदम् ।

महामायासमाविष्टं बीजरूपेणसंस्थितम् ।।

मैं उस महावृक्ष को प्रणाम करता हूँ जो महायोग रूपी फल देता है और जो महावृक्ष महामाया के समाविष्ट बीज से अंकुरित होता है।

महाशक्ति च तां नौमि महाकार्यप्रसाधिकाम् ।

महायोगप्रदां देवीं महादिव्यस्वरूपिणीम् ।।

मैं उस महाशक्ति को प्रणाम करता हूँ जो बड़े बड़े कार्यों की प्रसाधिका है, महायोग प्रदा है और महा दिव्यस्वरूपिणी है।

जिह्वाग्रे च निवासोऽस्याः कण्ठाग्रे च समूलकः।

सा देवी सर्वभावेन प्रसीदतु महेश्वरी।।ॐ।।

जिस महादेवी का निवास जिह्वाभाग में है और कण्ठाग्र में जिसका मूल स्थान है वह महेश्वरी मेरे ऊपर प्रसन्न हो।

प्राणानां पूर्णता जाता न वा सद्यः परीक्षणम् ।

करणं च कृतं येन तेन सर्वं जितं मतम् ।।

प्राणों की पूर्णता हुई है या नहीं इस बात का जो शीघ्र परीक्षण कर लेने में प्रवीण हो जाता है उसने समझो सब कुछ जीत लिया है।

प्राणायामः कृतो येन सफलः स न वा च किम् ।

न ज्ञातं येन तद्भावं निष्फलं तेन सर्वकम् ।।

जिसने प्राणायाम को कर लिया, किन्तु यह नहीं जान सका कि वह सफल हुआ है या नहीं, जिसने प्राणायाम के भाव को नहीं जाना, उसका श्रम व्यर्थ है।

कृते स्वात्मपरिज्ञानं महामाया च तुष्टिदा।

यदा च ज्ञायते एवं महामाया कृपा परा।।

आत्म परिज्ञान हो गया है, महामाया तुष्ट है ऐसा जब साधक जान लेता है, तब समझना चाहिये कि महामाया की कृपा हुई।

तदा प्राणाः समग्रास्ते ज्ञानमार्गे प्रयान्ति च।

ध्यानमार्गे पुनस्तत्र तेषां वै संस्थिति-र्ध्रुवा।।

तब सारे प्राणों की गति ज्ञान मार्ग की ओर बढ़ती है फिर प्राणों की संस्थिति अवश्य ही ध्यानमार्ग में भी हो जाती है।

तस्मात्पूर्वापरं ज्ञात्वा ज्ञात्वा प्राणस्य धारका।

शक्तिः सद्यः समापन्नास्तदधा लब्धा च भूरिशः।।

इसलिये पूर्वापर भाव को जानकर और प्राण की गति को पहचानकर शक्ति शीघ्र प्राप्त हो जाती है और रुकी हुई शक्ति भी पुनः उपलब्ध हो जाती है।

यथा बीजात् महावृक्षो जायते परिपालनात् ।

तथा प्राणमहावृक्षः पुष्पदः फलदो भवेत् ।।

जैसे सिंचन आदि द्वारा परिपालन से एक बीज से महा वृक्ष पैदा हो जाता है वैसे ही प्राण रूपी महावृक्ष पुष्पदाता और फलदाता बन जाता है।

फलं चैव समाधानं मनसश्चञ्चलात्मकम् ।

पुष्पं पूर्वं ततो याति फलसंवृद्धि रेधिका।।

चञ्चलात्मक मन का समाधान होना उसका फल है। पहिले पुष्प होता है फिर फल समृद्धि बढ़ती है।

पुष्पं नश्यति सद्यो वै फलोदय समागमे।

एवं ध्यानसमायोगे मनसो अज्ञबोधकम् ।।

पुष्प शीघ्र नष्ट हो जाता है तब फल का प्रादुर्भाव होता है। इस भाँति ध्यान की समाप्ति हो जाने पर मन का अज्ञान भ्रम दूर हो जाता है।

गमनं च समायाति निर्मलत्वं प्रयाति च।

साधकः स्वात्मभावेन जानीयात् प्राणसंस्थितिम् ।।

फिर मन में निर्मलता आ जाती है। साधक को अपने भीतर के प्राणों की संस्थिति भली भाँति समझ लेनी चाहिये।

एवं ज्ञात्वा पुनस्तस्य साधनं फलतां व्रजेत् ।

यदि वा कुम्भकान्ते तद् रेचकान्ते तथैव च।।

पादपृष्ठे तथाङ्गुष्ठे जायते चिंचिणात्मकम् ।

स्फुरणं जायतां तेन प्राणायामः शुभावहः।।

इस भाँति के ज्ञान से फिर साधन में फल लगता है। यदि कुम्भक के अन्त में या रेचक के अन्त में-

पैरों के पृष्ठ भाग या अंगुष्ठ में चिंचिणात्मक झुनझुनी होती हो या ऐसा स्फुरण होता हो तो प्राणयाम शुभ फलदायक होता है।

अथवा उदरे दीप्तिः तृप्तिः कण्ठे च जायते।

सुप्तिर्भावसमूहस्य प्राणायामः शुभावहः।।

या उदर में दीप्ति उष्णता हो और कण्ठ में तृप्ति का भाव आ जाय, भाव समूह सुप्त हो जाँय तो प्राणायाम को शुभ फल दायी समझना चाहिये।

एवं परीक्षणं कृत्वा कृत्वा चैव निरीक्षणम् ।

भूरिशः प्राणभावेऽस्मिन् गतिं पश्येत् सुसाधकः।।

इस भाँति निरीक्षण-परीक्षण करके श्रेष्ठ साधक को चाहिये कि वह बारबार अपने प्राणों की गति को देखता रहे।

यथाशक्ति तरंगाणां गतिस्तत्र महानदी।

तथा शरीरमध्येऽपि शक्तिधारा तरंगिता।।

जैसे शक्ति की तरंगे होती हैं और शक्ति की महानदी बहती रहती है; उसी भाँति शरीर में शक्ति की धारा तरंगित होती रहती है।

सा धारा प्रबला यावत् सर्वचाञ्चल्यनाशिका।

केवलं ध्यानयोग्योक्तंप्रकरोति मनस्त्वथा।।

वही धारा जब प्रबल हो जाती है, तब सम्पूर्ण चंचलता को दूर कर देती है। वह धारा मन को केवल ध्यानयोग्य बना देती है।

यदि एवं समापन्नं अनुभूतिपथं गतम् ।

तदा प्राणसमायोगः प्राणायामः प्रसिध्यति।।

यदि ऐसी दशा प्राप्त हो और अनुभूतिपथ में आ जाय, तब प्राणायाम शुभ होकर सिद्ध हो जाता है।

अथवा सुस्थिरा बुद्धिर्भूययो भूयो विचारकात् ।

निः सारयति वै एवं प्राणानां गमनात्मके।।

अथवा बारम्बार सत् असत् के विचार में सुस्थिर हुई बुद्धि प्राणों की गति को पैदा करती है।

आयाति शून्यभावं सा एकाधारावशिष्यते।

केवलं श्वासविच्छेदः प्राणविच्छेद संज्ञकः।।

फिर शून्यभाव आ जाता है, फिर केवल एक ही धारा शेष रहती है। केवल श्वास विच्छेद हो जाता है और उसी को प्राण विच्छेद भी कहते हैं।

लघुरूपेण तच्छीघ्रं फलदः शुभः।

यदि वा नासिकान्ते च निटिले मध्यगे तथा।।

प्राणानां गतिभावस्तु प्राणायामः फलप्रदः।

सिद्धप्राणामहाप्राणा विस्तारं यान्ति वै यदा।।

सृजन्ते ध्यानभावं ते ध्यानाय प्रस्तुता मता।

सृजनात्मक भावेऽस्मिन् ध्याने लीनस्थिति-र्मता।

वह केवली कुम्भक साधक शीघ्र जान लेता है, वह कुम्भक शुभ फलदाता होता है। अथवा यदि नासिकाग्र भाग में या मस्तक के अग्रभाग में प्राणों का गतिभाव हो जाय तो यह प्राणायाम ही शुभफल दायी होता है। जब सिद्धप्राण महाप्राणरुप में विस्तार को प्राप्त होते हैं, तब वे प्राण ध्यानभाव उत्पन्न करते हैं और वे ध्यान के लिये उद्यत हो जाते हैं। प्राणों के इस सृजनात्मक भाव में साधक की स्थिति ध्यान में लीन हो जाती है।

तत्पर्यन्तं समासाद्य साधको ध्यानतत्परः।

जायते मृदुभावेन स्वयं जानाति तत्त्वतः।।

यहाँ तक की दशा प्राप्त करके साधक मृदुभाव से, सहजभाव से ध्यान में तत्पर बनता जाता है।

एतत्सर्वं महामाया प्रसादेन पुनः पुनः।

प्रादुर्भवति देहेस्मिन् नरोत्तमविशेषके।।

किसी विशेष साधक-श्रेष्ठ को ऐसे लक्षण महामाया के प्रभाव से बारम्बार इस शरीर में उत्पन्न हो जाया करते हैं।

सर्वं कृतं च भुक्तंच ज्ञातं च स्वयमेव तत् ।

महामायाप्रसादेन बहुशो ज्ञायते स्वयम् ।।

महामाया के प्रसाद से साधक सभी ज्ञान, अनुभव, क्रियाविशेष की परिपक्वता स्वंय ही जान लेता है।

यस्य नास्ति महाशक्तिः प्रसन्नाः वरदायिका।

तस्य काणसमायोगो विकीर्णं भावमागतम् ।।

जिस साधक पर वरदायिनी महाशक्ति प्रसन्न नहीं होती है तो समझना चाहिये कि उसके जीवन में "प्रकाशयोग" आ गया है जो उसके शुभयोग को बिखरा दे रहा है।

तस्मात्तत्रैव द्रष्टव्यं समाधानं तु तस्य वै।

प्राणस्य प्राणव्यूहस्य शक्तिसंचारमार्गके।।

इस शक्ति संचार मार्ग में प्राणव्यूह की क्रिया और उसका समाधान साधक को स्वयं अपने भीतर ही देख और समझ लेना चाहिये।

एवं जानन्तु वै लोकाश्चरिता शक्ति वै कथम् ।

तस्य संलक्षणं प्रोक्तं निटिले नासिकान्तके।।

निटिलात् नासिकान्तं च यदि वा रमते मनः।

प्राणै सह समायुक्तंप्राणायामः फलप्रदः।।

साधक लोग ऐसे समझें। शक्ति का संचार उन पर हुआ है या नहीं, इसका यह भी लक्षण है कि भ्रूमध्य या नासाग्र भाग में और निटिल भाग से नासिकान्त तक यदि मन रमण कर रहा है और वह मन प्राणों के साथ लगा हुआ है तो समझो कि प्राणायाम शुभ फल दायी है।

सिद्धिः स सिद्धिसम्पन्नः कार्यसाधन तत्परः।

ध्यानयोगात्तु ध्यानेऽस्मिन् गति कारयते ध्रुवम् ।।

यह प्राणों की सिद्धि है। ऐसे लक्षण वाला साधक सिद्धिसम्पन्न होकर कार्य साधन में तत्पर हो जाता है। ध्यानयोग में वर्णित ध्यानक्रिया में अवश्य गति करता है।

यथा मूलात् रसं पुष्टं समादाय तरूः स्वयम् ।

स्वयं पुष्टिं समायाति पुष्पवृद्धिसुसंगतः।।

जैसे वृक्ष स्वयं जड़ से रस खींचकर पुष्ट होता रहता है और पुष्ट होकर पुष्प फल की समृद्धि प्राप्त करता है।

फलवृद्धिसमायुक्तो नानारससमन्वितः।

तथैव साधकश्रेष्ठः अमृतत्त्वाय कल्पते।।

फल वृद्धि से पूर्ण होकर नाना प्रकार के रसों से भर जाता है, उसी भाँति उत्तम साधक भी अमृतत्त्व की प्राप्ति करता है।

एतत्सर्वं महामाया प्रसादेन स्वयं मतम् ।

अनुभूतिं समायाति किन्तु वै केवलं हि तत् ।।

निरीक्षणाय वै यद्वत् जायते सफला क्रिया।

यदीच्छति नरस्तत्र तत्रैव च स्वयं ध्रुवम् ।।

जानाति प्राणसंयोगं न च जानाति निष्फलम् ।

तस्य चैवं समापत्तिः विशिष्टा ध्यानयोग्यता।।

यह सब महामाया भगवती के प्रसाद से स्वयं ही होता है और अनुभूति में आता है। किन्तु वह केवल जो क्रियायें बताई गई हैं वे निरीक्षण करने के लिये होती हैं। साधक यदि चाहता है कि प्राण क्रिया ठीक है या कहीं तो वह अपने प्राणों की हरकत जान लेता है और यह भी जानता है कि वह निष्फल नहीं है, और उसकी यह समापत्ति विशिष्ट ध्यानयोग्यता में होती है।

जायते प्राणसंरोधात् प्राणायामपरायणः।

तस्माद् भूयाच्च वै लोको लोकेऽस्मिन् योगमार्गके।।

प्राण निरोध द्वारा प्राणायाम में परायण होता हुआ साधक इस लोक में योग मार्ग में लगा रहे।

एवं सर्वप्रकारेण जानीयात् साधकः स्वयम् ।

विचिकित्सा न वै तत्र बहुना किं भवेत्ततः।।

इस प्रकार समझता हुआ साधक स्वयं योग मार्ग में तत्पर रहे। शंका और संशय से कोई लाभ नहीं है।

अपि एवं च जानाति साधकः स्वशरीरके।

स्वयं च नालिकाभावं जायते ब्रह्मरन्ध्रके।

साधक को कभी ऐसा भी लगता है कि शरीर के ब्रह्मरन्ध्र सुषुम्णा में एक नलिका सी बन गई है।

तत्रापि च महावेगः स नायाति क्वचित् क्वचित् ।

वेगस्य मार्गमारूद्धं करोति च स्वयं नरः।।

उस नली के भीतर प्राणों का महावेग कभी कभी नहीं हो रहा है। स्वयं ही प्राणवेग का मार्ग निरूद्ध हो गया है।

तदा संज्ञायते एवं कार्यं मे सफलं गतम् ।

सर्वात्मभावरूपं तद् समाधाय विशेषतः।।

तब ऐसा स्वयं ज्ञात होता है कि मेरा कार्य सफल हो गया है। इन बातों की भलीं भाँति से अपने सर्वात्मभाव में समाधान करता हुआ-

भूरिशो भूयशश्चैव साधने सुरतो नरः।

जानीयाद् ध्यानयोगं तद् भूयोभूयो वदामि तत् ।।

खूब बारम्बार साधक साधना में लगा रहे, ध्यानयोग का ऐसा रहस्य जानता रहे। इसे मैं बार-बार बताये जा रही हूँ।

३०-७-६४।।१७४।।

हरि ॐ तत् सत् ।

मन्त्राक्षरां महाशक्तिं मन्त्रबीजस्वरूपिणीम् ।

मन्त्रमूर्ति सदा वन्दे मन्त्रशक्तिप्रदां च ताम् ।।

मन्त्रबीज स्वरूपिणी, मन्त्रमूर्ति, मन्त्रशक्तिप्रदा, मन्त्राक्षरा महाशक्ति को मैं प्रणाम करता हूँ।

मन्त्रार्था मन्त्रभावार्था मन्त्रयोगां महामतिम् ।

मन्त्रदां मन्त्रसार्थां च मन्त्रसिद्धिप्रदां स्वकाम् ।।

मन्त्रार्थरूपिणी, मन्त्रभाव रूपिणी, मन्त्रयोगा, मन्त्रदात्री, मन्त्रसिद्धि प्रदा भगवती को मैं प्रणाम करता हूँ।

वन्दे तां मन्त्रविद्यां च महादेवीं महेश्वरीम् ।

मन्त्रशक्ति समालब्धां मन्त्रसार्थककारिणीम् ।।ॐ।।

उस महेश्वरी महादेवी मन्त्रविद्या को मैं प्रणाम करता हूँ जो मन्त्र की सिद्धि देकर मन्त्र के अर्थ को सार्थक कर देती है।

अद्य अस्मिन् प्रकरणे पूर्वस्य परस्य च विषये यन्निगदितं तत्परं च ध्यानावस्थितिकं प्राणानामूर्ध्वगतिकं यत्किंचिन्निगदितं तत्सर्वं साधकाय शुभं जायताम् ।।ॐ।।

अब इस प्रकरण में पूर्व के और पर के विषय में जो कहा गया है और तदनन्तर ध्यान की स्थिति और प्राणों की ऊर्ध्व गति पर जो कहा गया है वह सब साधक के लिये मंगलकारक हो।ॐ।

प्राणानां मध्यगाशक्तिः बीजरूपेणसंमता।

तां शक्तिं जागृतां कृत्वा सद्यो वै कार्यसाधकः।।

साधकः शक्ति सम्पन्नः जायते नितरां च तत् ।

ज्ञायतां च यथा तैलं निहितं तत्तिलेषु वा।।

प्राणों की मध्यगा स्थिति बीज रूप में स्थित रहती है, उस शक्ति को जागृत करके शीघ्र कार्य साधक व्यक्ति नितान्त शक्ति सम्पन्न बन जाता है। ऐसा समझो कि जैसे तिलों के भीतर तेल छिपा रहता है।

स्फुटं न ज्ञायते किंचित् निष्पेषणमपेक्षते।

तिलानां पेषणाद् यस्मात् तैलं तल्लभ्यते भृशम् ।।

वह स्फुट रूप में ज्ञात नहीं होता है। उसके लिये तिलों को पीड़ित करना पड़ता है, तब उस निष्पेषण से तिलों से तैल प्राप्त होता है।

तद्वत् शक्तिं समाभ्यस्य कार्यं वै कुरूते नरः।

अथवा दुग्धके यद्वत् घृतं वै नवनीतकम् ।।

उसी प्रकार शक्ति का भली प्रकार अभ्यास करके साधक कार्य करता है, अथवा जैसे दूध में घी और नवनीत रहता है।

विद्यते तत्तथा अत्र शरीरे शक्ति बीजकम् ।

विद्यते छन्नरूपेण प्रकाशं नीयतां हि तत् ।।

वैसे ही इस शरीर के भीतर शक्ति बीज निहित है। वह छिपा हुआ है। उसे प्रकट प्रकाश में ले आओ।

चर्षणं घर्षणं प्रोक्तंसंघर्षण समाकुलम् ।

तस्मात् प्राणसमायोगं बलदं कुरूते नरः।।

इसके लिये निरन्तर घर्षण, घर्षण, बारम्बार बताया गया है। इस प्रकार प्राणों के संघर्षण रूप प्राणायाम साधक को बलवान् बनाता है।

या च शक्तिः समापन्ना जागृता च विबुद्धका।

निरन्तर समाभ्यासात् सा शक्तिः पुष्टिमाभजेत् ।।

जो शक्ति साधक को प्राप्त हुई है, जाग गई है, उद्‌बुद्ध हो गई है, वह निरन्तर अभ्यास से परिपुष्ट हो जाती है।

तस्मात्संघर्षणं श्रेष्ठं प्राणानां प्राणकैः सह।

तेन संघर्षभावेन शक्ति-स्तत्र विबुद्धका।।

इसलिये प्राणों का प्राणों के साथ निरन्तर संघर्षण बहुत श्रेष्ठ कहा गया है। इस संघर्षण क्रिया से शक्ति विशेष रूप में उद्‌बुद्ध होती है।

जायते सुप्तिभावं च नैवं गच्छति गच्छति।
तस्मात् तत्त्वार्थ बोधश्च जायते शक्ति योगतः।।

इस अभ्यास से फिर शक्ति कभी सुप्त भाव में नहीं जाती है। उसी जागृता शक्ति से तत्त्वार्थ बोध हुआ करता है।

तदैव ध्यानयोगं च पुष्टं भवति भूरिशः।
प्राणायाम सयाभ्यासात् कुण्डली कुलदेवता।।
विबुद्धा कार्यभावार्था चैतन्यत्वेन संगता।
करोति कार्यं वै सद्यः साधकाय पुनः पुनः।।

तभी ध्यान योग की परिपुष्टि भी होती है। प्राणायाम के सम्यक् अभ्यास से कुल देवता कुण्डलिनी शक्ति कार्य के लिये तत्पर होती हुई विबुद्ध होकर चैतन्य से संगत हो जाती है। साधक के हित के लिये शीघ्र कार्य करना आरम्भ कर देती है।

तस्मान्निरन्तराभ्यासात् तां शक्तिं सुस्थिरां कुरू।
यदा वा जागृता शक्तिः प्राणोत्थानं करोति सा।।

इसलिये निरन्तर अभ्यास द्वारा उस शक्ति को स्थिर करो। जब वह जागृता शक्ति प्राणोत्थान करती है।

तदा उर्ध्वं समायान्ति प्राणाः संघर्षणात् स्वयम् ।
यथा सूत्रं समादाय सूचिकाग्रे प्रधावति।।

तब संघर्षण क्रिया द्वारा प्राण स्वयं ऊपर को चढ़ने लग जाते हैं। जैसे सुई धागे को लेकर आगे को बढ़ती जाती है-

तथा प्राणान् समादाय शक्ति-र्धावति धावति।
यथा वा वंशपृष्ठे तु तप्तलौहसमागमात् ।।
छिद्रं संजायते तस्मात् ध्वनिः संजायते मृदु।
तद्वच्छक्ति समायोगात् पृष्ठवंशे पुनः पुनः।।
तप्तप्राणसमायोगात् नादतत्त्वं प्रजायते।

जानाति साधकस्तद्वै शक्तिधारा समन्विता।।

उसी भाँति प्राणों को पकड़कर शक्ति निरन्तर ऊपर बढ़ती जाती है। जैसे बाँस के ऊपर गरम लौह शलाका रखने से छिद्र हो जाता है और उससे बड़ी मधुर ध्वनि निकलती है उसी प्रकार शक्ति के समायोग से साधक के पृष्ठ भाग में बारम्बार तप्त प्राणों के संयोग होने से नाद-तत्त्व प्रकट होता है। साधक को तब ज्ञात हो जाता है कि शक्ति अपना कार्य कर रही है।

कृताभ्यासः सदा स वै अभ्यासेन विना हि तत् ।
न जायते पराभावं तस्मादभ्यासतत्परः।।

ऐसा अभ्यास द्वारा ही होता है। बिना अभ्यास के वह नहीं होता है। बिना अभ्यास के पराभाव प्राप्त नहीं होता है, इसलिये अभ्यास में तत्पर बनो।

भव त्वं साधक श्रेष्ठ कार्यसिद्धिर्भविष्यति।
येनाभ्यासः कृतः पूर्णः जितः प्राणसमूहकः।।

हे उत्तम साधक ! साधना में लगे रहो, कार्यसिद्धि अवश्य होगी। जिसने पूर्ण अभ्यास कर लिया हो, और प्राण समूह को जीत लिया हो।

तेन सर्वं कृतं पूर्णं कार्यसिद्धिस्तु किंकरी।
किंकरीभूतमापन्ना प्राणशक्तिस्तु किंकरी।।

तो समझो कि उसने सब कुछ पूर्ण कर लिया है और कार्यसिद्धि उसकी दासी है। कार्य सिद्धि के वशीभूत होने पर प्राण शक्ति भी दासी हो जाती।

किंकरी निरताधारा किंकरी भूतिभूतिका।
तस्मात्सदा समाधानात् प्राणायामपरायणाः।।

आधार शक्ति भी किंकरी बन जाती है और विभूतियाँ भी किंकरी हो जाती हैं, इसलिये समाधान करके प्राणायाम में तत्पर बने रहो।

यो नरो योगवित् स वै तस्य प्राणाः प्रतिष्ठिताः।
महामाया प्रबुद्धा च विबुद्धा च सदैव सा।।

जो मनुष्य इस योग विद्या को जानता है उसके प्राण प्रतिष्ठित हो जाते हैं। उस साधक के लिये महामाया शक्ति प्रबुद्ध और विबुद्ध सदैव बनी रहती है।

कार्याकुला महामाया त्वमभ्यासे रतो भव।
करणीयं नैव तत्र त्वया किंचिद्विशेषतः।।
भविष्यसि न सन्देहः तस्मात् प्राणपरो भव।
सम्यक् निधाय वै दृष्टिं निरीक्षण परीक्षणम्।।

उस साधक के लिये महामाया कार्याकुल बन जाती है। अतः तुम अभ्यास में तत्पर बने रहो, तुम्हें विशेष रुप में कुछ करना नहीं है। न करना होगा। सन्देह न करो, केवः प्राण की उपासना करो। अपनी सम्यक् दृष्टि से प्राणों का निरीक्षण-परीक्षण करते रहो।

कृत्वा प्राणान् समाधाय श्रीपीठे सुस्थिरो भव।
उर्ध्वं किं दृश्यते तत्र अनुभूतिं ब्रजेच्च किम् ।।

प्राणों का समाधान करके श्रीपीठ में सुस्थिर हो जाओ। इसके आगे क्या दीखता है वह सब तुम्हारी अनुभूति में आ जायेगा।

प्रत्यक्षेण पुरः पूर्णं आगमिष्यति वै ध्रुवम् ।।

अवश्य ही वह पूर्ण रुप से प्रत्यक्ष में तुम्हारे सामने आ जायेगा।

३१-७-६४।।१७५।।

हरि ॐ तत् सत् ।।

आत्मबोधपरिचायिका च या सद्यः बोधपरिचायिका च या।
तत्त्वज्ञान अभिभाविका च या प्राणदा च सुखदायिका च या।।
सा च शक्तिबहुला मता साधकाय सततं शुभाय जायताम् ।।

जो शक्ति आत्मबोध परिचायिका है, जो शीघ्र बोध से परिचय करा देने वाली है, जो तत्त्वज्ञान का उदय कर देती है, जो प्राणदायिनी है, सुख दायिनी है, वह शक्ति सर्वदा साधकों का मङ्गल करे।

अथ अस्यां विद्यायां आत्मबोधप्रत्यभिज्ञासमाकारकं पूर्वापरकं कृतानुभूतं यच्च तत् पुष्टिकरणाय तुष्टिकरणाय पुनरपि आत्मभाविका आत्मोत्थानकारिका आत्मबोधविमण्डिता प्राणसंकुला निराकुला शक्तिसमन्विता च या उर्ध्वगा गतिभावना क्रिया वा तस्याः परिचयो विधेयः अनुभूतिस्तु विशेषेण। ।ॐ।।

अब इस विद्या में पहिले बताई गई आत्मबोध प्रत्यभिज्ञा जिसका अनुभव कर लिया गया है उसी के पुष्टीकरण और तुष्टीकरण के लिये फिर से आत्मानुभव सम्बन्ध आत्मोत्थान करने वाली, आत्मबोध विमण्डित, प्राणसंकुला और निराकुल रुप में शक्ति समन्वित होकर जो प्राणों की उर्ध्वगति की भावना है और क्रिया है उसका भी परिचय और विशेष अनुभव साधक को कर लेना चाहिये।

या च विद्या परा विद्या पूर्वापरविभाविका।
अनन्ता विपुला सा च आत्मबोधाय कल्पते।।

पूर्वापर ज्ञान की विशिष्ट भावना देने वाली जो परा विद्या है वह बड़ी अनन्त और विस्तीर्ण है और साधक को आत्मबोध करा देने वाली है।

ऊर्ध्वमूर्ध्वमुखा यावत् प्राणाः शक्तिविभाविताः।
भवन्ति तत्र वै सद्यः स्मृतिभावो विनश्यति।।

शक्ति से भरपूर प्राण जब ऊपर की ओर उन्मुख होकर चढ़ते हैं तब वहां स्मृति भाव विनष्ट होता चला जाता है।

कन्दादासेतुभागं च रन्ध्राद् रन्ध्रानुगा च या।
प्राणशक्ति-र्महाशक्तिः सूक्ष्मिका सूक्ष्मदर्शिका।।

कन्द से सेतुभागपर्यन्त सुषुम्णा रन्ध्र के भीतर चलती हुई प्राणों की महाशक्ति है बड़ी सूक्ष्म है और सूक्ष्म भावों की दर्शिका है।

प्रबला सबला तत्र जायते बोधसंकुला।

केवल-मात्मबोधोऽसौ निर्माणं प्रति गच्छति।।

वह शक्ति कभी प्रबल होती है, और कभी कम बलवाली, वह सभी रुप में साधक को बोध देने में लगी रहती है, शक्ति के द्वारा प्राप्त आत्मबोध निर्माणात्मक होता है।

स्मृतिभावः सदा तस्मात् स्थानान्निःसरणं व्रजेत् ।

एवं जानाति वै तत्र सहस्रारे गदागतम् ।।

साधक का स्मृतिभाव शरीर से निर्गत हो जाता है। साधक को ऐसा लगता है कि सहस्रार में कुछ आ जा रहा है।

कुर्वन्ति सततं प्राणाः प्रवेशं यान्ति वै न ते।

तस्माच्छूलसमाकारा स्मृतिशून्याः परस्परम् ।।

प्राण सहस्रार में गमनागमन करते हैं और वहां प्रवेश नहीं कर पाते हैं, वे प्राण शूल के आकार के दीखते हैं, और स्मृति की शून्यता रहती है।

अनुकूलत्वं समायाति सोहं भावः पुनः।

अखण्डावृत्तिर्वै तत्र प्रादुर्भवति साधके।।

बारबार सोहं भाव अनुकूलता में आता रहता है। साधक में तब अखण्ड वृत्ति का उदय होता है।

तां जानाति स वै पूर्णं पूर्णात् पूर्णतरं मतम् ।

प्राणानामूर्ध्वभावस्तु शक्तिवेगेन जायते।।

उस अखण्ड वृत्ति को साधक पूर्ण से पूर्णतर और उच्च समझता है। प्राणों की ऊर्ध्वगति शक्तिवेग से हुआ करती है।

कन्दसंछेदकस्तत्र रन्ध्रान्वेषणतत्परः।

तदा रन्ध्रंविदीर्यैतत् ऊर्ध्वं गच्छति सत्वरम् ।।

वह प्राण पहिले कन्द को संच्छिन्न करता है और ऊर्ध्वगामी छिद्र को ढूंढता है। तदन्तर रन्ध्र को विदीर्ण करके शीघ्र ऊपर की ओर चल पड़ता है।

एवं पूर्तिसमानार्था भावना बहुरुपिका।

प्रत्यक्षरुपा संरुपा बोधे पुष्णाति तद्ध्रुवम् ।।

इस प्रकार पूर्णता के भाव की बहुरुपा भावना प्रत्यक्ष रुप में आकर बोध का पोषण करती है।

अहं सोऽहं अखण्डोऽहं आत्माहं शिवरुपकः।

वृत्तिस्वरुपः संरुपः केवलमहमेव तत् ।।

वह ऐसी वृत्ति है कि "मैं वही हूँ, मैं अखण्ड हूँ, मैं आत्मा हूँ, मैं शिव हूँ, केवल मैं ही मैं हूँ" इस प्रकार की वह वृत्ति होती है।

अहं सर्वमहं तत्र अहं सर्वत्र दृश्यते।

यत्र यत्र समायोगः प्राणानां दृश्यते बहु।।

तत्र तत्र अहं भावः जायते परमाकुलः।

यदा वै नाशमायाति तद्भवोऽपि निःशेषतः।।

तदा एकं महातत्त्वं बोधस्थाने भविष्यति।

एतत् प्रोक्तं च पूर्वं वै प्रत्यभिज्ञाधिकारके।।

सर्वत्र सब मैं ही हूं, ऐसा ही सर्वत्र दिखाई देता है। जहाँ-जहाँ प्राणों का समायोग होता है वहाँ-वहाँ सर्वत्र पूर्णरुप से अहंभाव पैदा हो जाता है। जब ऐसा भाव निःशेष रुप में विलीन हो जाता है, तब भी बोध के स्थान में एक महातत्त्व बना ही रहता है। आत्मबोध प्रत्यभिज्ञा अधिकरण में पहिले भी ऐसा बताया गया है।

तस्मात्तदेव संज्ञेयं ध्येयं नेयं सुसाधकैः।

सा स्थितिर्बहुला प्रोक्ता एकार्था एक भाविका।।

इसलिये उत्तम साधक उसी स्थिति का ध्यान करें और उसे प्राप्त करें, वह स्थिति प्रायः एक तत्तत्र्थ को बताने वाली और एक की भावना देने वाली होती है।

यदा संयाति सा पूर्णा नैवं किंचित् प्रज्ञायते।

क्व वा अहं क्व वा प्राणाः क्व स्थितिः क्व च संस्थितिः।।

जब वह दशा पूर्ण रुप में आती है तो कुछ भी भान नही रहता है। मैं कहाँ हूँ, प्राण कहाँ हैं, कहाँ स्थिति है, कहाँ बैठा हूँ।

न किंचिद् ज्ञायते तत्र सोऽहंभावः स्थिरो भवेत् ।

एषा स्थितिः समायाति ध्यानयोगात्नरे सदा।।

वहाँ कुछ पता नही रहता है, केवल सोऽहं भाव ही स्थिर रहता है। ऐसी स्थिति साधक को ध्यानयोग के द्वारा प्राप्त होती है।

सूक्ष्मरुपेण बोधाय आत्मनश्च प्रबोधिका।

शोधिका कन्दभागस्य रोधिका वृत्तिव्यूहिका।।

एवं शनैः शनैः ज्ञातं अनुभूतं भविष्यति।

साधना लग्नकैः लोकैः योगविद्भिः स्वयं ततः।।

सूक्ष्मरुप में बोध देने वाली, आत्मा को प्रबुद्ध करने वाली, कन्दभाग का शोधन करने वाली और वृत्ति-समूहों का निरोध करने वाली वह दशा शनैः शनैः साधक के अनुभव में आती जायेगी। साधक लोग साधन में लगे रहें और योग का ज्ञान प्राप्त करते रहें। उन्हें स्वयं सब कुछ अनुभव में आ जायेगा।

तस्मात् सूक्ष्मातिसूक्ष्मं तत् तत्त्वं पश्यन्ति योगिनः।

यद्दृष्ट्वा परमानन्दं प्राप्नुवन्ति स्वयं हि ते।।ॐ।।

योगी लोग सूक्ष्माति-सूक्ष्म तत्त्व का दर्शन करके परमानन्द की प्राप्ति कर लेते हैं।

१-८-६४।।१७६।।

हरि ॐ तत् सत् ॐ।।

नमस्ते शारदे देवि शारदे सारशालिनि।

सारान्तां सारसंसारां बोधिनीं च प्रमोदिनीम् ।।

सार से पूर्ण हे शारदे देवि ! आपको नमस्कार है। सार सार में सार का अन्त देने वाली, प्रसन्न करते हुए बोध देने वाली माँ शारदा को प्रणाम है।

नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं प्रसीद कण्ठसंश्रिते।

कण्ठदेशं समाश्रित्य पराविद्याप्रकाशनम् ।।

कण्ठ देश में आश्रिता माँ मुझ पर प्रसन्न बनो, तुम्हें बारंबार नमस्कार है। मेरे कण्ठ में निवास करके परा विद्या का उद्घाटन कर दो।

कुरुत्वं त्वरया येन पराज्ञानं भवेत् शुभम् ।।ॐ।।

जिससे मुझे अतिशीघ्र परा का ज्ञान हो जाय और मेरा कल्याण हो जाय।ॐ।

पराविद्यायाः प्रसंगे प्राणोत्थानात्मकं ध्यानगम्यं तत्परिचयकारकं विशेषरूपेण कन्दात् रन्ध्रपर्यन्तं तस्माच्चोपरिभागं यावद्भणितं गद्यते वा तत्सर्वं परिपुष्टिकरं तुष्टिकरं च भवतात्।।ॐ।।

पराविद्या के प्रसंग में प्राणोत्थान विषयक, ध्यानविषयक, कन्द से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त और उससे ऊपर प्राणों की गति के बारे में जो कुछ बताया गया है वह सब परिपुष्टिकारक और तुष्टिकारक बने।ॐ।

प्राणानां प्राणसंवासः कन्दादूर्ध्वं प्रकीर्तितः।

रन्ध्रे निवेशयेत् प्राणान् प्राणसंशयकारकः।।

प्राणों का जो असली निवास है वह कन्दभाग के ऊर्ध्वभाग में कहा गया है। प्राणों के उपासक को चाहिये कि वह रन्ध्र के भीतर प्राणों का प्रवेश कराये।

रन्ध्रं गच्छन्ति यत्प्राणा-स्तत्रैव कृतसंश्रयाः।

किञ्चित्कालं समाश्रित्य नीचैर्गच्छन्ति ते स्वयम् ।।

जो प्राण रन्ध्र के भीतर प्रविष्ट हो जाते हैं वे अपना आश्रय बना लेते हैं और कुछ काल तक वहां रहकर पुनः नीचे स्वयं आ जाते हैं।

निम्नात् निम्नतरे भागे मूलाधारे विशन्ति च।

पुनर्मूलाच्च निष्क्रम्य ऊर्ध्वं गच्छन्ति ते स्वयम् ।।

नीचे आकर सबसे निम्नभाग मूलाधार में प्रवेश कर जाते हैं। फिर मूल से विनिष्क्रान्त होकर वे स्वयं ऊपर की ओर चढ़ा करते हैं।

कन्दभांग समाश्रित्य ऊर्ध्व रन्ध्रं प्रविश्य च।

तत्र संबोधमासाद्य गमनागमनं च तत् ।।

कन्द भाग का आश्रय लेकर और रन्ध्र के ऊपर को प्रवेश होकर वहाँ संबोध प्राप्त करते हुए वे प्राण गमनागमन करते हैं।

कुर्वन्ति हि सदा प्राणाः उत्थानेन समावृत्ताः।

तस्माच्च भावसंस्थानं बुद्धा वै साधकोत्तमः।।

प्राणानां गतिमासाद्य प्रीतिं गच्छति वै पराम् ।

पूर्वं यथा च सम्प्रोक्तं प्राणायामसमागमे।।

कथं गच्छन्ति ते शीघ्रं प्राणा ऊर्ध्वस्थितिं तदा।

निशम्य वार्ता चैनां तत् श्रुत्वा चैवावधारयेत् ।।

प्राण सदा ऊर्ध्वगमन के लिये उत्थान से परिपूर्ण रहते हैं। अतः उत्तम साधक भावसंस्थान का ज्ञान करके और प्राणों की गति प्राप्त करके परम हर्ष प्राप्त करता है। जैसे पहिले कहा है कि प्राणायाम के समागम में प्राण किस प्रकार शीघ्र उपर को चढ़ते हैं। उस

बात को सुनकर समझकर हृदयंगम कर लो।

अभ्यासेन समायुक्तः प्रीतिं गच्छति वै नरः।

अभिव्याप्य समासाद आसादश्च विसादकः।।

साधक अभ्यास में परिपक्व बनकर प्रसन्नता प्राप्त कर लेता है। समासाद, आसाद, विसाद इनका आशय अभ्यास करने के अर्थ को बताता है।

समीपे आसनं चैव आसनं चोपवेशनम्।

अभ्यासेन इदं सर्वं गद्यते अवधार्यताम्।।

समीप में आसन लगाना अर्थात् बैठना, इसको समासाद कहते। वह सब अभ्यास से ही आता है, इस बात को भी समझ लो।

अभ्यासः प्राणव्यूहस्य त्वरया कृततीर्थकः।

तीर्थभावं समायाति तीर्थार्थी रमते हि तत्।।

प्राणव्यूह का अभ्यास करना, उसमें निपुणता प्राप्त करना वही प्राप्त करता है जो निपुणता प्राप्ति का इच्छुक हो, वही योगाभ्यास में रमता भी है।

आर्तिविच्छेदकं तत्र श्वासविच्छेदकं पुनः।

स्वयमेव प्रसन्नं स्यात् नात्र कार्या विचारणा।।

इसमें कोई संशय नहीं है कि अभ्यास पहिले कष्ट दूर करता है, फिर श्वास की विषम गति का विच्छेद करता है और फिर वह अभ्यास भी स्वयं वश में आ जाता है।

यदीच्छसि वशीकर्तुं प्राणव्यूहं पुनः पुनः।

अश्वोदरीं समभ्यस्य त्वरया सफलो भव।।

यदि तुम प्राण व्यूहों को वश में करना चाहते हो तो बारम्बार अश्वोदरी मुद्रा किया करो, उसके अभ्यास से बहुत शीघ्र सफल हो जाओगे।

अश्वोदरी समायुक्तः अश्वार्थी अश्वधावकः।

अश्ववल्गां समाकृष्य अश्वं वै वशमानयेत्।।

घोड़ा दौड़ाने के इच्छुक अश्ववार को चाहिये कि वह घोड़े की लगाम हाथ में पकड़कर उसे खींच कर घोड़े को वश में करे, इसके लिये अश्वोदरी लगाओ।

प्राणाधीनं मनः प्रोक्तं मनसश्चञ्चला स्थितिः।

अश्वोदरीसमाभ्यासात् प्राणा ऊर्ध्वपरायणाः।।

मन प्राणों के अधीन हुआ करता है। मन की स्थिति चंचल होती है। अश्वोदरी के सम्यक् अभ्यास से प्राणों का रुख ऊपर की ओर हो जाता है।

जायन्ते सततं तत्तु प्रोक्तंपूर्वं मया पुनः।

प्रोच्यते अद्य वै तत्तु येनाभ्यासो दृढो भवेत्।।

यह बात पहिले भी बारबार मैंने कही है, आज भी मै कह रही हूं। ताकि तुम्हारा अभ्यास दृढ़ हो जावे।

अथवा च समभ्यस्ता येन सा हनुकूर्चिका।

येनापि प्राण संस्थान उत्थानेन अपावृतः।।

अथवा जो साधक हनुकूर्चिका, मुद्रा का अभ्यास कर लेता है, उससे भी प्राणों का संस्थान उत्थान से पूर्ण बन जाता है।

एवं प्राणा महाप्राणा महाबलसमन्विताः।

केन्द्रं सेतुं च रन्ध्रं च भित्त्वा गच्छन्ति ऊर्ध्वगम्।।

इस प्रकार प्राण महाप्राण बनकर महाबल से समन्वित हो जाते हैं। केन्द्र, सेतु और रन्ध्र का भेदन करके ऊपर की ओर चढ़ जाते हैं।

तदा संजायते पूर्वं आनन्दोद्भूति संज्ञकम्।

महातत्त्वं महासतत्त्वं यत्प्राप्य मतिमान् नरः।।

स्वयमानन्दसम्भूतिमधिगच्छति सत्वरम्।

चेष्टते कुरुते नैव दृश्यते चानुभूयते।।

तब साधक को आनन्द की उद्भूति होती है। महातत्त्व और महासत्त्व प्राप्त करके बुद्धिमान् साधक शीघ्र आनन्दानुभूति प्राप्त कर लेता है। पुनः पुनः उसी अनुभूति के लिये चेष्टा करता है, देखता और अनुभव करना चाहता है।

आनन्दः परमानन्दः परप्रीतिप्रदायकः।

परस्य परमा प्रीतिः परमेन विमण्डिता।।

आनन्द, परमानन्द, परम प्रीति प्रदायक दशा उसे कहते हैं, जिसमें परतत्त्व के प्रति परम प्रीति हो और जहाँ परम का अनुभव हो।

तां जानाति यः स योगी तस्मात् प्राणपरो भव।

सहस्रारे यदा सद्यो गमनं च भविष्यति।।

उसी दशा को योगी जानता है, अतः तुम प्राणोपासना में लगे रहो। जब एकदम प्राणों का गमन सहस्रार में होगा।

तदा तु प्राणसंरोधः तत्रस्थैव भविष्यति।

दलेषु दलभागेषु दलसृष्टिषु वै पुनः।।

एकाक्षरं परब्रह्म प्रत्यक्षं च समाश्रितः।

अनुभूतिपरः सद्यः भविष्यति न संशयः।।

तब प्राणों का वहीं संरोध हो जायगा। वहां प्रति दल में, दल-समूह में, दल भागों में बारम्बार वह एक अक्षर ब्रह्म प्रत्यक्ष रूप में समाश्रित हुआ प्रतीत होगा और उसकी तुम्हें अनुभूति होगी। इसमें कोई संशय नही है।

तस्मात् सततभावेन समायुक्तेन चेतसा।

प्राणाभ्याससमायुक्तः नरो जायेत वै स्वयम् ।।

इसलिये लगन पूर्वक समाहित चित्त से, साधक को चाहिये कि वह प्राणाभ्यास क्रिया में निरन्तर तत्पर बना रहे।

रन्ध्रभागं समाक्रम्य तद्व्याप्तिं च विधाय वै।

प्राणांस्तोषसमायुक्ताः महाबलसमन्विताः।।

रन्ध्र भाग का आक्रमण करके, उसमें व्याप्त होकर प्राण तुष्टि प्राप्त करते हैं और महाबल से समन्वित हो जाते हैं।

द्वन्द्वमातंगनाशाय जायते सिंहशाववत् ।

यथा वै केसरी शीघ्रं मातंगमभिक्रम्य च।।

ऊर्ध्वं तिष्ठति तत्रैव स्वबलेन विमण्डितः।

एवं प्राणो महाप्राणो महाशक्तिविमण्डितः।।

द्वन्द्वरूपी मातंग के संहार के लिये वे प्राण सिंहशावक की भांति बलवान् बन जाते हैं। जैसे केसरी शीघ्र मातंग पर झपटकर उस पर सवारी करके बैठ जाता है और वहाँ शोभित रहता है, वैसे ही शक्ति से विमण्डित प्राण महाप्राण बनकर विराजते हैं।

सर्वद्वन्द्वविनाशाय जायते बलवान् दृढ़ः।

प्राणानां गतिभावं च यो जानाति नरः स्वयम् ।

वह बलसम्पन्न प्राण सर्वद्वन्द्व के विनाश के लिये सफल हो जाते हैं। जो व्यक्ति स्वयं अपने प्राणों के गतिभाव को जानता है।

तस्य वै सफला प्रोक्ता साधना तत्त्वदर्शिका।

तस्मात् प्राणं महाप्राणं निरीक्ष्य च परीक्ष्य च।।

पूर्वभ्यासे रतस्तत्र भूयाच्चैव पुनः पुनः।

अथवा ज्ञायतामेवं बालुका सेतुबन्धनम् ।।

उसकी साधना सफल कही जाती है, जो उसे तत्त्व दर्शन करा देती है। अतः अपने बल सम्पन्न प्राणों का निरीक्षण परीक्षण करके बारम्बार निरन्तर पहिले अपने अभ्यास में लगे रहो, नहीं तो ऐसा समझो कि बालू से पुल का बाँधना है।

कर्तुं शक्नोति वै कश्च श्रमस्तस्य निरर्थकः।

तद्वच्छ्वासः समायति गच्छति च पुनः पुनः।।

बालू से कौन पुल बाँध सकता है, उसका श्रम निरर्थक है। बिना अभ्यास के सामान्यतया श्वास आता जाता रहता है।

न च शक्तिसमापन्नः तद्वत्तस्य निरर्थकम् ।

भावं संज्ञायते येन क्रिया च निष्फला भवेत् ।।

किन्तु शक्तिसम्पन्न नहीं होता है। तो इस भाँति सब निरर्थक है। भाव परिज्ञान भी उसे नही हो पाता है और उसकी क्रिया निष्फल हो जाती है।

क्रियायोगो महायोगः क्रियाकारक मेव च।

क्रिया प्राणात्मिका प्रोक्ता क्रिया प्राणविबोधिका।।

यह महायोग क्रिया योग है, क्रियाओं को कराने वाला है। क्रिया प्राणात्मिका होती है और वह क्रिया प्राणविबोधिका होती है।

क्रियाप्राणसमाव्याप्ता क्रिया प्राणोर्ध्वगामिका।

तस्मात् क्रिया विधातव्या भूयो भूयो मनीषिभिः।।

बुद्धिमान् साधक क्रियायें करता रहे, क्योंकि क्रिया ही प्राणों को पोषण करती है और क्रिया ही प्राणों को ऊर्ध्वगामी बनाती है।

क्रियां कृत्वा महाप्राणं ऊर्ध्वं यः प्रापयेद् ध्रुवम् ।

साधना सफला तस्य सर्वं वै तस्य निश्चितम् ।।

जो साधक क्रिया करके निश्चयात्मक ढंग से प्राण ऊपर पहुंचा देता है, उसी की साधना सफल है और उस साधक की सब सिद्धि निश्चित है।

अत एवं समाधेयं प्राणानां हि महत्त्वकम् ।

ऊर्ध्वं गच्छन्ति वै प्राणाः परानन्दविमण्डिताः।।

इसलिये यह भलीभांति समझ लो कि प्राणों का बहुत महत्त्व है। जब प्राण ऊपर को जाते हैं तब परमानन्द दायक होते हैं।

एवं भूयः समाधाय क्रियां मुद्रां च बन्धकम् ।

सर्वेषां च महाभ्यासात् पुष्टिं वै भजते नरः।।ॐ।।

इस भांति समझने वाला साधक क्रियाओं, मुद्राओं और बन्धों के महान् अभ्यास द्वारा ही पुष्टि प्राप्त करता है।

२-८-६४।।१७७।।

हरि ॐ ततसत् ॐ।

वन्देऽरविन्दाश्रयभूतिभूतां महारविन्दे च निवासिकां ताम् ।

महामहाज्ञानभृतां च प्रज्ञां प्रज्ञात्मिकां भूतिविभूतिपूताम् ।।

हरि ॐ तत् सत् ॐ। कमल का आश्रय लेकर सुशोभित, सहस्र दल कमल में निवास करने वाली, महान् ज्ञान धारण करने वाली, भूति व विभूति से पवित्र उस प्रज्ञास्वरुपा भगवती को नमस्कार है।

वन्देऽहं तां महाशक्तिं कुण्डलीं दिव्यरुपिणीम् ।

प्राणानां स्वामिनीं शुभ्रां प्राणतत्त्वप्रवेशिकाम् ।।ॐ।।

दिव्यरुपिणी कुण्डलिनी महाशक्ति को मैं प्रणाम करता हूँ, जो प्राणों की स्वामिनी है। प्राणतत्त्व को प्रवेश देने वाली है और शुभ्रवर्ण है।

यत्किंचिद् दृश्यते दृश्यं अनुभूतिपरं च यत् ।

तत्सर्वं पूर्णरुपेण साधकेन विबुद्धयताम् ।।

साधक को साधना में जो कुछ दृश्य दीखे और अनुभूति में आवे उस सबको पूर्ण रुप में समझ लेना चाहिये।

प्राणायामे कृताभ्यासः प्राभासः पारदर्शकः।

परा विद्या परा रुपा तस्मै लाभप्रदा भवेत् ।।

जो साधक प्राणायाम का अभ्यास कर लेता है, उसे प्रकर्ष आभास होता है और वह पारदर्शक होता है। यह परारुपा पराविद्या उसी को लाभप्रद होती है।

प्राणानां गतिविच्छेदः परिच्छेदः परस्वतः।

जानीयाद् ज्ञानसम्बद्धः योगी विरतिमाश्रितः।।

विरति को आश्रित करके योगी योगवेत्ता बनकर यह जान लेता है कि प्राणों का गतिविच्छेद कब स्वतः होता है और कब वे व्यापक होते हैं।

सुरतिं निरतिं चैव उभयमुभयात्मिकाम् ।

पराकोटिसुसम्बद्धां गतिं प्राणप्रदायिकाम् ।।

सुरति और निरति और दोनों का सम्मिलित रुप पराकोटि से सम्बद्ध प्राणप्रदायिका गति को देते हैं।

सद्यः सम्मीलितार्थो वै विपरीतां व्रजेच्च यः।

विपरीतपरां नद्धां वद्धां प्राणविमोहिकाम् ।।

जो साधक लक्ष्य से अलग होकर विपरीत दिशा को जाता है, उसके प्राणों की गति भी साधना के विपरीत चलती है और उसके प्राणों का विमोहन हो जाता है।

आत्मभावपरीतां च गतिं प्राप्नोति साधकः।

यदा प्राणाः विशुद्धाश्च सूक्ष्मात् सूक्ष्मतमा मताः।।

ऐसा साधक आत्मभाव से विपरीत गति प्राप्त करता है। जब प्राण विशुद्ध हो जाते हैं, तब सूक्ष्म रुप धारण कर लेते हैं।

तदा नाडीत्रयं बुद्धा रुद्धा गतिपरीतकाः।

जायन्ते बोधभावाय अनुभावाय तत्त्वतः।।

तब वे शुद्ध प्राण विपरीत गति को रुद्ध करके तीनों नाडियों का वेधन करके बोधभाव दायक और तत्त्व के अनुभव के लिये प्रवृत्त हो जाते हैं।

यदा मूलं स्थिरं पूर्णं सुस्थिरं कन्दकं मतम् ।

कन्दमूलात् महाकन्दं धारया योजयन्ति ते।।

जब मूलाधार पूर्ण स्थिर हो जाय और कन्द भी सुस्थिर हो जाय, तब कन्दमूल से लेकर महाकन्द तक वे प्राण एक धारा बाँध देते हैं, कन्द व महाकन्द का मेल कराते हैं।

धारा योजनकाले हि प्राणानां गतिं सूक्ष्मिका।

जायते साधक स्तस्या बोधं प्राप्नोति निश्चितम् ।।

इस धारा के योजन-काल में प्राणों की गति बड़ी सूक्ष्म हो जाती है और साधक को उन

सूक्ष्म प्राणों का बोध भी हो जाता है।

कर्वाचित्चैव कदाचिच्च हिन्दोलैः कलकल्ककैः।

कृत्वा स्पन्दविशेषेण विरामति परं परम् ।।

कभी कभी प्राण कल-कल शब्द करते हुए और हिलोरें लेते हुए और कंपी कंपी के साथ परम विराम को प्राप्त हो जाते हैं।

एवं समुत्थितं प्राणं प्राणाः कर्षन्ति वै यदा।

तस्य तत्कर्पणं श्रेष्ठं जायते योगमार्गके।।

इस प्रकार से उत्थित प्राणों को जब प्राण आकर्षण करते हैं। उनका वह पारस्परिक कर्षण योग मार्ग में श्रेष्ठ समझा गया है।

सर्वं सर्वसमाकारं सर्वभूतिविभूषितम् ।

सर्वबोधसमापन्नं प्राणव्यूहं प्रजायते।।

साधक का वह प्राणव्यूह सब में समभाव देने वाला सर्वविभूतिदायक और समस्त बोध से पूर्ण होता है।

तस्य वै गमनार्थाय प्रापणाय च वै ततः।

ऊर्ध्वभागं महावेगात् संवेगात् पुरतः पुरः।

पुरस्ताच्च अधस्ताच्च मध्यमार्गकृतास्थितिः।

प्राणधारा महाविद्युत् धारैव राजते ध्रुवम् ।।

उस साधक को लक्ष्य तक पहुंचने के लिये, परतत्त्व तक पहुंचने के लिए, शुद्ध प्राणधारा वेगपूर्वक संवेगपूर्वक महावेगपूर्वक आगे आगे प्रत्यक्ष रूप में सामने से, नीचे से, मध्यभाग का आश्रय लेते हुए महा विद्युतधारा की तरह सुशोभित होती है।

पुनर्वेगातिवेगेन ऊर्ध्वं गच्छति तत्परम् ।

कन्दं सेतुं च रन्ध्रं च प्रयाति सूक्ष्मरूपकः।।

फिर गति वेग से वह धारा ऊपर की ओर कन्द, सेतु तक सूक्ष्म रूप में चली जाती है।

अथवा केवलं तत्र स्पन्दनं च भवेद् यदा।

तदा तत्कम्पमात्रेण प्राणाः कार्यपरायणाः।।

अथवा साधक के शरीर में केवल स्पन्दन जब होता है। तब उस कम्पमात्र से प्राण अपने कार्य में परायण हो जाते हैं।

जायन्ते ज्ञायतां तद्वै पराभूतिविमण्डिताः।

कार्यसिद्धिं करिष्यन्ति निश्चितं निश्चितं ध्रुवम् ।।

तब अवश्य निश्चय ही समझो वे प्राण पराभूति से विमण्डित होकर कार्य सिद्धि अवश्य ही करेंगे।

यदि वा ज्ञायते तत्र साधनालग्नके बुधैः।

मूलादुदरभागेऽस्मिन् शब्दरूपा शुभा स्थितिः।।

अथवा यदि साधना में लगे साधकों को ऐसा प्रतीत हो कि मूल से उदर भाग तक शब्द करते हुए बढ़ रहे हैं तो उनकी अच्छी स्थिति है।

ऊर्ध्वं शब्दं विधायैव सहसा रुद्धतां व्रजेत् ।

प्राणः स व्यूहकस्तस्मात् तेन कार्यं कृतं शुभम् ।।

शब्द करते हुए वे ऊपर चढ़ते हुए सहसा रुद्ध हो जाते हैं तो समझो कि प्राणों का व्यूह सुन्दर है और वे शुभ कार्य करेंगे।

बहवः सन्ति वै भेदाः नानाकल्पविकल्पकाः।

नानारीतिसमायुक्ताः नानाभेदविभेदकाः।।

प्राणों की गति के नाना प्रकार के कल्प-विकल्प अनेकों भेद हैं। उनकी नाना प्रकार की रीति है। नाना प्रकार के भेद-विभेद हैं।

असंख्यासंख्यकाः सन्ति प्राणानां बोधभेदकाः।

तस्माद् यदानुभूतिः स्यात् तेनैव ज्ञायतां यदा।।

असंख्य-असंख्य प्रकार के प्राणों के अनुभव होते हैं। अतः साधक को जब जैसी जो अनुभूति हो उसे वह जान लेवे।

दृष्टिभेदं समायातं दृष्टिरूपं समन्वितम् ।

एकं द्विकं तृतीयं च भेदमाश्रित्य साधकः।।

स्वयोगं सिद्धिदं कुर्यात् प्राणान् सुसुस्थिरान् ।

सुस्थिरा हि विशुद्धाश्च विभूताश्च विभूतिकाः।।

साधक की अपनी-अपनी पृथक्-पृथक् दृष्टि होती है और दृष्टि भेद से भी प्राणों के एक, दो, तीन अथवा अनेकों भेदों का आश्रय करके अपने योग को सिद्धिप्रद बनाता जावे और प्राणों को स्थिर करता जाय, सुस्थिर प्राण विशुद्ध होकर नाना विभूति प्रदान करते हैं।

प्राणाः प्राणार्थदाः सद्यो भविष्यन्ति न संशयः।

किं ब्रवीमि महाभेदं पारं गच्छन्ति वै नहि।।

वे विशुद्ध प्राण जीवनदायी शीघ्र हो जायेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है। प्राणों के महाभेदों का कहां तक बखान करूँ।

मनीषिणश्च विद्वांसः योगिनो योगतत्पराः।

किं तस्मिन् हि समाधाने महायोगे विशेषतः।।

मनीषी योगी विद्वान् भी उनका पार नहीं पाते हैं। विशेषतया इस महयोग की साधना में इन बातों का कोई समाधान नहीं है।

परिच्छेदो न वा तस्य प्राणव्यूहस्य वै कदा।

यद्भूतं भाव्यते यच्च भूयते चानुभूयते।।

प्राण व्यूहों के भेदों की गणना और इयत्ता कुछ नहीं है। बस जो होता है, जो होगा और अनुभव में आता है।

स्वयं महाकृपा तत्र कारणेन निवोध्यताम् ।

तस्मात् साधन संलग्नः साधकः साधकोत्तमः।।

इसमें महान् कारण केवल समर्थ गुरु की कृपा ही है। अतः श्रेष्ठ साधक महाकृपा समझता हुआ अपने साधन में लगा रहे।

प्राणोत्तमं समाधाय रन्ध्रे संवेशयेत् स्वयम् ।

यावद् रन्ध्रं न संयान्ति प्राणास्ते ऊर्ध्वगामिनः।।

साधक अपने प्राणों को शोधन करके स्वयं रन्ध्रभाग में प्रवेश करा दे। जब तक प्राण रन्ध्रभाग में प्रवेश नहीं करते तब तक वे ऊर्ध्वगामी नहीं होते हैं।

तावन्निरीक्षणं प्रोक्तंतथैव च परीक्षणम् ।

बहुना किं च उक्तेन लक्षणेन पुनः पुनः।।

प्राणों का निरीक्षण और परीक्षण तभी तक करना कहा गया है जब तक वे रन्ध्र में प्रवेश नहीं करते हैं। अधिक लक्षणों को बार बार बताने से क्या लाभ है।

एकेनैव समाधाय सर्वं तत्र नियोजयेत् ।

शंकाः सन्ति अनेका वै तर्काः सन्ति अनेकशः।।

बस एक बात को पकड़ करके उसके द्वारा अभ्यास करते चलो. शंका तो बहुत सी हैं. तर्क भी बहुत हैं।

तेषां सद्यो विनाशाय प्राणान् सूक्ष्मतरान् कुरु।

सूक्ष्मतां यान्ति वै प्राणा यदा वै शुद्धभावकम् ।।

उन सबके विनाश के लिए प्राणों को सूक्ष्मतम बनाते चलो, जब प्राण सूक्ष्म हो जाते हैं, तब वे शुद्ध हो जाते हैं।

समायाति नरस्तस्मात् सद्यः प्राणपरोभव ।।

इसलिए साधक को चाहिये कि वह शीघ्र प्राणों की साधना में लग जावे।

३-८-६४।।१७८।।

हरि ॐ तत् सत् ।।

विमलां विमलाम्बुधारिणीं विमलाकारमलापशोधिकाम् ।

सुनयां नवनीतभाविकां मृदुलां तान्तनतान्ततन्तिकाम् ।।

प्रणमामि परात्मबोधिकां परविद्यां परमार्थसाधिकाम् । ।ॐ।।

हरि ऊँ तत् सत्। मैं उस परा विद्या को प्रणाम करता हूँ, जो विमल और निर्मल कमल धारण करने वाली है और मल का अपशोधन करके विमल कर देने वाली है, नवनीत की भाँति कोमल और सारवती,वात्सल्य भाव से साधक के पास स्वयं नत् होकर उपकारार्थ आने वाली है, ऐसी परमार्थ साधिका परा विद्या को मैं प्रणाम करता हूँ।

परा विद्या च या विद्या परमार्थप्रसाधिका।

परतत्त्वसमाभावा विभावा च विभाविका।।

जो परा विद्या नामक श्रेष्ठ विद्या है, वह परमार्थ प्रसाधिका है, परतत्त्व के समभाव की प्रदात्री है और नाना विभावों का उद्भव करने वाली है।

ध्यानं क्रियां च या सद्यः प्रसाधयति प्रीतिदा।

प्राणायामं परं बुद्ध्वा ततो बोधकरी च या।।

यह विद्या ध्यान और क्रिया की शीघ्र सिद्धि देकर प्रीतिदायिनी होती है। श्रेष्ठ प्राणायाम का ज्ञान कराके बोधदायिनी है।

सर्वेषां साधकानां सा महाकल्याणकारिणी।

परा विद्या विशिष्टा सा सर्वतत्त्वविवोधिका।।

यह विद्या सभी साधकों का परम कल्याण करने वाली होती है। यह विशिष्ट परा विद्या सर्व तत्त्व की विवोधिका है।

यो जानाति परां विद्यां परप्रीतिप्रदायिकाम् ।

तस्य वै सफलं जन्म स नरो योगकारकः।।

परम प्रीति दायिनी इस परा विद्या का जो साधक ज्ञान रखता है, उसी का जन्म सफल है और वही योग साधना का अभ्यासी है।

अथ एवं प्रवक्षामि परायां किं भविष्यति।

अग्रे रन्धात् परा तस्माद् ज्ञायतां साधकोत्तमैः।।

अब यह बताती हूँ कि परा की दशा में क्या होगा। रन्ध्रभाग से आगे ऊपर को परा का क्षेत्र है, साधक लोग इसे समझ लें।

सर्वा क्रियां च वै हित्वा कृत्वा रन्ध्रे समागमम् ।

रमन्ते तत्र वै प्राणाः तत्र निष्पत्तिभूमिका।।

सभी क्रियाओं को छोड़कर रन्ध्रभाग में प्राणों का प्रवेश करा दो, वहाँ प्राण रमण करने लगते हैं, वहीं निष्पत्ति भूमिका प्राप्त होती है।

जायते पूर्णरुपेण सा तत्र रमणात्मिका।

रमणं भ्रमणं कृत्वा श्रवणं श्रावणं पुनः।।

पावनं पवनं कृत्वा रमन्ते तत्र ते किल।

तत्र किञ्चित् समाविश्य ऊर्ध्वं गच्छन्ति ते पुनः।।

वह निष्पत्ति पूर्णरुप से रमणत्मक होती है। प्राण वहाँ रमण और भ्रमण करके तथा श्रवण तथा श्रावण करके वायु को शुद्ध करके वह रमने लगते हैं। वहाँ कुछ काल तक टिककर फिर वे ऊपर की ओर चढ़ने लगते हैं।

सहस्रारं तु यावत्ते जायन्ते रमणात्मकाः।

रमन्ते योगिनो यत्र सहस्रारे महादले।।

वे रमण करते हुए सहस्रार पर्यन्त पहुंचते हैं, जहाँ सहस्रार के महाकमल में योगी लोग रम जाते हैं।

महापीठे महातत्त्वे प्रीतिस्तेषां प्रजायते।

न गच्छन्ति अधो यातुं शक्नुवन्ति न वै पुनः।।

उस महापीठ के महातत्त्व में उन योगियों को परमानन्द मिलता है। वहाँ से वे नीचे उतरना ही नहीं चाहते हैं और वे उतर भी नहीं सकते हैं।

एवं ते रमणं कृत्वा निर्गच्छन्ति शनैः शनैः।

तेषां निर्गमनावस्था प्रोक्ता प्रीतिप्रदा सदा।।

इस भाँति वहाँ रमण करके फिर धीरे-धीरे नीचे निर्गमन करते हैं। उनके नीचे उतरने की दशा भी बड़ी आनन्ददायिनी होती है।

सा दशा शान्तभावेन अनुभूतिं गमिष्यति।

यदा वै गम्यते तत्र प्राणैः शक्ति समन्वितैः।।

तदा सहस्रभागेऽस्मिन् दलानां दलनं भवेत् ।

विकासः सन्निकासश्च प्रकाशश्च सुशुभ्रकः।।

वह दशा शान्त भाव की होती है, जो अनुभूति में आती है। शक्ति समन्वित प्राणों के साथ जब वहाँ तक पहुंचा जाता है, तब सहस्रदल कमल की पंखुड़ियों का विकास होने लगता है। वह विकास बड़ा सुन्दर होता है जो बहुत ही शुभ्र प्रकाश से परिपूर्ण होता है।

जायते तत्र वै तेन साधकेन दलाकृतिः।

नाडीनां गुच्छभागेऽस्मिन् गुल्मकं तन्तुगुल्मके।।

वहाँ नाड़ियों के गुच्छभाग में तन्तुओं का घना जाल होता है, जिसकी प्रतीति साधक को पंखुड़ियों के आकार की दीखती है।

एका शिवाकृतिर्भव्या भावना परिपुष्टिका।

स्फटिकत्वेन संकाशं प्रतीकाशं विकासकम् ।।

उसके बीच में एक सुन्दर परिपुष्टि देने वाली शिवलिंग के आकार की भावना होती है, वह लिंग स्फटिकप्रभ प्रकाश पूर्ण स्वच्छ शुभ्र होता है।

भासते दलमध्येऽस्मिन् ज्योतिराख्यः शिवोहि सः।

लिंगाकृतिं विहायैतां भ्रमणं कुरुते मनः।।

कमल पत्रों के मध्य में भासित होता हुआ वह ज्योतिर्लिंग ही शिव हैं। उस लिंगाकृति को छोड़कर फिर साधक उसके चारों ओर भ्रमण करने लगता है।

दलेषु दलभागेषु दलांशेषु विशेषतः।

प्राणैः सार्धं समाविष्टं रमणं तस्य तत्र तत् ।।

पत्र-पत्र में पत्रों के किनारों में, विशेष प्रकार से प्राणों के साथ उसका वहां रमण होता रहता है।

परं प्रीतिकरं प्रोक्तं ज्योतिर्लिंगप्रदर्शकम् ।

यदा ऊर्ध्वं गमिष्यन्ति प्राणास्तस्मात् स्थलादपि।।

जब उस स्थान से भी ऊपर को प्राण जायेगें, तब उस ज्योतिर्लिंग का दर्शन परम आनन्ददायक होता है।

अन्यानुभूतिसंयोगः भविष्यति पुनः पुनः।

ततः परं परं रूपं परं ज्ञानं परात्मकम् ।।

इसकी अनुभूति का संयोग तुम्हें बारम्बार होता रहेगा, इसके अनन्तर फिर सर्वश्रेष्ठ परम रुप और परात्मक ज्ञान का उदय होता है।

अनुभूतिं समायाति यदा तत्र स्वयं स्थितिः।

अग्रे किं किं च वै दृश्यं दृश्यते चानुभूयते।।

तत्सर्वं योगियोगेशो गोरक्षश्च वदेत् स्वयम् ।।

वह भी अनुभव में तब आता है जब वहाँ संस्थिति होती है। आगे फिर क्या क्या दृश्य दिखाई पड़ता है और कैसी अनुभूति होती है, वह सब योगियोगेश्वर गोरक्ष देव स्वयं बता देंगे।

४-८-६४।।१७९।।

कलावतीं कलाधारां कलाज्ञानकलात्मिकाम् ।

कलाबोधात्मिकां तां वै कलाधारां नमाम्यहम् ।।

कलावती, कलाधारा, कलाज्ञानात्मिका, कलाबोधात्मिका, उस भगवती को मैं प्रणाम करता हूँ।

कलितां कलसंज्ञां वै कलाकूलकुलाकुलाम् ।

कुले अकुलभावेऽस्मिन् संगमोत्थानकारिका।।

कलाओं के कूल तक आकुलित रहने वाली, कल संज्ञा वाली मां को प्रणाम है, जो कुल और अकुल भाव में संगम और उत्थान कारिणी है।

या शक्तिः कुलरुपेण अकुले संगमोत्सुका।

कुलाकुलसमायोगात् तस्याः कामः प्रसिद्धताम् ।।ॐ।।

जो शक्ति कुल रुप से उठकर अकुल भाव के संगम के लिये उत्सुक रहती है, कुलाकुल का यह समायोग ही उसके कार्य की सिद्धि समझो।

अस्य पराविद्याप्रसंगस्य समस्तज्ञाताज्ञात भावबोधकस्य समष्टिव्यष्टिरुपेण सरुपारुपरुपात्मकबोधकारकज्ञानमत्रैव अनुभवं चात्रैव क्रियारुपं चात्रैव यद्गदितं प्रदर्शितं प्रकटितं च तत्सर्वं सुसाधुरुपेण पूर्वपरपरापर अपरापरविबोधमण्डितं सकलं अकलं विकलं कलात्मकं कालेन ज्ञायताम् ।।

समस्त ज्ञाताज्ञात भावों का बोध देने वाले, समष्टि व्यष्टि रुप से सरुप और अरुप ज्ञान करा देना ही इस परा विद्या के प्रसंग का विषय है। अनुभव और क्रियारुप जो यहाँ कहा गया है, प्रदर्शित व प्रकट किया गया है उस सबको तुम भलीभाँति पूर्वापर रुप में सकल, अकल व विकल रुप में यथासमय जान लेना।

अथ एतत् समाधेयं परायां गदित च यत् ।

अन्ते तद्भाविका वृत्तिः कुलाकुलसमन्विता।।

अब ऐसा समझो कि जो परा के विषय में कहा गया है उसके अन्त में ऐसी वृत्ति का उदय होता है जो कुल और अकुल दोनों से समन्वित रहता है।

जायते परमा भावा परस्य प्रत्यार्थिका।

परस्य प्रत्ययो यत्र कुलेन अकुलेन वा।।

धारया राजितं तत्र क्रिया चैव समाप्यते।

अक्रियो निष्क्रियः प्रोक्तः यो भावो बोधसंज्ञकः।।

यह परम भाव पर (शिव) के प्रत्यय (दृढ़ निश्चय) को देने वाला होता है। कुल अकुल के सहित जहाँ पर भाव का प्रत्यय (निश्चयात्मक ज्ञान) होता है वह एक धारा से शोभित होता है, वहाँ क्रिया समाप्त हो जाती है। बोध संज्ञक जो भाव है उसे अक्रिय या निष्क्रिय कहा जाता है।

तत्रैव निष्क्रियं तत्त्वं अक्रियं च क्रियात्मकम् ।

त्रिधाभावेन सम्भूतं त्रिधारुपेण नर्तितम् ।।

वहीं पर अक्रिय, निष्क्रिय तथा क्रियात्मक तीन प्रकार का तत्त्व तीन प्रकार से प्रस्फुरित होता है।

त्रिधाकारं त्रिधारुपं त्रिधाकल्पं त्रयात्मकम् ।

द्वैतमद्वैत द्वैतं च द्वैताद्वैतं तथैव च।।

क्रियात्मक यह तत्त्व तीन आकार का तीन रुपों वाला व त्रिधा प्रतीति में आने वाला होता है, इसे ही द्वैत, अद्वैत और द्वैताद्वैत कहा गया है।

सर्वं तत्रैव विज्ञेयं सहस्रारे विशेषतः।

गतिको गतिभावार्थी गतिसम्पन्नमेव च ।।

यह सब तत्त्व वहीं सहस्रार में ही विशेष रुप में जाना जाता है। अतः वहाँ पहुँचने की इच्छा करो, गतिवान् बनो, तुम्हें गतिमत्ता प्राप्त होगी।

तत्र गत्वा सुखं नित्यं नित्यानन्दविमण्डितम् ।

प्राप्नोति साधको यस्मात् सुधाक्षरणमेव च।।

वहाँ पहुँच कर नित्य नित्यानन्द विमण्डित सुख साधक को प्राप्त होता है, वहाँ से अमृत का क्षरण भी होता है।

पानं करोति स तद्वै मधुरं सुधयान्वितम् ।

यदा वै क्षरते वारि मधुरं मधुपानवत् ।।

तदा तृप्तिं समायाति योगी साधनतत्परः।

योगाभ्यासे रतो यस्तु करोति च पुनः पुनः।।

उस अमृत के पान का मधुर तृप्तिदायक रस का पान साधक करता है। मधुपान की भाँति जब वहाँ से मधुर अमृत झरता है तब साधनतत्पर योगी पर तृप्ति का अनुभव करता है, जो योगाभ्यास में निरन्तर तत्पर रहता है वही इस अमृत का बार बार पान करता है।

समाभ्यासं समायोगं समभावं समात्मकम् ।

समत्वमिति वै यत्तु समता तत्र राजते।।

इस दशा में समभाव का भास होता है, समतात्मक ज्ञान होता है। साधक समत्वभाव में रहता है, वहाँ समता ही विराजमान रहती है।

यदा वै सद्यः संयाति अन्तर्वाह्यविवर्जितः।

समभावसमादृष्टिः समता ज्ञायते यदा।।

जब अन्तर्वाह्य ज्ञान से विवर्जित दशा में साधक पहुँचता है तभी समभाव की यह दृष्टि साधक के ज्ञान में उदित होती है।

तदा एवं च जानीयाद् क्रिया मे सफलं गता।।ॐ।।

ऊर्ध्वं रन्ध्रात् परं यद्वै दृश्यते परमाद्भुतम् ।।

यत्ख्यातं लिंगरुपं तत् तद् दृष्ट्वा मोदते नरः।

तस्मिन् दृष्टे सदा प्राणाः परितोषपरायणाः।।

तब साधक को समझना चाहिए कि मेरी सभी क्रियायें सफल हो गई हैं।।ॐ।। रन्ध्र के ऊपर जो परम तत्त्व के परमाद्भुत दर्शन होते हैं, जिसे ज्योतिर्लिंग कहते हैं उसके दर्शन करके साधक परम मोद प्राप्त करता है। उसके दर्शन से प्राण परम परितुष्ट हो जाते हैं।

जायन्ते अत्र बोधाय आत्मबोधस्तु निश्चितम् ।

तत्रैवभूतिसम्पन्नः पुरतो याति सत्वरम् ।।

इस स्थिति में निश्चय ही आत्मबोध हो जाता है। वहीं पर साधक विभूति पूर्ण होकर शीघ्र प्रकट हो जाता है।

तस्मात्तत्रैव संलग्नो जायते साधनारतः।

ऊर्ध्वमूर्ध्वं च ऊर्ध्वं हि किल वै प्राणभावतः।।

साधना में लगा हुआ साधक वहीं पर संलग्न हो जाता है। उससे भी ऊपर तथा और ऊपर प्राणों के बल द्वारा पहुँच जाता है।

सर्वं पश्यति तत्रैव दृश्यादृश्यं कुलाकुलम् ।

एवं कृत्वा महाबोधं महायोगं महाबलम् ।।

सम्प्राप्य मोदमान् तत्र जायते योगवित्नरः।

अतस्तत्रैव गन्तव्यं यत्र वै समता स्थिता।।

वहाँ सब दृश्य अदृश्य, कुल अकुल सबका एक साथ दर्शन कर लेता है। ऐसे अभ्यास द्वारा महायोग, महाबोध तथा महाबल प्राप्त करके योगवेत्ता साधक परम आनन्दित हो जाता है। अतः उसी लक्ष्य तक पहुचना चाहिये जहां समता की स्थिति रहती है।

समताभावसम्पन्नः शिवेन सह मोदते।

शिवशक्तिसमायुक्तः भुक्तः अमृतको रसः।।

समता भाव से सम्पन्न होकर शिव के साथ मोदित होता है। शिव शक्ति के समागम से युक्त हुआ साधक अमृत रस का आस्वादन करता है।

येन तेनैव तत्प्राप्तं ऊर्ध्वकं कुलरूपकम् ।

यत्प्रोक्तंध्यानयोगे च प्राणयोगे तथैव च।।

तत्सर्वमन्ततो गत्वा तत्रैव परिषीदति।

एतत् सर्वं च यत्प्रोक्तंज्ञानायानुभवाय च।।

तत्प्राप्य मोदसम्पन्नः शिवतां व्रजते नरः।

ऊर्ध्वं तस्मात्तत ऊर्ध्वं विमलं मलकेन तत् ।।

रहितं स्फटिकं तुल्यं भावरूपेण बुध्यते।

अग्रे किं च प्रवक्षामि तदैव बोधनां स्वयम् ।।

जिसने यह अमृत पान कर लिया है, उसी ने ऊपर स्थित कुलाकुल के तत् पद को भी प्राप्त कर लिया। ध्यानयोग तथा प्राण योग में जो बात कही गई है, वह सब अन्ततोगत्त्वा वहीं पर समाप्त हो जाती है। यह सब ज्ञान तथा अनुभव के लिये जो कुछ बताया गया है, उसे प्राप्त

करके हर्ष प्राप्त करता हुआ साधक शिवत्व को प्राप्त हो जाता है। उससे भी ऊपर में जो विमल, मलरहित स्फटिक सदृश ज्योति भाव रुप में बोधित होती है, इसके आगे अब क्या बताऊँ स्वयं ही तुम्हारे बोध में तब आ जायेगा।

तेषां मार्गपरिष्कारः भविष्यति च सत्वरम् ।

तस्मात् पूर्णं महत्पूर्णं पराविद्या प्रसङ्गकम् ।।

उन साधकों को शीघ्र ही उस स्थिति में मार्ग-परिष्कार हो जायेगा। इसलिये पराविद्या का यह प्रसंग बड़ा ही पूर्ण और महत्त्वपूर्ण है।

ज्ञेयं ध्येयं च वै नित्यं तद्वै सिद्धिकरं मतम् ।

येनाधीना परा विद्या अनुभूता पुनः पुनः।।

तेन योगरतेनैव जितं सर्वं प्रव्यूहकम् ।

तस्मात्पराधिज्ञानेन युक्तो भवतु साधकः।।

येन ज्ञानेन वै तस्य मार्गः सुस्थिरतां व्रजेत् ।।

यह परा विद्या का विषय सदा जानना चाहिये, तदनुसार नित्य इसका ध्यान करना चाहिये। जो इस विद्या का अध्ययन कर लेगा और बारम्बार इसका अनुभव कर लेगा उस योग तत्पर साधक ने समझलो, सब कुछ योग विद्या सम्बन्धी तत्तत्व्यूह पर विजय प्राप्त कर ली। अतः परा विद्या के ज्ञान के लिये साधक सदा तैयार रहे। इस ज्ञान के द्वारा साधक का मार्ग सुस्थिर हो जायेगा।

इत्यस्मिन् पराविद्याप्रसंगके स्तम्भत्रये यत्किंचित् साधकानां हिताय जितेन्द्रभारतीयस्य मुखात् स्वयं वाग्देव्या समुद्घाटितं प्रकटितं ख्यापितं च तत् कल्याणाय प्रजायताम् ।।

इस भांति इस परा विद्या के प्रसंग में, तीनों स्तम्भों में जो कुछ कहा गया है, उससे साधकों का कल्याण हो। यह प्रसंग स्वयं वाग्देवी ने श्री जितेन्द्रभारती के मुख से समुद्घाटित, प्रकटित एवं ख्यापित किया है। यह विद्या साधकों के लिये कल्याणकारी बने।।ॐ।।

(ॐ तत् सत् श्री जगदम्बार्पणमस्तु, नमो योगियोगीश्वराय श्री गोरक्षदेवाय)

।। समाप्तम ।।

अश्विनी मुद्रा
पृ० ११७

अश्वोदरी मुद्रा नं० १
पृ० ११८

अश्वोदरी मुद्रा नं० २
पृ० ११८

झम्पिनी मुद्रा नं० २
पृ० १२१–१२२
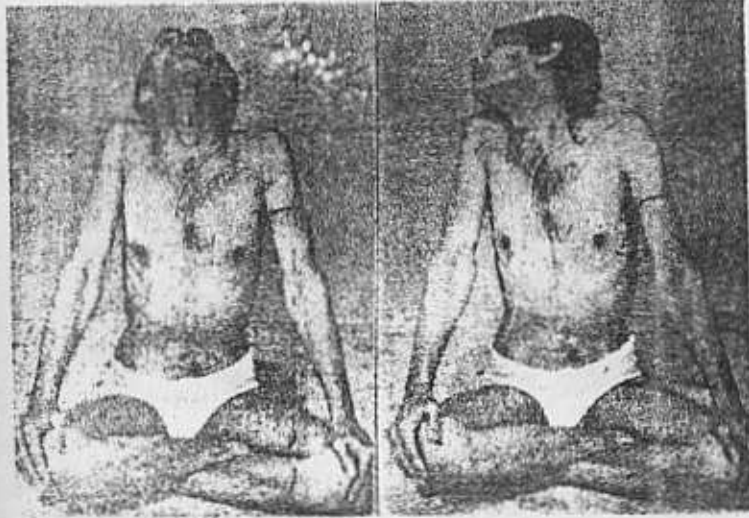
स्कन्दिनी मुद्रा नं० १
पृ० १२२

स्कन्दिनी मुद्रा नं० २
पृ० १२२

स्कन्दिनी मुद्रा नं० ३
पृ० १२२

कर्पूरिका मुद्रा
पृ० १२२–१२३

स्थानपरिचाइका मुद्रा
पृ० १२५

पट्ट बोधिनी मुद्रा
पृ० १२६

योगपट्टिका मुद्रा
पृ० १२७–१२८

सर्वतोभाविनी मुद्रा
पृ० १३३–१३४

आलम्बिनी मुद्रा (वि०)
पृ० २७०–२७६

कूर्चिका (हनुकूर्चिका) अथवा–रूद्राणी मुद्रा
पृ० २७४–२७५

सारिका मुद्रा नं० ३
पृ० २७८–२८१

प्लावनी मुद्रा नं० १
पृ० २८३–२८५

सारिका मुद्रा नं० १
पृ० २७८–२८१

सारिका मुद्रा नं० २
पृ० २७८–२८१

प्लावनी मुद्रा नं० २
पृ० २८३–२८५

विस्थापिका मुद्रा नं० १
पृ० २८७–२९०

विस्थापिका मुद्रा नं० २
पृ० २८७–२९०

निर्मला मुद्रा
पृ० ३१९–३२०

चक्रिणी मुद्रा नं० २
पृ० ३४४

भद्रिका मुद्रा
पृ० ३५३–३५६
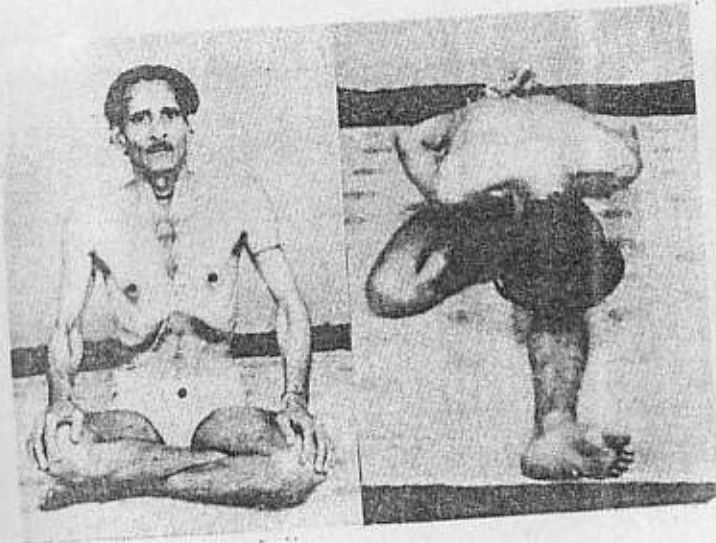
वारुणीमुद्रा
पृ० ३३६–३३८

चक्रणी मुद्रा नं० १
पृ० ३४४
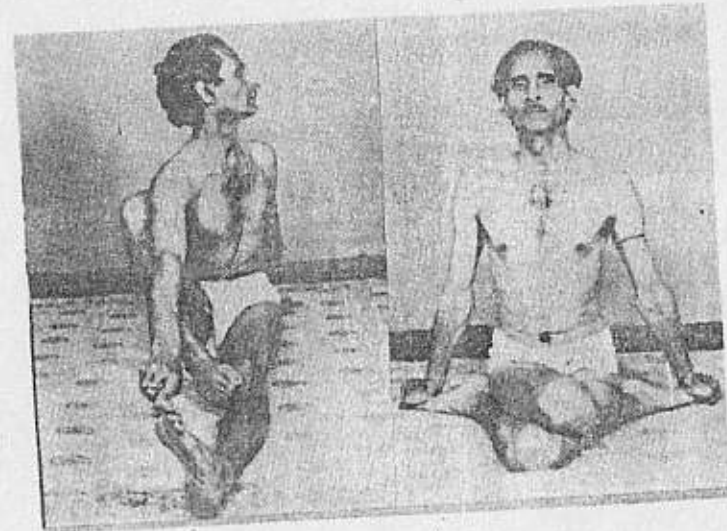
हिरण्यमुद्रा
पृ० ३५८–३५९

कात्यायिनी मुद्रा
पृ० ४०८–४०९
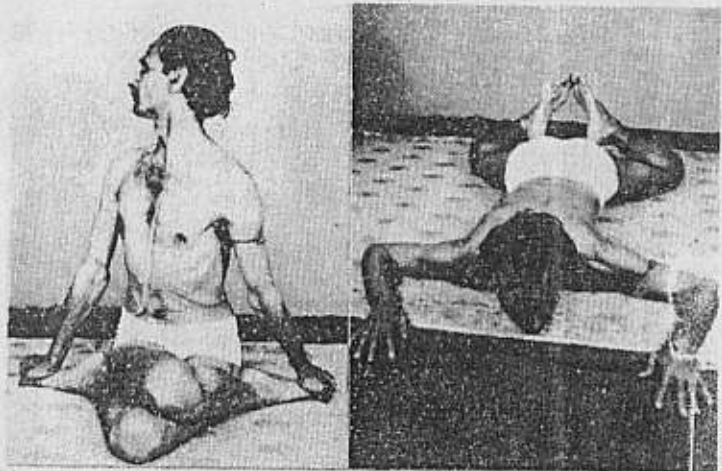
कात्यायिनी मुद्रा नं० २
पृ० ४०८–४०६

माण्डुकी मुद्रा नं० १
पृ० ४३२–४३५

माण्डुकी मुद्रा नं० २
पृ० ४३२–४३५

माण्डुकी मुद्रा नं० १
पृ० ४३२–४३५